विश्व हिंदी साहित्य
2019

प्रधान संपादक

प्रो. विनोद कुमार मिश्र

संपादक

डॉ. माधुरी रामधारी

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423,
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423,
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : +230-6600800

ISSN - 1694-3465

सहायक संपादक

श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी–बिहारी

संपादन सहयोग

डॉ. वेद रमण पाण्डेय, आई.सी.सी.आर., हिंदी पीठ,
महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

टंकण टीम

श्रीमती विजया सरजु, श्रीमती त्रिशिला आपेगाडु,
श्रीमती जयश्री सिबालक–रामशरण

निवेदन

विश्व हिंदी साहित्य में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त मत रचनाकारों के हैं।
संपादक मंडल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा

आर. एस. प्रिंट्स

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली–110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित

MINISTER OF EDUCATION
TERTIARY EDUCATION, SCIENCE AND TECHNOLOGY

संदेश

विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा प्रकाशित *विश्व हिंदी साहित्य* के दूसरे संस्करण के माध्यम से विश्व हिंदी समुदाय को अपना संदेश पहुँचाते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। यह संस्करण मेरे लिए और भी विशेष है क्योंकि सन् 2018 में मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के अंतर्गत मुझे इसके प्रथम संस्करण के लोकार्पण का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

मुझे पूरा विश्वास है कि इस नए संस्करण का भी विश्व हिंदी समुदाय द्वारा उतने ही उत्साह के साथ स्वागत किया जाएगा।

यह सर्वज्ञात है कि विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना भारत सरकार और मॉरीशस सरकार के संयुक्त प्रयासों द्वारा हिंदी के वैश्विक प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से की गई है। इस प्रकार के अंतरराष्ट्रीय अभियान के लिए एक बहु–आयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। सरकारों और सचिवालय ने एक तरफ़ मीडिया, सूचना प्रौद्योगिकी आदि भाषा प्रयोग के नए क्षेत्रों में हिंदी के प्रचार के लिए नीतियाँ चलाईं, ताकि भाषा के क्षितिज का विस्तार सुनिश्चित हो सके। दूसरी ओर, हिंदी की ऐतिहासिक शक्तियों को सुदृढ़ करने के प्रयास जारी रखना भी आवश्यक है।

इन शक्तियों में से एक है हिंदी का साहित्य।

हिंदी का साहित्य हज़ार वर्ष लम्बी परम्परा की शक्ति रखता है। यह साहित्य, अपने महान लेखकों, अपने गहरे सांस्कृतिक सरोकारों, प्रवासी समाज और भाषा–संस्कृति के प्रति उसके गहरे लगाव के कारण वैश्विक प्रसार पा चुका है। आज उस प्रवासी समुदाय और दुनिया भर की संस्कृतियों के बीच निरंतर आदान–प्रदान के चलते हिंदी साहित्य भारतीय जड़ों और विश्व के बीच सामाजिक–सांस्कृतिक वार्ता का मंच बन सकता है। हमारा उद्देश्य यही रहना चाहिए कि इस साहित्य को निरंतर परिवर्तित हो रही मानवता की महत्त्वपूर्ण आवाज़ों में एक बनाया जाए। इस प्रक्रिया में *विश्व हिंदी साहित्य* जैसे साहित्यिक प्रकाशन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

मेरा उत्साह इस बात से और बढ़ता है कि सचिवालय लगातार अपने प्रकाशनों को इलेक्ट्रॉनिक संस्करणों में भी उपलब्ध कराते हुए इनकी पहुँच विस्तृत करता जा रहा है। मुझे विश्वास है कि इस तरह के मंचों के उपयोग से, पारंपरिक हिंदी पाठकों और लेखकों के साथ–साथ हिंदी लेखकों और पाठकों की एक नई पीढ़ी के बीच इन प्रकाशनों की लोकप्रियता बढ़ेगी। इस नई पीढ़ी के साथ सम्प्रेषण मज़बूत करना आज के युग में अनिवार्य है। उन तक अपनी आवाज़ पहुँचाना आवश्यक है ही, साथ में नई शैलियों में ढले उनके नए संदेशों–सरोकारों को भी इस तरह के वैश्विक मंच पर जगह प्रदान करना आवश्यक है।

वस्तुतः सचिवालय इस प्रकाशन के लिए सराहना का पात्र है। पत्रिका के सभी लेखकों को भी मेरी बधाई। मुझे विश्वास है कि वैश्विक हिंदी समुदाय न केवल इस प्रकाशन से समृद्ध होगा, बल्कि इसकी सफलता में और अधिक योगदान देने के लिए प्रोत्साहित भी होगा।

श्रीमती लीला देवी दुकन–लछुमन

भारतीय उच्चायुक्त
पोर्ट लुई, मॉरीशस

High Commissioner of India
Port Louis, Mauritius

सत्यमेव जयते

सन्देश

विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा विश्व हिंदी साहित्य के द्वितीय वार्षिकांक का प्रकाशन बड़ी प्रसन्नता और संतोष का विषय है। आज विश्व के लगभग हर देश में अपने मूलस्थान भारत से निकल कर हिंदी भाषी आप्रवासी फल–फूल रहे हैं और अपनी कर्मस्थली को जीवन के विविध आयामों में अपने असाधारण योगदान से संपन्न बना रहे हैं; यह अत्यन्त सुखकारी और संतोषप्रद अनुभूति है।

अपनी भाषिक समृद्धि और विश्व भर में बिखरी हिंदी बोलने–सीखने वालों की विशाल संख्या के कारण हिंदी बहुत हद तक वैश्विक भाषा के स्तर पर प्रतिष्ठित होने की स्वाभाविक अधिकारिणी है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा भी हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है। सोशल मीडिया पर हिंदी में पोस्ट और हिंदी में समाचार बुलेटिन का प्रसारण संयुक्त राष्ट्र संघ में गत वर्ष आरम्भ हुआ।

स्पष्टतः सचिवालय सुचारु रूप से अपने कार्य का निष्पादन करते हुए निरंतर श्रेष्ठतर उपलब्धियाँ अर्जित कर रहा है और अपने मूल विज़न के अनुरूप ही हिंदी का अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रचार करने के लिए एक वैश्विक मंच की भूमिका निभा रहा है।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि यद्यपि हिंदी में सृजनात्मक साहित्य की पारंपरिक विधाओं (कथा, उपन्यास, कविता, आलोचना, यात्रा–वृत्तांत, संस्मरणात्मक रचनाएँ आदि) में निरंतर उच्च कोटि की कृतियाँ सामने आ रही हैं, पर यह उत्कृष्टता एकांगी ही है। एक समृद्ध भाषा के लिए साहित्येतर हर विषय (विज्ञान और टैक्नोलॉजी, मेडिसिन, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, प्रबंधन आदि) में भी मौलिक एवं उत्कृष्ट वांग्मय का अवदान, जो विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सके, नितांत आवश्यक है। इस विषय की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

एक और बिंदु की ओर मैं ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। क्या यह संभव है कि हम विश्व भर में रचे जा रहे उत्कृष्ट हिंदी साहित्य में से चुनी कृतियों का अंग्रेज़ी में सुन्दर अनुवाद करवा सकने की कोई औपचारिक, आधिकारिक व्यवस्था कर सकें जिस से हमारा रत्न कोष, जो विश्व साहित्य–विभव का ही अंग है, सब की निगाह में आ सके? एक पुरस्कार की व्यवस्था तो बिना अनुवाद की बाध्यता के भी संभवतः विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा भी की जा सकती है।

इन्हीं कुछ विचारों के साथ मैं विश्व हिंदी सचिवालय को नितांत उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएँ देता हूँ और पत्रिका के वार्षिकांक के आयोजन की सफलता की कामना करता हूँ।

तन्मय लाल

तन्मय लाल

6th Floor, LIC Building, John Kennedy Street, Port Louis, Mauritius
Tel: (230)208 3775/6 Fax: (230)2088891/2086859
hc.portlouis@mea.gov.in
www.hcimauritius.gov.in

प्रधान संपादकीय

साहित्य और संस्कृति

विगत कई सदियाँ साहित्य, संस्कृति और समाज की संघर्ष–गाथा की संवाहिका रही हैं। साहित्य ने सर्वदा भौगोलिक सीमाओं को अतिक्रमित कर बंधन से मुक्ति की महायात्रा को सातत्य प्रदान करने में सफलता पाई है। यह जगत विदित है कि अक्षर का नाश नहीं होता और शब्द ब्रह्म होता है। अक्षर से निर्मित शब्द विचार के संवाहक बन साहित्यिक कृतियों के रूप में कई पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इन्हीं शब्दों में समाज संरचना की शक्तियाँ छिपी होती हैं और श्रेष्ठ साहित्य ही संस्कृति को अधिष्ठाता बनाता है। जो समाज अथवा समूह अपनी भाषिक सम्पदा और साहित्यिक समृद्धि पर गर्व और गौरव का अनुभव नहीं करता, वह अपनी संस्कृति और सभ्यता के प्रति हीनता–बोध का शिकार रहेगा। अपनी जातीय छवि को कभी प्रतिबिम्बित होते न देख पाने की पीड़ा से उसे दो–चार होना पड़ेगा। साहित्य समय सापेक्ष होता है और समय, विमर्श के सहारे साहित्य को निरंतर संघर्ष के पथ पर अग्रसर करता है। साहित्य सार्वभौमिक लक्ष्य, मूल्य और उद्देश्य की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए नियतिग्रस्त व लाचार मानव के सामने संभावनाओं का विशाल वैकल्पिक मानचित्र प्रस्तुत करता है, ताकि वह अपने भीतर प्रतिरोध की क्षमता विकसित कर ज्ञान, सत्य एवं कारयित्री व भावयित्री प्रतिभा के सहारे श्रेष्ठतम कृतियाँ रच सके। साहित्य सत्य की साधना–भूमि पर शिवत्व की वैश्विक कामना करते हुए सौन्दर्य की व्यापक दृष्टि विकसित करता है, तभी जाकर मानव और समाज की सहज संवेदना और स्वाभाविक वृत्तियाँ सदियों तक विश्व–जन–मन में संचारित होती रहेंगी।

साहित्य हमारी आध्यात्मिक और मानसिक संतुष्टि का कारक बन हमारी संकल्प शक्ति को दृढ़ता प्रदान करते हुए हमारी सौन्दर्य दृष्टि को बलवती बनाता है। यह एक ओर आश्वस्ति के भाव से अतीत की श्रेष्ठता को वर्तमान की झोली में डाल 'हित' और 'सहित' भाव का उद्घोष करते हुए अपने कर्तव्य–बोध की अनुभूति कराते हुए समाज को पारम्परिक आचरण के अनुपालन की सीख देता है। वहीं दूसरी ओर समाज का वही पारंपरिक आचरण साहित्य को गरिमामयी सिंहासन पर आसीन भी कराता है। साहित्य और समाज के इस अन्योन्याश्रित संबंध को नीर–क्षीर विवेकी सर्जक विश्व जन–मन की आशाओं और आकांक्षाओं से परिपूर्ण करता है। नीर–क्षीर विवेकी के रूप में व्यापक व सुदृढ़ सामाजिक संसार के निर्माण में उसके सांस्कृतिक–आध्यात्मिक अधिष्ठान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वह निर्मिति क्षेत्र, भाषा, रंग और नस्ल की संकीर्णताओं से परे 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की सनातन भाव–भूमि का दर्शन कराती है तथा एक नए सांस्कृतिक वैश्विक मंच की स्थापना का मार्ग भी प्रशस्त करती है, जहाँ संसार के सारे भेद तिरोहित हो जाते हैं। साम्प्रदायिक कट्टरता व आतंक के विद्रूपित रूप के स्थान पर प्रेम, सौहार्द व भाई–चारे से ओत–प्रोत लोकतांत्रिक मूल्यों और मानव अधिकारों की गूँज से पूरी वसुधा गुंजायमान हो जाती है।

साहित्य व्यक्ति और समाज दोनों को स्वाधीनता पूर्वक जीने की उर्वर ज़मीन तैयार करता है। जातीय एकता, समरसता, समानता और सौहार्द का वातावरण जिन कारणों से सृजित हो पाता है, उनमें से महत्त्वपूर्ण है–आध्यात्मिक चिन्तन। आध्यात्मिकता की भाव भूमि पर रचा गया साहित्य शाश्वत व कालजयी होता है, जिसे आने वाली पीढ़ियाँ अपना आदर्श मानकर अनुसरण करेंगी तथा साहित्यिक प्रकाश के इस दीप से समस्त मानवता का पथ आलोकित होगा। हर कृति के मूल में समाज होता है और समाज इतिहास, भाषा, संस्कृति, परंपरा और विचार के पञ्च नद से रचनात्मकता की धारा के प्रवाह को किसी भगीरथ को सौंप अपने कर्म की इतिश्री मान लेता है। फिर वही भगीरथ उस धारा को अक्षुण्ण बनाते हुए साहित्य

की गंगा के प्रवाह को निरंतरता प्रदान करते हैं। तक जाकर संकुचितता का आडम्बर उतार 'बसुधैव कुटुम्बकम्' के महनीय आदर्श का अनुपालन करते हुए उत्कृष्ट मूल्यों को सम्पूर्णता में स्वीकारने का भाव उद्दीप्त होगा।

यद्यपि वर्गवादी सोच विभाजनकारी होती है तथा आस्था, आत्म और शाश्वत जैसे तत्वों को दरकिनार करने की प्रवृत्ति का विस्तार करने में कई गिरोह भी सक्रिय हो जाते हैं। राजनीति और कूटनीति भले ही संसार में विभाजन की लक्ष्मण रेखा खींच दे, किन्तु साहित्य में युग–धर्म से संचालित मनुष्यता चित्रित होती है। साहित्य की आकाश गंगा में समूचा विश्व क्या, पूरा ब्रह्मांड डूबकर एकाकार हो जाएगा, क्योंकि मानव मन एक है उसकी वृत्तियाँ एक हैं, वह कालातीत है, कालजयी है।

साहित्यिक ऊर्जा के अभाव में प्रायः संस्कृति की स्मृति के घने जंगलों में खो जाने तथा उसके नष्ट होने का डर बना रहता है। संस्कृति और साहित्य की वैचारिकी एक ही धरातल पर स्थित होती है, वे दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। संस्कृति की ठोस आधारशिला पर साहित्य ने मानवता के अनगिनत चित्रों को उकेरने का महनीय कार्य किया, साथ ही अपने व्यापक फलक पर पूरी मानवता को पल्लवित व पुष्पित भी किया। संस्कृति की संजीवनी कालजयी साहित्य में ही है, जो बाद में शास्त्र बन विगत और आगत के बीच सेतु बन जीवन्तता प्रदान करता है तथा जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रति ध्यान आकृष्ट कराते हुए मीमांसा की जायज़ माँग भी करता है। ज्ञान के अक्षय भण्डार वेद इसके जीवंत उदाहरण हैं। वहाँ लोक–कल्याण एवं व्यवहार, गीति तत्व, सृष्टि संरचना एवं स्वर्णिम इतिहास भी है। इसी ज्ञान भण्डार ने भारतीय समाज को संस्कृति, आचार–विचार एवं आध्यात्मिक ज्ञान से सम्पृक्त कर सम्पूर्ण विश्व को धरोहर के रूप में हस्तांतरित किया। साहित्य अपनी प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के माध्यम से समाज को दिशानिर्देश देता है। साहित्य सुषुप्त ज्वालामुखी भी होता है, जो अपने भीतर क्रांति के बीज छिपाये रहता है। समय पाकर वही बीज विशाल वटवृक्ष बन सार्वभौम स्वीकृति प्राप्त करता है। वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य की सहस्रों वर्षों की अनवरत यात्रा, वाल्मीकि से शुरू होकर महर्षि व्यास, बुद्ध व शंकराचार्य तक अनवरत जारी रही। अनगिनत कालजयी ग्रंथों के रूप में समूचे विश्व को ज्ञान और राजधर्म की सर्वोत्तम कृतियाँ प्राप्त हुईं, जिनके वास्तविक प्रकाश से सुसंस्कृत समाज के निर्माण की महत्त्वपूर्ण पीठिका तैयार हुई। वेद, वेदांत, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष, खगोलविज्ञान, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, रसशास्त्र, कामशास्त्र, वास्तुशास्त्र सहित अनेक उत्कृष्ट महाग्रंथों का प्रणयन हुआ। यह भारत द्वारा सम्पूर्ण विश्व जनमन को दी जाने वाली श्रेष्ठतम सौगात है। पूरा विश्व भारतीय मनीषा का ऋणी बना।

भारत सदियों से अपनी आन्दोलन धर्मी प्रवृत्ति के सहारे सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक विरासत को सतत संरक्षित व संवर्धित करता रहा है। इस आन्दोलन धर्मी प्रवृत्ति ने कई विमर्शों के गवाक्ष भी खोल दिए। भारतीय जनमानस भारतीयता से निरंतर ओतप्रोत रहा है। भारतीयता मात्र भौगोलिक संकल्पना नहीं बल्कि आध्यात्मिकता से ओतप्रोत एक विशेष जीवन शैली है। यह कोई पोटली में रखी हुई वस्तु नहीं, बल्कि वह रस से परिपूर्ण घट है, जिसमें बूँद–बूँद संचित वैचारिकता तथा वह भारतीय लोक–मानस है, प्राकृत जन की शाश्वत उपस्थिति है, सनातन की कालातीत भावना से ओतप्रोत स्वीकार की भावना है। इसे भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक धारा के अनवरत प्रवाह के रूप में भी चिह्नित कर सकते हैं। सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए जन मानस को तैयार करने का प्रयत्न किया गया। स्वतंत्रता के साथ–साथ समाज सुधार को भी आंदोलन का प्रमुख विषय बनाने का क्रांतिकारी कदम भी उठाया गया। वर्तमान की चिन्ता को शिद्दत से प्रकट किया गया। वर्तमान के पट पर अतीत का चित्र खींचा जाने लगा। भारत के कई संस्कृति कर्मियों ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की जो धारा बहाई, उसकी याद में पूरा भारत एकात्म हो पुनः जागृत हो गया। महर्षि दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन तथा विवेकानन्द जैसे सांस्कृतिक महापुरुषों ने भारत के खोए हुए गौरव व आत्मसम्मान को पुनर्स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इन महान राष्ट्रीय संतों की वाणी रवींद्रनाथ ठाकुर, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला एवं जयशंकर प्रसाद सहित तमाम भारतीय मनीषियों तथा साहित्य सेवियों के विचार व रचनाकर्म में भी मुखरित हुई और आज भी भारतीय रचनाओं में उसी शिद्दत से मुखरित हो रही है। आशा है आने वाली कई सदियाँ उन महान संतों की क्रांतिकारी वाणी से गुंजायमान होती रहेंगी ।

प्रो. विनोद कुमार मिश्र
महासचिव

संपादकीय

हिंदी साहित्य के गौरव की वृद्धि

मनुष्य जिस भाषा को अपनाता है, उसी में सृजन करता है। मॉरीशस में अंग्रेज़ी औपचारिक भाषा है, फ्रेंच सर्वाधिक प्रचलित भाषा है और हिंदी पूर्वजों अर्थात् भारतीय आप्रवासियों की धरोहर है। औपनिवेशिक युग के गोरे शासकों की भाषाएँ अंग्रेज़ी और फ्रेंच आगे चलकर स्कूलों में द्वितीय भाषा के रूप में अर्जित की जाती रही हैं और हिंदी बैठकाओं एवं पाठशालाओं में संस्कृति के अंग के रूप में सीखी जाती रही है। आज यदि मॉरीशस में औपचारिक भाषा अंग्रेज़ी और प्रचलित भाषा फ्रेंच की अपेक्षा पूर्वजों की भाषा हिंदी में सर्वाधिक साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित हैं, तो इसका आशय यह है कि पुरानी पीढ़ी के लोगों ने हिंदी को अपनी भाषा मानकर इसी भाषा में सृजन करने में सुख की अनुभूति की। वास्तव में, हर प्रवासी देश में हिंदी में साहित्य–सृजन की सक्रियता का प्रमुख कारक हिंदी के प्रति गहरी आत्मीयता का ही भाव रहा है।

सन् 1950 से सन् 2000 तक मॉरीशस में प्रतिभा संपन्न और जागरूक हिंदी साहित्यकारों का एक सशक्त वर्ग सामने आया। इस वर्ग में ज्यादातर रचनाकार हिंदी के शिक्षक एवं प्राध्यापक थे, जिन्होंने समर्पण–भाव से हिंदी का शिक्षण भी किया और हिंदी में सृजन करके हिंदी साहित्य का संरक्षण एवं संवर्धन भी किया। पुरानी पीढ़ी के इन कर्मठ सहित्यकारों में से कुछ दुर्भाग्यवश परलोक सिधार चुके हैं और कुछ वृद्धावस्था या अस्वस्थता के कारण साहित्य–सृजन क्षेत्र में अपनी सक्रियता बरकरार नहीं रख पाए हैं। अतः सन् 2000 के बाद मॉरीशस में प्रकाशित साहित्यिक रचनाओं की गति में तीव्रता दृष्टिगोचर नहीं हुई। हिंदी साहित्य का भविष्य धुंधला न हो, इसीलिए वर्तमान समय का यह उत्तेजक प्रश्न है कि जिस प्रकार पुरानी पीढ़ी के अनेक हिंदी शिक्षक एवं प्राध्यापक रचनात्मक क्षेत्र में अपनी कलम उत्साहपूर्वक आज़माते रहे और विश्वस्तरीय साहित्य रचकर उन्होंने हिंदी साहित्य के गौरव में वृद्धि की, क्या आज के हिंदी शिक्षक एवं प्राध्यापक भी तदनुरूप कर पाएँगे?

पिछले चंद वर्षों से यह देखा जा रहा है कि हिंदी शिक्षकों एवं प्राध्यापकों का एक युवावर्ग मंद गति से ही सही, परन्तु निश्चित रूप से साहित्य–सृजन–क्षेत्र में पदार्पण कर चुका है। इन आस्थाशील युवाओं में डॉ. सोमदत्त काशीनाथ, श्री कविराज बाबू, श्री मानव बुधन, श्री अरविन्दसिंह नेकितसिंह, श्री वशिष्ठ झमन, श्रीमती तिना जगू मोहेश, श्रीमती पार्वती पुण्या जोयसुरी, श्रीमती समानता ओजूबा, श्री सहलील तोपासी, डॉ विनय गुदारी, श्री विश्वानन्द पतिया, श्रीमती तनुजा बिहारी पदारथ आदि नाम उल्लेखनीय हैं। इन शिक्षकों एवं प्राध्यापकों की साहित्यिक रचनाएँ राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्र–पत्रिकाओं की शोभा बढ़ाने लगी हैं। विश्व हिंदी सचिवालय की वार्षिक अंतरराष्ट्रीय हिंदी लेखन प्रतियोगिताओं में भी इनमें से कई शिक्षक एवं प्राध्यापक पुरस्कृत हो चुके हैं।

5 अक्टूबर 2017 को विश्व हिंदी सचिवालय ने जब 'युवाओं द्वारा लघुकथा लेखन' विषय पर विचार–मंच का आयोजन किया, तब अनेक शिक्षकों एवं प्राध्यापकों ने आत्मविश्वास के साथ स्वरचित लघुकथा का पाठ किया। विचार–मंच की अध्यक्षता कर रहे स्थापित कथाकार श्री रामदेव धुरंधर ने अपनी प्रतिक्रिया प्रस्तुत करते हुए इन नवोदित कथाकारों के लेखन में निरंतरता की कामना व्यक्त की। इसके उपरान्त 11–12 दिसंबर 2017 को विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा 'सृजनात्मक लेखन' पर आयोजित दो दिवसीय कार्यशाला में भी हिंदी शिक्षकों व प्राध्यापकों ने अपनी सक्रिय भागीदारी के अंतर्गत कहानी, क्षणिका, लघुकथा, नाटक आदि स्वरचित रचनाएँ प्रस्तुत कीं, जिनपर टिप्पणी करते हुए कथा यू.के के सचिव श्री तेजेंद्र कुमार शर्मा और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति प्रो. आनंद वर्धन शर्मा ने लेखकों को भावी

लेखन परिमार्जित करने के लिए बहुमूल्य सुझाव दिए।

जून–जुलाई 2018 में11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के संदर्भ में विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा आयोजित साप्ताहिक परिचर्चा बैठकों में हिंदी शिक्षकों एवं प्राध्यापकों ने लेखक के रूप में भी सम्मेलन में अपनी भूमिका निश्चित की थी। यह उल्लेखनीय है कि मॉरीशस में कला एवं संस्कृति मंत्रालय द्वारा आयोजित वार्षिक राष्ट्रीय हिंदी नाटक समारोह में भी श्रेष्ठ नाटककार का पुरस्कार अक्सर हिंदी शिक्षक अथवा प्राध्यापक ही प्राप्त करते आए हैं। अतः हिंदी को अपना मानकर मॉरीशस के हिंदी शिक्षक और प्राध्यापक लेखक के रूप में हिंदी की उर्वरता बनाये रखने में कटिबद्ध हैं।

30 मई 2019 को विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा जब 'साहित्य के विकास में आलोचना का महत्त्व' विषय पर विचार–मंच का आयोजन किया गया, तब इस गतिविधि के अंतर्गत मॉरीशस के वरिष्ठ एवं नवोदित कवि–कवयित्रियों को स्वरचित कविता–वाचन करने का अवसर प्रदान किया गया। इस अवसर का लाभ उठाने वाले कवि–कवयित्रियों में भी अधिकांशतः हिंदी शिक्षक एवं प्राध्यापक ही थे। रचनात्मक लेखन में शिक्षकों की अभिरुचि में गहराई लाने हेतु विश्व हिंदी सचिवालय ने 23 से 26 जुलाई 2019 को महात्मा गांधी संस्थान के सहयोग से 'हिंदी में सृजनात्मक लेखन' विषय पर चार दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया, जिसमें प्राथमिक सरकारी पाठशाला के लगभग 400 हिंदी शिक्षकों एवं निरीक्षकों के अतिरिक्त प्राध्यापकों ने भी भाग लिया। कार्यक्रम के उद्घाटन–सत्र की मुख्य अतिथि शिक्षा व मानव संसाधन, तृतीयक शिक्षा एवं वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्री माननीया श्रीमती लीला देवी दुकन लछुमन ने हिंदी शिक्षकों को संबोधित करते हुए कहा–

''हमारे अध्यापक केवल कक्षा में पाठ समझाने एवं अभ्यास कराने व संशोधन करने के लिए नहीं बने हैं। आज अगर मॉरीशस में हिंदी का प्रचार–प्रसार इतना है, तो यह केवल हमारे अध्यापकों के कारण ही है।''

उद्घाटन सत्र में स्वागत–भाषण देते हुए विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव ने यह विचार प्रकट किया कि ''मनुष्य होना भाग्य की बात है, पर रचनाकार होना सौभाग्य की बात है।'' कार्यशाला के विशेषज्ञ डॉ. वेद रमण पाण्डेय ने उल्लेख किया कि ''साहित्य मनुष्य की आत्मा को गर्मी देता है, इसलिए साहित्य–सृजन ज़रूरी है।'' विशेष अतिथि भारतीय उपउच्चायुक्त श्री जनेश केन का कथन था कि ''साहित्य जीवन जीना सिखाता है, शेष विषय तो केवल समस्याओं को सुलझाना सिखाते हैं।'' आशय यह है कि साहित्य–सृजन के महत्त्व पर हिंदी–हितैषियों द्वारा भरपूर बल दिया जा रहा है। 'सृजनात्मक लेखन' पर हर वर्ष विचार–मंच एवं कार्यशाला का आयोजन करने का उद्देश्य लेखकों की लेखन प्रतिभा संवारने के अतिरिक्त शिक्षकों एवं प्राध्यापकों की सृजन–शक्ति उभारना और रचना–कर्म के फलने–फूलने का समुचित परिवेश तैयार करना हैं। यद्यपि आज साहित्य की पाठकीयता सिमट गयी है, तथापि जब भी कोई साहित्य का पठन करना चाहे, तो इसका अभाव न हो, इसीलिए सृजन–क्रिया में गतिशीलता आवश्यक है और यह कामना की जाती है कि पुरानी पीढ़ी के हिंदी शिक्षकों एवं प्राध्यापकों की ही भांति आज के हिंदी शिक्षक एवं प्राध्यापक भी साहित्य–सेवा को धर्म–साधना मानकर हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाएँ।

'विश्व हिंदी साहित्य' के प्रस्तुत अंक में जिन हिंदी शिक्षकों एवं प्राध्यापकों की रचनाएँ प्रकाशित हैं, वे अपने छोटे से रचना–संसार से बाहर विशाल हिंदी साहित्य जगत् से जुड़ते जाएँ और साहित्य की दुनिया में मान व आदर पाएँ, ऐसी आशा की जाती है। यह सहज जिज्ञासा भी बनी रहती है कि अलग–अलग देश के स्थापित लेखक विश्व के समक्ष अपनी कौन–सी रचना प्रस्तुत करेंगे और उनकी लेखन–प्रक्रिया का कौन–सा महत्त्वपूर्ण आयाम उभरेगा। इस जिज्ञासा की पूर्ति करने हेतु विभिन्न देशों के वरिष्ठ लेखक जो आज भी युवाजन सुलभ उत्साह से आप्लावित हैं और सृजनरत हैं,उनकी नई साहित्यिक रचनाएँ भी'विश्व हिंदी साहित्य' के द्वितीय अंक में सम्मिलित हैं। आशा है कि 'विश्व हिंदी साहित्य' ऐसा सुयोग जुटाए कि हिंदी रचना–संसार की सुंदर झलक भी प्रस्तुत हो और हिंदी साहित्य के गौरव में वृद्धि की सुखद अनुभूति भी हो।

डॉ. माधुरी रामधारी
उपमहासचिव

अनुक्रम

लघुकथा

1.	भारत	नयी ज़िंदगी	श्रीमती मंजु गुप्त	1
2.	भारत	अनूठा उपहार	श्री भूपेन्द्र कुमार दवे	2
3.	भारत	हाउस वाइफ़	शिखा द्विवेदी	3
4.	भारत	बेकार और फ़ालतू	प्रो. सुरेश प्रकाश शुक्ल	4
5.	भारत	हिम्मत	श्री लवलेश दत्त	4
6.	भारत	अंजान बच्ची	श्री विकास कुमार गुप्त	5
7.	मॉरीशस	यह सच है	डॉ. अलका धनपत	6
8.	मॉरीशस	सिफ़ारिश	डॉ. तनुजा पदारथ–बिहारी	8
9.	मॉरीशस	छोटा–सा लड़का	श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी–बिहारी	9
10.	मॉरीशस	हँसना और हँसाना	सुश्री उर्वशी जोलिम	10
11.	मॉरीशस	बीस रुपए का सिक्का	सुश्री समानता ओजूबा	11
12.	अमेरिका	अंतर	श्री दीपक मशाल	12
13.	अमेरिका	विमोचन	श्री अनुराग शर्मा	13

कहानी

14.	भारत	अम्माँ	डॉ. मंजरी शुक्ल	15
15.	भारत	छोटी–सी प्रेम कहानी	श्रीमती मीना पाठक	20
16.	भारत	दावानल	डॉ. मधुछन्दा चक्रवर्ती	26
17.	भारत	मूक प्रेम	निशा नंदिनी गुप्त	30
18.	भारत	बंजारन	डॉ. रीतामणि वैश्य	33
19.	भारत	फ़ुलस्टॉप	श्रीमती भावना सक्सैना	38
20.	मॉरीशस	मास्टर जी की वसीयत	डॉ. बीरसेन जागासिंह	42
21.	मॉरीशस	गिरिजा दीदी	श्रीमती कल्पना लालजी	48
22.	मॉरीशस	एक नई आशा	श्रीमती अंजु घरभरन	51
23.	मॉरीशस	मार्ग प्रेरणा का	बीबी साहेबा फ़र्ज़ अली	54

24.	अमेरिका	घुटन	प्रो. नीलू गुप्त	57
25.	कनाडा	पन्ने जो पढ़े नहीं	डॉ. हंसा दीप	61
26.	लंदन	ज़िन्दगी और मौत के बीच की चुप्पी	श्री तेजेन्द्र शर्मा	66
27.	लंदन	दोनों आसमानों के रंग	ज़किया ज़ुबैरी	74
28.	श्रीलंका	उम्मीद	श्री ब्रसील नागोड वितान	86
29.	न्यूज़ीलैंड	माओइ और विशाल मछली	श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'	88

कविता

30.	भारत	किताबें	डॉ. जसवीर त्यागी	91
31.	भारत	बाबू जी सेवानिवृत्त हो गए हैं	श्री विनोद कुमार पाण्डेय	92
32.	भारत	अंतिम पहर में सदी	प्रो. चंद्रकांत सिंह	93
33.	भारत	फिर एक बार	श्री राधे श्याम भारतीय	94
34.	भारत	हे अनंत	श्री आशीष कुमार कंधवे	95
35.	भारत	मैं स्त्री हूँ	डॉ. जेन्नी शब़नम	96
36.	भारत	जल–दर्पण	श्री ओम नागर	97
37.	भारत	द्वंद्व	सत्या शर्मा 'कीर्ति'	98
38.	भारत	न्याय आवाहन	श्रीमती सारिका मूंदड़ा	99
39.	भारत	वीर विनायक दामोदर सावरकर	डॉ. अ. कीर्तिवर्धन	100
40.	मॉरीशस	आज की हिंदी की दूरदर्शी संतान	श्री घनश्याम शर्मा मोहाबीर	100
41.	मॉरीशस	सूर्योदय	श्री कविराज बाबू	101
42.	मॉरीशस	मेरी हिंदी, मेरी पहचान	श्री सहलील तोपासी	101
43.	कनाडा	उर में आता कोई	श्री गोपाल बघेल 'मधु'	103
44.	लंदन	शब्द	इंदु बरोत	104
45.	श्रीलंका	मुहब्बत	सुश्री एस.एच.एन. दुलांजलि	104
46.	क़तर	ऐसा हो भारतवर्ष	श्री गजराज सिंह	105
47.	ऑस्ट्रेलिया	वैश्विक भगवान की खोज	डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव	106

गीत

48.	भारत	दूर कहाँ तुम चले गए हो	श्री पीयूष कुमार द्विवेदी 'पूतू'	107
49.	भारत	मैं उनके ही मन भाऊँ	श्रीमती ममता सिंह राठौर	107
50.	भारत	तेरा नाम	डॉ. मनीषा शर्मा	108

51.	भारत	गंगा	श्री भगवान पाण्डेय	108
52.	भारत	चल पड़े हैं	मंजूषा मन	110
53.	कनाडा	दोहे	डॉ. रत्नाकर नराले	110

ग़ज़ल

54.	भारत	ग़ज़ल	श्री हर्षवर्धन आर्य	114
55.	भारत	आवाज़ गुम हो गई है	श्रीमती बेनू कांत	115

नाटक / एकांकी

56.	भारत	पुलवामा	डॉ. सुनील गुलाबसिंह जाधव	116
57.	भारत	नशा छोड़ो, सुख से जीओ	श्री नफ़े सिंह कादयान	123
58.	मॉरीशस	मैं भगवान हूँ	श्री धनराज शम्भु	135

निबंध

59.	भारत	सखि, वसंत आया!	श्री सर्वज्ञ शेखर	142
60.	श्रीलंका	सिंहली संस्कृति	शामिला कौमुदी	143

संस्मरण

61.	भारत	बापू सौ से डेढ़ सौ तक	चेतना भाटी	148
62.	मॉरीशस	स्मृतियों में विजय धनपत	डॉ. सोमदत्त काशीनाथ	150
63.	मॉरीशस	अफ़ोनिया	श्री बलवंतसिंह नौबतसिंह	154
64.	मॉरीशस	नादान पत्रकार, समझदार कैदी	श्रीमती सविता तिवारी	157
65.	लंदन	यादों की यवनिका	श्रीमती शिखा वार्ष्णेय	160
66.	ऑस्ट्रेलिया	वंडरफुल इंडिया	श्रीमती पूर्णिमा पाटिल	162
67.	चेक गणराज्य	इथियोपिया में हिंदी	श्री आशुतोष द्विवेदी	163

यात्रा–वृत्तांत

68.	भारत	मॉरीशस अर्थात् मिनी भारत की यात्रा	श्री गोवर्धन यादव	166
69.	भारत	स्मृति में कोरिया	डॉ. विजया सती	180
70.	भारत	अंडमान का पानी : काला, हरा या नीला	श्री जीतेन्द्र 'जीत'	183
71.	भारत	लंदन में केदारनाथ परिक्रमा	डॉ. रणजीत साहा	188
72.	मॉरीशस	लंदन : एक अविस्मरणीय यात्रा	डॉ. सुरीति रघुनंदन	196
73.	मॉरीशस	पेरिस : स्वाद का अनोखा शहर	डॉ. कुमारदत्त गुदारी	204
74.	अमेरिका	प्रथम श्रेणी में प्रथम बार	श्री रमेश जोशी	207
75.	ऑस्ट्रेलिया	अफ़्रीकन सफ़ारी	डॉ. भावना कुँअर	210

रेखाचित्र

76.	सिंगापुर	तिवारी जी	डॉ. संध्या सिंह	219

डायरी

77.	कनाडा	रोज़नदारी की बातें	डॉ. शैलजा सक्सेना	222

व्यंग्य

78.	भारत	निन्दा स्तुति का मज़ा, भगवतभक्ति में कहाँ!	डॉ. हरि जोशी	227
79.	भारत	रॉयल्टी आई है यार!	श्री अशोक गौतम	228
80.	भारत	वॉट्सएप की दुनिया	श्री राजशेखर चौबे	230
81.	मॉरीशस	झूठ का लिखा सच	श्री रामदेव धुरन्धर	231
82.	कनाडा	मैं पुण्य कमाने गया	श्री धर्मपाल महेंद्र जैन	236

साक्षात्कार

83.	भारत	'सहृदयता आलोचना की कुंजी है' —प्रो. नामवर सिंह	डॉ ऋचा शर्मा	239
84.	भारत	'हिंदी की वैश्विक आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए कटिबद्ध' —प्रोफ़ेसर नन्दकिशोर पाण्डेय	डॉ. अमरेंद्र त्रिपाठी	242
85.	सिंगापुर	'गिरमिट गीत प्रवासी हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है' —श्रीमती धीरा वर्मा	श्रीमती सुनंदा वर्मा	254

नयी ज़िंदगी

— **श्रीमती मंजु गुप्त**
नवी मुम्बई, भारत

रमिया का बचपन अपने माता–पिता की अभिशप्त बंधुआ मज़दूरी के तहत ईंट भट्ठे के मालिक के घर में गुलामी की मार से अभिशापित था। कोल्हू के बैल की तरह दिन–रात मालिक के कामों में जुटी रहती थी। एक काम निबटाने के बाद दूसरा काम मालकिन का करना पड़ता था। जैसे बर्तन माँजना, सफ़ाई करना, जूते पॉलिश करना आदि। उनके अत्याचारी रवैये सहना और जुल्मी हुक्मों का पालन करना पड़ता था। मालिक की आत्मा में मानवीयता, संवेदनाएँ जैसे मर गयी हो।

रमिया अपने माता–पिता के साथ ईंटों के भट्ठे में भी जाकर काम करती थी। उसे भट्ठे में जाना अच्छा न लगता था, क्योंकि जब ईंटों को तसले में भरकर ट्रक में रखती थी, ड्राइवर की बुरी नज़रें उसे घूरा करती थीं। एक दिन तो ड्राइवर ने सीमा ही लाँघ दी थी, जब उसने रमिया की चुन्नी ही खींच दी थी। अचानक उसी वक्त माँ ने आकर ड्राइवर को एक ईंट उसकी आँख पर मारी थी। ड्राइवर की आँख बच तो गयी थी, लेकिन भौंह का घाव इस वारदात का गवाह था।

इस वारदात पर ईंट भट्ठे के मालिक ने ड्राइवर से कहा था – ''इस छोटी बच्ची के साथ ऐसा करना तुम्हें शोभा नहीं देता है। माफ़ी माँगो रमिया से।''

ड्राइवर का उत्तर था – ''नहीं साहब मैं नहीं माँगूँगा माफ़ी, उसकी माँ ने मुझे ईंट मारी है। वह मुझसे माफ़ी माँगे।''

तभी ड्राइवर ईंटों से भरे ट्रक को लेकर वहाँ से रफ़ा–दफ़ा हो गया था।

ईंट भट्ठे के मालिक ने इस छेड़–छाड़ की घटना को वहीं दबा दिया और रमिया की माँ से कहा –''तेरे मुँह से इसके लिए आवाज़ नहीं निकलनी चाहिए। अगर आवाज़ निकली तो उसी समय तेरा राम नाम सत्य कर दूँगा।''

काँपते हुए हाथों को जोड़ते हुए रमिया की माँ ने उसके समर्थन में हाँ में गर्दन हिलायी और मन–ही–मन बुदबुदाई कि बंधुआ मज़दूर होने के कारण कौन हमारी फ़रियाद सुनेगा?

तब से रमिया इस छेड़–छाड़ की घटना से डरी, सहमी–सी रहने लगी। मालिक के उत्पीड़न, शोषण, दुर्व्यवहार से रमिया का पूरा परिवार दुखी और पीड़ित रहता था। उन्हें यह सब सहना ही था, जन्म से ही भाग्य में अभिशाप जो लिखा था।

कहते हैं जिनके हाथ नहीं होते हैं, उनकी भी किस्मत लिखी होती है। घूरे के दिन भी बदलते हैं। रमिया के भाग्य से करिश्मा हो गया।

'मज़दूर मुक्ति मोर्चा' का एनजीओ जब इस गाँव में आया, तो ईंटों के भट्ठे के मालिक के यहाँ बंधुआ मज़दूरों का पता लगा और वहाँ रमिया के पीड़ित परिवार से मुलाकात हो गयी। उन्हें रमिया के पिता ने आप बीती सुनायी।

जैसे–तैसे अदालत के द्वारा एनजीओ ने इन बंधुआ मज़दूरों को आज़ाद कराया। उनके बच्चों को बाल–गृह में रखकर 'सर्व शिक्षा अभियान' के तहत रमिया को शिक्षा दिलायी। स्वावलम्बी रमिया शिक्षिका बन समाज में शैक्षिक मूल्यों और ज्ञान की रोशनी से कानूनों, अधिकारों, शोषण, यौन उत्पीड़न और घरेलू हिंसा के प्रति लोगों को जागरूक कर जानकारी देने लगी। रमिया 'मज़दूर मुक्ति मोर्चा' के एनजीओ से जुड़कर बेगारी प्रथा को मिटाने में लग गयी।

महिला कामगार की बेटी रमिया महिला कामगारों, बंधुआ मज़दूरों और दबे–कुचले वर्ग की समस्याओं को सुलझाकर देश का सुरक्षित भविष्य तैयार करने में जुटी, क्योंकि उसे नई ज़िंदगी मिली थी।

writermanju@gmail.com

अनूठा उपहार

— श्री भूपेन्द्र कुमार दवे
जबलपुर, भारत

5 सितम्बर शिक्षक दिवस होता है। यह जानने के लिए कि विद्यार्थियों में शिक्षकों के प्रति कितना प्रेम व सम्मान है, पाठशाला के प्रधान आचार्य ने विद्यार्थियों से एक–एक उपहार शिक्षक दिवस के दिन लाने को कहा। उन्हें यह भी बताया गया कि जो सबसे अच्छा उपहार लाएगा, उसे सम्मानित किया जाएगा। सभी बच्चे उत्साहित हो उठे और अच्छे से अच्छा उपहार लाने की सोचने लगे। धनी परिवार के बच्चे एक से बढ़कर एक कीमती उपहार देने का विचार करने लगे। जो गरीब थे वे अपने हाथों से बढ़िया चीज़ें बनाने में जुट गए।

धनी बच्चों ने अपने कीमती उपहार चाँदी की थाली में रेशमी कपड़े में लपेटकर भेंट करने की सोची। गरीब बच्चे भी अपने हुनर का प्रदर्शन करने बाँस, लुग्दी, कागज़ आदि की सुन्दर नक्काशी की तश्तरी में कढ़ाई किए कपड़े में रखकर उपहार ले आए। सभी के माता–पिता ने अपने बच्चों को सुन्दरतम वस्त्र पहनाए थे, ताकि समारोह में उनका आकर्षण मंत्रमुग्ध करने वाला हो।

समारोह में एक बच्चे का नाम पुकारा जाता और वे अदब से मंच पर आकर अपने उपहार भेंट करने लगे। सभी के उपहार प्रशंसा के योग्य थे। किसका उपहार सबसे अच्छा माना जाएगा, यह कहना मुश्किल था। निर्णय का समय भी आ गया, पर शिक्षकों का चहेता बालक विजय नहीं आ पाया था।

सभी बच्चों के अभिभावक निर्णय सुनने के लिए उतावले हो रहे थे। वे आपस में फुसफुसाने लगे, ''सिर्फ़ एक बच्चे के आने का इंतज़ार कब तक किया जाएगा?''

किसी ने कहा– ''उसके पिता हाल ही में सीमा पर मारे जा चुके हैं। वह बच्चा दुख में है। उससे उपहार प्राप्त होने की आशा ही नहीं करनी चाहिए।''

''हाँ, वह कई दिनों से स्कूल भी नहीं आ रहा। वह घर पर भी नहीं दिखता है। शायद वह गाँव छोड़कर कहीं चला गया है।''

सच, अब और इंतज़ार करना निरर्थक समझा जाने लगा। तभी सुझाव आया कि विजय का नाम तीन बार पुकारा जाए और यदि तब भी वह नहीं आया, तो आए उपहारों का निरीक्षण कर सबसे अच्छे का चयन कर दिया जाए। सभी अभिभावक इससे सहमत हो गए।

''विजय...एक।''

''विजय...दो।''

''और यह विजय...''

पर तीन कहने से पहले लोगों ने देखा कि विजय धूल व पसीने से लथपथ, फटे चिथड़े में दौड़ा चला आ रहा था। पर उसके हाथ खाली थे और वह बुरी तरह थका हुआ दिख रहा था। जैसे–तैसे वह आगे बढ़ा और मंच के पास आकर ठिठक गया। मंच की मेज़ पर रखे सुन्दर उपहारों को देख वह आगे न बढ़ सका।

''तुम क्या उपहार लाए हो?'' प्रधान आचार्य ने पूछा।

डरते–डरते उसने अपने पैंट की जेब से एक पुड़िया निकाली और उसे 'दे या न दे' की उलझन में यूँ ही खड़ा रहा। एक शिक्षक ने आगे बढ़कर वह पुड़िया ली और खोलकर देखा। ''अरे! यह क्या है? मिट्टी!!'' शिक्षक ने पूछा। यह सुन सभी खिलखिलाकर हँस पड़े।

विजय अपने आँसू रोक न सका। रोते–रोते वह बस इतना कह पाया, ''यह सरहद की मिट्टी है, जहाँ मेरे पापा शहीद हुए थे।''

b_k_dave@rediffmail.com

हाउस वाइफ़

— शिखा द्विवेदी
कानपुर, भारत

खिड़की से छनकर सूरज की रौशनी अशोक की आँखों पर पड़ी, तो जैसे उसे किसी चीटीं ने काट लिया, हड़बड़ाकर उठकर बैठ गया। बिस्तर पर अपना मोबाइल टटोला तो वह उसके सिरहाने मिला, वह भी स्विच ऑफ़... आँखें मसलते हुए सामने दीवार पर टंगी घड़ी में समय देखा, तो बची–कुची नींद मानो खिड़की के रास्ते उड़नछू हो गई। साढ़े आठ बज रहे थे और ठीक आधे घंटे बाद यानी नौ बजे उसे अपने ऑफ़िस में होना था, लेकिन भाई साहब तो अभी–अभी सोकर उठे थे। शादी के पहले तक का तो पता नहीं, लेकिन शादी के बाद शायद पहली बार था जो अशोक दफ़्तर जाने के लिए अभी तक तैयार नहीं हुआ था।

''रश्मि कहाँ हो? मुझे उठाया क्यों नहीं? मेरा मोबाइल भी चार्जिंग पर नहीं लगाया?'' अपनी पत्नी को आवाज़ देते हुए अशोक ने फ़ोन चार्जिंग पर लगाया और सीधा बाथरूम में घुस गया, लेकिन रश्मि की तरफ़ से कोई जवाब नहीं आया। बाथरूम से बाहर आकर अशोक अलमारी में अपने कपड़े ढूंढने लगा, ''रश्मि मेरे कपड़े कहाँ हैं? एक भी पैंट–शर्ट प्रेस नहीं है, क्या पहनूँ?'' इस बार भी रश्मि की ओर से कोई जवाब नहीं मिला। इतनी खामोशी से अशोक को घबराहट होने लगी। वह जल्दी से किचन में गया, जहाँ चूल्हा अभी तक सो रहा था। जिस रसोई से सुबह 7 बजे ही कुकर की सीटियाँ सुनाई देने लगती थीं, वह अभी तक खामोश थी। अशोक की फ़िक्र बढ़ती जा रही थी। उसने जाकर अपने बेटे बबलू के कमरे में देखा, तो वहाँ भी चौंकाने वाला नज़ारा ही मिला। चौथी में पढ़ने वाला बबलू रोज़ 6.50 पर स्कूल बस पकड़ लेता था और आज वह भी अभी तक सो ही रहा था। अशोक की फ़िक्र अब किसी अनहोनी की आशंका में बदलने लगी थी। वह दौड़कर बालकनी में गया, बालकनी में रबड़ में बंधा अखबार और गमले में मुरझाते पौधे मानो अशोक से पूछ रहे थे कि, 'आज उनकी सुध लेने वाली रश्मि कहाँ है?'' अशोक को कुछ समझ नहीं आ रहा था। वापस रूम में लौटकर चार्जिंग में लगे फ़ोन से रश्मि के फ़ोन पर कॉल किया, तो उसका फ़ोन भी ड्रेसिंग टेबल पर ही रखा मिला। अशोक थक हारकर वहीं बिस्तर पर बैठ गया... तभी उसे छत से आती एक आवाज़ सुनाई दी...'ऊँ' का एक ऊंचा स्वर...वह दौड़कर ऊपर छत पर गया तो जो सामने देखा, वह देखकर राहत और गुस्सा एक साथ उसकी आँखों में तैरने लगा।

रश्मि वहीं छत पर थी और योग कर रही थी। जी हाँ योग। शादी के दस सालों में शायद पहली बार। ''ये क्या तरीका है? हो क्या गया है तुम्हें? तुम्हें पता भी है, तुम्हारी वजह से आज मैं ऑफ़िस के लिए लेट हो गया . . . बबलू स्कूल नहीं गया...सुबह से घर में कुछ भी नहीं हुआ और तुम यहाँ योग कर रही हो!''

एक लंबी सांस लेने के बाद रश्मि ने आँखें खोलीं और अशोक की ओर देखते हुए बोली, ''क्यूँ! क्या हुआ...? कल तुम्हीं ने तो कहा था कि मैं दिनभर बस छोटे–मोटे घर के काम के सिवा करती ही क्या हूँ? तो बस आज वह छोटे–मोटे काम नहीं किए... ।''

इतना कहकर रश्मि ने फिर से आँखें बंद कर लीं और वापस अनुलोम–विलोम करने लगी। अशोक चुपचाप खामोश खड़ा था। कुछ देर पहले का गुस्सा अब ग्लानि में बदल रहा था और मियाँ–बीवी के बीच चले इस वार्तालाप से सबक, पड़ोस वाले शर्मा जी को मिल रहा था, तभी तो थोड़ी देर पहले जिन्होंने अखबार पढ़ने का बहाना बनाकर पौधों में पानी डालने से साफ़ मना कर दिया था, वह अब पत्नी को उनके हाथों से बनी चाय पीने का निमंत्रण दे रहे थे।

shikha.pib@gmail.com

बेकार और फ़ालतू

— प्रो. सुरेश प्रकाश शुक्ल
लखनऊ, भारत

साँझ घिर आई थी। दिनभर हुई रिमझिम बारिश से अजीब लिजलिजी साँझ। अंधेरा घिरने से पहले टर्र–टर्र की आवाज़ों का स्थान अब झींगुरों की खुशियाली ने ले लिया था। लंबी बूँदा–बाँदी ने अंधेरा घिरते ही जन–जीवन को शांत और उबाऊ बना दिया था।

ऐसे में अपने समय के जाने–माने साहित्यकार बृजेंद्र जी अपने कमरे के आगे छोटे–से बरामदे में अपनी उसी पुरानी, लेकिन ठोस कुर्सी पर बैठा उस साँझ की बोझिलता में भी रस तलाश कर रहे थे, जैसे वे अब तक करते आये थे। अन्तर केवल यह आया कि अब शारीरिक और कुछ–कुछ मानसिक शिथिलता के कारण भी अपनी भावनाओं को कागज़ पर उतार नहीं पाते। फिर भी कवि हृदय उस साँझ भी अपने भावों और संवेदनाओं को अपने मन में पिरोते हुए अपने बुढ़ापे की वेदनाओं को कम करने का प्रयास कर रहे थे कि तभी उनकी बहू की आवाज़ उनके कानों को सुन्न कर गई–

''एक तो छोटा–सा घर ऊपर से बाबूजी की इतनी सारी रद्दी जैसी बेकार और फ़ालतू किताबें और कापियाँ। अजी सुनते हो, जाओ किसी कबाड़ी वाले को बुला लाओ और इनके कमरे का सामान बेचकर बाहर करो। व्यर्थ में जगह घेरे हैं। वैसे भी अब बाबूजी न पढ़ पाते हैं और न लिख पाते हैं।''

सुनकर बृजेंद्र जी का हृदय बैठने लगा। अब तो पूरी तरह उठने–बैठने में भी अपने बेटे और बहू पर आश्रित थे। उन्हें लगा कि –

''मैं भी तो बेकार और फ़ालतू चीज़ हूँ! तभी पेंशन के पैसे भी बेटे और बहू के हाथ में आते हैं। हे ईश्वर आपने क्यों दी मुझे इतनी लम्बी ज़िंदगी?''

हिम्मत

— श्री लवलेश दत्त
बरेली, भारत

उसकी आयु 17 साल के आसपास होगी, इसका अंदाज़ा बहुत तंग कुर्ते से लग रहा था। शरीर के जिस अंग को छुपाने का नारी हर संभव प्रयास करती है, उसका कुर्ता उसमें पूरी तरह सफल नहीं था। इसलिए उसने अपने जर्जर दुपट्टे को भी इस काम में लगा रखा था। दुपट्टे का कसाव उसकी जर्जर अवस्था के अनुरूप ही था, न ज़्यादा ढीला और न ज़्यादा कसा हुआ। उसके हर संभव प्रयास के बाद उसके अंग दिख ही रहे थे और लोगों की दृष्टि उनपर पड़ रही थी। कुछ लोग उससे नज़रें चुरा रहे थे, तो कुछ लोग चोरी–चोरी आनंद ले रहे थे। वह कर्कश वाणी में गाती हुई भीड़ से खचाखच डिब्बे में टीन का डिब्बा अपने हाथ में थामे आगे बढ़ती आ रही थी। गैलरी में खड़े लोगों में से कुछ तो उसे आगे बढ़ने का मार्ग दे रहे थे, किंतु कुछ लोग टस–से–मस नहीं हो रहे थे। मजबूरी में उसे अपना शरीर उनसे सटाकर ही आगे बढ़ना पड़ रहा था।

मेरी सीट के पास आकर वह रुक गयी और अपने डिब्बे में पड़े सिक्के उछाल–उछालकर गीत गाने लगी। बीच–बीच में रुककर ''इस गरीब बेसहारे की मदद करो साहब... आपका परिवार बना रहे...आपका घरबार बना रहे...नौकरी में तरक्की हो...'' आदि–आदि भी कहती

जा रही थी। आसपास बैठे कुछ लोगों ने अपने पर्स में से एक–दो–पाँच और दस रुपये निकाल कर उसके डिब्बे में डाल दिये। एक महाशय उसे टकटकी लगाकर देख रहे थे। उन्होंने अपने बटुए में से सौ रुपये का नोट निकाला और उस लड़की का हाथ सहलाते हुए पकड़कर ''इधर आओ...यह लो'' कहते हुए वह नोट उसके हाथ में थमा दिया और अपना सिर गर्व से ऊँचा उठा लिया। लड़की ने एक झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और सौ का नोट उनके हाथ में पकड़ाकर अपने दुपट्टे को अपने शरीर पर और कसा तथा वैसे ही गाते हुए आगे बढ़ गयी। महाशय का सौ का नोट उनके हाथ में ही था, उसे वापस बटुए या जेब में रखने की उनकी हिम्मत नहीं रही थी। सिर भी अब पहले जैसा ऊँचा नहीं था। गाड़ी के चलने की आवाज़ के साथ अगले डिब्बे से उस लड़की के गाने की बुलंद आवाज़ अभी भी सुनाई दे रही थी।

lovelesh.dutt@gmail.com

अंजान बच्ची

– श्री विकास कुमार गुप्त
असम, भारत

आगरा शहर के खंदारी चौराहे पार करके जब मैं दौड़ते–भागते रिक्शा पकड़ने के लिए श्री भागीरथी देवी मार्ग पहुँचा, तब मुझे रिक्शा तो मिला, पर वह पूरा खाली था। तो मैं भी द्वंद्व में रह गया कि इस रिक्शा से जाऊँ या दूसरे रिक्शा से। अब ये रिक्शावाला तो बिना सवारी लिए यहाँ से खिसकेगा नहीं और आगरा शहर के ऑटोवालों और रिक्शा वालों का यह रिवाज़ था कि छः या सात सवारी लेकर ही आगे बढ़ेंगे। अब मैं सीधे रिक्शा में जाकर ऐसे बैठा कि वह रिक्शा मेरा ही हो और फिर अपने लक्ष्य तक पहुँचने के बारे में सोचने लगा कि कब पहुँचूँगा, कब यह रिक्शा भरेगा इत्यादि–इत्यादि। तभी मेरी नज़र दाईं ओर पड़ी। मैंने देखा वहाँ कुछ लोहार की झोपड़ियों के बाहर एक लोहार काम कर रहा है और उसके साथ उसकी धर्मपत्नी माथे पर आंचल रखे हुए हथौड़ों की चोट से लोहे पर प्रहार कर रही थी। उनके आस–पास दो छोटे बच्चे खेल रहे थे। शक्ल से बच्चे उन्हीं के लग रहे थे। एक तीसरा बच्चा जो ज़्यादा छोटा था, वह खाट पर लेटकर अपने नन्हें–मुन्हें पैरों को हिला रहा था। उसका पैर हाथ हिलाने का मुख्य कारण वहाँ बैठी चालीस से पचास मक्खियाँ थीं, जो उसके साथ खेल रही थीं। उसके गालों को, हाथों को और उसके माथे को चुभ–चुभ कर उड़ जा रही थी। मुझे उस समय ऐसा आभास हुआ कि मक्खियाँ तो बीमारी का कारण होती हैं, तो ये बच्चा ऐसे इन मक्खियों के बीच क्यों है? बचपन से ही मैं यही सुनता आ रहा हूँ कि मक्खियाँ बीमारी फैलाने का मुख्य कारण होती हैं और इसमें कोई शक भी नहीं है। पर यहाँ तो चालीस–पचास मक्खियाँ एक साथ, मैं आश्चर्यचकित था! फिर मैंने जब बच्चे की तरफ़ ध्यान से देखा, तो बच्चा अच्छा–खासा हंस–खेल रहा है। तब मेरे मन में यह बात तो निश्चित हो गई कि बच्चा जब हंसी–खुशी खेल रहा है, रो नहीं रहा, तब यह मक्खियाँ भी इसके साथ खेल रही हैं और बच्चा भी इनका साथ दे रहा है। और यह इनका रोज़ाना का खेल है। फिर भी बात मेरे गले से उतर नहीं रही थी। मक्खियाँ जो हज़ारों बीमारियों का कारण हैं, वे इस प्रकार बच्चे को परेशान कर रही हैं और उसके माता–पिता ने भी उसे ऐसे ही छोड़ दिया है कि उन्हें कोई फ़िकर ही नहीं है। जैसे लग रहा हो कि कोई खटिया पर बैठकर खेल रहा हो। इसलिए वे भी अपनी दिनचर्या में लगे हुए थे। फिर रिक्शे पर बैठे–बैठे ही मेरे मन में एक दूसरा सवाल उत्पन्न हो गया। वह था अमीर और गरीब का अंतर। अमीर घरानों में किस प्रकार छोटे बच्चे को मच्छर दानियों के अंदर रखा जाता है कि मेरे फूल जैसे बच्चे को कोई मक्खी या मच्छड़ चुभ न ले और यहाँ इस गरीब के बच्चे को रोज़ाना चालीस–पचास मक्खियाँ और मच्छर चुभ रही हैं। फिर मैं सदियों से चल रही इस

अमीरी–गरीबी प्रथा को लेकर जूझना नहीं चाहता था और इस बात से ऊपर उठकर आगे बढ़ गया। और फिर देखा कि वह छोटा–सा बच्चा मक्खियों के साथ बड़े प्रेम के साथ खेल रहा है। वह दो–तीन को भगा रहा है, तो दो–तीन और तैयार रहती हैं, आकर बैठ जाने को, जैसे कि बैंक में या गैस की लाइन लगी हो, एक के बाद एक का नंबर आएगा। उसी प्रकार मक्खियों में भी होड़ लगी थी कि बच्चे को पहले मैं चुभूँगी। बच्चे के बगल में खाट पर बैठी दस–बारह मक्खियाँ वहाँ आपस में झगड़ भी रही थीं कि बच्चे को मैं पहले स्पर्श करूँगी, तो पहले मैं चुभूँगी, तो पहले मैं उसके साथ खेलूंगी, ऐसे आपस में लड़ रही थीं। यही सब देखकर सारी बातें दिमाग में चल रही थी और मेरा समय भी बीत रहा था। मैं रिक्शे से उतर गया, तो रिक्शा चालक ने बोला ''भैया 2 मिनट बस।''

मैं आस–पास की इन सभी घटनाओं का, मन में चलने वाले प्रश्नों का उत्तर लेने के लिए उतावला हो रहा था और मैंने रिक्शा चालक से कहा ''भैया आप सवारी जल्दी ढूँढकर उठाइए, मैं यहीं हूँ।'' वह मेरा इस तरह का विनम्र भाव देखकर चकित रह गया कि इतनी देर बैठने के बाद इसे तो गुस्सा करना चाहिए, लेकिन यह बड़े अच्छे से कह रहा है।

वह भी ''अच्छा भैया'' बोलकर जल्दी–जल्दी चिल्लाने लगा।

मैं सबसे पहले बच्चे के पास गया, तो उसकी माँ ने आवाज़ लगाई क्या हुआ? मैंने थोड़ा रुककर जवाब दिया, ये आपका बेटा है। उसने जवाब दिया ''हाँ''। मैंने कहा कि इसे इतनी मक्खियाँ बैठकर परेशान कर रही हैं। तो उन्होंने कहा ''नहीं यह तो रोज़ का है।'' फिर मैंने उनसे कहा कि ये मक्खियाँ बहुत बीमारियों का कारण है, इससे आपके बच्चे बीमार पड़ सकते हैं। बच्चे की माँ और पिता दोनों ने एक साथ कहा ''नहीं ये तो रोज़ का है, सड़क का किनारा है। यहाँ इतनी गंदगी है, मक्खियाँ तो आएँगी ही। और ऐसे भी कुछ नहीं होता मेरे बच्चे को। ये ऐसे ही खेलता रहता है। हमें तो काम करना होता है, इसलिए इसे खटिया पर लेटा देते हैं, खेलता रहता है।''

मैंने कहा कि यह अभी बहुत छोटा है और इसे आप लोग ऐसे कैसे छोड़ सकते हैं? थोड़ा बड़ा होता, तो अलग बात थी। यह तो दो या तीन महीने का ही लड़का लग रहा है। इसके बाद जो इस बच्चे की माँ ने कहा वह सारे समाज में सदियों से चल रही प्रथा को कुरेदने वाला था। उसकी माँ ने कहा ''ये लड़का नहीं लड़की है।'' मैंने बस मन में ही कहा कि कैसे हैं ये लोग। बस इतना कहकर मैं मन में चल रही सारी बातों को और सारे सवालों को एक जगह समेटकर फिर रिक्शा पर जा बैठा। अभी तक रिक्शा में पाँच लोग बैठ चुके थे मुझे जोड़कर और मैं अपने लक्ष्य के बारे में सोचने लगा।

vikashg891@gmail.com

यह सच है

– डॉ. अलका धनपत
मॉरीशस

मैं फ़िल्में कम ही देखती हूँ। पर जब कोई ''हिंदी'' फ़िल्म ''हिट'' होती है, तो मन उस फ़िल्म को देखने के लिए आकुल होता है। ''हिट'' फ़िल्में जनमानस की प्रतिच्छाया होती हैं। उनके जीवन की समस्याओं से जुड़ी होती हैं। फ़िल्म में वे कहीं सच्चे प्यार की छाया को देखते हैं, तो कभी ऐसा हीरो देखना चाहते हैं, जो उन्हें सब प्रकार की आततायी शक्तियों से मुक्ति दिला सके। कभी समाज की जातिगत व्यवस्था के दुष्प्रभाव को, तो कभी शिक्षण प्रणाली के खोखलेपन के व्यंग्य को सराहते हैं। बस मैं भी जब इन ''हिट'' फ़िल्मों को देखती हूँ, तो निर्देशक, एक्टर आदि की सराहना किए बिना नहीं रह पाती हूँ। ये फ़िल्में चिंतन के प्रवाह को तीव्र तथा गहरा कर देती

हैं ।

''बागबां'' फ़िल्म लग चुकी थी। देखने जाने का समय ही नहीं मिल रहा था। दोस्तों ने बार–बार कहा ''देख लो जाकर, फ़िल्म हट जाएगी।'' एक सुन्दर फ़िल्म और स्मार्ट कलाकारों की अदाकारी को भी देखने से वंचित रह जाओगी। परिवार के साथ कार्यक्रम बन ही नहीं पा रहा था। सबके अपने कार्य तथा अपने–अपने वक्त का हिसाब था। सो एक दिन कार्य से आधा–दिन की छुट्टी लेकर फ़िल्म हॉल पहुँच ही गई। टिकट लेने में परेशानी नहीं हुई। मॉरीशस में फ़िल्म हॉल में केवल दिसम्बर को छोड़कर टिकट मिलने में कोई परेशानी नहीं होती। पूरे हॉल में हम पाँच दर्शक ही बैठे थे। एक जोड़ा था, लगता था प्रेमी–प्रेमिका है, एक अन्य जोड़ा था जो अवकाश–प्राप्ति की उम्र के लग रहे थे। एक मैं थी तथा एक अन्य अधेड़ स्त्री बैठी पॉपकॉर्न खा रही थी। शायद बाहर के स्टॉल से खरीदकर लाई थी। फ़िल्म समय पर शुरू हुई। दो सौ पचास रुपये की टिकट थी। हॉल में आगे–पीछे, दाएँ–बाएँ कहीं भी बैठ सकते थे। फ़िल्म के दृश्यों में कभी–कभी आँसू भी आए, तो कभी बुढ़ापे की उम्र के साथ एक सहानुभूति भी महसूस हुई। मैं जब भी फ़िल्म देखने जाती हूँ, तो आँसू पोंछने के लिए ''बेबी वायपर'' ले जाना नहीं भूलती हूँ। कभी यह सब बेबी के लिए थे, पर अब मेरे भी काम आते हैं। फ़िल्म खत्म तो हो गई पर दिलो–दिमाग पर अपनी छाप छोड़ गई। सोच रही थी क्या यह सच पर आधारित फ़िल्म है या कुछ कल्पना का विस्तार अधिक है। मालूम नहीं। दिन बीते, महीने बीते। मेरी चचेरी सास की दोनों बेटियाँ विदेश चली गई हैं। दोनों दो दिशाओं में स्थित अलग–अलग देशों में कार्यरत हैं। एक ''इवेंट मैनेजर'' है तो दूसरी को एयरपोर्ट पर कार्य मिल गया है। बचपन से ही दोनों लड़ाई में, प्यार में सदैव माता–पिता में भी बँटवारा करती थीं। छोटी को माँ के विचार ठीक लगते थे, तो बड़ी को सदैव अपने पिताजी की बात। दोनों बेटियाँ अब विदेश में बस गई हैं। माता–पिता अब यहाँ अवकाश प्राप्त कर, अपना जीवन सरकारी पेंशन के सहारे बिता रहे हैं। बुढ़ापे का जीवन बड़ा ही ठंडा–ठंडा होता है। अब सुबह नाश्ता बनाने की वह चिल्लपों नहीं होती । बेचारे बूढ़े क्या खाएँगे? ''कॉर्नफ़्लेक्स'' या ''वीटाबिक्स'' या अन्य प्रकार के सीरीयल जो दूध में डालकर नरम हो जाएँ तथा बुढ़ापे के बचे–खुचे दाँतों को कष्ट भी न हो। अब इस उम्र में बीमारियाँ भी तो गोदी के बच्चे की तरह चिपकी रहती हैं। जैसे उसे दूध दे दो, सुला दो तभी कुछ आराम मिलता है, ठीक ऐसे ही सुबह उठते ही दवाइयाँ भी शुरू हो जाती हैं। कहीं डायबिटीस की तो कहीं हाई ब्लड प्रेशर का खतरा। और अब ''डिप्रेशन'' नाम की नामुराद बीमारी तो बिना दरवाज़ा खटखटाए ही चोरों की तरह लोगों की शांति को चुरा रही है।

इस बार छोटी ने माँ का एयरटिकट भेजा है। उसका एक नन्हा मुन्ना भी हो गया है। उसने कहा है, ''माँ, अभी पापा को रहने दो, मेरा पति अभी उन्हें नहीं बुलाना चाहता।'' माँ रोज़मर्रा की एक–सी ज़िन्दगी से ऊब चुकी थी। वह बेटी के पास जाना चाहती थी। मुँह–माँगी मुराद मिल गई। अब पति की रोज़ ''क्लास'' लगती। दाल बनाना सीख लो, खिचड़ी ऐसे बनाना। कुछ न समझ आए तो ''स्काइप'' से बात करके पूछ लेना। पति भी एक कान से सुन रहा था, तो दूसरे से शायद निकाल ही रहा था। बोला, ''सुबह ''वीटाबिक्स'' खा लूँगा। दोपहर को दाल–पूरी से गुज़ारा हो जाएगा। बस रात का भोजन है जैसे–तैसे पका लूँगा।'' पत्नी विदेश में बेटी के पास जाने को इतनी उत्सुक, खुश है; इस कारण वह उसे अपना कोई दुख या अकेलेपन की चिंता सुनाना या बताना नहीं चाहता। पत्नी बोली ''बस छह माह की ही तो बात है। देखते–ही–देखते बीत जाएँगे। फिर ऐसे मौके पता नहीं भविष्य में मिलेंगे या नहीं। मुझे यहाँ की ज़िन्दगी से एक आराम भी चाहिए। मैं सारा जीवन तुम्हारी माँ तथा रिश्तों के लिए मरती–खपती रही।'' पति ने झूठी मुस्कुराहट के साथ उत्तर दिया, ''तुम्हारी खुशी में मेरी भी खुशी है। मैं गुज़ारा कर ही लूँगा।'' जाने का दिन आ ही गया। माँ ने बेटी के लिए अचार बनाए। कुछ मॉरीशस की विशेष प्रजाति की मछलियों को सुखाकर, तलकर साथ ले जाने की भी तैयारी की और वह चली गई। यहाँ बूढ़ा एक सप्ताह तक तो उत्साहित दिखा,

उसने घर साफ़ किया। कुछ सजावटों की दिशा बदली। पर अब ... अकेली जान...और बस साथी था टीवी। कौन खाना पकाए? हाँ अब बड़ी बेटी ने पिता का हालचाल पूछना शुरू किया। उसके मन में पिता के प्रति संवेदना का ज्वार उठा। यह संवेदना थी या ईर्ष्या! निर्णय करना कठिन था। पिता की टिकट भेजी तथा उन्हें अपने यहाँ बुला लिया। छोटी बेटी के पास माँ थी, तो पिता बड़ी बेटी के साथ। पर माता–पिता को फ़ोन पर बात करने की इजाज़त दोनों बेटियों ने नहीं दी थी। उनके मुताबिक इस बुढ़ापे में आप लोग केवल प्रलाप (इधर की बात उधर करना) ही करेंगे। आप हमारे पास आराम करने आए हैं, तो शांति से रहिए। दोनों बेटियों ने माता–पिता को मॉरीशस के हित–मित्र संबंधियों से पूरी तरह से काट दिया था। दोनों ठीक–ठाक ही होंगे। कहते हैं कोई खबर नहीं मतलब अच्छी ही खबर होगी। अब छह महीने बीत चले थे। दोनों लौट आए हैं। मैं मिलने गई। दोनों वापस लौटकर, फिर से अपनी ज़िन्दगी में मस्त हो गए हैं। पर...दुबारा उस कैद में जाना नहीं चाहते। जहाँ न बात की आज़ादी थी न कहीं बाहर घूमने की। हाँ! खाना समय पर मिलता था, पर दामाद और बेटी काम पर चले जाते थे। आप स्वयं फ़्रिज से उठाकर खा लें। उनका इंतज़ार न करें। बस यही उनकी कहानी का सार था। दोनों चाय तथा बिस्किट लेकर बैठे हैं। पति अपना ब्लड प्रेशर चेक कर रहा है और पत्नी डायबिटीस की सुई से खून की एक बूँद निकालकर, डायबिटीस की छोटी मशीन पर डायबिटीस का स्तर देख रही है। दोनों बेटियों ने यह उम्दा उपहार इन दोनों को देकर भेजा था। हर रोज़ वे अपनी बीमारी का स्तर देखते हैं। दवाइयों की टोकरी नाश्ते के साथ रखी होती है। अपने दुख–सुख के साथी ये दोनों वृद्ध ही हैं। बेटियाँ तो अपनी दुनिया में खो गई हैं। बेटियों द्वारा मिले ये उपहार ही उनके ध्यान तथा प्यार की निशानी के रूप में उनके पास हैं पर बेटियाँ नहीं और न ही उनके फ़ोन का कोई इंतज़ार। बेटियों के पास उनका हाल–चाल पूछने का समय भी नहीं है। वे कहती हैं रोज़–रोज़ वही बात, वही प्रश्न... क्या पूछें? कुछ काम होगा तो वे फ़ोन कर लेंगी। अब पता नहीं वे फिर कभी बुला पाएँगी? पर अब हम अकेले नहीं जाएँगे यह तय है!

अब हम नहीं बँट पाएँगे, यह निश्चित है। दोनों ने एक दूसरे को देखा और मुस्कुरा दिए। आज पति का ब्लडप्रेशर सामान्य था तथा पत्नी की डायबिटीस का स्तर भी उतना ऊँचा नहीं था। दोनों ने चैन की साँस ली और चाय की चुस्कियाँ लेने लगे। वर्षा की फुहार, धूप और बादल का खेल तथा बनते इन्द्रधनुष उन्हें सुकून दे रहे थे।

alkadunputh@yahoo.co.in

सिफ़ारिश

– डॉ. तनुजा पदारथ–बिहारी
मॉरीशस

ध्रुव अपने बारहवें साक्षात्कार पर जाने के लिए तैयार हो रहा था, पर आईने के सामने अपनी नीली टाई को ठीक करते हुए उसने पाया कि आज एक भावशून्य चेहरा उसे ताक रहा था। न मन में कोई विशेष उत्साह था, न डर और न ही कोई अपेक्षा। वह बस एक और औपचारिकता निभाने जा रहा था। या यूँ कहें कि अवकाश–प्राप्त पिता और आस्तिक माँ की आशा के दीये में फिर से दो बूँद तेल डालने जा रहा था।

दो साल पहले बेटे के परीक्षा–फल से जिनकी छाती गर्व से चौड़ी हो गई थी, वही नौकरी के हर असफल साक्षात्कार के साथ सिकुड़ी जा रही थी। गणित में ध्रुव के एम.एस.सी. का प्रमाण–पत्र और गोल्ड मेडल अब दीवार पर साज का ही सामान प्रतीत होता था। पहले साक्षात्कार के समय बगल वाले राघव चाचा की बातें भी अब सच लगने लगी थीं–

''बेटा! तेरे पास प्रमाण–पत्र चाहे कितने ही क्यों

न हों! नौकरी के लिए मंत्रियों के पैर पकड़ने ही पड़ते हैं। व्यावहारिक बन। यही समय की माँग है।''

उस दिन चाचा की बात टालकर ध्रुव चला तो गया था, लेकिन तबसे आज तक नौकरी के लिए एड़ियाँ घिसना उसके जीवन का यथार्थ बन गया। फिर भी अपने स्वाभिमान को बलि चढ़ाकर किसी से सिफ़ारिश लेना उसे स्वीकार्य नहीं था।

ध्रुव ने अपने प्रमाण–पत्रों की फ़ाईल ली और वह माँ से आशीर्वाद लेने गया। माँ ने मुसकुराते हुए आशीर्वाद तो दिया, पर उसमें भी ध्रुव को कुछ फीकापन नज़र आया। वह साक्षात्कार देने निकल पड़ा।

वहाँ कतार में बैठे ध्रुव अपनी फ़ाईल में पड़े प्रमाण–पत्रों को एकटक देखता रहा। उसे यह समझ में नहीं आ रहा था कि उसके प्रमाण–पत्रों में ऐसी कौन–सी कमी थी कि आज तक उसे नौकरी नहीं मिली। आखिर जब उसकी बारी आई तब वही हुआ, जो हर साक्षात्कार में होता आया था –

''अच्छा... आप गोल्ड मेडलिस्ट हैं! बधाई हो। पर... इन डिग्रियों के अलावा क्या आपके पास कोई विशेष अनुभव है?'' साक्षात्कारकर्ता फ़ाईल को पटकता गया। और इधर ध्रुव भाँप गया कि उसकी फ़ाईल में कमी उसके अनुभव की नहीं थी, बल्कि कमी उस सिफ़ारिश की थी, जो प्रमाणित करता है कि वह इस नौकरी के लायक है। वे उस प्रमाण–पत्र को ढूँढ रहे थे, जो देश के मंत्रियों के विश्वविद्यालयों में प्राप्त होता है।

ध्रुव ने होठों पर एक झूठी मुस्कान चिपकाई और 'ना' में उत्तर देकर वहाँ से विदा लिया। घर पहुँचा तो माँ ने चाय देते हुए साक्षात्कार के बारे में पूछा। ध्रुव माँ को कब तक अंधेरे में रखता। चाय की एक चुस्की लेकर उसने बड़ी मधुरता से आखिर कह ही दिया –

''माँ! आज तो मेरी नौकरी पक्की हो ही जाती... पर मैं अब तक गलत शिक्षा संस्थाओं से प्रमाण–पत्र बटोरता रहा। मेरे पास देश के सबसे बड़े विश्वविद्यालय से सिफ़ारिश का प्रमाण–पत्र तो है ही नहीं ... इसीलिए शायद इस बार भी नौकरी हाथ न लगे। पर तू चिंता न कर। अब मेरी आँख खुल गई है... अगली बार के लिए कुछ जुगाड़ कर ही लूँगा।''

यह कहकर ध्रुव ने अपनी दाईं आँख से टपकते हुए स्वाभिमान के उस अंतिम आँसू को सरकाया और चाय की प्याली को होठों से लगाया...

justsap03@gmail.com
sapna.tanu@yahoo.com

छोटा–सा लड़का

– श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी–बिहारी
मॉरीशस

शून्यता में झाँकती, पथराई आँखें, प्रश्नों को सुलझाने में लगी थीं। सन्नाटा इतना कि दिल को कचोट लेती। हल्की–सी गर्म हवा बह रही थी। ऐसे ही बीती थी वो शाम, घर के पीछे वाले बरामदे में बैठे हुए, मैं और भाई। और दोनों चुप... मानो कोई जीव है ही नहीं।

बचपन के किस्से मुझे हमेशा से लुभाते रहे हैं। लेकिन उस दिन भाई ने कुछ ऐसा कह दिया था, कि मन में उठा तूफ़ान आज तक शांत नहीं हो पाया।

गुस्सा, घृणा, ग्लानि, दर्द और उदासीनता के सम्मिश्रण से उपजा एक ऐसा एहसास था, जो उनके चेहरे पर छाया हुआ था। बचपन की तो आधी से ज़्यादा बातें मुझे याद भी न थीं। भाई ने बात कुछ इस तरह शुरू की–

छोटा–सा लड़का, 10 साल का, बाप के मर जाने के बाद घर का सामान खरीदने दुकान पहुँचा। पिताजी का अकाउंट था वहाँ, क्योंकि हर महीने उधार पर राशन आता था। और जब पिताजी पैसे जुटा पाते तब उधार भरते।

पिताजी ने मरने से पहले सारा उधार चुका दिया

था। लेकिन आगे के उधार के लिए कोई प्रावधान तो किया ही नहीं था। छोटा–सा लड़का हाथ में थैला लिए दुकान पहुँचा उधार पर सामान खरीदने। दुकानदार ने उस दिन माँ–बहन की ऐसी गाली दी थी... वह छोटा–सा लड़का आज तक घर वापस नहीं आया। उसका छोटा–सा मन वहीं कहीं दफ़न हो गया। दुकानदार ने उसे गाली देते हुए दुकान से बाहर ढकेल दिया। उसने थैला उठाया और चलने लगा। किस दिशा में उसे कोई सुध न थी। वह सोचता रहा कि ऐसा क्या हुआ, क्या मैं छोटा हूँ... मैं गरीब हूँ... मेरे पास पैसे नहीं... हमारा अकाउंट बंद हो गया... या मेरा बाप मर गया है... इसलिए दुकानदार ने उधार देने से मना कर दिया।

घर पहुँचते ही माँ के पूछने पर उसने जवाब दिया – *''दुकान आज बंद है, शायद बड़े साहब के यहाँ पार्टी चल रही है।''* घर पहुँचते–पहुँचते वह छोटा–सा लड़का बड़ा हो गया था।

अगले दिन पता चला कि बगल वाले दुकानदार साहब इस भद्दे दुकानदार से कहीं अच्छे आदमी हैं। चावल, आटे की बोरी को पीठ पर लादकर ग्राहक के घर तक पहुँचाने के लिए, झाड़ू–पोंछा लगाने के लिए और दुकान में सामान सजाने के लिए पूरे 10 रुपये मिले थे, उस छोटे–से लड़के को। लेकिन 10 रुपये में घर का राशन नहीं मिल पाया।

लम्बे मौन के बाद, ब्लाक कॉफ़ी की एक चुस्की लेते हुए, भाई ने कहा – ''जीवन ने मुझे 3 बड़ी बातें सिखा दीं–

एक, कुछ लोग अपनी और अपने परिवार की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष करते हैं, दूसरा, कुछ लोग अपनी प्राप्त संपत्ति से ही खुश हैं और तीसरा, कुछ लोग ऐसे हैं जो अपनी नियति से परे कुछ कर दिखाने की सामर्थ्य रखते हैं, अपने लिए और अपने परिवार के लिए।

ये स्वार्थ की बात नहीं... बस दर्द की... और दर्द के बाद की स्थिति की बात है...''

उस दिन शाम देर तक हम दोनों वहीं बैठे रहे, घर के पीछे वाले बरामदे में, मैं और भाई...

hajgaybeeanjali@gmail.com

हँसना और हँसाना

– सुश्री उर्वशी जोलिम
मॉरीशस

दोपहर की कड़ी धूप में रवि तीव्र गति से अपने मित्र के पीछे भाग रहा था। दोस्त को पकड़ने के लिए उसने जैसे ही सीढ़ी से लम्बी छलांग मारी, ज़मीन पर वह इतनी तेज़ी से गिरा कि नीचे पड़ा काँच का टुकड़ा उसके बायें हाथ की अंतिम दो उँगलियों के आर–पार हो गया। दो उँगलियाँ तो कट गईं। साथ ही,उस घटना के बाद रवि की एक उँगली ने काम करना बंद कर दिया। वह न मुड़ती थी और न ही हिलती थी। स्कूल के बच्चे रवि की उँगलियों का उपहास उड़ाते। कोई कहता–''देखो! उँगली आ रहा है।'' तो कोई कहता – ''देखो, हाथ आ रहा है।''

मित्र चाहे किसी भी विषय पर बात करते, लेकिन घूम–फिरकर वे रवि की उँगलियों पर आ जाते और उसे चिढ़ाते। रवि आग बबूला हो जाता। मित्र एक कहते, तो वह चार सुना देता। इस प्रकार सुनाता कि मित्र हक्का–बक्का रह जाते। ऐसी बात नहीं कि रवि को उँगलियों के कटने का दुख नहीं था। रोज़ रात को चादर में मुँह छुपाए वह बिलखता और ईश्वर को अपनी परिस्थिति का दोषी मानकर उन्हें भी कोस देता, पर स्कूल के मित्रों के सामने वह पूर्ण होने का भाव प्रकट करता। दुष्ट मित्र जान–बूझकर उसके अधूरेपन की ओर उसका ध्यान खींचते रहते और रवि रोज़ आवेश में आकर मित्रों से टकराता।

ऐसे ही कुछ वर्ष बीत गये और रवि कॉलिज में

भरती हो गया। उसके मन में भय था कि कहीं यहाँ भी सब उसका मज़ाक न उड़ाये। इसीलिए वह भरसक कोशिश करता कि दृष्टि उसकी उँगली पर न पड़े।

एक दिन वह अपने कॉलिज के गलियारे से गुज़र रहा था जब किसी ने ठहाका भरकर कहा – ''सर्कस का जोकर तो अपना चेहरा रंगकर और भद्दा वस्त्र पहनकर उल्लू बनता है। मैं तो बना–बनाया उल्लू हूँ।'' रवि ने घूमकर देखा, तो पाया कि एक पैर से अपंग लड़का अभिनय करते हुए अपनी कमी पर हँस रहा था। उसकी हँसी के साथ ही, आस–पास खड़े लड़के भी हँस रहे थे। रवि मन–ही–मन सोचने लगा ''यह लड़का अपना तमाशा क्यों बना रहा है?'' पास जाकर रवि ने उस लड़के को गौर से देखा। उसके माथे पर न दुख की सिलवटें थीं और न ही क्रोध या हताशा का कोई चिह्न था।

इस घटना ने रवि को बिल्कुल बदल दिया। पहले वह अपनी कमी पर कुढ़ता और झुँझलाता था। आज वह न क्रोधित होता है, न अपनी कमी को छिपाने की कोशिश करता है और न ही अपनी उँगलियों पर किसी की दृष्टि पड़ते ही व्यग्र होता है। उलटा जोक करके स्वयं हँसता है और सामने खड़े वाले को भी हँसा देता है। हँसने और हँसाने की प्रक्रिया में वह सहज हो गया है।

vandanajaulim@gmail.com

बीस रुपए का सिक्का

– सुश्री समानता ओजूबा
मॉरीशस

अपनी जेब से बीस रुपए का सिक्का निकालते हुए अमित मंदिर की दानपेटी की ओर बढ़ रहा था कि अचानक उसकी पत्नी रजनी ने उसका हाथ रोकते हुए पूछा।

''यह क्या करने जा रहे हो?''

अमित ने मुस्कुराकर उत्तर दिया :

''देखो न! कितनी विनम्रता से लिखा है : कृपया मंदिर में आयोजित रामकथा के लिए सच्चे मन से दान देकर ईश्वर का आशीर्वाद लेते जाइये।''

यह सुनकर रजनी चिढ़कर बोली :

''ईश्वर का आशीर्वाद! आजकल तो मंदिरों में ईश्वर की मूर्तियों से ज़्यादा दानपेटियाँ रखी जाती हैं। घर में रहो, तो कोई–न–कोई घंटी बजाकर चंदा माँगने आ जाता है। बाज़ार जाओ तो दानपेटी के ऊपर बीमार बच्चे का फ़ोटो चिपकाकर दया की भीख माँगी जाती है। सड़क पर चलो तो भिखारी सामने हाथ फैलाते हैं। सुपरमार्केट जाओ तो कोई समाज सेवक पीड़ितों की सहायता के लिए डिब्बे में पैसे डालने की माँग करते हैं। इन सबसे आदमी परेशान हो गया है। जहाँ आवश्यकता पड़े, वहाँ दान तो किए जा सकते हैं, पर हर दिन, हर जगह अगर दान करते फिरें, तो क्या हम स्वयं आर्थिक संकट में नहीं पड़ जाएँगे। बीस रुपए हम 'मिडल क्लास' वालों के लिए बहुत होते हैं।''

पत्नी का लंबा भाषण सुनकर अमित के बढ़ते कदम रुक गए और उसने बीस रुपए का सिक्का वापस जेब के हवाले कर दिया।

घर लौटने पर रजनी रसोईघर में रेडियो सुनते–सुनते शाम का भोजन तैयार करने लगी। अमित वहीं मेज़ पर अखबार पढ़ रहा था। कुछ देर बाद अठारह साल का उनका बेटा यश, ट्यूशन से लौटा। जूस पीकर वह अपने पिता से बातें करने लगा। उसी समय रेडियो पर 'लोटो' लॉटरी का विज्ञापन आया :

''इस सप्ताह जीतनेवाले को पाँच करोड़ रुपए का ईनाम मिलेगा, दिल खोलकर खेलिए।''

यह सुनकर रजनी उत्साहित हुई। उसने पति से आग्रह किया :

''आप ज़रा दुकान जाकर 'लोटो' लॉटरी के लिए मेरा लकी नंबर खेल आइए, प्लीज़।''

यश ने झट से उत्तर दिया, ''इसके लिए तो बीस रुपए लगेंगे। पहले भी कई बार अपना लकी नंबर खेल

चुके हो, पर लॉटरी कभी मिली नहीं।''

रजनी भड़क उठी :

''मंदिर में तो महादानी हरिश्चंद्र बनते हो। अब देते क्यों नहीं, बीस रुपए का सिक्का? इससे हमारा भाग्य खुल सकता है। जीवन भर हम ठाट से रह सकते हैं, कुछ तो समझा करो।''

अमित ने जान छुड़ाने के लिए कहा :

''बेहतर है तुम्हीं जाकर खेलो अपना लकी नंबर और अपनी इच्छा पूर्ण कर आओ।''

इतना कहकर अमित पुनः अख़बार पढ़ने में लीन हो गया।

भोजन तैयार करने के बाद रजनी स्वयं पास वाली दुकान में गई और 'लोटो' लॉटरी के लिए अपना लकी नंबर खेलकर लौटी।

रात के सवा आठ बजे वह बड़ी उतावली होकर टी.वी. के सामने बैठ गई। 'लोटो' लॉटरी के 'ड्रॉ' का सीधा प्रसारण होने वाला था। 'ड्रॉ' होने पर पता चला कि रजनी का एक भी 'लकी नंबर' नहीं निकला। तभी अमित ने कटाक्ष किया :

''लॉटरी की चाह में हर सप्ताह बीस रुपए देने से तो अच्छा है कि मंदिर में दान करके ईश्वर का आशीर्वाद पा लेते।''

लज्जा भाव से रजनी उठकर अपने शयन–कक्ष में चली गई। धीरे–धीरे बत्तियाँ बुझीं और घर अंधेरे में लीन हो गया।

samantah03@gmail.com

अंतर

– श्री दीपक मशाल
ओहायो, संयुक्त राज्य अमेरिका

रात के बारह बज चुके थे। अमल अब तक रेक्लाइनर पर पैर पसारे, टी.वी. पर एक वेबसीरीज़ में खोया हुआ था। घड़ी ने अचानक उसे अगले दिन सुबह ऑफ़िस में साप्ताहिक मीटिंग का ख्याल कराया तो अंगुलियाँ रिमोट पर लाल बटन की ओर भागीं।

बैडरूम में आ वह भँवरे के मानिन्द अपने गुलाब से बिस्तर में जा घुसा। अभी नाइट–लैम्प बुझाकर सोने ही वाला था कि चार्जिंग में लगे मोबाइल फ़ोन की स्क्रीन चमक उठी। देखा तो सोशल–साईट पर किसी का सन्देश था।

''कैसे हो अमल भाई? पहचाना?''

शक्ल जानी–पहचानी–सी तो लगी मगर प्रोफ़ाइल फ़ोटो में लम्बे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी और गेरुए वस्त्रों ने अड़चन पैदा की। तभी अगला सन्देश आया।

''अरे मैं हरीश हूँ मित्र। हम दोनों सहपाठी थे न बारहवीं तक! अपना नंबर दीजिए, एक ज़रूरी बात करनी है।''

वह बड़बड़ाया तो मगर जाने क्या सोचकर नम्बर दे दिया।

''कैसे बेवकूफ़ लोग हैं! खुद का दिन का समय है, तो अगले की रात का तो ख्याल करो, बस मुँह उठाया और मैसेज कर दिया।''

दो मिनट भी नहीं बीते होंगे कि एक भारतीय नंबर से कॉल आ गया।

''हैलो अमल, मैं हरीश। अभी नंबर लिया न आपसे।''

''अच्छा–अच्छा हरीश, कैसे हो? सब ठीक तो है? यहाँ आधी रात हो चुकी है, कुछ ज़रूरी काम हो, तो कहो वरना शनिवार या इतवार को फ़ुर्सत में फ़ोन करता हूँ।''

अमल ने जल्दी मामला निबटाने की कोशिश की।

''अरे पाँच मिनट बाद सो जाइएगा। बहुत वर्षों बाद स्वर सुना आपका। सुना है अब भारत कम ही आते हैं, समय सब बदल देता है भाई। अब देखो मेरा तो नाम ही बदल गया, कोई अब हरीश नहीं कहता, सभी हृदयानंद

महाराज के नाम से जानते हैं। तीन छोटे–छोटे आश्रम हैं अपने, बयासी चेले–चपाटे हैं। इसके अलावा देश भर में लगभग चार हज़ार गृहस्थों को गुरुदीक्षा दे चुका हूँ और....''

इससे पहले कि हरीश एक साँस में अपना सम्पूर्ण बायोडाटा सुना पाता, अमल ने तंज कसते हुए बात काटी–

''बहुत अच्छा है महाराज, अब क्या विदेश में आश्रम खोलने का इरादा है?''

''अरे ना ना बंधु, अभी तो नहीं है। आगे ईश्वर की इच्छा होगी तो समय आने पर वह भी होगा। अच्छा अगली बार भारत कब आ रहे हो?''

''कुछ निश्चित नहीं अभी।''

''अरे जब भी आयें तो एक आईफ़ोन लेते आयें मेरे लिए, वो क्या है कि आज के युग में अत्याधुनिक साधनों के बिना चलता नहीं।''

मंतव्य स्पष्ट हुआ तो अमल और खिन्न होते हुए बोला–

''देखता हूँ... कौन सा मॉडल चाहिए?''

''जो आपकी श्रद्धा हो...''

जवाब सुनकर अमल ने चिढ़ते हुए कहा –

''सुनिए बाबा जी, मेरा धरम–पाखण्ड में न कोई विश्वास है ना ही तुममें श्रद्धा, पेमेंट करोगे तो लाने की कोशिश करूँगा।''

हरीश ने अजीब–सी हँसी हँसते हुए कहा–

''धर्म में भले ही न करते हो पर पाखण्ड में तो करते हो मित्र। अभी पिछली बार ही जब आए थे तो अपने सहपाठी वंदन, जो अब नेता बन गया है उसके लिए तो घड़ी लाए थे। मेरे और उसके धंधे में अधिक फ़र्क नहीं भाई।''

एक मिनट तक जब जवाब नहीं सूझा तो अमल ने चुपके से फ़ोन काट दिया। उसकी नींद अब दो शब्दों 'पाखण्ड' और 'धंधा' के बीच शटल बन चुकी थी।

mashal.com@gmail.com

विमोचन

– श्री अनुराग शर्मा
पिट्सबर्ग, अमेरिका

इतना अच्छा उपन्यास लिखने के बाद भी किसी प्रकाशक को मनाना इतना कठिन क्यों था, यह कथाकार अश्रु जी की समझ से बाहर था। दो साल तक यहाँ–वहाँ सर पटकने के बाद आखिरकार एक नया प्रकाशक अपनी शर्तों पर तैयार हुआ। अपने उपन्यास की पहली दो सौ प्रतियाँ अश्रु जी को खुद खरीदनी थीं और उनका अग्रिम भुगतान भी प्रकाशन की शर्तों में शामिल था। दो साल दर–दर भटकने के बाद अश्रु जी को 50,000 रुपये का सौदा सस्ता लगने लगा था। उनकी बस एक ही इच्छा थी कि उनके उपन्यास का विमोचन अगले विश्व पुस्तक मेले में हो। प्रकाशक को बताया, तो उसने इस विशिष्ट आयोजन के लिये दस हज़ार रुपये और माँगे, जो उन्होंने प्रसन्नता से दे दिये। यह तो उनके मन की बात ही थी। मेले के तीसरे दिन उनकी पुस्तक का विमोचन दो नगर प्रसिद्ध लेखकों के हाथों होना निश्चित हुआ।

अश्रु जी सुबह से मेले में आयोजन स्थल, अर्थात प्रकाशक के बूथ पर उपस्थित थे। प्रकाशक अपने ग्राहकों के साथ–साथ दोनों बड़े लेखकों के साथ भी व्यस्त था, इसलिए उन पर ध्यान न दे सका। कुछ देर तक अपनी उपेक्षा को दरकिनार करने के बाद उन्होंने ही याद दिलाया, ''विमोचन का समय हो गया है सर, मैं तैयार हूँ।''

प्रकाशक ने इशारे से उन्हें चुप रहने को कहते हुए दोनों नगर–लेखकों को विनम्रता से बूथ के पास ही विमोचन के उद्देश्य से बने एक साझा मंच की ओर इशारा करते हुए कहा, ''बस इन लोगों के हटते ही हमारा नम्बर है।''

मंच खाली होते ही दोनों लेखकों को साथ लेकर प्रकाशक मंच की ओर लपका। अश्रु जी भी उनके पीछे–पीछे ऊपर चढ़ गये। प्रकाशक ने इशारे से उन्हें नीचे उतरने को कहा, मगर वे जमे रहे। वे आतुर थे, अभी तक उन्हें अपनी किताब देखने का अवसर भी नहीं मिला था।

प्रकाशक ने माइक सम्भाला। देर तक दोनों बड़े लेखकों की प्रशस्ति चलती रही। इसी बीच उसके कारकुनों ने कोई 10–15 पुस्तकें मंच पर रखी मेज़ पर रख दीं। प्रकाशक ने पहले लेखक की पुस्तक के विमोचन की घोषणा की तो सभी मंचासीनों के साथ अश्रु जी को भी एक किताब थमा दी गयी जिसे अन्य अतिथियों के साथ वे एक कृत्रिम मुस्कान के साथ फ़ोटोग्राफ़रों के लिये लहराते रहे। उसके बाद दूसरे लेखक का प्रशस्ति पाठ और पुस्तक विमोचन हुआ। उन्होंने भी फिर से एक और पुस्तक लहराई।

इसके बाद सब उतरकर जाने लगे तो अश्रु जी ने प्रकाशक का हाथ पकड़कर कातर दृष्टि डालते हुए पूछा, ''और मेरी किताब?''

''अरे हाँ, वह भी तो है। अभी करते हैं न!'' कहते हुए प्रकाशक ने अदब से दोनों लेखकों को बुलाया, सर एक छोटा–सा काम और है, इनकी भी एक किताब का विमोचन है। उदीयमान लेखक हैं, आपके हाथ से हो जायेगा तो ज़िंदगी भर अहसान मानेंगे।''

प्रकाशक के इशारे पर एक हरकारा चार किताबें लेकर हाज़िर हुआ। सबने किताबें ऊपर उठाकर कैमरों की ओर दिखाईं, लेकिन अफ़सोस, तब तक कैमरामैन जा चुके थे। अश्रु जी फिर भी प्रसन्न थे। उनकी बरसों की साध पूरी हो चुकी थी। चारों किताबें लेकर नीचे उतरने के बाद जब उन्होंने पहली पुस्तक खोली तो आश्चर्यचकित रह गये। यह उनकी किताब नहीं थी। हरकारे ने शायद ग़लती से उनसे पहले विमोचित हुई पुस्तक पर उनके उपन्यास का खोल चढ़ा दिया था। वे प्रकाशक को ढूंढते, इससे पहले ही पास खड़े हरकारे ने बताया कि मेले के दिनों में काम अधिक होने के कारण छापेखानों के नखरे बढ़ जाते हैं। इस कारण उनकी किताब अभी तक छप नहीं सकी है, लेकिन प्रकाशक ने बड़ी मिन्नत करके किसी तरह चार कवर छपवा दिये हैं, ताकि विमोचन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाये।

indiasmart@gmail.com

अम्माँ

— डॉ. मंजरी शुक्ल
हरियाणा, भारत

घंटों से बरगद के पेड़ के नीचे बैठी अम्माँ डाकिये का इंतज़ार कर रही थी। बरगद के पेड़ की लम्बी जटाएँ देखकर उन्हें याद आया कि उन्होंने भी न जाने कितने दिनों से सिर में न तो तेल डाला है और न ही चोटी बनाई है। अनायास ही उनका हाथ अपने रूखे, सफ़ेद और मटमैले बालों की ओर चला गया। अगर दीपक उन्हें इस हाल में देखता तो अपने हाथ से उनके सिर पर ढेर सारा तेल डालता और उन्हें प्यार भरी झिड़की लगाते हुए उनके बाल काढ़ता और उनकी टेढ़ी–मेढ़ी चोटी भी बनाता।

अम्माँ ऊपर से तो झल्लाती रहती पर दो दिन तक वह उस चोटी को नहीं खोलती और पूरे गाँव में जाकर अपने बेटे के इस प्रेम को बताते हुए निहाल होती रहती।

और आज... आज उसी बेटे को देखे पूरे आठ महीने हो गए।

झुर्रीदार हाथों पर पनियल आँखों की दो बूंद टपक पड़ी और अम्माँ ने अपना भीगा चेहरा साड़ी के पल्लू से रगड़ लिया।

धूप ने मानो ठान लिया था कि आज वह अम्माँ से जीत कर ही बताएगी पर माँ की ममता भी कमर कस कर बैठी थी। रह रहकर अम्माँ गर्म हवा से सुलग उठती। हवा की ढिठाई के आगे बूढ़ा बरगद भी शर्म के मारे थोड़ा और झुक गया था।

पुरजोर कोशिश के बाद भी ठंडी हवा की जगह अम्माँ का चेहरा झुलस उठता पर बेटे की चाह ने मानो पैरों में ज़ंजीर बाँध दी थी।

प्यास के मारे गला सूखा जा रहा था। गले पर हाथ फेरते हुए अम्माँ ने सूनी पगडंडी की तरफ़ अपनी नज़रें गड़ा दीं। तभी उन्हें दूर से ही साइकिल की घंटी सुनाई दी और वह चौकन्नी होकर उस दिशा में देखने लगी।

सूलगती धूप में कड़ी टक्कर देता हुआ डाकिया, पुरानी–सी साइकिल पर तेज़ पैडल मारते हुए अम्माँ के पास आ पहुँचा था।

अम्माँ पर नज़र पड़ते ही उसके पैर शिथिल हो गए और वह साइकिल रोकता हुआ बोला –'कितनी बार बोल चुका हूँ कि घर पर ही चिट्ठी दे दिया करूँगा, तो यहाँ एक किलोमीटर दूर आकर इंतज़ार क्यों करती हो?'

"सुन, तेरा नाम क्या है?" अम्माँ ने डाकिये की बात को अनसुनी करते हुए बड़े ही प्यार से पूछा –

"मोहन" डाकिये ने अम्माँ के हाथ में चिट्ठी और सौ–सौ के बीस नोट पकड़ाते हुए कहा –

"तुझे देखती हूँ, तो मेरा बेटा याद आ जाता है। तू दिखता भी उसके जैसा ही है। पूरे आठ महीने हो गए उसे देखे हुए, उसने एक बार भी पलटकर देखा तक नहीं कि उसकी माँ और बाबूजी ज़िंदा भी हैं या नहीं।" कहते हुए अम्माँ का गला रूँध गया।

अम्माँ की बात सुनकर मोहन का चेहरा पीला पड़ गया।

उसने नज़रें नीचे करते हुए कहा – "मुझे ही देखो अम्माँ... पूरे तीन साल से अपने गाँव नहीं जा पाया हूँ... छुट्टी ही नहीं मिलती है। माँ और बाबूजी तो बस अब सपनों में ही दिखते हैं।"

अम्माँ को अचानक ही मोहन के चेहरे में अपना बेटा दीपक दिखाई देने लगा।

वह चिट्ठी और पैसों को मुट्ठी में भींचते हुए बोली –"सबके दुख पैरों में बेड़ियों के समान पड़े हैं नहीं तो क्या अपनों से मिलने के लिए भी गैरों से मोहलत माँगनी पड़ती।"

मोहन कुछ कहता इससे पहले ही अम्माँ वहाँ से चल दी।

अम्माँ के जाने के बाद भी मोहन बहुत देर तक उन्हें जाते हुए देखता रहा। उसे लगा कि खून से बढ़कर भी

सगा रिश्ता दुख का होता है, जो पल भर में ही गैरों को भी अपना बना लेता है। अम्माँ के बेटे की शक्ल उससे बिल्कुल भी नहीं मिलती पर अम्माँ को उसमें अपना बेटा दिखाई देता है और अम्माँ का चेहरा भी उसकी माँ से मेल नहीं खाता, उसके बाद भी अम्माँ को देखते ही उसका रोम–रोम उसे माँ की याद दिलाता है।

भारी मन से उसने अपना चिट्ठियों का थैला वापस अपने कँधे पर डाला और साइकिल पर टाँग दिया।

उधर अम्माँ के दुबले पतले शरीर में मानो पंख लग गए थे।

दहकता सूरज भी अम्माँ के पैरों की गति को रोकने में सक्षम नहीं था। वह हवा के वेग से भागी चली जा रही थी। चिलचिलाती धूप से लाल गर्म अंगारे फूट रहे थे। अम्माँ का शरीर जला जा रहा था, पर अगर उस मरुस्थल में कहीं ठंडक थी तो अम्माँ की हथेली में, जहाँ पर दीपक की चिट्ठी उन्हें बारिश की फुहारों–सी महसूस हो रही थी। उन्हें अपने पूरे जीवन में अनपढ़ रहना कभी नहीं खला था, जितना अब खलता था। जैसे ही दीपक की चिट्ठी उन तक पहुँचती, वह सारे अक्षर कागज़ से निकलकर ब्रह्माण्ड में बिखर जाते और अम्माँ उन्हें पकड़ने को जहाँ तहाँ दौड़ा करती। जब बहुत कोशिशों के बाद भी उन्हें नहीं पकड़ पाती, तो थक हारकर बैठ जाती।

अचानक ही सारे अक्षर उनकी आत्मा में समा जाते और उनका हृदय पुलकित हो उठता। माँ का दिल समझ जाता कि बेटे ने क्या लिखा होगा।

वह मुस्कुराते हुए दस–बारह बार कागज़ को चूमती और कागज़ को आँखों के सामने रखकर कहती –"माँ तो बच्चे के बिना बोले ही सब समझ जाती है तभी तो उसे माँ कहते हैं...क्या कहते हैं माँ... माँ को भला शब्दों से क्या काम... और चिट्ठी को सीने से लगाकर वह हँस पड़ती और फिर अचानक ही मुंह में पल्लू ठूँसकर दहाड़ मारकर रोने लगती।

रास्ते में भी कई बार उनकी आँखें गीली हुई। घर पहुँचते ही किवाड़ों पर दस्तक दी, तो किवाड़ हाथ की थाप से ही खुल गए।

सामने ही घर की पुरानी एकमात्र कुर्सी पर दीपक के बाबूजी बैठे हुए थे।

अम्माँ को देखते ही गुस्से से बोले –"हमारा मन होता है कि तुमको गौरी की कोठरिया में बंद कर दें, दिन भर उसी की तगाड़ी में बैठकर घास–फूस खाओ। कितना मना किया था, इस भद्दर दुपहरी में बाहर जाने को, पर आज तक तुमने मेरी कोई बात सुनी है?"

और कोई दिन होता तो अम्माँ पलटकर ऐसा जवाब देती कि बाबूजी चारों खाने चित्त हो जाते। पर आज तो उनके सौ खून माफ़ थे।

अम्माँ ने हँसते हुए मुट्ठी खोल दी और बोली –"अरे गाय, भैंस सबके साथ रह लेंगे पर ज़रा दीपक की चिट्ठी तो पढ़कर सुनाओ कि क्या लिखा है?"

बाबूजी की आँखों में सैकड़ों दिये एक साथ जल उठे। कमरा मुस्कुरा उठा। उन्होंने लपककर अम्माँ के हाथ से चिट्ठी छीन ली।

अम्माँ गर्व से इठलाते हुए बोली –"तुम्हारे सपूत ने पैसे भी भेजे हैं।"

"पूजाघर में रख दो और जल्दी से आओ।" बाबूजी चश्मा पहनते हुए बोले।

अम्माँ ने रुपयों को माथे से लगाकर पूजाघर में रख दिया और बाबूजी के पास पूरे श्रद्धा भाव से आकर ऐसे बैठ गई मानो मंदिर में रामायण सुनने बैठी हो।

बाबूजी जैसे ही चश्मा पहनने को होते वह गिर जाता। जब कई बार ऐसा हो गया, तो अम्माँ झल्लाते हुए बोली– "कब तक टूटी हुई कमानी की जगह धागा बाँधकर काम चलाओगे। लाखों रुपये का बनता है क्या सड़िल्ला–सा चश्मा?"

बाबूजी ने गहरी दृष्टि से अम्माँ की साड़ी की ओर देखा, जो अपने हरे रंग को न जाने कितना पीछे छोड़कर अब हलकी पीली होने का आभास देती थी। सफ़ेद ब्लाउज़ इतना घिस चुका था कि कोई अमीर घर की औरत होती, तो उससे अपनी चप्पल भी न साफ़ करती।

अम्माँ को बाबूजी के शब्द कभी उतने नहीं चुभे जितनी उनके कपड़ों का मुआयना करती निगाह चुभ

गई। उन्होंने साड़ी को कँधे से लपेटते हुए बाबूजी के घुटनों पर हाथ रखकर कहा – "अगर मैं पढ़ी लिखी होती, तो अब तक सौ बार खत पढ़ चुकी होती।"

बाबूजी जैसे नींद से जागे और पत्र पढ़ना शुरू किया –"मेरे प्यारे अम्माँ और बाबूजी... आप लोग मेरी चिंता बिल्कुल मत करना। शरीर दूर होने से मन दूर नहीं हो जाते। एक बार काम भर का पैसा इकट्ठा कर लूँ फिर हम तीनों हमेशा साथ रहेंगे। आख़िर अम्माँ की चोटी भी तो मुझे रोज़ बनानी है। वह तो रूखे सूखे बालों में घूम रही होंगी। नई नौकरी है न इसलिए ज़्यादा पैसे नहीं भेज पाता हूँ, कई बार अपराधबोध से भर उठता हूँ और बहुत दुखी हो जाता हूँ। जल्दी आऊँगा। आपका दीपू..."

"कौन कहता है ज़्यादा पैसे नहीं भेजता, बहुत है इतने पैसे हम दोनों बुड्ढा–बुड्ढी के लिए..."बाबूजी आँसू पोंछते हुए बोले और अम्माँ हमेशा की तरह वहाँ से उठकर चली गई।

बाबूजी ने कान से धागा निकाला और एक कमानी वाले चश्मे को सँभालकर एक कोने में रख दिया।

बहुत देर तक अम्माँ के रोने की आवाज़ें आती रहीं। बाबूजी मुँह में हथेली दाबे सिसकियाँ दबाते रहे। जर्जर कमरा अपनी बेबसी पर शर्मिंदा होता हुआ रोता रहा।

आख़िर बाबूजी ने मौन तोड़ा और छत की ओर ताकते हुए ही बोले –"चाय बना दो।"

अम्माँ जैसे इसी वाक्य का इंतज़ार कर रही थी। उन्होंने झटपट अपना चेहरा धोया और अदरक घिसने लगी। हर बात पर कटौती होने के बाद भी अम्माँ बाबूजी की अदरक वाली चाय पर कभी समझौता नहीं करती थी। हर बात पर सर्द और गर्म तासीर देने वाले बाबूजी मई की भद्दर गर्मी में भी अदरक वाली चाय की सुड़किया उतने ही प्रेम से लेते जितनी दिसंबर की सर्दियों में रज़ाई ओढ़कर। अम्माँ यह बात याद करके मुस्कुरा उठी और फटाफट दो कप चाय लेकर बाबूजी के पास आ गई।

माहौल को हलका बनाते हुए बोली –"चाय पीकर चलो, ज़रा सामने वाले मंगू की दुकान से नारियल का तेल ले आएँ। अगर दीपू अचानक आ गया, तो मेरे सिर पर बाबाजी की जटाएँ देखकर नाराज़ हो जाएगा।"

बाबूजी मुस्कुरा उठे और दोनों चाय पीते हुए दीपक के बारे में सोचने लगे।

चिट्ठी पढ़कर अम्माँ और बाबूजी के दिन गुज़रते। अम्माँ को हर चिट्ठी की एक–एक लाइन याद हो गई थी, पर तब भी वह बाबूजी से उन्हें पढ़वाती और बेहद चाव से सुनती।

पर अचानक ही न जाने क्या हुआ कि दीपक के खत आने बंद हो गए। अम्माँ गर्म हवा और लू की परवाह न करते हुए बरगद के पेड़ के नीचे बैठी पूरी दोपहर दीपू के पत्र का इंतज़ार करती रहती, क्योंकि मोहन उसी रास्ते से निकलता था।

बाबूजी सारा दिन अम्माँ का दोपहर के भोजन पर रास्ता देखते और फिर तश्तरी पलट कर खाना ढक देते। अम्माँ शाम को थकी हारी–सी आती और ज़मीन पर निढाल हो पड़ जाती।

इसी तरह करीब एक महीना गुज़र गया।

एक सुबह अम्माँ बोली –"डाकखाने जाकर पता लगाना पड़ेगा कि आख़िर बात क्या है।"

बाबूजी चिंतित स्वर में बोले –"मोहन को पता था कि तुम बरगद के नीचे बैठी रहती हो, तो बेचारा एक किलोमीटर का उलटा चक्कर लगाकर तुम्हें चिट्ठी देने चला जाता था। आज सुबह ही कोई कह रहा था कि महीने भर से कोई नया डाकिया आ गया है।"

अम्माँ रुआँसी होती हुई बोली –"तो ज़रूर वह हमारे दीपक की चिट्ठी फेंक देता होगा और पैसे भी रख लेता होगा।"

बाबूजी बोले –"दीपू ने ही नहीं लिखी होगी चिट्ठी वरना डाकिया क्या हमारा दुश्मन है, जो सारे गाँव को चिट्ठी दे और बस हमें ही ना दे।"

अम्माँ कुछ सोचते हुए बोली –"नहीं, यह डाकिया ही हमारी चिट्ठी फेंक देता है। पिछले आठ महीनों से हमारा दीपू तो हर पंद्रह दिन में हमें चिट्ठी लिखता है।"

बाबूजी को भी अम्माँ की बात सही लगी और वह बोले –"चलो, डाकखाने होकर आते हैं।"

दोनों जैसे ही घर से निकले तो सामने वाले घर में उन्हें एक आदमी मोहन की साइकिल और चिट्ठियों का थैला पकड़े दिखाई दिया।

बाबूजी तेज़ कदमों से उसके पास पहुँचे।

अम्माँ भी उनके पीछे ऐसे दौड़ी मानो उन्हें किसी बहुत बड़ी चोरी का सुराग मिल गया हो।

बाबूजी कुछ कहते, इससे पहले ही अम्माँ ने पूछा –"तुम क्या नए डाकिये हो?"

"हाँ, अम्माँ जी, मुझे करीब एक महीना हो रहा है इस गाँव में आये हुए।" डाकिये ने बड़े ही प्यार और अपनेपन से जवाब दिया।

डाकिया की सज्जनता देख अम्माँ की ज़ुबान की तल्ख़ी हलक में ही अटक गई और वह बोली –"तो मोहन क्या अपने गाँव गया है?"

"नहीं, उसे टाइफ़ॉइड हो गया है। बहुत बीमार है बेचारा एक महीने से, यहीं अपने घर में ही और उसका तो कोई है ही नहीं, तो बेचारा गाँव क्या करने जाएगा।"

अम्माँ यह सुनकर सन्न रह गई। वह धीरे से बोली –"उसके बाबूजी और अम्माँ..."

"वे दोनों तो कई साल पहले ही खत्म हो गए थे। अब मैं चलूँ, मुझे बहुत जगह डाक बाँटने जाना है।"

तब तक बाबूजी बोले –"बेटा, मोहन के घर का पता दे दो।"

"पुराने वाले शिव मंदिर के ठीक सामने वाला घर है। पीले रंग की दीवारें हैं।" डाकिया बोला और फुर्ती से पैडल मारते हुए आँखों से ओझल हो गया।

लालटेन की ढिबरी जैसा छोटा–सा गाँव था और अम्माँ और बाबूजी न जाने कितनी बार दीपक के साथ उस मंदिर में जा चुके थे। जब भी शिवरात्रि का मेला लगता था, तो दीपक सुबह से ही वहाँ जाने की ज़िद करता था। दोनों की आखों के आगे दीपक का चेहरा नाच उठा और उनके कदम खुद–ब–खुद मंदिर की ओर बढ़ चले।

मंदिर के ठीक सामने पीले रंग का मकान था। मकान के बाहर से मालूम हो गया था कि अंदर की स्थिति क्या होगी। जगह–जगह से प्लास्टर उखड़ा पड़ा था। भूरे रंग का बड़ा–सा गमला, जिसमें शायद कभी तुलसी का पौधा लगा हुआ था, पर सूख जाने के कारण अजीब से बैंगनी और काले रंग का हो गया था।

दरवाज़ा खुला हुआ था और नीले रंग का पर्दा लटका हुआ था, जो हवा के कारण रह रहकर उड़ रहा था।

अम्माँ ने बाबूजी की ओर देखा मानो समझ ही नहीं पा रही है कि उन्हें इस तरह से बिना बुलाये, बिना कहे किसी के घर के अंदर जाना चाहिए या नहीं।

बाबूजी ने उन्हें चलने का इशारा किया और दोनों एक साथ घर के अंदर दाखिल हुए।

सामने ही चारपाई पर मोहन आँखें बंद किए हुए लेटा था। उसके बदन पर नीले और लाल फूलों वाली गंदी–सी चादर पड़ी थी। अम्माँ ने चेहरे को गौर से देखा, तो मोहन का पीला चेहरा और आँखों के नीचे के काले घेरे देख अम्माँ का कलेजा मुँह को आ गया।

चारपाई के बगल में ही प्लास्टिक की सफ़ेद कुर्सी पर करीब दस बारह साल का एक लड़का बैठा हुआ था।

अम्माँ को देखकर वह बोला –"मैं पड़ोस में रहता हूँ। स्कूल से आने के बाद यहीं पर भैया के साथ बैठा रहता हूँ।"

बाबूजी का गला बहुत देर से सूख रहा था।

वह लड़के से बोले –"बेटा, थोड़ा पानी मिलेगा।"

लड़के ने अम्माँ को देखा जो बार–बार अपने घुटनों पर हाथ मल रही थी।

वह बोला – "आप लोग बैठिये। मैं अभी अपने घर से पानी और एक कुर्सी लेकर आता हूँ।"

बाबूजी जब तक कुर्सी के लिए मना करते तब तक तीर की तरह लड़का कमरे से बाहर निकल चुका था।

बाबूजी बोले – "मोहन की तबियत तो बड़ी खराब मालूम होती है।"

"हाँ...देखो तो पूरा कमरा कैसे धूल से सना पड़ा है। मालूम पड़ता है, जैसे भूत नाचकर गए हो।" अम्माँ ने कमरे पर भरपूर नज़र डालते हुए कहा।

तभी बाबूजी बोले –"मेज़ पर तो बहुत लिफ़ाफ़े रखे हैं। देख लूँ क्या शायद हमारे दीपू की भी चिट्ठी हो।"

"मुझे लगता है पहले मोहन जाग जाए फिर मैं उसे कुछ बनाकर खिला दूँ, उसके बाद आप चिट्ठी देख लेना।" अम्माँ कुर्सी पर बैठती हुई बोली। पर तब तक बाबूजी की नज़र मेज़ पर रखी दीपक की फ़ोटो पर पड़ी।

वह आश्चर्य से बोले – "यह तो अपना दीपू है ना..."

दीपू का नाम सुनकर अम्माँ को जैसे करंट लग गया, उन्होंने लपक कर बाबूजी के हाथ से फ़ोटो छीन ली।

"हाँ ये तो दीपू ही है, पर उसकी फ़ोटो यहाँ क्या कर रही है।"

बाबूजी ने देखा कि मेज़ पर चार लाइनों के बहुत सारे पत्र बिखरे पड़े हुए थे। तो ये सारे पत्र आठ महीनों से मोहन लिख रहा था... इसका मतलब मोहन ही इतने महीनों से उन्हें पैसे देता रहा और दीपू के नाम से पत्र देता रहा। हे भगवान, वह कैसे भूल गए कि 'मनी ऑर्डर' में तो साइन करने पड़ते हैं और दीपू की माँ तो अनपढ़ है। उनका कलेजा किसी अनहोनी आशंका से काँप उठा।

इस समय उनका दिल इतनी ज़ोर से धड़क रहा था कि अपनी हर धड़कन को साफ़ सुन पा रहे थे।

काँपते हाथों के साथ उन्होंने अम्माँ को देखा और फ़ोटो के साथ रखा हुआ पत्र पढ़ना शुरू किया।

"आदरणीय बाबूजी, दीपू और मैं पिछले हफ़्ते साथ ही शहर आये थे, पर दो दिन पहले ही बस एक्सीडेंट में दीपू नहीं रहा। उसके शरीर की हालत खराब हो चुकी थी कि मैं बड़ी मुश्किल से उसकी शर्ट को पहचान पाया। आपको बुलाने का कोई फ़ायदा नहीं था। शब्दों में कुछ बता नहीं सकता, बस इतना समझ लीजिए कि उसके शरीर के क्षत–विक्षत टुकड़े जोड़कर किसी तरह उसका दाह संस्कार किया है। डाकखाने गया था आपको पत्र डालकर सारी बात बताने के लिए, तभी वहाँ पर गाँव के मोहन बाबू मिल गए। उन्होंने कहा कि वह आपको गाँव पहुँचते ही तुरंत खबर कर देंगे इसलिए पत्र और दीपू की फ़ोटो इन्हें ही दिये दे रहा हूँ। अब पता नहीं आपका खर्चा भी कैसे चलेगा। पर मैं भी सिर्फ़ इतना ही कमा पाता हूँ कि खाना और रहना ही चल पा रहा है। आपसे मिलने आऊँगा। अम्माँ को प्रणाम... आपका विजय।"

पत्र खत्म करते ही बाबूजी लड़खड़ाकर ज़मीन पर गिर गए।

वह चिल्ला–चिल्ला कर रो रहे थे, पर पूरा मुँह खुलने के बाद भी आवाज़ नहीं निकल रही थी। फ़र्श पर माथा पटकने से सिर पर गुमड़ निकल आया। चेहरे से आँसू बहते–बहते गले तक आ गए थे, पर उनका रोना बंद नहीं हो रहा था।

तभी उन्हें अम्माँ का ध्यान आया। वह अदबदाकर उठ बैठे। उन्होंने देखा कि किसी पत्थर की मूर्ति की तरह अम्माँ बिल्कुल शाँत बैठी और मोहन का सिर अपनी गोदी में रखे उसके माथे पर अपना हाथ फेर रही थी।

गर्म आँसुओं की बूँदें माथे पर पड़ते ही मोहन ने धीरे से अपनी आँखें खोल दी। अम्माँ को देख उसके गले में जैसे कुछ अटक गया। वह उठने को हुआ पर कमज़ोरी और बुखार के कारण उससे हिला भी नहीं गया।

अम्माँ बाबूजी से बोली –"क्यों रोते हो। ईश्वर सब पर इतनी दया नहीं दिखाता। उसने एक बेटा अपने पास बुला लिया तो क्या हुआ दूसरा बेटा हमें दे भी तो दिया है।"

मोहन ने अम्माँ की गोदी में अपना सिर छिपा लिया और रो पड़ा।

अम्माँ प्यार से उसकी पीठ पर हाथ फेरती जाती थी और मन–ही–मन ईश्वर से उसके अच्छे होने की दुआएँ माँगती जाती थी।

छोटी–सी प्रेम कहानी

– श्रीमती मीना पाठक
कानपुर, भारत

फूलपुर गाँव जहाँ एक तरफ़ तालाब किनारे भोलेनाथ का मंदिर था, तो दूसरी तरफ़ सम्मेमाई का थान, जहाँ नवरात्रि में नौ दिन मेला–सा लगा रहता था। अष्टमी के दिन बड़ी ही स्वच्छता के साथ देवी गीत गाती हुई गाँव की महिलाएँ कच्चे चूल्हे पर मिट्टी की पकी कड़ाही में अरहर की इंडियाँ जलाकर शुद्ध सरसों के तेल में पूरियाँ निकालतीं और गुड़ के साथ माँ को भोग लगातीं, फिर सबको प्रसाद रूप में वही पूड़ी और गुड़ दिया जाता था। मंदिर के बाद गाँव वालों के खेत शुरू हो जाते थे, बहुत दूर जहाँ खेतों की सीमा समाप्त होती थी, वहाँ से शुरू होता था एक विशाल बगीचा। बगीचे की दूसरी तरफ़ एक पतली–सी नदी बहती थी। वहाँ बहुत पुराना भोलेनाथ का मंदिर था। गाँव के बड़े–बुजुर्ग कहते थे कि मंदिर में जो विशाल शिवलिंग है वह उसी नदी से निकला था, इसलिए उस मंदिर की बहुत मान्यता थी। आम तौर पर इस बगीचे का प्रयोग गाँव वाले खलिहान के लिए किया करते थे पर साल में एक बार यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता था। इस मेले की तैयारी महीनों पहले से होने लगती, मेला घूमने लोग बहुत दूर–दूर से आते थे।

आज बरसों बाद पुष्पा मेले में कदम रख रही है पर तब में और आज में बहुत अंतर हो गया है। तब वह खेतों की मेड़ पर कोसों पैदल चलकर सखियों संग मेला घूमने आती थी और आज मेले तक गाड़ी पहुँचने की सुविधा है। मेले में जो भी आता पहले मंदिर में भोलेनाथ के दर्शन करता फिर मेला घूमता, पुष्पा ने भी पति व बच्चों के साथ भगवान के दर्शन किए और सब के साथ मेला घूमने लगी। थोड़ी देर घूमने के बाद वह एक बड़े से बरगद के पेड़ के नीचे बैठ गई, पति व बच्चे पहली बार मेला देख रहे थे, सो घूमते रहे।

पुष्पा आराम से पेड़ पर पीठ टिकाकर ज़मीन की नर्म मुलायम घास पर बैठ गई। उसकी नज़र ऊपर पेड़ पर पड़ी, उसने देखा पेड़ ने और भी फैलाव ले लिया था उसकी जटाएँ नीचे ज़मीन को छू रही थी। बरगद की कुछ शाखाएँ आपस में ऐसे लिपटी हुई थीं, जैसे बरसों के बिछड़े प्रेमी युगल आपस में आलिंगनबद्ध हो एक दूसरे के दिल की धड़कनें सुन रहे हों। पक्षियों के झुण्ड उसपर विश्राम कर रहे थे, उसने अपनी आँखें बंद करनी चाही तभी सामने के पेड़ पर उसकी नज़र पड़ी जो सूख कर ठूँठ हो गया था; पर उसकी खोह में एक कबूतर का जोड़ा आज भी प्रेम में मशगूल था, उसने एक लम्बी–सी साँस ली और आँखें बंद करते ही उसके सामने एक तस्वीर थी, जिससे उसकी पहली मुलाकात इसी मेले में हुई थी और आखरी भी... किशोर की याद आते ही उससे जुड़ी हर बात पुष्पा को याद आने लगी।

उस दिन वह तीन–चार सखियाँ भोर में ही घर से निकल पड़ी थीं, ताकि तेज़ धूप होने से पहले ही वह मेले में पहुँच जायें। भोर का समय, मंद–मंद चलती हुई ठण्डी हवा, आस–पास पके हुए गेहूँ के खेत और मेला देखने का उत्साह, वे सब बातें करते हँसते खिलखिलाते कब मेले में पहुँच गयीं, पता ही नहीं चला।

सबसे पहले उन लोगों ने भोलेनाथ के दर्शन किए, उसके बाद मेला घूमने लगीं। उस दिन मेले में घूमते–घूमते पुष्पा को लगा कि कोई उसका पीछा कर रहा है, थोड़ी देर तक तो उसने सोचा कि मेरा वहम है; पर जब काफ़ी समय गुज़र जाने के बाद भी पीछा जारी रहा तब उसने पीछे मुड़कर देखा, एक पतला–दुबला, गोरा, सुन्दर–सा युवक उसके पीछे–पीछे चल रहा था। पहली बार किशोर को कड़ी नज़रों से देखा था, पर जवाब में किशोर ने हलके से मुस्कुराकर आँखों–ही–आँखों से अभिवादन किया था। उसका मासूम और भोला चेहरा देखकर क्षण भर में ही पुष्पा का गुस्सा जाता

रहा। किशोर की आँखों की भाषा पुष्पा के दिल तक पहुँच गई थी। एक अजीब–सा एहसास उसके दिल को धड़का गया था; शाम तक किशोर पुष्पा के साथ–साथ घूमता रहा, बिना किसी बातचीत किए हुए।

पुष्पा जहाँ जाती वह उसके पीछे–पीछे जाता, पुष्पा को अच्छे से एहसास था इस बात का, पर उसे भी न जाने क्यों उसका साथ अच्छा लग रहा था। पूरा दिन घूमने के बाद शाम को वापसी के समय वह अपनी सहेलियों से थोड़ा अलग हटकर चूड़ियों की दुकान पर खड़ी हो गयी इतने में उसने आकर भीड़ का फ़ायदा उठाते हुए एक कागज़ का टुकड़ा पुष्पा की हथेली में पकड़ा दिया; पुष्पा का दिल ज़ोर से धड़क उठा। उसने उसकी आँखों में देखते हुए अपनी मुठ्ठी बंद कर ली। दोनों ने आँखों–ही–आँखों में एक दूसरे से विदा ली और वापस अपने–अपने घर की तरफ़ चल दिए, पर अकेला कोई भी नहीं था, दोनों ही एक दूसरे के एहसास में बंध गए थे; एक दूसरे के ख्यालों में खोए हुए दोनों अपने गंतव्य की तरफ़ बढ़े जा रहे थे।

घर पहुँचते–पहुँचते अंधेरा हो चुका था। सभी सहेलियाँ अपने–अपने घर चली गयीं। माँ ने हल्की–सी डाँट लगायी...

"कितनी देर कर दी पुष्पा! मेले से थोड़ा पहले नहीं निकल सकती थी? पर तुझे समय का ख्याल कहाँ रहता है..? सहेलियों के साथ घूमने को मिल जाए बस...!" अब पुष्पा कैसे बताती माँ को कि सच में उस अजनबी के साथ... । माँ कमरे के बाहर चली गयी, पुष्पा ने दरवाज़ा बंद किया और वह मुड़ा–तुड़ा कागज़ का टुकड़ा निकाल कर पढ़ने लगी जिसमें लिखा था –

"मुझे नहीं पता आपका नाम क्या है...जानने की ज़रूरत भी नहीं समझता..क्योंकि शायद ही हम दुबारा मिल पायें, पर हाँ...अगर परिस्थितियों ने साथ दिया, तो अगले वर्ष इसी दिन मैं मेले में आपकी प्रतीक्षा करूँगा। किशोर।"

पढ़कर पुष्पा की आँखें न जाने क्यों भीग गयीं। उससे तो उसकी बात भी नहीं हुई...सिर्फ़ कुछ घंटों का साथ भर था; पर उसके एहसास से वह भीतर तक भर गई थी। ऊपर से उसके शब्दों में एक कशिश थी, जिसमें वह बंधी जा रही थी। उसी के ख्यालों में डूबी हुई वह न जाने कब सो गयी। सुबह उठकर उसने सबसे पहले वह पर्चा अपनी डायरी में दबाकर डायरी को बक्से में छुपा दिया।

धीरे–धीरे समय बीतने लगा, पर्चा डायरी में दबा रहा और किशोर का एहसास दिल में दबाए पुष्पा अपनी 12वीं की पढ़ाई पूरी करने लगी।

कभी–कभी अकेले में डायरी निकालकर वह पर्चा पढ़ लेती। अब तक न जाने कितनी बार पढ़ चुकी थी वह। 12वीं के बाद घर में उसके विवाह की चर्चा चलने लगी। जब भी वह माँ–बाबूजी को बात करते सुनती उसे किशोर की याद आ जाती और उसका दिल रो पड़ता. ..तब वह खुद–ही–खुद को समझाती कि "किशोर से उसका क्या नाता है...अब वह जाने कहाँ होगा...मैं क्यों सोचती हूँ उसके बारे में...उसे मैं याद हूँ भी कि नहीं? उसका एक पर्चा लेकर बैठी हूँ मैं...नहीं अब नहीं सोचूँगी उसके बारे में... कभी नहीं सोचूँगी।"

पुष्पा ने मन–ही–मन सोचा; पर ऐसा कहाँ होता है। उसने अनजाने में ही अपने दिल के कोरे कागज़ पर किशोर का नाम लिख लिया था। अब वह नाम मिटाना आसान नहीं था उसके लिए।

देखते–देखते साल बीत गया और फिर से मेले का समय समीप आ गया। जैसे–जैसे वह दिन नज़दीक आ रहा था पुष्पा के दिल की धड़कन बढ़ती जा रही थी। उसे किशोर से मिलने की ललक मेले की ओर खींच रही थी।

मेला जाने की तैयारी हो गयी थी पुष्पा की। इस साल मेला जाने के लिए सिर्फ़ दो ही सहेलियाँ थीं, क्योंकि दो सहेलियाँ ससुराल में थीं। इन दोनों का ब्याह भी तय हो चुका था। घर वालों ने भी इजाज़त दे दी थी कि न जाने ब्याह के बाद फिर कब मेला घूमना नसीब हो इन्हें! तीनों भोर में ही निकल पड़ीं मेले के लिए; मेले में पहुँचकर सबसे पहले भगवान के दर्शन किए उसके बाद मेला घूमने लगीं। वह दोनों तो अपने लिए शृंगार–पटार का सामान खरीदने में व्यस्त हो गयीं; पर पुष्पा की

निगाहें किसी को ढूँढ रही थीं। उसका मेला घूमने में मन नहीं लग रहा था। मन बेचैन था, वह सोचने लगी – "पता नहीं 'उसे' याद भी है कि नहीं...बेकार ही मैं परेशान हो रही हूँ... इतनी छोटी–सी बात उसे क्यों याद होगी? उसे तो मेरा नाम भी नहीं पता।" पुष्पा को अपनी बेबसी पर रोना आ गया, उसे लगा कि वह यहीं रो देगी।

जल्दी–जल्दी वह भीड़ से निकलकर मेले के बाहर एक बड़े से बरगद के पेड़ की आड़ में खड़ी हो गयी और अपने रूमाल से चेहरा छुपा कर रो पड़ी। करीब दो मिनट बाद रूमाल हटाकर उसी से अपना चेहरा साफ़ करने लगी, पूरा चेहरा आँसुओं से भीग चुका था। दिल दर्द से भरा हुआ था। किसी तरह से उसने अपने ऊपर काबू किया और जैसे ही वह मुड़ी; सामने किशोर मुस्कुराता हुआ खड़ा था। अब भला पुष्पा अपने ऊपर काबू कैसे रख पाती। किशोर के प्रेम को पूरे एक साल तक उसने दिल में ही दबाकर रखा था, पर इस समय वह अपने को रोक नहीं पायी। किशोर को सामने पाकर वह सब भूलकर उसके सीने से लगकर फिर से सिसक पड़ी –

"किशोर! कहाँ थे अभी तक? कब से तुम्हें ढूँढ रही थी... अब तो निराश हो गई थी... तुम से मिलने की आशा भी छोड़ चुकी थी।" रोते हुए पुष्पा बोली।

"मैं भी सुबह से तुम्हें मेले में ढूँढ रहा हूँ... मुझे लगा तुम सब भूल गयी हो और मैं निराश होकर मेले से बाहर निकल आया... यहाँ आकर मैंने तुम्हें रोते हुए देखा, तो सब समझ गया।"

किशोर की बाहें भी पुष्पा की पीठ पर कस गयी थीं। थोड़ी देर तक दोनों दिन–दुनिया से बेखबर एक दूसरे की बाहों में समाये हुए एक–दूसरे की धड़कनें गिनते रहे। बरगद के शाखों पर बैठे पक्षी उनके प्रेम के साक्षी थे, उनके सामने के वृक्ष पर पत्तों के झुरमुट से एक कबूतर का जोड़ा आपस में गर्दन से लिपटे हुए उन्हीं को निहार रहा था। उनको मेले से कुछ लेना–देना नहीं था। दोनों वहीं बैठ गए और एक–दूसरे के बारे में जानने की कोशिश करने लगे।

बातें करते–करते कितना समय बीत गया दोनों को पता ही नहीं चला। बरगद के पेड़ पर पक्षियों का कलरव सुनकर जैसे वे होश में आ गए, फिर से एक बार बिछड़ने का समय आ गया था। जुदा होने के एहसास से ही पुष्पा की आँखें फिर से भीग गयीं, तब किशोर ने उसके आँसू पोंछते हुए समझाया –

"पुष्पा...! अगर किस्मत में हुआ तो हम फिर मिलेंगे. ..हम एक दूसरे की ज़िंदगी में तो शामिल नहीं हो सकते, पर एक दूसरे के दिल में हमेशा रहेंगे... मैं आजीवन तुम्हें भूल नहीं पाऊँगा, शायद तुम भी।"

किशोर चला गया और पुष्पा भी भारी कदमों से अपने को घसीटती हुई घर आ गयी थी। उस समय लड़का या लड़की किसी को भी इतनी इजाज़त नहीं थी कि वह अपने दिल की बात अपने घर वालों को बता सके, ना ही इतनी छूट थी कि वह एक–दूसरे से मिल सकें। किशोर दूर के गाँव में ठाकुर के घर का बेटा था और पुष्पा ब्राह्मण की बेटी। इसलिए ये दोनों कुछ सोच भी नहीं सकते थे।

कुछ दिनों बाद ही अच्छा लड़का देखकर पुष्पा की शादी कर दी गयी। वह भी सब भूलकर अपनी घर गृहस्थी में लग गयी। धीर–धीरे किशोर की यादें उसके दिल के किसी कोने में पर्त–दर–पर्त दबती चली गई।

अब की बार पुष्पा मायके आयी तो संयोग से मेला चल रहा था। आज वर्षों बाद किस्मत फिर से उसी मेले में ले आयी, दिन भी वही। पति को बच्चों को घुमाने को कहकर पुष्पा सिर दर्द का बहाना कर मेले से बाहर उसी बरगद के पेड़ के नीचे आकर घास पर बैठ गयी।

इस समय वह सब भूलकर किशोर की याद में डूब गयी और अपने आँसुओं को रोक नहीं पायी। दिल पर लिखा हुआ किशोर का नाम जो वक्त के साथ धुंधला पड़ गया था, आज अचानक वह फिर से उभर गया था। वह अपने पर्स से रूमाल निकालकर अपने आँसू पोंछने लगी, पर आँसू थे कि रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। थोड़ी देर बाद ही सामने कुछ दूर एक गाड़ी आकर रुकी। पुष्पा अपने आँसू पोंछने में लगी रही, सोचा, होगा कोई, उसे क्या..!

गाड़ी ठीक उसके सामने ही कुछ दूर रुकी थी,

तो न चाहते हुए भी उसकी नज़र उसपर पड़ रही थी। उसने देखा, गाड़ी में से एक लंबा–सा आदमी फ्रेंचकट दाढ़ी में आँखों पर काला चश्मा लगाए हुए निकलकर उसी की ओर बढ़ा आ रहा था। उसे इस समय किसी का ध्यान नहीं था। वह ये भूल गयी कि उसके पति व बच्चे मेले में हैं। इस समय खुद को भी भूलकर सिर्फ़ किशोर के ख्यालों में थी। बरसों बाद उसकी भावनाएँ सारे पर्त खोलकर बाहर आ गयी थीं। वह आदमी उसके करीब आता जा रहा था, पुष्पा को लगा वह इसी रास्ते मेले में जा रहा है। पुष्पा धीरे–धीरे सिसकती हुई अपने पर काबू पाने की कोशिश भी करती जा रही थी, इतने में उसके कानों में धीरे से एक आवाज़ टकराई – पुष्पा ...!

वह चौंक पड़ी। नज़र उठाकर देखा वही आदमी उसके सामने खड़ा था। पुष्पा हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। जल्दी–जल्दी आँखें साफ़ कर के बोली –

"जी कहिए।"

तब तक उस आदमी ने अपना चश्मा उतार लिया, अब पुष्पा उसे देखकर सिहर उठी

कि...शो....र...!

इसके आगे वह कुछ भी नहीं बोल पायी। आँखें फिर से बरस पड़ीं।

"नहीं पुष्पा रोना नहीं है..बस थोड़ी देर मेरी बात सुनो.. मैं कभी तुम्हें भूला नहीं। हर साल मैं इस दिन मेले में आता रहा कि शायद कभी तुमसे मुलाकात हो जाए और पूरा विश्वास था कि एक न एक दिन तुम ज़रूर मिलोगी। मैंने तो तुम्हें पहले ही बोला था कि मैं तुम्हारी ज़िंदगी में शामिल नहीं हो सकता, पर तुम को कभी भी भूल नहीं पाऊँगा। मैं आज तक भूल नहीं पाया, पर आज के बाद अब कभी मेले में नहीं आऊँगा। एक बार तुमसे मिलने की इच्छा थी, जो आज पूरी हो गयी। अब कोई इच्छा शेष नहीं" कहते हुए किशोर भावुक हो गए।

कि...शो....र! पुष्पा के आँसू नहीं रुक रहे थे।

"हाँ पुष्पा! तुमसे मिलने की चाह मुझे मेले में खींच लाती थी हर साल।"

इतनी देर में पुष्पा अपने को कुछ सम्भाल चुकी थी और उसे अपनी स्थिति का भान हो चुका था। वह धीरे से बोली – "अकेले आए हो? शादी की या नहीं? बच्चों को क्यों नहीं लाये?" पुष्पा ने एक साथ कई सवाल कर दिये।

"बच्चे हों तो लाता ना। तुम दिल से कभी गयी ही नहीं, तो फिर कैसे किसी को अपनाता..? मैंने शादी ही नहीं की और अब इस उम्र में तो सवाल ही नहीं उठता, पर मैं बहुत खुश हूँ, तुम्हारी यादों के सहारे ज़िन्दगी आराम से कट रही है। बस एक बार तुम्हें देखने की इच्छा थी, जो पूरी हो गयी। अब कभी तुम्हारे सामने नहीं पड़ूँगा। चलता हूँ.. तुम्हारे पति आते होंगे।" और एक झटके से किशोर पलटकर चल पड़े। पुष्पा जैसे नींद से जागी। किशोर के मुँह से पति का नाम सुनकर वह पूरी तरह यथार्थ के धरातल पर आ चुकी थी।

किशोर चले जा रहे थे और वह चाहकर भी उसे रोक नहीं पा रही थी। वह उसे पुकारना चाहती थी, कुछ कहना चाहती थी, पर कोई अदृश्य शक्ति उसे ऐसा करने से रोक रही थी। वह अपने स्थान से हिल नहीं सकी ना ही उसके कोई बोल फूटे, पर दिल में एक टीस उठी और आँखों से न चाहते हुए भी दो बूँद आँसू लुढ़ककर उसके गालों पर लकीर खींचते हुए उसके आँचल में समा गए, हमेशा के लिए।

वह किशोर को तब तक देखती रही जब तक वह गाड़ी में बैठकर उसकी नज़रों से ओझल नहीं हो गए। एक छोटी–सी प्रेम कहानी मेले से शुरू होकर मेले में ही खत्म हो गई थी।

पुष्पा ने अपने अंतर्मन के किवाड़ बंद किए और सामान्य दिखने का प्रयास करने लगी। उसने वहीं पास के हैंडपम्प से पानी खींचकर मुँह धोया और अपनी गाड़ी में आकर बैठ गयी। अतीत से वर्तमान में आ चुकी थी पुष्पा। किशोर की यादों को उसने अपने दिल की पेटी में सबसे नीचे दबा दिया फिर कभी न खोलने के लिए। थोड़ी देर बाद ही सब मेले से वापस घर आ गये और दो दिन बाद ही सब अपने शहर के लिए रवाना हो गए।

इस बात को लगभग दो महीने बीत चुके थे। कभी–कभी वह अपराध बोध से ग्रस्त हो जाती थी किशोर के लिए। वह खुद तो एक बेहद प्यार करने वाले पति और बच्चों के साथ सुखद गृहस्थ जीवन जी रही थी, पर किशोर उसके कारण अकेलेपन को गले लगा

कर बैठा था, पर करे क्या वह? कुछ समझ नहीं पा रही थी।

यूँ तो पुष्पा ने अपने दिल के भीतर किशोर की यादों को दबाकर किवाड़ बंद कर दिया था, पर कभी–कभी पुष्पा को अकेली पाकर वे यादें किवाड़ खटखटा दिया करती थीं। अचानक फ़ोन की घंटी बजी। फ़ोन उठा लिया पुष्पा ने–

"हेल्लो ...."

"अच्छा... "

"वही न जिनकी शादी के एक महीने बाद ही...."

"ठीक..."

"अच्छी बात है..."

"कर देती हूँ..."

अशोक (उसके पति) का फ़ोन था। उनकी दूर की बहन आरती आ रही थी। वह प्राइमेरी टीचर थी और उसका स्थानांतरण हमारे ही शहर में हुआ था। कुछ दिन हमारे साथ रहकर अपने लिए कोई ढंग का कमरा देखना था उसे, क्योंकि इस शहर में हमारे सिवा और कोई भी नहीं था उसका।

अशोक हमेशा उसके बारे में बातें करते रहते हैं। आरती की शादी के एक महीने बाद ही होली के दिन उसके पति की डूबकर मृत्यु हो गई थी। होली खेलने के बाद वह दोस्तों के साथ नदी में स्नान के लिए गए थे फिर वापस नहीं आये। उस दिन से आरती कभी ससुराल नहीं गयी। कई बार उसने जाने की ज़िद की पर उसके मायके वालों ने जाने नहीं दिया। सभी इस प्रयास में थे कि कोई अच्छा लड़का मिल जाए, तो आरती की दुबारा शादी कर दी जाए, पर वह एक महीने की सुहागिन विधवा थी इसलिए विवाह में समस्या आ रही थी और वह भी इसके लिए राज़ी नहीं हो रही थी। अशोक भी उसकी शादी के लिए प्रयासरत थे।

पुष्पा ने बच्चों के कमरे में आरती के रहने की व्यवस्था कर दी।

आरती लम्बी–सी भरे–पूरे शरीर की खूबसूरत, हिम्मती, हौसलेमन्द, स्वभाव की नेक और बच्चों में घुल–मिल कर रहने वाली खुशदिल युवती थी। उसके आने से घर में रौनक हो गई थी। बच्चे भी खुश थे।

पता ही नहीं चला कि आरती के आये हुए एक सप्ताह कब बीत गया। उस दिन शाम को वह, आरती और बच्चे आराम से बालकनी में बैठकर कैरम खेल रहे थे, इतने में अशोक की गाड़ी की आवाज़ सुनकर पुष्पा चौंक पड़ी, उसने प्रश्नवाचक निगाहों से आरती की तरफ़ देखा और बोली "आज इतनी जल्दी कैसे?"

जल्दी से आकर उसने गेट खोला और फिर से वही बात अशोक से बोली –"आज इतनी जल्दी?"

अशोक गाड़ी से नाश्ते का सामान निकालते हुए बोले "मेरे एक मित्र अभी आ रहे हैं। इसीलिए आज जल्दी आना पड़ा, वह जर्नलिस्ट हैं। कल ही वापस दिल्ली जाना है इसीलिए उन्हें आज ही घर पर बुलाना पड़ा। तुम्हें बताने का समय भी नहीं मिला। जल्दी से आरती के साथ मिलकर तैयारी कर लो, बस वह आते ही होंगे।" बात करते हुए दोनों भीतर आ गये थे।

पुष्पा ने जल्दी से आरती को आवाज़ दी और खुद ड्रॉईंगरूम सही करने में जुट गई। इतने में अशोक ने उसे इशारे से बेडरूम में बुलाकर धीरे से कहा "ध्यान से देख लेना, मैं चाहता हूँ कि किसी तरह आरती का विवाह इससे करा सकूँ नहीं तो इस उम्र में आरती के लिए कोई भी अविवाहित लड़का मिलना बहुत मुश्किल है।

" अच्छा! तो ये बात है।" पुष्पा खुशी से चहक उठी। अशोक ने मुँह पर उंगली रखकर उसे चुप रहने को कहा और गेट की तरफ़ बढ़ गया।

पुष्पा की खुशी का ठिकाना नहीं था, वह इन छः सात दिनों में ही आरती से बहुत घुल–मिल गई थी, लग ही नहीं रहा था कि वह दोनों पहली बार मिली थीं। एक दोस्ती का रिश्ता बन गया था दोनों में। दोनों ने मिलकर सारी तैयारी कर ली। थोड़ी देर बाद ही एक सफ़ेद रंग की लम्बी–सी गाड़ी दरवाज़े पर आकर रुकी। पुष्पा समझ गई, वह आ गये थे, जिनकी प्रतीक्षा हो रही थी।

पुष्पा ने आरती को कोल्डड्रिंक लेकर जाने की ज़िम्मेदारी सौंप दी और स्वयं कॉफ़ी बनाने की तैयारी में लग गई। वह चाहती थी कि ज़्यादा से ज़्यादा आरती को मौका मिले उसके करीब रहने का, ताकि उसे विवाह के लिए राज़ी किया जा सके। थोड़ी देर बाद अशोक ने आवाज़ दी पुष्पा को। पुष्पा ने कॉफ़ी की ट्रे आरती को दी और खुद दूसरी ट्रे में नाश्ते का सामान लेकर उसके पीछे चल दी और जैसे ही उसने ट्रे मेज़ पर रखकर

दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन के लिए सामने बैठे व्यक्ति के ऊपर नज़र डाली, उसके दिमाग को एक झटका–सा लगा, दिल के तार झनझना उठे। कुछ यही हाल उस व्यक्ति का भी था। वह भी उसे देखकर सन्न रह गया था, दोनों हाथ जोड़े अचम्भित खड़े थे, पर उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। उन दोनों को यूँ खड़े देखकर अशोक ने दोनों का परिचय कराया ''ये पुष्पा! मेरी धर्मपत्नी और ये मेरे मित्र किशोर राजवंशी!''

पुष्पा का दिल ज़ोर–ज़ोर से धड़क रहा था, किस्मत ने फिर से उन दोनों को एक दूसरे के सामने ला खड़ा किया था। उसने तो दिल के दरवाज़े किशोर के लिए सदा के लिए बंद कर दिए थे फिर ईश्वर ने दुबारा उसे मेरे सामने लाकर क्यों खड़ा कर दिया। मन में एक बेचैनी और उलझन लिए पुष्पा किशोर की आवभगत में लगी रही। यही हाल किशोर का भी था, जिसे भुलाने की लाख कोशिशों के बाद भी वह उसे भुला नहीं सका था, वह फिर से एक बार उसके सामने थी। थोड़ी देर बाद किशोर किसी काम के लिए जल्दी जाना है, कहकर चले गये। अशोक उन्हें बाहर तक छोड़ने गये। आरती कुछ उदास–सी दिखी। पुष्पा के मन में भी हज़ारों विचार आ रहे थे। अभी दो महीने पहले ही तो अचानक किशोर से मुलाकात हुई थी तब उसने सोचा था कि ये आखरी मुलाकात होगी, पर दुबारा यूँ अपने ही घर में! उसने सोचा भी नहीं था।

किसी तरह उसने काम समेटा, उसके सिर में दर्द होने लगा था। वह आकर अपने कमरे में लेट गई, जैसे ही उसने अपनी आँखें बंद की उसके पहले की सारी यादें फिर से चलचित्र की भाँति घूमने लगीं।

अब क्या करूँ? सोचते–सोचते अचानक ही पुष्पा की आँखें चमक उठी, वह कुछ सोचकर बहुत खुश हो गई।

दोनों ने मिलकर आरती को किशोर से विवाह के लिए राज़ी कर लिया था। उसके घर में भी सबको बता दिया गया था। सभी लोग बहुत खुश थे इस रिश्ते से। किशोर के दूसरी जाति के होने से उन्हें अब कोई एतराज़ नहीं था। समय के साथ–साथ सभी का नज़रिया बदल चुका था।

किशोर की बात अब हमेशा घर में होने लगी थी। कई बार पुष्पा ने सोचा कि वह अशोक को सब बता दे, पर न जाने क्या सोचकर हर बार चुप रह जाती। अब जब–तब किशोर का फ़ोन भी आने लगा था।

एक दिन अशोक, आरती और बच्चे सभी मिलकर लॉन में बैडमिन्टन खेल रहे थे। पुष्पा सब्ज़ी काटते हुए टीवी पर सीरियल देख रही थी, इतने में अशोक का मोबाइल बज उठा। पुष्पा ने मोबाइल उठा कर देखा, किशोर का फ़ोन था, उसने कुछ सोचा और फ़ोन उठा लिया –

"हेल्लो"

"कैसी हो?" उधर से किशोर की गम्भीर आवाज़ आयी।

एक बार फिर से पुष्पा का दिल धड़का, पर वह अच्छी तरह से जानती थी अपनी स्थिति, उसने अपनी आवाज़ संयतकर के जबाव दिया –

"मैं अच्छी हूँ, तुम कैसे हो?"

"मैं भी ठीक हूँ.. पुष्पा! मैं इस जीवन में किसी और से विवाह की सोच भी नहीं सकता, कैसे मना करूँ मैं अशोक को? मैं तो सपने में भी नहीं सोच सकता था कि तुमसे इस तरह से कभी जीवन में फिर से मुलाकात होगी।"

"किशोर! हम दोनों जीवन में बहुत आगे बढ़ चुके हैं और तुमने ही तो कहा था कि हम एक दूसरे के जीवन में हों या न हों, पर एक दूसरे के दिल में हमेशा रहेंगे, तो अब पीछे क्यों हट रहे हो, मैं अपने पति से बहुत प्रेम करती हूँ और अपनी गृहस्थी में बहुत खुश हूँ, तो तुम क्यों खुद को सज़ा दे रहे हो, हमारा प्रेम पवित्र था हमने एक–दूसरे से कुछ नहीं माँगा था, ना ही कुछ चाहा था, ईश्वर ने एक मौका दिया है, तो हम एक अच्छे मित्र बनकर क्यों नहीं रह सकते और अब तो हमारा एक रिश्ता भी बनने जा रहा है, क्या तुम्हें आरती में कोई कमी दिख रही है या वह तुम्हारे योग्य नहीं?" पुष्पा ने कहा।

"नहीं पुष्पा! आरती बहुत अच्छी लड़की है, मैं कैसे कह दूँ कि वह मेरे लायक नहीं है। शायद मैं ही नहीं उसके लायक....।" कुछ मायूस स्वर में किशोर ने कहा।

"नहीं किशोर! ऐसा मत कहो, तुमसे बहुत कम

समय के लिए मिली हूँ, पर इतना तो समझ ही गई हूँ, कि तुम एक अच्छे और नेकदिल इंसान हो, आरती भी बहुत अच्छी लड़की है। किशोर! हम इस नये रिश्ते को ईश्वर की इच्छा मानकर पूरे सम्मान से स्वीकार लेते हैं।" पुष्पा ने किशोर को समझाते हुए कहा।

"ठीक है...जैसी तुम्हारी इच्छा। मुझे ऐतराज़ नहीं इस रिश्ते से।" किशोर ने कहा। सुनकर पुष्पा खुश हो गई। बोली "किशोर! मैं बहुत खुश हूँ... मेरे दिल पर एक बोझ था, वह आज उतर गया। मैं बहुत खुश हूँ किशोर। बहुत खुश! और हाँ अब हम कभी एक दूसरे से अलग नहीं होंगे क्योंकि अब हम रिश्तेदार के साथ–साथ अच्छे मित्र भी हैं, वादा करो।" बोलते हुए पुष्पा की आवाज़ काँप गई, आँखों से दो बूँद आँसू उसके गालों पर लुढ़क पड़े।

उधर किशोर की आँखें भी नम हो गयीं।

meenadhardwivedi1967@gmail.com

दावानल

– डॉ. मधुछन्दा चक्रवर्ती
बैंगलौर, भारत

फ़ोरेस्ट ऑफ़िसर सूरजन सिंह शाम को अचानक टहलते–टहलते ठिठक जाते हैं। सामने एक वीरान–सा घर है। घर की ओर देखकर वे कुछ सोच रहे हैं। घर के दरवाज़े–खिड़कियाँ जैसे उनसे कुछ कह रहे हो, घर के सामने का आंगन, कुल्हाड़ी जिसे ज़ंग ने आकार बिगाड़कर कुछ और बना दिया हो, सूखी हुई तुलसी सब जैसे उनसे पूछ रहे हो, कहाँ गये इस घर के लोग। क्यों भेज दिया उन्हें दूर? घर जैसे पहाड़ बनकर खड़ा हो और उनसे सवाल कर रहा हो। सूरजन सिंह घर के लोगों को याद करते हैं, नंदू को, उसकी पत्नी–बच्चों सभी को...याद आने लगता है सात साल पुराना वह किस्सा।

रामू प्रतिदिन लकड़ियाँ काटकर नंदूलाल लकड़हारा के पास दे आता था। गाँव से थोड़ी दूर जंगल था, जहाँ उसके साथ कई लकड़हारे जाते थे और जंगल से उन्हीं पेड़ों को काटकर ले आते जो बूढ़े हो जाते थे। नए या किसी बड़े पेड़ को काटने की इजाज़त नहीं थी। सरकार ने जंगलों में पेड़ों की कटाई पर सख्त कानून बनाए हैं। फ़ॉरेस्ट ऑफ़िसर की कड़ी नज़रों के सामने प्रतिदिन का ये कारोबार होता है। जहाँ–जहाँ ज़्यादा पेड़ काटे गए हैं, वहाँ–वहाँ नए–नए पौधों को लगवाया जाता है। सब जानते हैं फ़ॉरेस्ट ऑफ़िसर सूरजन सिंह जी प्रकृति के भक्त हैं। आस–पास के जितने गाँव के पास वाले जंगलों की हिफ़ाज़त का ज़िम्मा दिया गया है, सूरजन सिंह जी उन सभी इलाकों में प्रकृति भक्त के रूप में मशहूर हैं। सभी लकड़हारे उनसे संतुष्ट न होने पर भी उनकी इज़्ज़त करते हैं। इतनी सख्ती और प्रकृति की सम्पदा का ज्ञान देने पर भी जंगलों में चोरियाँ हो ही जाया करती थीं। इसीलिए वे गाँव के बच्चों एवं स्त्रियों को जागरूक कर रहे थे, जिसमें रामू और उसके साथी ज़ोर–शोर से हिस्सा लेते थे।

रामू एक साधारण लकड़हारा था। उसकी पत्नी बिन्दो (बिन्देश्वरी) और उसके चार बच्चे थे। दो बेटी लक्ष्मी और कामाख्या और दो बेटे बिरजू और भोला। माता–पिता प्यार से इन सभी को लाखी, कम्मो, बिरजूवा और सबसे छोटे को भोले बाबा बुलाते थे। रामू को अपनी बड़ी बेटी लाखी के विवाह की बड़ी चिन्ता थी। इस साल वह अठारह की हो चुकी थी और बारहवीं पास भी कर चुकी थी। घर की आर्थिक हालत के चलते वह आगे नहीं पढ़ सकती थी। फिर भी रामू यह चाहता था कि वह अपने जीवन में कुछ बन जाए या फिर कोई ऐसा लड़का मिल जाए, जो उसका जीवन सँवार दे। लेकिन ऐसे पढ़े–लिखे लड़के कहाँ मिलते हैं आजकल? और मिलते भी हैं तो लाखों का दहेज मांगते हैं। रामू कर्ज़ नहीं लेना चाहता है, पर इतने पैसे जुगाड़ करते–करते लाखी की उम्र बढ़ती जाएगी। घर बैठाकर इतने समय तक रखना उसके लिए छुपा हुआ धन खुले में रख देने

के बराबर था। गाँव का एक छटा हुआ बदमाश बाँके लाखी पर नज़र टिकाए हुए था। बड़ी मुश्किल से रामू को शहर के एक स्कूल के मास्टर का रिश्ता मिला। लड़के वाले दहेज नहीं माँगते थे। बस लड़की अच्छी हो और शादी धूमधाम से हो। लड़का मास्टर था अतः आधुनिक खयाल का था। रामू को जैसे स्वर्ग मिल गया। लेकिन यहाँ भी पैसे की बात थी। दहेज न सही लेकिन शादी के और खर्च भी थे, गहने, बारातियों की आवभगत, लड़के के लिए शगुन का सामान इत्यादि। ले देकर पाँच लाख का खर्चा होता है। रामू अभी यह रिश्ता चाहकर भी नहीं छोड़ सकता था, क्योंकि ऐसा उसके जीवन में पहला मौका था, जहाँ बिना दहेज के शादी हो रही थी। वरना गाँव में कितनी ही शादी ऐसी उसने देखी जहाँ पर रीति से, रस्म से पहले दहेज की रकम बढ़ती ही जाती है। जो दे सकते थे उन लोगों ने दिया, जो नहीं दे पाए बारात उनके घर पड़ी हुई है। रामू जानता था कि लड़के के परिवार वाले अच्छे लोग हैं। लड़के के माता–पिता पढ़े–लिखे हैं और पिता एक समाज सेवी संस्था से जुड़े हुए हैं। कभी लकड़ी का कारोबार वे भी करते थे, लेकिन मुनाफ़ा ज़्यादा न हुआ। बाद में शहर जाकर बसे, वहीं उनकी मुलाकात महावीर जी के साथ होती है, जो समाज सेवी संस्था चलाते थे। रामू के लिए ये बहुत खुशी की भी बात थी और चिंता की भी। अतः रामू ऑफ़िसर सूरजन सिंह जी के पास गया और बेटी के विवाह के लिए कर्ज़ माँगने लगा। सूरजन सिंह जी ने सारी बातें समझकर उससे कहा–

"देख रामू पैसे तो मैं तुझे दिलवा दूँगा, लेकिन वक्त पर तू यदि लौटा नहीं पाया, तो फिर क्या करेगा।"

"मालिक मैंने सोचा है कि अपनी पुश्तैनी ज़मीन का कुछ हिस्सा बेच दूँगा और घर को भी गिरवी रखूँगा। बाकी आप दे दो मालिक।"

"अरे मूर्ख दो–दो जगह से कर्ज़ क्यों लेगा?""घर क्या तू गाँव के उस पाटिल के पास रखेगा? तू जानता नहीं कि एक बार उसके कर्ज़ के शिकंजे में जो फँसा, वह फँसा ही रह जाता है।"

"मालिक। तो क्या करें हम? कुछ समझ में नहीं आता।"

"एक काम कर तू बैंक से लोन ले ले। गैरेन्टी पर मैं दस्तखत कर दूँगा।"

"मालिक बहुत मेहरबानी होगी।"

किसी प्रकार रामू को कर्ज़ मिल जाता है और लाखी की शादी का दिन तय हो जाता है। बारात आ चुकी है.....

"अरे! द्वार पर कोई जाओ रे, जँवाई जी खड़े हैं। आरती उतारो"

"अरे लाखी की माँ, आरती की थाली सजी नहीं अब तक?"

"अजी आती हूँ, आती हूँ।"

"चलो चलो। लाखी के दूल्हे को देखकर आते हैं।"

"ऐ लाखी। तेरा दूल्हा तो बड़ा बांका है रे।"

"क्यों नहीं। सहरी जो ठहरे। सुना है लकड़ियों के कारोबार में चाचा जी का काफ़ी मुनाफ़ा न हुआ था। सो शहर जाकर बस गए। वहाँ रहकर फिर से छोटी–मोटी–सी लकड़ी बेचने की दुकान डाली सो जम गयी और अब काफ़ी आमदनी होती है"

"हमरी लाखी राज करेगी ससुराल में"

"अरे राम नारायण जी। इधर आइए, इधर आइए।"

"समधी जी। किसी चीज़ की ज़रूरत थी का? हमने आप की माँग का पूरा खयाल रखते हुए सारा इंतज़ाम किया है। फिर भी कौनो चीज़ की कमी हो तो हमका कहिए।"

"अरे नहीं–नहीं। इ बात नहीं है। हम तो आपको कुछ लोगों से मिलवाने वाले थे। ये रहे प्रताप सिंह जी हमारे पड़ोसी, लकड़ी का कारोबार भी करते हैं, हम इन्हीं के साथ ही दुकान लगाते हैं। ये है महावीर जी। समाज सेवी हैं। इनकी संस्था से ही हमारा उद्धार हुआ है।"

"अरे दुल्हन को ले आइए, मोहरत हो गया है।"

"हाँ..हाँ... आओ आओ।"

शहनाई की गूंज, लोगों के हँसी–मज़ाक और शोर में शादी का काम निपटा। दुल्हन अगले दिन सबको आँसुओं के सागर में डूबो ससुराल को विदा हो गयी।

"लाखी ससुराल चली गयी है। भगवान उसको सुखी रखे यही कामना है मेरी।"

"जी मालिक"...

"बहुत अच्छे भाग लेकर आयी है तेरी छोकरी, देखना ससुराल वाले भी उसके भाग को सराहेंगे।"

"जी मालिक। बस अब यही खुशी को देख–देख हम अपना सारा कर्ज़ा उतारेंगे।"

"अरे हाँ रामू। तूने तो बताया नहीं कि क्या करेगा, कैसे उतारेगा।"

"मालिक हम सोच रहे थे कि लकड़ियों का एक बार अच्छा मुनाफ़ा मिल जाए तो"

"अरे रामू तू जानता है न कि ये मुमकिन नहीं, सरकार का दबाव इतना है कि हर दिन 10 टन से ज़्यादा आधा तो नंदूलाल ही ले जाता है। ऐसा करते–करते कई साल लग जाएँगे।"

"मालिक तो फिर आप बताइए हम का करें।"

"मेरे खयाल से लकड़ियों से ज़्यादा फ़ायदा कोयला बेचने में है। अभी सर्दियों के मौसम में पहाड़ी प्रदेशों और आस–पास के ज़िलों में कोयले की खपत ज़्यादा होगी। जो तू ज़रा से लकड़ियों से चिल्लड़ कमाता है वही ज़रा–सा कोयला बहुत मुनाफ़ा दिलाएगा। फिर गाँव के दक्खिवामाई के इलाके में बहुत कोयला मिलता है। मैं सारा इन्तज़ाम करवा दूँगा।"

"ना–ना मालिक दक्खिवामाई के इलाके में हमको ना भेजिए। आप तो जानते ही हो वहाँ कितना खतरा है। साथ ही लाखन लुटेरे का इलाका है, वह हमको बिना दाम के नहीं छोड़ेगा।"

रामू के गाँव में दक्खिवामाई और लाखन लुटेरा काफ़ी मशहूर थे। दक्खिवामाई सदियों से अपनी कोपाग्नि को भस्म करने की वजह से मशहूर थी और लाखन गाँव का मशहूर छटा हुआ बदमाश खूनी लुटेरा था। पुलिस उसे पकड़ना चाहती थी, लेकिन दक्खिवामाई के घने जंगल में वह जा छुपा था। उसे पकड़ने के लिए पुलिस की एक टुकड़ी वहाँ गयी भी थी, लेकिन उस घने जंगल ने उन्हें निगल लिया था। मगर रामू को वहाँ जाना ही था क्योंकि उसे अपना कर्ज़ा चुकाना था। वह वहाँ जाना न चाहता था, मगर कर्ज़ के राक्षस के भय ने उसे मजबूर कर दिया। रामू जैसे–तैसे खुद को तैयार कर वहाँ जाने लगा। उसकी पत्नी बिन्दो उसे रोक रही थी, अपनी सुहाग की दुहाई दे रही थी। रामू ने भी दिलासा दिया कि वह ज़्यादा दूर नहीं जाएगा।

घने जंगल में रामू डरा सहमा–सा चला जा रहा है। दक्खिवामाई को मन–ही–मन याद करके, विनती करते कृपा रखने को कहते हुए चला जा रहा था। सहसा उसे लगा जैसे कोई उसका पीछा कर रहा है। मुड़कर वह देखता है, तो कोई दिखायी नहीं देता। रामू जैसे–तैसे कोयले की घाटी के करीब पहुँचा कि तभी उसे किसी भारी भरकम शरीर ने जकड़ लिया। वह और कोई नहीं लाखन था।

"लाखन भैया, लाखन भैया... हमका छोड़ दो, छोड़ दो"

"छोड़ दे तुमको मरदूत, पुलिस का आदमी बनकर आया है साला"

"हम पुलिस वाले की तरफ़ से नहीं आए हैं। हमरी बात तो सुनो लाखन"

"आ...आ..आ...."

लाखन से रामू कुछ कह पाता, इससे पहले लाखन रामू पर ज़ोर–ज़ोर से घूसे जमाने लगा। कोयले के एक बड़े से टुकड़े से लाखन ने रामू को चित्त कर दिया। बाद में उसकी लाश को पीपल के पेड़ के नीचे लाकर आग लगा दी।

दूसरे दिन गाँव के लोगों को लगा कि रामू दक्खिवामाई के कोपाग्नि से मर गया। बिन्दो पछाड़ खा–खा कर पति के शव के पास रोने लगी। लाखी, कम्मो, बिरजूवा और भोला पिता से लिपटकर रोने लगे। कुछ लोगों को लाखन की करतूत पर संदेह होने लगा था, लेकिन कौन इस पचड़े में पड़े। सो चुपकी लगा गए। ऑफ़िसर सूरजन सिंह भी पछताने लगे कि क्यों

उसे दक्खिवामाई के जंगल जाने की बात सुझायी।

श्राद्ध के अगले दिन सूरजन सिंह बिन्दो से मिलने आया। सफ़ेद साड़ी, बिखरे बाल, ज़मीन पर बैठी वह उजड़े सुहाग के दर्द को आँसुओं से कम करने में लगी थी। सूरजन सिंह को उसके मुरझाए चेहरे और हालत को देखकर एक बार तरस आया पर उससे ज़्यादा उसे ये परेशानी थी कि रामू के कर्ज़ के लिए उसने गैरेंटी दी थी। अब बैंक वाले उसे परेशान करेंगे। पाँच लाख की रकम यूँ तो इतनी बड़ी न थी, पर फिर भी इतनी रकम कौन आजकल रखता है। कही लूट–खसूट हो जाए तो?

"बिन्दो। कैसी हो बहन?" बिन्दो आँसू भरे नेत्रों से देखने लगी और फिर फूट–फूटकर रोने लगी। सूरजन सिंह कुछ सकपकाया, कुछ असमंजस में पड़ा और धीरे–धीरे कहने लगा....

"बहन रोओ मत, जो तुम्हारे साथ हुआ है उसका दुख मुझे भी बहुत है। दरअसल मैं ही दोषी हूँ। रामू को कर्ज़ा दिलाते वक्त मैंने गैरेंटी पर दस्तखत किए थे। समय पर न चुकाने पर बैंक वाले तुम्हारे घर के साथ–साथ मुझपर भी जुर्माना लगा देते। इसीलिए मैंने उसे वहाँ जाने की सलाह दी थी। मुझे लगा गाँव वालों की बातें महज़ अफ़वाहें हैं। पर क्या मालूम था कि ये सब हो जाएगा।"

बिन्दो दुख में ये सारी बातें समझ नहीं पा रही थी। बस इतना ही समझ पायी कि सूरजन सिंह की सलाह पर रामू की यह दशा हुई। मारे क्रोध के वह सूरजन सिंह की ओर मुखातिब हो कोसने को उतर आयी। लेकिन तभी उसे अपनी बेबसी का एहसास हुआ। वह ऑफ़िसर सूरजन सिंह का कुछ नहीं कर सकती थी। वैसे भी उसका कोई दोष न था हादसे में। बल्कि उसके परिवार पर सूरजन सिंह ने बहुत उपकार किए थे। लाखी का ब्याह भी उन्होंने ही करवाया। वह हारकर अपने भाग्य को कोसने लगी। सूरजन सिंह उसकी मनोभावना समझ गए थे, लेकिन फिर भी वे कहने लगे...

"देखो बिन्दो। मुझे कोई हर्ज़ न होगा पाँच लाख दे देने में। लेकिन तुम जानती हो कि इतनी रकम आजकल कोई जेब में लेकर नहीं चलता। फिर मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास अब कुछ न बचा है। पुश्तों की ज़मीन बिक गयी है और ये घर रामू ने मुझे गैरेंटी के लिए गिरवी रखवाया था। अब अगर तू बैंक का कर्ज़ा नहीं उतार पायी तो हो सकता है वे तुझपर जुर्माना डाल दें या ये घर ही हड़प ले या फिर मुझे जेल ले जाए तो क्या करेगी? कुछ सोचा है।" बिन्दो जानती थी कि बैंक का कर्ज़ा ज़मीनदारों के कर्ज़े जैसा खतरनाक होता है। वही उसे कानून का कुछ पता न था। उसपर से ये सब सुन वह घबरा गयी। सूरजन सिंह ने जो कहा सब सच था। वह सोच ही रही थी कि सूरजन की आवाज़ कानों में पड़ी...

"तेरे परिवार के लिए जितना किया, क्या बदले में मुझे जेल जाने देगी।"

सच ही बिन्दो असमंजस में पड़ गयी। उसने कहा –"पर मालिक अब क्या कर सकते हैं, मुझे तो कुछ भी पता नहीं।"

"तुझे ज़्यादा कुछ नहीं करना है। ये घर मेरे पास रेहन रख गया था रामू। तू बस इन कागज़ात पर दस्तखत कर दे। मैं बाकी सब सम्हाल लूँगा।" सूरजन सिंह कुछ कागज़ अपने साथ लाया था, जिसपर वह बिन्दो, जो सिर्फ़ दस्तखत करना सीखी थी, के दस्तखत लेता है।

"देख तू अपने बच्चों को लेकर इसी घर में रह। यह तेरा ही घर है। बस दुनिया के वास्ते अब इसे मेरा कह दिया करना।"

बिन्दो अगली सुबह अपने बच्चों समेत और कुछ सामान लेकर अनजान दिशा की ओर निकल पड़ी। उसके स्वाभिमान को यह स्वीकार न था कि वह किसी पराए के घर आश्रिता बनकर रहे। अपने बच्चों को भी वह यही शिक्षा देती थी। उसने तयकर लिया कि कहीं उसे मज़दूरी करने को मिल जाए, तो वह अपना और बच्चों का पेट पाल लेगी।

madhuchanda.chakrabarty

मूक प्रेम

– निशा नंदिनी गुप्त
असम, भारत

आज लगभग एक साल हो गया उसको देखते हुए, वह प्रतिदिन प्रातःकाल ठीक आठ चालीस पर उसके घर के सामने से गुज़रता था, कुछ देर रुकता, उसे देखता, फिर लाठी ठक–ठकाता हुआ चल देता। कौन कहता है बुढ़ापे में भावनाएँ मर जाती हैं। मेरे साथ वाले घर में एक यही कोई सत्तर–पचहत्तर साल की एक बूढ़ी माँ अकेली रहती थी। पति की मृत्यु हो चुकी थी। बेटा विदेश में अपने परिवार के साथ रहता था। एक बेटी है, जो अपने परिवार के साथ मैसूर में रहती है। उसका पति किसी अच्छी कंपनी में इंजिनियर था। साल में एक बार बच्चों की गर्मियों की छुट्टियाँ होने पर वह माँ के पास आती थी। उसके पिता श्री बसंत देव चौधरी सरकारी नौकरी में थे, इसलिए श्रीमती चौधरी को अच्छी खासी पेंशन मिलती थी। घर अपना है, किसी तरह की कोई तकलीफ़ नहीं है, पर अकेलापन बहुत खलता है। बेटा तो तीन चार साल में एक बार आता है। चार साल पहले पिता की मृत्यु पर आया था। बेटी चाहकर भी नहीं आ पाती है। बच्चों की पढ़ाई और फिर बूढ़े सास–ससुर को अकेले छोड़ने का प्रश्न आ जाता है। सास–ससुर के रहते वह अपनी माँ को भी अपने घर नहीं बुला सकती है। बस हर दिन फ़ोन करके उनका हाल–चाल पूछ लेती है। श्रीमती प्रेमा चौधरी शुरू से ही एक सीधी–सादी गृहणी रही है। बच्चों व पति की सेवा को ही उन्होंने अपना सच्चा धर्म बनाया था। वह कभी बाज़ार तक भी अकेली नहीं गई थी। पति की मृत्यु के बाद बेटी ने उन्हें पेंशन का कार्यालय दिखाकर वहाँ के लोगों से परिचित करवा दिया था। प्रत्येक महीने दो तारीख को पेंशन कार्यालय आकर अपनी पेंशन ले जाती थी। उनके घर से बाहर निकलते ही बाज़ार है, घर का राशन आदि भी फ़ोन करने पर दुकानदार लड़के द्वारा घर पर ही पहुँचा देता था। डॉक्टर भी घर पर आकर ही उनका प्रेशर व शुगर चैक कर लेता था। श्रीमती चौधरी को बहुत हाई शुगर थी और प्रेशर भी हाई रहता था। बेटी को माँ की बहुत चिंता रहती थी, पर ससुराल में होने के कारण उसके हाथ बंधे थे। एक दिन श्रीमती चौधरी अपनी पेंशन लेकर वापस घर आ रही थी। कार्यालय अधिक दूर नहीं था, इसलिए वह हमेशा पैदल ही जाती थी। जब पेंशन लेकर आ रही थी तभी प्रेशर अधिक होने के कारण वह चक्कर खाकर सड़क पर गिर गई। उस समय उन्हें किसी ने भी नहीं उठाया। उन्हीं की उम्र का एक बूढ़ा व्यक्ति भी रास्ते से जा रहा था, उसने देखते ही समझ लिया कि उनका प्रेशर हाई हुआ है, क्योंकि उनका भी प्रेशर हाई रहता था, इसलिए वह हमेशा अपनी जेब में दवाई रखते थे। उन्होंने शीघ्र ही वह दवाई श्रीमती चौधरी को खिला दी। थोड़ी देर बाद वह सामान्य हो गई। तब उसने उन्हें उनके घर तक छोड़ दिया। बाद में पता चला कि उस बूढ़े व्यक्ति का नाम कमल बोस था। वे गोविंद कॉलोनी में एक कमरे के किराये के मकान में रहते थे। वह भी बिल्कुल अकेले। एक दस बारह साल का लड़का उनके साथ रहता है, दोनों एक–दूसरे का सहारा थे। वह लड़का भी उनको सड़क पर घायल अवस्था में मिला था। वह अनाथ था। कमल बोस उसको अपने घर ले आए, उसकी देखभाल की और उसको अपने घर पर ही रख लिया। कमल बोस जी क्लर्क की पोस्ट से रिटायर हुए थे। उन्होंने शादी नहीं की थी। जवानी अकेले ही मित्रों के साथ बिता दी। अब कुछ मित्र तो बुढ़ापे में अपने बच्चों के पास रहने चले गए और कुछ इस दुनिया को छोड़कर ही चले गए। इसलिए बोस जी अपना जीवन अकेले ही काट रहे हैं, लेकिन इस बच्चे को लाने के बाद वे बहुत खुश थे। उन्होंने उसका नाम जीवन रखा था। क्योंकि उसके आने के बाद उन्हें एक नया जीवन मिल गया था। उम्र के इस पड़ाव में भी वे साइकिल चलाकर बच्चों को ट्यूशन

पढ़ाने जाते थे। इससे ही उनकी जीविका चलती थी। जीवन बेटे को भी उन्होंने पढ़ना–लिखना सिखा दिया था। उस दिन भी वे ट्यूशन पढ़ाकर ही साइकिल से घर जा रहे थे, जब उन्हें श्रीमती प्रेमा चौधरी सड़क पर गिरी पड़ी दिखाई दी थी। वे साइकिल पकड़े पैदल चल रहे थे और प्रेमा जी भी उनके साथ धीरे–धीरे पैदल चल रही थी। दोनों ने कोई बात नहीं की। प्रेमा जी का घर आ गया। उन्होंने सिर झुकाकर कमल जी को धन्यवाद दिया। एक बार दोनों की आँखें मिलीं। कमल बोस जी ने प्रेमा जी से उनके परिवार के बारे में कुछ नहीं पूछा, बस इतना कहा –"आप अपना ध्यान रखिएगा।" और साइकिल में बैठकर अपने घर की तरफ़ चल दिए।

पर कमल बोस आज अपने अंदर कुछ बदलाव महसूस कर रहे थे। उन्होंने इस विषय में किसी से कुछ नहीं कहा। रात हो चुकी थी। जीवन सो चुका था, पर कमल बोस की आँखों में नींद न थी। बार–बार प्रेमा का मासूम और बेबस चेहरा दिखाई दे रहा था। "वह कैसी होगी? उसने दवाई ली कि नहीं? उसके परिवार में कौन–कौन है? उसके परिवार वाले उसका ध्यान तो रखते होंगे।" ऐसे ही हज़ारों सवाल उनके दिमाग में आ जा रहे थे। इसी ऊहापोह में सुबह हो गई। जीवन ने उठकर चाय बना दी और उन्हें उठाया "काका चाय।"

कमल बोस जी ने जैसे किसी गहरे चिंतन से बाहर आते हुए कहा "अरे जीवन तुमने चाय बना ली? कितने बज गए?"

"काका आठ बज चुके हैं। आपको तो ट्यूशन पर जाना है।"

"हाँ बेटा आज देर हो गई बहुत समय बाद ऐसी नींद आई है। मैं अभी तैयार हो जाता हूँ।"

आज तो वह इतनी जल्दी–जल्दी नित्य के कार्य कर रहे थे, जैसे उनके पंख लग गए हों। प्रेमा को एक नज़र देखने की इच्छा थी। उधर प्रेमा जी में भी एक अजीब–सा परिवर्तन आ गया था। वह भी समय पर दवाई लेकर जल्दी ठीक होना चाहती थी। वह भी रात भर उस अजनबी के बारे में सोचती रही। "वह कहाँ रहता है? उसके परिवार में कौन–कौन है? कितना अच्छा और भला व्यक्ति है। मैंने तो उसका नाम तक नहीं पूछा, ठिकाना भी नहीं पूछा। उसके हाथों के स्पर्श में कितना अपनापन था, कितने प्यार से मुझे दवाई खिलाई थी। उम्र में मुझसे बड़ा ही लगता था। फिर भी पूर्ण स्वस्थ लग रहा था।" इसी प्रकार के हज़ारों प्रश्न उनके मन में आ–जा रहे थे। दूसरे दिन श्रीमती प्रेमा चौधरी बहुत जल्दी उठी और दैनिक कार्य करने के बाद अपने घर के अंदर चक्कर काटने लगी। मन में बहुत बेचैनी हो रही थी। उधर मिस्टर कमल बोस भी जल्दी–जल्दी तैयार होकर साइकिल उठाकर चल दिए। आज उनकी साइकिल ने रास्ता बदल लिया। वह प्रेमा जी के घर की तरफ़ से जा रहे थे, जबकि यह रास्ता प्रकाश बाज़ार तक जाने के लिए बहुत लम्बा पड़ता था।

आज वह साइकिल को चला नहीं रहे थे, बल्कि उड़ा रहे थे। चार किलोमीटर का सफ़र साइकिल से करने के बाद प्रेमा चौधरी का घर आ गया। उन्होंने दूर से देखा प्रेमा जी घर के बाहर खड़ी थी। अब उन्होंने साइकिल की गति बिल्कुल कम कर दी। उनको एक बार आँख उठाकर देखा, प्रेमा जी ने भी एक बार आँखें ऊपर कीं, साइकिल पर बैठे–बैठे ही दूर से दोनों की नज़रें मिलीं। कमल बोस प्रसन्न मुद्रा में अपने गंतव्य की ओर चल दिए। प्रेमा जी भी घर के अंदर आकर प्रसन्नता के साथ अपने घरेलू कामों में लग गई।

आज दोनों ही बहुत खुश थे, दोनों ही आज बहुत स्वस्थ महसूस कर रहे थे। दोनों को ही आज प्रेम और अपनेपन का जादू दिखाई दे रहा था।

अब तो यह रोज़ का सिलसिला हो गया था। सुबह ठीक आठ चालीस पर कमल बोस प्रेमाजी के घर के आगे साइकिल पर धीमी गति में दिखाई देते, प्रेमा जी भी ठीक समय पर प्रातः भ्रमण के बहाने से घर के बाहर दिखाई देती, दोनों एक मूक प्रेम का संदेश एक दूसरे तक पहुँचा देते थे, तत्पश्चात् अपनी–अपनी दिशा में चल देते। मैं इस मूक प्रेम की एक साल तक प्रत्यक्ष द्रष्टा थी। दोनों को इस तरह मूक होकर मिलते देखकर

मुझे बहुत सुकून मिलता था। मुझे किसी परिचित से पता चला कि कमल बोस अपने घर पर गिर गए थे। पैर में काफ़ी चोट लगी थी। डॉक्टर ने साइकिल चलाने के लिए मना किया है और अब वह अस्सी के आस–पास होने के कारण काफ़ी कमज़ोर भी हो गए थे। लेकिन बिना नागा लाठी ठकमकाते हुए प्रेमा जी के घर के सामने से ज़रूर निकलते थे। उनको लाठी पकड़कर धीरे–धीरे चलता देख प्रेमा जी को बहुत दुख होता था। वह प्रतिदिन लगभग एक घंटा पैदल लाठी के सहारे उधर से जाते थे जबकि उनके ट्यूशन का रास्ता उनके घर से बीस मिनट का था। वह दिन–पर–दिन कमज़ोर हो रहे थे।

एक दिन वह जब प्रेमा के घर के सामने से गुज़रे, तो प्रेमा दिखाई नहीं दी। सिर्फ़ घर के आगे काफ़ी भीड़ दिखी। अनहोनी की शंका से वह बेचैन होने लगे। घर का कोई सदस्य बीमार तो नहीं है। यह सोचकर वह पहली बार घर के दरवाज़े तक चल दिए। लोगों से पूछने पर पता चला कि इस घर में एक बुढ़िया अकेली रहती थी। कल रात चल बसी, यह सुनते ही कमल बोस के तो मानो होश ही उड़ गए। वह वहीं ज़मीन पर बैठ गए। कुछ देर बाद अपने आप को संभालते हुए उन्होंने लोगों से प्रेमा जी के परिवार के बारे में पूछा तो लोगों ने बताया बेटा तो विदेश में है। उसको आने में चार दिन लगेंगे और बेटी को भी मैसूर से आने में दो दिन लग जाएँगे, क्योंकि कनेक्टिंग फ़्लाइट नहीं है। "तो बच्चों ने क्या कहा? क्या इनको तीन दिन तक रखना है?" मिस्टर शर्मा जी ने कहा बेटे से तो बात नहीं हुई और बेटी कोई निर्णय नहीं ले पा रही है, क्योंकि तीन दिन तक कौन देखेगा? अगर क्रियाकर्म करते हैं तो कौन करेगा?" कमल बोस ने कहा "शर्मा जी एक बार बेटी से मेरी बात करवा दीजिए।" शर्मा जी ने फ़ोन लगा दिया। कमल बोस ने कहा "बेटा हमें बहुत दुख है कि तुम्हारी माँ हम सबको छोड़ कर बिना कुछ कहे चली गई। अगर तुम कहो तो हम उनका दाह–संस्कार कर दें। तीन दिन तक देह रखना उचित नहीं है।" बेटी ने रोते हुए कहा "अंकल मैं अपनी माँ के अंतिम दर्शन भी नहीं कर सकूँगी। पर आप ठीक कह रहे हैं। आप जैसा उचित समझे करें।" फ़ोन रखकर कमल बोस ने शीघ्र ही दाह–संस्कार की तैयारी शुरू कर दी। अभी तक उन्होंने प्रेमा की मृत देह को नहीं देखा था। कमरे के अंदर जाकर, जैसे ही उन्होंने प्रेमा को देखा तो अपने आप को रोक न सके, बच्चों की तरह ज़ोर–ज़ोर से रोने लगे। सभी लोग उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे। कोई आगे आकर हाथ नहीं लगा रहा था। कमल बोस ने उन्हें अपने हाथों से सजाया। फूल माला चढ़ाई। पास पड़ोस के और तीन लोगों ने कंधा दिया और चल दिये, शमशान घाट पहुँचने के बाद मुखाग्नि की बात खड़ी हुई तो कमल जी ने कहा "आप सब निश्चिंत रहें, इनका सब काम मैं करूँगा।" इस अस्सी साल की उम्र में भी वह इतनी दूर कंधा दे कर ले गए थे।

और उनका सब काम किया। तीसरे दिन बेटी और पाँचवें दिन बेटा भी आ गया था। कमल बोस ने बच्चों के साथ मिलकर उनका तेरहवीं का काम भी किया। उसके बाद बच्चे उनका घर आदि बेचकर अपनी–अपनी जगह चले गए। उसको बिल्डर्स ने खरीद लिया था। वह वहाँ एक मल्टीस्टोरी बिल्डिंग बनाना चाहते थे। इसलिए उसने घर को तोड़ना शुरू कर दिया। कमल बोस अब भी हर रोज़ वहाँ आकर खड़े होते थे और घंटों उस घर को एकटक निहारा करते थे। जब बिल्डर ने घर तोड़ना शुरू किया, तब उनसे देखा न गया। उनको प्रेमा की चीख सुनाई दे रही थी। वह वही लड़खड़ाकर गिर गए और फिर कभी नहीं उठे।

कौन कहता है बुढ़ापे में प्रेम नहीं होता? बल्कि सच तो यह है कि वासना रहित सच्चा और मूक प्रेम बुढ़ापे में ही होता है।

nishaguptavkv@gmail.com

बंजारन

— डॉ. रीतामणि वैश्य
गुवाहाटी, भारत

ढोलक की ढम–ढम आवाज़ से लाजो के दिल की धड़कन तेज़ होने लगी। उसके सीने में दर्द–सा होने लगा। यह आवाज़ मानो उसके संसार के लिए खतरे की घंटी बनती जा रही है। कुछ दिन हुए चौराहे के पास के मैदान में बंजारे की एक छोटी–सी टोली आकर जमी है। पहले तो इलाके में इन लोगों की उपस्थिति लाजो को अच्छी लगी थी। पहली बार उसने बंजारे देखे थे। ये लोग कोई–न–कोई करतब दिखाकर लोगों को खुश करते और उनसे पैसा माँगते हैं। पहले दिन इनकी कलाबाज़ी से लोग हैरान रह गए थे। उनके बच्चों के करतब दिल दहलाने वाले हैं। चौराहे के इस पार लाजो की छोटी–सी दुकान है, जो उसकी छोटी–सी दुनिया का आधार है। ताम्बूल, पान, पान मसाला, चॉकलेट आदि कुछ छोटी–मोटी चीज़ों को वह एक तीन टांगोंवाली मेज़ पर रखती है और ईंट के टुकड़ों के सहारे उसकी चौथी टांग टिकाती है। दुकान में पहले उसका पति बैठता था। पर उसमें दुकानदारी से अपना परिवार पालने लायक समझ न होने के कारण लाजो को दुकान की बागडोर संभालनी पड़ी। जब से लाजो दुकान में बैठी, वही दुकान अच्छी ख़ासी कमाई देने लगी। लड़के, जवान, बूढ़े, दुकानदार व्यापारी, रिक्शावाले, ठेलावाले–सब उसकी दुकान के ताम्बूल–पान से धन्य होते हैं। ताम्बूल के साथ–साथ वे लाजो के लाज भरे चेहरे की भी ख़रीदारी करना चाहते हैं। इस दौड़ में पास के थाने का हवलदार सबसे आगे है। पुलिसी तेवर के सामने पंक्ति के बाकी लोग उससे पीछे छूट जाते। दिन में कई बार वह लाजो की दुकान से पान खाने आता। वह पाँच रुपये के पान के लिए दस रुपये का चमचमाता नोट उसकी तरफ़ आगे बढ़ा देता है। लाजो बाकी पाँच रुपये लौटाने उसकी ओर हाथ बढ़ाती, तो वह उसका सुंदर जवान हाथ पकड़ के कहता है–

"प्यार से दी हुई चीज़ वापस नहीं करते। रख ले। बच्ची को दूध पिला देना।"

"उससे तुझे क्या मिलेगा?" लाजो कड़े स्वर में कहती।

"देखता हूँ, कब तक नहीं मिलता है।" पुलिस बाबू लाजो के मामले में ठंडे दिमाग से काम लेता है।

"यहाँ सिर्फ़ सामान मिलता है।"लाजो अपनी बात दोहराती है।

"तेरी इसी अकड़ पे तो जान छिड़कता हूँ।" हवलदार का दिल मचलने लगता है।

"ऊपर से गिरा और खजूर पर लटका, यह बात तूने सुनी ही होगी?" जाते हुए हवलदार को लाजो पीछे से सुनाती।

लाजो स्वाभिमानी औरत है। उसने दसवीं तक पढ़ाई भी की है। बाप की गरीबी के कारण उसे महेंद्र से शादी करनी पड़ी। ऐसे महेंद्र में लाजो को पाने लायक कोई गुण नहीं था, सिवाय इसके कि वह पुरुष है। महेंद्र लाजो के बाप से भी बहुत गरीब है। उम्र में भी लाजो से काफ़ी बड़ा महेंद्र एक चिपटे शरीर का मालिक है। काम करने का कोई ढंग उसे नहीं आता। मौका मिले तो शराब, भांग का नशा भी कर जाता। पर उसकी सूखी हड्डियों में ताकत है। इसी से लाजो के बाप को अपनी सुंदर बेटी की रक्षा कर पाने का विश्वास था। जिसके पास रुपयों की ताकत नहीं होती, उनको तन की ताकत से सहारा मिलता है। लाजो की शादी से उसके बाप की बेटी को ब्याहने की समस्या का हल हो गया, पर गरीबी की समस्या विकट रूप में लाजो की ज़िंदगी में पलथी मारकर बैठ गयी। लाजो हवलदार को खरी–खोटी तो सुना देती, पर वह उसके दिये पैसों का मोह छोड़ नहीं पाती। गरीब के लिए एक–एक रुपया मायने रखता है। हाथ को हवलदार की पकड़ से छुड़ाकर लाजो रुपये को टीन के चौकोने डिब्बे में रखती है। हवलदार

चुपचाप खिसकता है। लाजो की ओर से मिलने वाली उपेक्षा के बावजूद वह उम्मीद नहीं छोड़ता और मौका मिलते ही लाजो की दुकान का चक्कर काटता है। उसी की कृपा से लाजो ने चौराहे की बड़ी सड़क के पास दुकान लगायी है। वहाँ दुकान लगाने से यात्रियों और बटोहियों को असुविधा होती है। पर इससे लाजो को क्या, उसकी बिक्री अच्छी होती है, उसका संसार चलता रहता है । अब उसकी दो साल की बच्ची को संभालने की ज़िम्मेदारी महेंद्र पर आ गयी। पर बच्चे को संभाल पाना बाप के वश की बात नहीं होती। दिन भर वह रोती रहती है। जब से बंजारे की टोली आई है, उसके करतब देखकर दिन में बच्ची माँ को भूलने लगी है।

पहले दिन जब बंजारन ने ढम–ढम की आवाज़ से कुछ नया करने का संकेत दिया, एकाएक बहुत लोग इकट्ठे हो गए। टोली एक परिवार की है। एक मर्द, एक औरत और उनके दो बच्चे। सिर पर पगड़ी, कमीज़ और धोती पहने मर्द के हाथ में नारमुखी कड़ा, कानों में मुरकिया व झेले हैं। औरत ने बालों की फलियाँ गूँथकर उन्हें धागों में पिरोकर चोटी से बांध रखा है। उसके गले में दोहड़ा है। उसने हाथों में चूड़ा, नाक में नथ, कान में चांदी के ओगन्या, गले में खंगाला, पैरों में कड़ियाँ, नेबरियाँ, लगंड, उंगलियों में बिछिया, अंगूठे में गुछला, कमर पर करधनी, हाथों में बाजूबंद, उंगलियों में अंगूठा पहने हैं। करतब शुरू होते ही नौ–दस साल की एक लड़की हाथों में लंबी लाठी पकड़े आठ–दस फ़ीट की ऊंचाई पर खींची एक रस्सी पर चलने लगती है। औरत ढोलक बजाती जा रही है, मर्द ज़ोरों से चिल्ला रहा है–"मुन्नी नाचेगी" और लड़की भी बाप के साथ–साथ "नाचेगी" कहती है और लटकती रस्सी पर चलती हुई नाचने की चेष्टा करती है। इसी तरह बाप "मुन्नी चलेगी", "मुन्नी करतब दिखाएगी" आदि कहता है और बेटी बाप की बातों को दोहराती हुई उनका अनुकरण करती है। रस्सी पर चलती हुई लड़की के अद्‌भुत संतुलन से लोग दंग रह गए थे। इसी बीच बाप दो साल के छोटे बच्चे को झूले पर चढ़ाकर ज़ोरों से उसे झुलाने लगा। अचानक अपने पर किए गए इस प्रयोग से बच्चा गला फाड़कर रोता है। लाजो का कलेजा फटने को होता है। वह औरत के पास जाकर कहती है–

"कैसी माँ है तू? बच्चा डर रहा है। उसे रोक।"

मर्द को करतब में बाधा का अंदाज़ा होता है और वह बच्चे को उसी जोश से झुलाता हुआ चिल्लाता है– "बहुत खूब बसंती, बजाती चल।"

करतब खत्म होने पर बंजारे ने जमी भीड़ के सामने एक गमछा बिछा दिया। कुछ लोग अपनी–अपनी जेबों को सुरक्षित रख तटस्थ भाव से वहाँ से विदा हुए, तो कुछ लोगों ने उसमें कुछ पैसे फेंके। इससे एक छोटी–सी रकम जुड़ गयी। बंजारा पैसे बटोरने में लग गया और बंजारन सामान बटोरने में। लौटती हुई लाजो को बंजारन ने कहा –

"माँ हूँ, भूखे बच्चों का बिलखना नहीं सह पाती।"

"बच्चों को खतरे से लड़ाना कोई बात होती है?"

"जीने के लिए सब कुछ जायज़ है।"

"गिरकर मर जायें तो?"

"हम जी कहाँ रहे हैं?" कहकर बंजारन ने कुछ क्षणों के लिए चुप्पी साध ली। लाजो चलने लगी तो वह फिर बोली– "हमारी दुनिया इसी झूले की तरह है। इसी रस्सी पर वह टिकी हुई है। जो गिर गया, सो मर गया।" लाजो को बंजारन की ऊट–पटांग बातें समझ नहीं आतीं। वह चली आती है।

बसंती जवान औरत है। देखने में काली, पर सुंदर। कुछ ही समय में वह लाजो के ग्राहकों के आकर्षण का केंद्र बनने में सक्षम हुई। पहले बंजारे दिन में एक बार शाम के समय करतब दिखाते थे। पर वक्त–बेवक्त उनके डेरे के पास जमी भीड़ का फ़ायदा उठाने के लिए उन लोगों ने दिन में पहले दो बार और फिर तीन बार तक करतब दिखाना शुरू किया। बंजारन दर्शकों को पान–ताम्बूल का जुगार देने लगी। उसकी फलती–फूलती निपुण जवानी के मोहजाल में फँसता हुआ वहाँ हवलदार का आना–जाना शुरू हो गया। इधर लाजो की दुकान की चीज़ें सुबह से शाम तक ग्राहक के इंतज़ार में पड़ी रह जातीं। लाजो और बसंती

की दुकानों में एक जैसी चीज़ें बिकती हैं। पर दुकानों की मालकिनों की प्रवृत्ति में अंतर है। एक तीखी है, तो दूसरी मीठी। लाजो अपने इलाके में है, तो वह अपने स्वभाव के अनुकूल चलती है; जबकि बसंती दूर देश से आई है, तो उसे यहाँ के लोगों की मर्ज़ी का खयाल रखना पड़ता है। बसंती के हँसते–खिलते बोल की परिणति यह हुई कि लाजो की दुकान बंद करने की नौबत आई और बसंती करतब की अपेक्षा दुकान से ज़्यादा कमाने लगी। कई दिनों से लाजो के परिवार को दो वक्त की रोटी ठीक से नसीब नहीं हुई। वह सूखती जा रही है। पानी भला कितने दिनों तक भूख मिटा सकता है? उसके पति के लिए भूखी बच्ची को संभालना मुश्किल हो गया ।

दुकान में बैठी लाजो की आँखों के सामने ढोलक की तरह बंजारे का झूलता झूला और संतुलन रखने में लगी बंजारन घूमते रहते। उसका दिमाग गुस्से से पागल–सा हो जाता। वह सारा दिन इस समस्या का हल ढूँढती, पर उसे कोई उपाय नहीं सूझता। हवलदार बसंती के पास खड़ा होकर उसका ढाल बना हुआ था। असहाय लाजो ने भगवान की शरण ली थी। जिसका कोई नहीं होता, भगवान उसका सहारा होता है। वह सुबह उठकर भगवान से दुआ माँगती कि जैसे भी हो बंजारे यहाँ से उठ जायें। वे करतब दिखलाने के काबिल न रहें। लड़की रस्सी पर चलती हुई गिर पड़े और पैर ऐसे टूट जाए कि ज़िंदगी भर चल न पाये। भगवान से बार–बार की गयी लाजो की प्रार्थना से ही शायद लड़की के पैर में मोच आ गयी। इस खबर से वहाँ जमी भीड़ उदास थी और यहाँ लाजो ने भगवान को घी के दिये जलाने का वादा किया। लाजो की बुझती हुई आशा की चिंगारी इस घटना की हवा से एकाएक जल उठी। पर यह खुशी पानी के बुलबुले के समान आई और चली भी गयी। क्योंकि अगले दिन लड़की की जगह बसंती रस्सी पर चढ़ी, तो भीड़ और उमड़ पड़ी। अब उसके सामने एक ही रास्ता था और वह है हवलदार का। उसने मन–ही–मन सोचा, अगर हवलदार से दो मीठी बातें करने से धंधा चल जाता है, तो यही सही। जिस हवलदार को वह पास फटकने नहीं देती थी, उसे आज बुला भेजा। उसके आने से लाजो ने कहा–

"वे बंजारे जाने कहाँ से आए हैं। जब से आए हैं, दुकान नहीं चलती। औरत पान–ताम्बूल बेचती है। वे तो सरकारी मैदान में बैठे हैं। उन्हें भगाता क्यों नहीं?" हवलदार दिल में बड़ी उम्मीद बांधे भागा चला आया था। लाजो ने पहली बार जो उसे बुलावा भेजा है। लाजो की यह बात उसे अच्छी नहीं लगी।

"तू कहाँ बाप की ज़मीन पर बैठी है?" हवलदार अकड़कर बोला।

"तू तो बिलकुल बदल गया है" कहकर लाजो ने पान का एक बीड़ा उसकी ओर आगे बढ़ा दिया।

"खजूर का पेड़ किसी काम का नहीं होता।" उसने उपेक्षा भाव से पान की ओर हाथ बढ़ाया।

"खजूर छोटा, पर मीठा होता है।"

लाजो अपने पक्ष का समर्थन करती हुई यह कह गयी। बच्ची की भूख के आगे वह सही गलत कुछ सोच नहीं पायी । हवलदार ने पान लेते हुए उसके हाथ को प्यार से सहलाया। लाजो उसे मना नहीं कर पायी। सच है औरत हारती है, तो अपने बच्चों की खातिर।

दुकान को समेटकर लाजो घर पहुँची, तो हवलदार को उसने पति के साथ चौपाल में पाया। उसका शरीर सिहर गया। वह कमरे के अंदर चली तो पति भी आ धमका। बच्ची उछलकर माँ की गोद पर चढ़ी और उसके सीने से लिपट गयी। महेंद्र बोला–"पूरा दिन मुन्नी रोती रही। हवलदार हमारे लिए कुछ खाना लाया है। उसे खाकर यह चुप हुई।" फिर वह बच्ची को लाजो की गोद से खींचकर बाहर निकल गया। और उसी क्षण हवलदार कमरे में दाखिल हुआ। बाहर बेटी माँ के लिए तरस रही थी और अंदर हवलदार लाजो के प्यार में डूबने को आतुर था। लाजो पेट की आग बुझाने के लिए समिधा–सी अंधेरे में जल रही थी और उस समिधा से हवलदार की कामाग्नि तृप्त हो रही थी।

पौ फटने से पहले हवलदार चला गया। आदमी अंदर से कितना भी कमीना क्यों न हो, उसे शराफ़त की कमीज़ पसंद होती है। रात भर चली उसके सतीत्व की

मौत और मातृहृदय की कसक से वह लड़खड़ा गयी। हवलदार के चलते ही वह बेचैनी से बेटी के लिए लपकी। कमरे के बाहर कदम रखते ही उसका पैर महेंद्र के शरीर से टकराया। दहलीज़ से सटकर उसका पति बेटी के साथ गहरी नींद में बरामदे में सोया है। एक शिवजी थे पत्नी को रोकने के लिए दहलीज़ पर पड़े थे और एक उसका पति महेंद्र है, पत्नी को कोई न रोके इसीलिए बरामदे में पड़ा है। महेंद्र के सर के पास शराब की खाली बोटल पड़ी है। रात को बच्ची का रोना बंद करने के लिए महेंद्र ने उसे दो ढक्कन शराब पिला दिये थे। उसके बाद से वह ऊबड़–खाबड़ जमीन पर चैन से सो रही है। बच्ची को छूने से पहले उसने नहा–धो लिया।

सुबह लाजो दुकान उठाकर चौराहे के लिए चलती हुई देखती है कि बंजारे का टैंट तोड़ा गया है। उसके सामान इधर–उधर बिखरे पड़े हैं। बंजारा अपनी दुनिया की ज़रूरी चीज़ों को समेट रहा है। बंजारन खुद भी रो रही है और रोते हुए बच्चे को शांत कराने की कोशिश भी कर रही है। अपनी दुश्मन को इस हाल में देखकर महीनों से जल रहे लाजो के कलेजे को ठंडक पहुँची। इस समय उसके साथ जो भी हुआ, उन सबका कारण यही बंजारन है। उसकी करुण दशा का मज़ा लेने के लिए लाजो के कदम वही रुक गए। बंजारन की नज़र लाजो पर पड़ी। वह आगे बढ़कर लाजो के सामने खड़ी हो गयी। गोद में रोते हुए बच्चे की पीठ थपथपाकर वह बोली–

"हम यहाँ से जा रहे हैं बहना। सब किया धरा माफ़ करना। पेट की भूख मिटाने के लिए हम केकड़े की तरह इधर से उधर रेंगते फिरते हैं। यहाँ अभी तक हमारी रोटी थी।"

देर रात गृहहीन हुई बंजारन थक चुकी थी। वह लाजो के बरामदे में इस अधिकार से बैठ गयी मानो दोनों में जन्मों का कोई रिश्ता हो। बंजारन की आँखों में छलकी विवशता ने उसके प्रति लाजो के क्रोध को करुणा में बदल दिया। उसने बच्चे के हाथों हवलदार की लायी रोटी के टुकड़े थमा दिये। उसका रोना बंद हो गया था।

"ऐसे अचानक तेरे साथ क्या हुआ? तेरे यहाँ तो हवलदार जाता रहता है?" लाजो को हवलदार की नीयत का पूरा अंदाज़ा है। वह चारों ओर मुँह मारता फिरेगा। इतनी जल्दी वह लाजो का काम करनेवाला नहीं है।

"मर्दों की जीभ बड़ी लंबी होती है।" उसने अपनी बेटी के सर पर साथ सहलाते हुए कहा–"पता नहीं मैं इसे कब तक संभाल सकूँगी।" लाजो का अंदाज़ा सही निकला। लाजो ने सर हिलाकर उसका साथ दिया।

"अब कहाँ जाएगी?"

"हमारा कोई ठिकाना नहीं होता। इससे पहले हम एक दूसरे गाँव के पास पड़ी ज़मीन में बैठे थे। अच्छा–खासा घर भी बना लिया था। गाँववालों को जब पता लगा कि हम नट हैं, वे हमें भगाने पर तुल गए। उस साल की दिवाली की बात है। मैं पास में बनी गौशाला में लगे हैंडपंप से पानी लेने चली। गौशाला वाले इस घटना पर भड़क गए। उन लोगों ने पहले हमें पीटा। कुछ देर बाद गाँववालों के साथ आकर हमारी झोपड़ी फूँक दी।"

"तुम लोग कहीं टिकते क्यों नहीं?" लाजो के लिए बसंती की ज़िंदगी एक पहेली बन चुकी थी। ऐसे लोगों का अनुभव उसे पहली बार के लिए हुआ था।

"हम बंजारे हैं। पीढ़ियों से घूमते रहे हैं। पहले हम अमीर हुआ करते थे। लोगों की ज़रूरतें हम पूरा करते थे। देश आगे बढ़ा तो हमारा धंधा पीछे जाता रहा। पहले हम शहरों में घूमते थे। फिर गाँव, पहाड़ सब जगह घूमे। अब हमारा करतब देखने का समय किसी के पास नहीं है। हम बसना चाहते हैं। पर बसने से पहले लोग उजाड़ देते हैं। हम जहाँ भी जाते, लोग हमें सताते हैं। न उनके नालों से पानी ले भर सकते हैं, न पड़ी ज़मीन का इस्तेमाल कर सकते हैं। हमारे जानवर अगर गाँव चले गए, लोग वहीं रोक लेते हैं। जीते समय हमें टिकने नहीं देते। मरने पर हमें श्मशान नसीब नहीं होता। लोग यह मानने को तैयार नहीं कि हम भी मानुष जात हैं।"

इसी बीच बंजारन की बच्ची ने लाजो से कहा–"मौसी, थोड़ा पानी दे। बड़ी प्यास लगी है।" इतने समय तक लाजो बसंती की बातों में खोई थी। लड़की

ने उसका ध्यान अपनी ओर खींचा, तो उसने देखा कि उसके होंठ सूख गए हैं। अंदर से पानी लेकर उसने उसे पिलाया। वे जाने लगीं, तो लाजो ने पिछली रात को मिले दस–दस रुपये के दो नोट लड़की के हाथों थमा दिये और कहा– "ऊपर वाला तेरा भला करे बेटी।"

उनके जाने के बाद लाजो ने दुकान खोली। आज बिक्री अच्छी थी। शाम तक दुकान की सारी चीज़ें बिक गईं। उसके पैसों का डिब्बा भर गया । आज तक इतने पैसे दुकान से नहीं मिले थे। गरीबों को सब कुछ खोने के बाद ही शायद कुछ मिलता है। उसने देखा कि सामने के मैदान से बंजारे चले गए हैं। उसके मन में उदासी छा गयी, बंजारन पर उसे दया भी आयी। बंजारन सारी ज़िंदगी यहाँ से वहाँ जीने के लिए भटक रही है। फिर उस दया का विस्तार हुआ और उसने लाजो को भी अपने में समा लिया। बाप के घर में होश संभाला ही था कि शादी के नाम पर उसे अलग जगह पर टिकाया गया। पति के घर में टिकते–टिकते हवलदार उसका ठिकाना बना। जो भी हो वह अपना ठिकाना अब बदलने नहीं देगी। उसने मैदान की ओर नज़र दौड़ायी। पूरा मैदान खाली हो चुका था। उसे एहसास हुआ वह भी अंदर से पूरी तरह से खाली हो चुकी है। उसके अंदर से एक आवाज़ आयी कि "बस, अब और नहीं।" उसने फुसफुसाते हुए दोहराया–"नहीं, और नहीं।" वह अडिग हुई कि इस खालीपन को और बढ़ने नहीं देगी। वह बसंती नहीं है, वह लाजो है। दूसरों को खुश करने के लिए काम करना और जीने के लिए जगह बदलने का काम उससे और नहीं होगा। पिछली रात का हादसा उसे दबाये जा रहा था। उसे लगने लगा कि संसार की सारी गंदी चीज़ें मानो उसके शरीर पर सनी गयी हैं। सुबह उसने साबुन से रगड़–रगड़कर नहाया था, फिर भी उसके शरीर से बदबू निकल रही है। उसका तन और मन दोनों टूट चुके थे। सारा बदन दर्द कर रहा था। यह दर्द उसकी आत्मा तक फैल गया। कल की रात को वह अपनी ज़िंदगी से निकाल फेंकने को बेताब हुई। वह आज खूब दारू पियेगी, रोयेगी, चिल्ला–चिल्लाकर रोयेगी, पति को फटकारेगी, ऊपरवाले पर भड़केगी, मन का सारा भड़ास निकाल फेंकेगी। वह और अपना ठिकाना नहीं बदलेगी। जीने की शर्त पर यहाँ–वहाँ भटकते रहना आसान नहीं है। इन्हीं सब बातों में खोई वह कब घर पहुँची उसे उसका पता ही नहीं चला। कमरे के अंदर से आयी बातचीत से उसकी तन्मयता टूटी। आवाज़ जानी पहचानी–सी थी। उसके कान खड़े हो गए।

"उससे पूछना होगा।" महेंद्र की दबी आवाज़।

"कैसा पूछना? तू मर्द है उसका।"

"वह मना कर दे तो?"

"मेरे घर में मुफ़्त की रोटी तोड़ेगा और यहाँ हवलदार को लायेगा?"महेंद्र की बोलती बंद हो गयी। वह फिर से चिल्लाया, "यह मेरा घर है, यहाँ मेरा चलेगा।"

लाजो अंदर चली। दूसरा आदमी घर का मालिक था। बच्ची उछलकर माँ की गोद में चली गयी। पि. छले कई महीनों से इन लोगों ने किराया नहीं दिया है। मालिक ने हिसाब करते हुए कहा कि उसे पंद्रह सौ रुपये देने हैं। महेंद्र ने लाजो के डिब्बे के पैसों की गिनती की और उसका चेहरा उतर गया। मालिक ज़ोरों से चिल्ला रहा था कि अब की बार वह खाली हाथ नहीं जाएगा। या तो पैसा दे, नहीं तो अभी के अभी निकल जाय। वह कड़ी ज़ुबान से पति को पैसे के लिए डाँट रहा था और उसकी गिद्ध–सी निगाहें लाजो की जवानी लूट रही थी। चरित्रहीन पुरुष और गिद्ध में एक मेल होता है। दोनों को दूर दराज़ के शिकार की भनक लग जाती है। वहाँ पहुँच वे अपने शिकार को नोच–नोचकर खाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। रात अंधेरी होने लगी थी। बाहर तूफ़ान और बिजली का करतब शुरू हो गया था। पति ने बच्ची को लाजो की गोद से खींचकर अपनी गोद में ले लिया और फिर कमरे से बाहर निकल आया। लाजो की झूलती दुनिया ने तेज़ पकड़ी। वह बंजारे का बच्चा बन लाचार उसमें तेज़ी से झूलने लगी। अपनी दुनिया को टिकाने के लिए लाजो ऊँचाई पर खींची रस्सी पर चढ़ गयी और उसने दोनों हाथ फैलाकर हवा में फैला दिये। पति समझ गया था "लाजो करेगी" और आज्ञाकारी लाजो चुप्पी साधे मालिक के सामने खड़ी हो गयी। झूलने के बच्चे का रोना बढ़ता गया और एक ओर बसंती रस्सी का अतिक्रमण करने लगी।

ritamonibaishya841@gmail.com

फुलस्टॉप

— श्रीमती भावना सक्सैना
हरियाणा, भारत

बिजली कड़की थी बहुत ज़ोर से, एक लकीर रोशनी की आसमान का कलेजा चीर गयी, इस पार से उस पार, फिर पल में छूमंतर। अस्मि का कलेजा भी आज आसमान की तरह ही बिंधा है।

वह आज ही तो लौट कर आई है, यह वापसी भी कितनी अजीब है... बरसों वहीं रहती रही, सुबह–शाम उसी बालकनी में बैठी पौधों को निहारती रही, सामने के सिटी पार्क में टहलती रही, किंतु आज लग रहा है जैसे उन सब बरसों में वह वहाँ थी ही नहीं। वह जो इस फ़्लैट में रहने आई थी, वह वह नहीं थी, कोई और थी। बालकनी की आराम कुर्सी से उठ वह भीतर आकर ड्रॉइंग रूम में पड़े दीवान पर सीधा लेट गई। हाथ की उंगलियाँ अंदर की ओर मुड़ रही थीं। उसे लगा यों भीतर की ओर मुड़ी हुई उंगलियाँ कुछ रोक रही हैं। वह पलट गई और हाथों को पलंग से नीचे लटका दिया... उंगलियाँ अब कुछ सीधी हो नीचे की ओर थीं। वह कल्पना कर रही थी कि सारी थकान कतरा–कतरा कर बहती हुई उंगलियों के पोरों से फ़र्श पर टपक रही है। बहुत देर यूँ ही पड़ी रही, पर ऐसा महसूस हो रहा था कि जितनी थकान उंगलियों से बाहर टपक रही है, उतनी ही भीतर से पिघलकर और फैलती जा रही है।

फ़र्श पर बिछे कालीन पर थकान की एक चादर फैलती जा रही थी, जो फैलते–फैलते दीवारों तक पहुँची और दीवारों के ऊपर चढ़ने लगी है। उसका चेहरा तकिए में लगभग दबा हुआ था, फिर भी वह दीवारों पर पसरती उस थकान की चादर को महसूस कर पा रही थी। अचानक उसे लगा उस चादर के छोर अगर आपस में मिल गए, तो वह उसमें बंध जाएगी और फिर कभी उससे नहीं निकल पाएगी। चादर फैलती जा रही थी, उसे लगा उसकी सांस रुक जाएगी। एक झटके से उसने सुन्न होती चेतना को झकझोरा और उठ खड़ी हुई। फिर बहुत मशक्कत से हाथ बढ़ाकर खुद को उठाया। हाँ अपना ही हाथ बढ़ाकर समेटा खुद को और बहुत मशक्कत से सीधा किया। दो पाँव पर खड़ा होते ही लगभग धक्का देते हुए स्वयं को उस अंधेरे से बाहर लाई थी। थकान की वह चादर खुद ही छोटी होने लगी, उसने बाहें फैलाकर उसे समेटा और दरवाज़ा खोलकर बाहर फेंक दिया। बाहर बारिश थी, लेकिन अंदर तूफ़ान, उस तूफ़ान को शांत करने वह निकल पड़ी बारिश में ही...

लिफ़्ट में लगे दर्पण में अपनी छवि दिखी तो वह जैसे वितृष्णा से भर उठी। एक प्राणहीन निस्तेज चेहरा, सप्ताह भी तो नहीं हुआ था उसे पार्लर का दौरा किए, अमूमन उसका प्रभाव दो से तीन सप्ताह तो रहता ही था, लेकिन आज न जाने क्या हुआ था! क्या यह वही चेहरा था जिसे दर्पण में देख उसके पंख निकल आते थे, बहुत नाज़ था उसे अपने सौंदर्य पर, अपनी बुद्धि पर और अपने स्त्री होने पर। वह मानती थी इन तीनों चीज़ों के बल पर बहुत ऊँचा उठ सकती है। उठी भी, वहाँ तक हो आई जहाँ इस दोगले समाज की प्रेम का आवरण चढ़ी रूढ़ियों के शिकंजे में कसी आम स्त्री कल्पना भी नहीं कर सकती।

शायद उसी यात्रा का अंत थी यह थकान। ऐसी थकान जिसने उसके पैरों को बागी बना दिया, लगता था पैरों का अपना मन उपज आया है, जो उसे जड़ कर रहा है। लेकिन उसका मन उसे आगे ठेल रहा है। देह का पोर–पोर तो दुख ही रहा है, आँख खुली होने पर भी वह कुछ देख नहीं रही, अपनी छवि उसे शून्य ही दिख रही है। हर तरफ़ बस शून्य, शून्य और शून्य... और शून्य–सा ही मन।

विगत में जब भी अकेलापन हावी होने लगता और आसपास के सौंदर्य को नष्ट करने लगता था, चेतना को सुन्न करने लगता, तब अचेतन हो जाने से बचने के लिए उसकी एक ही राह रहती थी, आज फिर उसने

वही राह अपनाई थी। बस उठकर चल पड़ी और पहुँच गई निकट ही के सिटी–पार्क में। बारिश बहुत तेज़ थी, पार्क खाली था, वह ट्रैक पर चलती रही, चलती रही, लगभग दौड़ती रही, जाने कितने चक्कर हुए इसका हिसाब नहीं था... ट्रैक की ज़मीन पर पिछले कुछ वर्षों के चित्र फ़िल्म की रील की भाँति चलते जा रहे थे और वह उनसे भाग रही थी। इन सब चित्रों में एक चेहरा जो मार्जिन में धुंधला चिपका रहा था, वह था सहाय। सहाय उसका पहला पायदान...

सहाय से मुलाकात कॉलिज में हुई, उसके ही बैच का सीनियर था। बहुत महत्त्वाकांक्षी, गाँव में बहुत–सी ज़मीन जायदाद थी, लेकिन अपने बलबूते पर कुछ करने का भूत सवार था। जब वह कॉलिज के अंतिम वर्ष में थी, तो सहाय प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहा था। वह अपनी ज़िंदगी की बंदिशों से ऊब चुकी थी। मोहब्बत के नाम में कुछ नयापन–सा लगा, सोचा चलो आज़मा कर देखते हैं। यह मोहब्बत सहाय की प्रेरणा बन गई थी। वह पहले ही प्रयास में एस.एस.सी. परीक्षा उत्तीर्ण कर गया था और उसकी सरकारी नौकरी लग गई थी। तब तक वह नहीं जानती थी उसे क्या करना है, पर यह जानती थी कुछ करना है। सहाय से मिलकर उसने अपने रूप को जाना, अपने आत्मविश्वास को पाया था और भावुकता भरे कुछ क्षणों में अपने कौमार्य को भी गँवाया था। परिवार की इच्छा न होते हुए भी उन दोनों ने विवाह किया। प्रेम, साहचर्य, विवाह इन सबके साथ भी दोनों के लक्ष्य बिलकुल स्पष्ट थे। उन दोनों को एक मुकाम हासिल करना था और इसीलिए इन सबके साथ–साथ ही उसने भी एक परीक्षा पास की और सरकारी सेवा में नियुक्त हो गई। रैंक अच्छा होने के कारण उसकी नियुक्ति सहाय से बेहतर पद पर हुई, यही शायद आरंभ था उनके बीच की खाई उत्पन्न होने का। किंतु फिर भी परिवारों से संघर्ष के दौर को उन दोनों ने हाथ पकड़कर पार किया। इसी बीच कीर्ति का जन्म संयोग था, किंतु सुख दे गया था। समय के साथ परिवारों का रोष कम हुआ और कीर्ति के जन्म ने परिवारों को पुनः जोड़ दिया था। अब परिवारों के जुड़ने के साथ एक और होड़ शुरू हुई, एक–दूसरे के परिवारों के सामने खुद को श्रेयस्कर साबित करने की।

वे दोनों बहुत कुछ पाना चाहते थे, आगे बढ़ना चाहते थे। एक दूसरे से भी। इसीलिए पढ़ाई व प्रतियोगी परीक्षाएँ जारी रहीं। वह यह भूल गए कि एक दूसरे से आगे बढ़ने की चाह उन्हें साथ नहीं चलने देगी। एक के आगे होने पर दूसरे को पीछे होना ही होगा। संघर्ष के दौर में एक दूसरे को संबल देने वाले हाथ धीरे–धीरे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पकड़ने में कुछ ऐसे छूटे कि कुछ ही वर्षों में वे दोनों नदी के आर–पार थे। समय की यह नदी आस्था, प्रेम और विश्वास को बहाकर ले गई थी। कीर्ति भी उन्हें लंबे समय तक न जोड़े रख पाई थी।

सहाय ने जब ऊँचे पद के लिए दूसरे शहर में प्रतिनियुक्ति ग्रहण की तब उसने यह नहीं सोचा था कि वह चार साल की कीर्ति के साथ कितनी अकेली हो जाएगी और इस अकेलेपन में उसकी सहायता करने जाने–अनजाने सब लोग खड़े हो जाएँगे। उन सभी के मंतव्यों को वह समझती थी, लेकिन अकेली थकने लगी थी, उसे सहाय की ज़रूरत थी, लेकिन सहाय न था, हाँ हर ओर सहायता का आश्वासन था। तभी उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ था कि जब सहाय अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा कर रहा है, तो वह क्यों न करे, इतने उत्सुक मित्र, ऐसे अवसर, वह क्यों गँवाएँ! क्या सिर्फ़ इसलिए कि वह स्त्री है... कदापि नहीं! इस प्रचुर सहायता का लाभ क्यों न वह अपनी बेहतरी के लिए करे।

ज़रा–सी मुस्कान, कुछ खिलखिलाहट और उन्मुक्त बातें, बस यही तो अपेक्षित है। वह स्त्री थी... बुद्धिमान थी, रूपवती थी और क्या चाहिए था उसे? ज़रा–सा ढील देते ही मित्रों का जमावड़ा हो गया। ऐसे मित्र जो उसकी हर बात पूरी करते। मित्रों का नेटवर्क बढ़ता गया और भाइयों का भी। नेटवर्क बढ़ने के साथ–साथ सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। बहुत संपर्क बढ़े, लेकिन उसने अपना भी एक दायरा बना रखा था। दायरे के भीतर जो भी प्रवेश करने का प्रयास करता उसे

भाई बना दिया जाता। मुस्कुराहटों के पार होते ही वह तुरंत भाई साहब पर आ जाती थी। बहुत से लोग बहुत अच्छे भी मिले। उन्हीं में एक था राघव। शायद उसे भी भाई ही बना देती तो बेहतर होता, लेकिन वह राघव को कभी भाई न कह सकी। वह उसका रिपोर्टिंग अधिकारी था, साथ ही एक एन.जी.ओ. चलाता था। एन.जी.ओ. के कारण उसकी बहुत साख थी। अस्मि ने उसकी नस पकड़ ली थी। औपचारिक संबंध आत्मीयता में बदलने लगा था। राघव के सुझाव पर उसने कीर्ति को देहरादून के सबसे अच्छे बोर्डिंग में डाल दिया था। अब समय भी था, स्वच्छंदता भी।

बढ़ती ख्याति के चर्चे सहाय तक पहुँचे और बहुत प्रयास कर उसने अपना स्थानांतरण वापस दिल्ली करा लिया। वह कीर्ति को वापस लाना चाहता था, लेकिन अस्मि को अब तक आज़ादी रास आ चुकी थी। अकेले रहकर उसे किसी भी दखल की आदत न रही थी। सहाय अस्मि की उन्मुक्तता को और अस्मि की उन्मुक्तता सहाय की दखल को बर्दाश्त न कर पाई। वह उस पर अपना अधिकार मानता था, जताना चाहता था और जताता भी था, लेकिन अस्मि बदल चुकी थी। अब वह स्वयं पर सिर्फ़ अपना अधिकार रखने का निर्णय ले चुकी थी। उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ आसमान छू रही थीं। देर तक दफ़्तर में रहना, तरह–तरह के कार्यक्रमों में शिरकत, जो उसने शुरू तो अकेलेपन से बचने के लिए की थीं, अब उसका स्वभाव बन गई थी। अब कहानी प्रेम की नहीं रही थी, घृणा की भी नहीं, अहम् की भी नहीं, वह अस्मिता की पहचान की लड़ाई की कहानी बन गई थी। सहाय का अहम् उसकी पहचान को निगल जाना चाहता था, उससे लड़ाई की कहानी थी। वह साबित करना चाहती थी कि स्त्री किसी भी स्थिति में पुरुषों से कम नहीं है, अपितु कुछ अधिक ही है। उसने हर वह तरीका ही नहीं अपनाया, जो पुरुषों का हो सकता था, अपितु उनकी कमज़ोरियों का लाभ उठाया था। अब वह सहाय से बहुत दूर हो चुकी थी, उसे वापस नहीं लौटना था। उन्मुक्तता का अलग ही सुरूर होता है और एक रोज़ अस्मि घर का सब सामान समेट किराए के घर में आ गई थी। किसी ने न कुछ कहा न सुना... सहाय भी कुछ न कहने आया न मिलने।

राघव ने इस निर्णय में उसका साथ दिया था, तो अस्मि की अपेक्षाएँ राघव से बढ़ गई थी। राघव के एन.जी.ओ. का दफ़्तर नए शहर में खुलना था, अस्मि चाहती थी कि वह उसे वहाँ की ज़िम्मेदारी सौंप दे, वह शहर बदलना चाहती थी। लेकिन राघव ने ऐसा न किया था। उसका भी अपना दायरा था। अस्मि ने भी हारना नहीं सीखा था। क्षुब्ध, अपमानित थी लेकिन उसने स्वयं को याद दिलाया कि राघव उसकी सीढ़ी का दूसरा पायदान था बस। उसने राघव को सहाय के पीछे खड़ा कर आगे बढ़ने का निर्णय लिया था। स्थानांतरण का आवेदन किया, स्थानांतरण हो गया था, अपने भीतर पसरी उदासी को धकेलने के लिए उसने नए शहर में जाने से पहले अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह बदल डाला था। केश विन्यास, परिधान सब में आमूल–चूल परिवर्तन। लेकिन वह यह न समझी थी कि किताब की जिल्द बदलने से उसके भीतर का मजमून नहीं बदला करता है। सब कुछ नया होने पर भी वह तो पुरानी ही थी। कुछ आदतें जीवन का हिस्सा बन चुकी थी। महत्त्वाकांक्षाओं का जो जाल उसने अपने इर्दगिर्द बुना था वह उसे निकलने न देता था। पुनः नए संपर्क बने और धीरे–धीरे सहाय और राघव के पीछे और कई नाम जुड़ गए।

वह बढ़ती रही, सीढ़ी दर सीढ़ी, आगे, आगे और आगे से भी आगे। हर सुविधा से संपन्न। वर्ष में एक बार जब कीर्ति की लंबी छुट्टी होती, वह भी छुट्टी लेकर उसे ले दूर किसी शहर निकल जाती, खूब घूमती, कीर्ति नई जगहों पर खुश रहती, लेकिन वह घर को तरसती रही थी। अस्मि ने उसे सब कुछ दिया लेकिन घर लाने से कतराती रही। शायद वह उसे खुद से जुड़ी कहानियों से दूर रखना चाहती थी। वह उसे दूर रखना चाहती थी उन खुशबुओं से जो उसके घर में बस जाती थीं और वक्त–बेवक्त बदलती रहती थीं। दो दिन पहले कीर्ति की बारहवीं की परीक्षा समाप्त हुई थी। इस बार अस्मि अपने सभी डरों को काबू कर कीर्ति को घर

लाने का निश्चय करके होस्टल पहुँची थी। कीर्ति भी अपना सभी सामान बाँधकर तैयार थी। उसका चेहरा उतरा हुआ था, बहुत उदास–सी थी। अस्मि ने सोचा स्वाभाविक है कि स्कूल छोड़ने का दुख होगा, उसने बढ़कर उसे गले लगाया, तो महसूस किया कि कीर्ति की छुअन बहुत ठंडी है। मानो उन दोनों के बीच काँच की एक ऐसी दीवार उग आई थी, जो उसे परे धकेल रही थी। कीर्ति का सारा वजूद उसे परे धकेल रहा था। औपचारिक से मिलन के बाद उसने कहा ''माँ आपसे एक बात कहनी है, मैंने फ़ैशन मॉडल बनने का निर्णय लिया है और मेरे एक मित्र के माध्यम से मुंबई से एक बहुत बड़ी कंपनी का ऑफ़र मिला है। सुनहरा अवसर है। मैं आज शाम की फ़्लाइट से मुंबई जा रही हूँ, आशा है आप समझोगी''।

अस्मि अवाक् थी,''बेटा मैंने सोचा था आगे की पढ़ाई तुम घर पर मेरे साथ रहकर करोगी।''

''कौन–सा घर माँ, जहाँ मुझे ले जाने से आप हमेशा बचती रही हैं। पहले कारण जानना चाहती थी, अब वह इच्छा भी नहीं है। आपका घर है, मुझे कभी अपना नहीं लगा।"

''कम से कम कॉलिज तो पूरा करो।''

''ज़िंदगी को समझने के लिए जितना ज़रूरी है वह मैंने पढ़ लिया है। अब यह जो सीढ़ी मिली है इसे मैं छोड़ना नहीं चाहती।''

''लेकिन...''

''मैं ऐसा कुछ नहीं कहना चाहती जो सुनकर आपको बुरा लगे, इसलिए आप भी मुझे न रोकें।''

''इतने वर्ष जो मैं कर रही थी, तुम्हारे लिए ही तो... तुम उसे क्या समझती हो''

''सीढ़ी का पहला पायदान''

इसके बाद अस्मि न कुछ कह सकी न वहाँ रुक सकी। वापस कार में आकर बैठी और ड्राइवर से घर चलने को कहा। पूरे रास्ते सुन्न बैठी रही। ड्राइवर को भेजकर बारिश में यूँ यहाँ आने से पहले बस निढाल पड़ी रही थी, पहले बालकनी की कुर्सी पर, फिर दीवान पर।

पार्क के ट्रैक पर चलते–चलते उसे लगा कि उसके पैर अब बिलकुल साथ नहीं दे रहे, अब उससे और न चला जाएगा, वह बेंच पर बैठ गई, बरसात मंद हो गई थी। उसे लगा इस बारिश ने सब धो दिया, तन भी और मन भी। बरसों की साथी रही महत्त्वाकांक्षा कितनी बेमानी थी। उसे अब समझ आ रहा था। दूर बादल के पीछे सुनहरी किरणें निकल आई थीं, धनक के रंगों को देख उसने महसूस किया कि ये किरणें कितनी सहज हैं, बूंदों से गुज़रती हैं और रंग बिखेर देती हैं, वह कभी किसी को सीढ़ी नहीं बनाती। वह गुज़रती हैं सहजता से और ठीक वैसी ही बूंदें हैं, जो बस बरसती हैं सहजता से। वह एक नए आलोक में थी कि शांति न छलने में है न छले जाने में। शांति बस अपना–सा होने में है... सहजता में है। प्रेम में है, रिश्तों को छलने में नहीं है। महत्त्वाकांक्षी होना बुरा है या नहीं, लेकिन किसी भी चीज़ का अति होना बुरा है। काश कि वह जान पाती कि फुलस्टॉप कहाँ या कब लगाना है, न उसे समझ आया न सहाय को। उसकी और सहाय की महत्त्वाकांक्षाओं ने उनकी छोटी–सी गुड़िया को जो वेदना पहुँचाई थी, उसका अब कोई सुधार नहीं था। आज की इस बारिश ने उसके इर्दगिर्द लिपटा जाल बहा दिया था। उससे रिहा हो वह हलका महसूस कर रही थी।

एक संकल्प के साथ उठी थी वह, इससे पहले कि देर हो जाए उसे माफ़ी माँगनी है कीर्ति से। अब यही तो है उसके बस में। उसकी महत्त्वाकांक्षा ने जो छीना है उस बच्ची से, उसकी पूर्ति तो वह जीवन भर नहीं कर पाएगी। लेकिन वह हार नहीं मानेगी, वह कीर्ति के पास फिर जाएगी... फुलस्टॉप लगाकर फिर नया पैरा शुरु करना ही होगा उसे।

bhawnasaxena@hotmail.com

मास्टर जी की वसीयत

— डॉ. बीरसेन जागासिंह
मॉरीशस

उसका नाम परमानन्द था। वह प्राथमिक स्कूल का अध्यापक था। उस समय केवल स्कूल सर्टिफ़िकेट से कोई भी सरकारी नौकरी पाई जा सकती थी। आज तो कम से कम हायर स्कूल सर्टिफ़िकेट चाहिए। यदि डिग्री हुई, तो सोने में सुहागा। परन्तु स्कूल सर्टिफ़िकेट में आज अंग्रेज़ी, फ्रेंच नहीं होती थी। सच कहें तो उस समय माध्यमिक शिक्षा मुफ़्त न होने के कारण फीज़ चुकाकर बहुत कम छात्र पढ़ते थे। देश अंग्रेज़ों का उपनिवेश था। क्लर्क, अध्यापक, नर्स, पुलिस आदि की सरकारी नौकरी के लिए सिर्फ़ स्कूल सर्टिफ़िकेट की योग्यता माँगी जाती थी, बिन पाँच या तीन विषयों में क्रेडित की। पुलिस की नौकरी के लिए तो अभी हाल तक सिर्फ़ छठी कक्षा का प्रमाण–पत्र पर्याप्त होता था। माँग अनुसार उम्मीदवार की ऊँचाई पाँच फ़ीट सात इंच की और छाती छत्तीस इंच की हो। पादरियों द्वारा सिफ़ारिश की जाने पर ईसाई होने के कारण अफ़्रीकी वंशज युवकों की योग्यता को लेकर अधिकारी आँखें मूंद लिया करते थे। परमानन्द भी उन हिन्दू युवकों में से एक था, जिनको रिजेक्ट किए जाने पर वे गिरजाघरों में पादरियों से सिफ़ारिशी ख़त पाने पहुँच जाते थे। जिनको गले में सलीन लटकाना स्वीकार होता था और खुलेआम रविवार को मास में जाना स्वीकार होता था, वैसे हिन्दू युवक पुलिस की नौकरी पा लेते थे। परमानन्द ने बिना घर पर किसी को कुछ बताए क्रिश्चियन नाम जॉनसॉन स्वीकार लिया था। भेद तब जाकर खुला था, जब डाकिये ने परमानन्द के पिता जीवन को एक रेजिस्टर्ड पत्र थमाया था, जिसपर परमानन्द नेमन नामों के बाद जॉनसॉन नाम भी लिखा था। जीवन के हस्ताक्षर करके पत्र लेते समय डाकिए ने कहा था –

"जीवन जी, बधाई हो! परमानन्द पुलिस का सिपाही बन गया है।"

"सच! परन्तु जॉनसॉन क्यों लिखा है?"

"मेरे बेटे ने भी पुलिस की नौकरी पाने के लिए हारोल्ड नाम अपना लिया है! पादरी की सिफ़ारिश काम आ गई। उसे भी पत्र मिला है। बधाई।"

जीवन स्तब्ध रह गया। उसका बेटा! क्रिश्चियन नाम! पत्र थामे वह घर के भीतर गया था। गाँव भर में जीवन को लोग 'प्रधान जी' नाम से सम्बोधित करते थे, मान–आदर करते थे। वैसे जीवन उस गाँव का था नहीं। वह घर–दामाद था। उसकी पत्नी रानी और परमानन्द की माँ अपने माँ–बाप की अकेली संतान थी। शादी के महीने भर बाद जीवन के ससुर की मृत्यु ब्लड केंसर के कारण हो गई थी। आना–कानी करके अन्ततः उसे घर–दामाद बनना ही पड़ा था। ससुर की ज़मीन–जायदाद की देख–रेख जो करनी थी। उसने अपनी दस साल पुरानी स्कूल में चपरासी की नौकरी छोड़ दी थी। परन्तु अपने बड़े बेटे परमानन्द को टीचर बनाने का सपना उसके दिलोदिमाग में यथावत था, जैसे वर्षों पहले उसने स्कूलों में टीचरों की गरिमा में देखा था। समाज में टीचरों के मान–सम्मान से वह परिचित था। पुलिस के सिपाहियों को वह घूसखोर समझता था। और परमानन्द न जाने कब उसकी पीठ के पीछे घूसखोर बनने के लिए पादरी से जा मिला था। उसे क्रोध तो आया था, परन्तु उसने बहुत ही बुद्धिमानी से काम लिया था। गाँव के सम्मेलन सभा के वर्षों से प्रधान निर्वाचित हो रहे जीवन जैसे सभासदों की समस्याएँ चुटकी में सुलझा देता था, अपने घर की समस्या का समाधान उसे तुरन्त सूझ गया था। क्रोध की अपेक्षा मुस्कराते हुए उसने रसोईघर में प्रवेश होकर परमानन्द की माँ रानी से कहा था–

"लो, पढ़ लो यह पत्र! परमानन्द को पुलिस की नौकरी मिली है।"

"देखूँ! सच! परन्तु यह जॉनसॉन कौन है?"

"परमानन्द ने पादरी से मिलकर धर्म–परिवर्तन

कर लिया है। वही जॉनसॉन है।''

"मेरा बेटा ऐसा नहीं कर सकता।"

"कर दिया है। सभा का प्रधान मैं... धर्म, भाषा, संस्कृति का रखवाला। परमानन्द ने सब खत्म कर दिया। मैं लोगों को क्या मुँह दिखाऊँगा।"

"आप चिन्ता न करें मैं उससे बात करूँगी।"

परमानन्द की माँ वैसे अधिक पढ़ी–लिखी नहीं थी। अपने किसान पिता के साथ बचपन में ही समाज में आना–जाना शुरू कर दिया था। मात्र आठ साल की उम्र में उसने हवन के वैदिक मंत्रों को कंठस्थ कर लिया था। उसके पिता जी द्वारा अपनी ज़मीन पर एकदम अपने घर के बगल में, अपने पैसे से स्थापित सम्मेलन सभा भवन की सायंकालीन पाठशाला में वह हिंदी पढ़ती थी। उसने साहित्य विशारद की परीक्षा पास की थी। बचपन में सभा के वार्षिकोत्सव में वह पाँच–पाँच मिनट तक गुरुजनों द्वारा तैयार भाषण कंठस्थ करके सुनाती थी। गाँव के लोग उसका मान–आदर उसके पिता जी के कारण नहीं, बल्कि उसी के सद्‌गुणों के कारण करते थे। वह माँ–बाप की आज्ञाकारिणी आदर्श बेटी थी। युवावस्था में कदम रखते ही अनेक भँवरे उस कली पर मुग्ध होकर मंडराने लगे थे। उसका उनपर दिल देना स्वाभाविक था। परन्तु उसने अपने आदर्श पिता जी की आज्ञा का पालन करते हुए अपने कोमल मन और अछूते हृदय की उफ़नती प्राकृतिक भावनाओं पर अंकुश लगा लिया था। अनजान जीवन से विवाह करना स्वीकार लिया था। समय बीतता गया, वह ससुराल से मायके सपरिवार सदा के लिए आ गई थी। ढलती आयु में परिवार की मान–मर्यादा और स्थापित आदर्श को वह अत्यधिक महत्त्व प्रदान करने लगी। और चिराग तले अंधेरा। परमानन्द की नौकरी पाने की खुशी को उसके विधर्मी बन जाने की असह्य पीड़ा ने धूमिल कर दिया था। उसे बस बेटे के घर लौटने की प्रतीक्षा थी। शाम हो चली थी। परमानन्द पसीने से लथपथ फुटबॉल खेल कर लौटा था। वह सीधे स्नानघर में साफ़ वस्त्र और तौलिए के साथ प्रवेश हुआ था। पन्द्रह–बीस मिनट बाद वह बाहर निकला था। उसे कहीं माँ–बाप और न ही दोनों अनुज श्रद्धानन्द और दयानन्द दिखाई दे रहे थे। वह घर के आगे की ओर गलियारा लाँघते हुए बढ़ा था। बैठक की दाईं ओर उसे गायत्री मंत्र का सस्वर सामूहिक जाप सुनाई पड़ा। पूरा परिवार वहीं हवन कुंड के चारों ओर बैठे प्रज्ज्वलित अग्नि में घी और सुगंधित घर ही पर तैयार सामग्री की आहुति दे रहा था। परमानन्द कुछ समझा नहीं, उस दिन तो न गुरुवार था और न ही कोई पर्व–त्यौहार। न ही घर पर किसी का जन्मदिन। तो फिर यह यज्ञ क्यों? वह भी दयानन्द के पास बैठकर गायत्री मंत्र का सस्वर जाप करते हुए स्वाहा शब्द के उच्चारण के साथ अग्नि में सामग्री सादर अर्पण करने लगा था। आधे घंटे से अधिक समय के बाद शांति–पाठ से जाप सम्पन्न हुआ था। पूरे घर का पवित्रीकरण हो गया था। सुगंध बाहर रास्ते तक फैल गई थी। जीवन और परमानन्द की माँ रानी की आदत के अनुसार एक लघु भाषण देने वाले थे। जीवन ने प्रारम्भ किया था –

– जबसे, वर्षों पहले मैं इस गाँव में और इस घर में आया, मैंने ससुर जी का मान–आदर बनाए रखा। पूरा गाँव मुझे हिन्दू आर्य धर्म का रखवाला मानता है। मुझे 'प्रधान जी' नाम से सभी सम्बोधित करते हैं। मै. ने इस गाँव में क्रिश्चियन धर्म को फैलने से रोका है। आज घर–घर पूजा–पाठ, हवन–यज्ञ, संध्या आदि अनुष्ठान होते हैं। लोग शिवरात्रि, दीवाली, होली आदि पर्व–त्यौहार मनाते हैं। अब मैं सत्तर पार कर चुका हूँ। मेरी इच्छा है कि मेरे बाद मेरा परमानन्द धर्म–भाषा संस्कृति के उत्थान के कार्यों में लग जाए।

बहुत भावुक होकर परमानन्द बोला था –

– हाँ पिता जी, मैं आपकी इच्छा को भरसक पूरा करने की कोशिश करूँगा। इसी लिए तो स्कूल सर्टीफ़िकेट पास करने के बाद मैंने 'विद्या वाचस्पति' की धार्मिक परीक्षा भी पास की है।

परमानन्द की माँ तभी बोली थी –

– हाँ परमानन्द, हमें तुम पर गर्व है। श्रद्धानन्द और दयानन्द को भी अपने नाना श्री और पिता जी के समान हिन्दुत्व का सिपाही तुम्हीं को बनाना होगा। हम

आज हैं। कल का क्या भरोसा?

– हाँ माँ आप चिन्ता न करें।

– बेटा, यह जॉनसॉन कौन है?

मानो परमानन्द का झूठ पकड़ा गया हो। उसने बहुत ही सहज भाव से कहा था –

– माँ, डाकिए के बेटे और दो–तीन मित्रों के साथ–साथ मैं भी रेलिजस स्टडी का पाठ लेने पादरी के घर गया था। उसी ने हमें यह नाम दिया था। हमें सरकारी नौकरी भी दिलाने का लाभ दिया। मैं बस एक ही बार वहाँ गया था। मैं आपका खून हूँ माँ, परमानन्द, जॉनसॉन नहीं।

जीवन ने तब परमानन्द को वह पत्र दिखाया था। जिसे पढ़कर परमानन्द ने गुस्से में वह पत्र फाड़ डाला था, बोला था –

– मेरे पास प्रमाण–पत्र हैं। मैं भला क्यों अपना धर्म बेचकर नौकरी पाने लगा! मैं पिता जी का सपना अध्यापक बनकर पूरा करूँगा। आप मेरा विश्वास कीजिए माँ।

जीवन दम्पति ने परिवार में आए धर्म परिवर्तन के संकट को बहुत ही होशियारी से टाला था। परमानन्द ने उनकी लाज रख दी थी। यह तो तीन–चार दशक पहले की बात थी। तब से पुल के नीचे से कितना पानी बह गया था। सबसे अधिक मार्के की बात थी व्यापक मतदान का अधिकार। इक्कीस साल और उससे अधिक उम्र वाले सभी देश के नागरिकों को मतदान करने का अधिकार मिल गया था। और तब न चर्च, न पादरी और न ही अंग्रेज़ या फ्रेंच गोरे नागरिकों के भाग्य–विधान बने रह पाए थे। राजनीति का बोल–बाला प्रमुख हो गया था। दलों की स्थापना हुई थी। हर संभव प्रयास किया जाने लगा था, वोटरों को लुभाने के लिए, ताकि उनके मत अपने दल को मिल सकें। दरिद्र, अनपढ़, शोषित श्रमिक और गैर क्रिश्चियन धर्म जैसे कि हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध आदि अपने वोट अधिकार के कारण महत्त्वपूर्ण नागरिक बन गए थे। देश भर में सर्वाधिक भारतीय मूल के नागरिक होने के कारण चुनावों में भारतीय मूल के नेता के दल को बहुमत मिलने की आशंका से फ्रेंच गोरे ज़मीनदार घबराए हुए थे। उनके दल के एक नेता ने कहा भी था कि भारतीय वंशजों को व्यापक मतदान का अधिकार देना मानो बंदरों के हाथों में उस्तरा थमाना होगा। और जब उनकी कोई भी चाल न चली तो उन्होंने भारत में आज़माए अपने अचूक नुसख़े –'फूट डालो और राज करो' को आज़माया। सत्तर प्रतिशत भारतीय वंशजों को उन्होंने नीच–उच्च, छोटी जाति, बड़ी जाति, तमिल भाषी, तेलुगू भाषी, मराठी भाषी, भोजपुरी–हिंदी भाषी और हिंदू–मुस्लिम में बाँट दिया। पूरा देश चुनावी दाव–पेंच से ग्रसित हो गया था। और तब तक अपनी योग्यता के बल पर परमानन्द अंग्रेज़ी–फ्रेंच का एक प्रशिक्षित शिक्षक बन गया था। उसकी नियुक्ति पहाड़ी किनारे के एक हरे–भरे गाँव की पाठशाला में हुई थी। जीवन इस दुनिया को छोड़ चुके थे। बड़े बेटे ने उसका सपना पूरा कर दिया था। मृत्योपरान्त भी उसके चेहरे पर मुस्कान स्थिर थी। तीनों भाइयों की शादी हो चुकी थी। श्रद्धानन्द और दयानन्द दोनों सरकारी नौकरी कर रहे थे। अलग–थलग हरेक का अपना–अपना मंज़िला घर था। परमानन्द अपनी माँ के साथ पुराने घर में रहता था। जीवन के परलोक सिधारने के तीन महीने बाद उसकी पत्नी भी चल बसी थी। परमानन्द के बच्चे कॉलिज जा रहे थे। लड़का वैज्ञानिक विषय पढ़ रहा था, ताकि भारत में मेडिकल सीट मिलने पर डॉक्टरी की पढ़ाई कर सके। लड़की तो परमानन्द ही की तरह स्कूलों में पढ़ाना चाहती थी। होशियार माँ–बाप की होशियार संतानें। समय के साथ परमानन्द को लोग 'मास्टर जी' नाम से आदर पूर्वक संबोधन करने लगे थे। उसने अपने स्वर्गीय नानाश्री और पिता जी के समान गाँव भर क्या, उस प्रान्त भर में मान–सम्मान कमा लिया था।

एक दिन लगभग पाँच बजे शाम को एक लम्बी–सी कार परमानन्द के आँगन में आकर रुकी थी। उस समय घर के बरामदे में वह दोनों भाइयों को अपने–अपने हिस्से की ज़मीन और खेती सम्भालने की सलाह दे रहे थे। मृत्यु से साल भर पहले जीवन ने तीनों बेटों के बीच पूरी

जायदाद–ज़मीन का नोटेरी में कानूनन बँटवारा कर दिया था। दोनों अनुज समझा रहे थे कि दूर राजधानी में वे काम करते थे। सुबह सात बजे घर से निकलते थे तो शाम के पाँच–छः बजे घर लौटते थे। अतः वे खेती–बारी नहीं कर सकते थे। अच्छा होता यदि अग्रज या तो स्वयं देख–भाल करते और व्यय आदि घटाकर उन्हें वर्षान्त में लाभ थमा देते या उनके हिस्सों को वे स्वयं खरीद लेते। अभी बातें चल ही रही थीं कि आँगन में वह बड़ी–सी लंबी कार आ रुकी थी। परमानन्द ने बाहर निकलकर देखा, तीन व्यक्ति थे, कुछ–कुछ परिचित से लगते थे। एक को वह जानता था। महासभा का प्रधान था। राम–सलाम के बाद वे घर के भीतर बैठे थे। प्रधान साहब ने बात सामने रखी थी–

''मास्टर जी बहुत आशा लेकर आपसे मिलने आए हैं। आप जानते हैं कि आम चुनाव सिर पर है। हमें एक होकर चुनाव लड़ना होगा अन्यथा हमारी जाति ख़तरे में पड़ जाएगी।''

पूरा देश गाँवों में और शहरों में बंट गया। गाँवों की जीत हुई थी। भारतीय मूल के लोगों ने सत्ता संभाल ली थी। उस जीत में परमानन्द जैसे धार्मिक–सामाजिक कार्यकर्ताओं के योगदान को न देश भुला पाया और न ही विजयी होकर मंत्री पद प्राप्त करनेवाले उस चुनाव क्षेत्र का उम्मीदवार! भारतीय मूल के लोग फूट और बैर के दलदल में डूबने से बच गए। उनके वोटों के प्रताप से देश स्वतन्त्र हो पाया था! परमानन्द पहले तो उप–मुख्याध्यापक से मुख्याध्यापक बना और देखते–ही–देखते स्कूल इन्सपेक्टर! परन्तु लोग परमानन्द को इन्सपेक्टर नहीं, मास्टर जी ही नाम से पुकारते थे। विरोधी दल वालों ने जी भर कर निंदा की कि मास्टर जी की पदोन्नति उसकी राजनीतिक पहुँच के कारण हुई! कुत्ते भूँके चार, हाथी चले बाज़ार! कोई भी मास्टर जी का कुछ भी बिगाड़ नहीं पाया, बल्कि देश भर में वे एक योग्य स्कूल इन्सपेक्टर के रूप में प्रसिद्ध हो गए। उसके शिक्षण संबंधी ज्ञान और अनुभव का लोहा शिक्षा मंत्रालय में शिक्षा मंत्री से लेकर स्कूलों के चपरासी तक मानते और सराहते थे।

न्याय की दृष्टि में सभी नागरिकों की समानता स्थापित की गई थी। योग्यता के सामने धर्म, रंग–रूप, संस्कृति आदि की महत्ता समाप्त कर दी गई थी। परमानन्द के लड़के को भारत में मेडिकल सीट कम्पीट करके अधिकतम अंक प्राप्त करने के कारण प्राप्त हुई थी, उसे पूरे पाँच साल की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति भी मिली थी। उसकी बहन को नई दिल्ली के विश्वविद्यालय में बी.ए. ऑनर्ज़ हिंदी पढ़ने के लिए स्कोलारशिप मिली थी। यही नहीं श्रद्धानन्द और दयानन्द के सभी बच्चों को मनचाही नौकरियाँ प्राप्त हुई थीं। सभी के पास अच्छे प्रमाण–पत्र जो थे। औपनिवेशिक काल की स्थिति बदल गई थी। योग्यता होते हुए स्वतंत्रता के बाद धर्म परिवर्तन करके नौकरी पाने का समय ढल गया था। नेमन परिवार के बच्चों की योग्यता से पूरा प्रान्त उदाहरण लेता था।

परमानन्द के घर से सटकर, उसी की ज़मीन पर जो बैठका थी, उसमें वर्षों से सायंकालीन हिंदी की पढ़ाई होती थी। वहाँ रानी भी पढ़ाती। हर रविवार की सुबह हवन होता था, जिसमें पचासों गाँव के लोग भाग लेते थे। हर वर्ष दिसम्बर महीने के पहले रविवार को हिंदी पढ़ रहे छात्रों के लिए वार्षिकोत्सव हुआ करता था। इस वर्ष का कार्यक्रम दोपहर एक बजे शुरू होने वाला था। परमानन्द सुबह से ही पंडाल को सजाने में व्यस्त था। मंच पर बड़े लोगों के बैठने के लिए सोफ़े और नीचे कुर्सियाँ, बेंच, महीन रंग–बिरंगे कागज़ों के फूल और लड़ियाँ आदि सजाते–सजाते दस बज गए थे। सहायता करने वाले लोग अपने–अपने घर लौट गए थे, तो भी परमानन्द वहीं बैठे ध्वनिवर्धक वालों की प्रतीक्षा कर रहा था। वे लोग सवा ग्यारह बजे आए थे। पन्द्रह मिनट तक वह उनको समझाने के बाद जल्दी–जल्दी घर पहुँचा था। उसे स्नान करके तैयार होना था। पसीने से सराबोर परमानान्द स्नानघर में प्रवेश हो गया था। उसके पास समय कम था कि वह अपने तन से पसीना सूखने देता। उसे चिंता इस बात से थी कि सरकारी नेताओं, मंत्रीगण और मान्य अतिथि कुछ पहले से आ जाएँ और उनके स्वागत के लिए वह समय पर उपस्थित न हो सके। उन

दिनों घरों में नल थे और बिजली भी थी, परन्तु शहरों की तरह गाँवों में गरम पानी से स्नान करने का प्रचलन नहीं था। परमानन्द के भी स्नान घर में वाटर हीटर नहीं था। वह पत्नी से सूट–बूट–टाई तैयार रखने के लिए कहकर बाथरूम में प्रवेश हुआ था। कपड़े उतारकर वह शावर में ठंडे पानी के नीचे घुस गया था। सुबह से वह थका था ही और ऊपर से दिसम्बर की चिलचिलाती धूप। उसे बहुत अच्छा लग रहा था। अचानक उसने छाती में एक अपूर्व दर्द महसूस किया परन्तु उसने उस पर ध्यान ही नहीं दिया। उसके मन में एक चलचित्र की भाँति प्रारम्भ जीवन की प्रमुख घटनाएँ उभरने लगी थी। न चाहकर भी उसे बो–बासें का प्रशिक्षण महाविद्यालय याद आ गया था। शांति कुंजबिहारी की वह मुस्कुराहट। उनकी आपसी मित्रता और... कली की तरह समय के साथ खिले सुगंधित फूल की तरह एक–दूसरे के दिल में पनपा प्यार। हाँ, वह प्यार ही था। दोनों की पोस्टिंग एक–दूसरे से दूर के स्कूलों में हुई थी। जब बिरह असह्य हो गया तो परमानन्द शांति के घर पहुँच गया था। मित्र और कॉलीग की तरह उसका शांति के पूरे परिवार ने स्वागत किया था। बातचीत के दौरान परमानन्द का पूरा नाम और पता शांति के पिता ने प्राप्त कर लिया था। उसके बाद जो होना था, होकर रहा... जन्म से ब्राह्मण शांति और जन्म से तथाकथित राजपूत परमानन्द जीवन में फिर कभी मिल नहीं पाए थे। चुनाव के कारण जाति–प्रथा की दुर्गन्ध फैलने लगी थी। बिना जीवन से इसकी चर्चा किए परमानन्द विरह की उस असह्य पीड़ा को पी गया था.. उतने वर्षों के बाद, बाथरूम में परमानन्द को लगा कि उसकी छाती की पीड़ा असह्य होती जा रही थी।... आधे घंटे तक प्रतीक्षा करने के बाद उसकी पत्नी ने बाथरूम का दरवाज़ा खटखटाया था, जो भीतर से बन्द था। शावर का पानी गिरने की ध्वनि साफ़ सुनाई दे रही थी। तीन–चार बार पुकारने पर भी जब कोई उत्तर नहीं मिला, तो पत्नी का माथा ठनका था। उसने तुरंत श्रद्धानन्द को आवाज़ दी थी। वह घर पर था नहीं, हर रविवार की तरह वह सब्ज़ियाँ खरीदने फ़लाक के बाज़ार गया हुआ था। रोने की आवाज़ सुनकर दयानन्द दौड़ आया था। दोनों के पीछे–पीछे पूरा परिवार दौड़ आया था। बाथरूम का दरवाज़ा तोड़ा गया था। सबसे पहले पानी बंद करके फ़र्श पर पड़े परमानन्द को उठाया गया था। उसे उठाकर कमरे में लाया गया था। जो भी मिला जल्दी–जल्दी वस्त्र पहनाकर उसी की कार में उसे दयानन्द अस्पताल ले गया था। तुरंत दो–तीन डॉक्टरों ने उसका परीक्षण किया था... वह चल बसा था। प्रान्त के जाने–माने व्यक्ति होने के कारण शव के ऑटप्सि किए बिना डॉक्टरों ने मृत्यु का कारण 'हृदय की धड़कनें रुकना' लिखा था। पूरा परिवार रो पड़ा था। परमानन्द की पत्नी राधा का हाल बेहाल था... दो बार तो रोते–रोते वह बेहोश हो गई थी। शव के घर लाए जाने पर पूरा गाँव वहाँ इकट्ठा हो गया था। जो आमंत्रित वार्षिकोत्सव में भाग लेने आए हुए थे, वे अचम्भित होकर शोकग्रस्त हो गए थे। विशेष आमंत्रितों में दो सरकारी मंत्री भी वार्षिकोत्सव में भाग लेने पधारे थे। उन लोगों ने वायरलैस फ़ोन द्वारा परमानन्द के दोनों बच्चों को पिता के अंतिम दर्शन करने आने के लिए एयर इंडिया जो दिल्ली से मॉरीशस की साप्ताहिक उड़ान भरता था, उसमें डिप्लोमाटिक आरक्षित दो सीटों का प्रबन्ध करवा दिया था। हवाई जहाज़ अगले दिन दस बजे दिन में आने वाला था। अतः परमानन्द की अर्थी दो बजे दोपहर में उठाने का निर्णय लिया गया था। वार्षिकोत्सव के लिए निर्मित पंडाल में रात–जगा किया गया था। जिसके मुँह से सुनो, वही परमानन्द के उदाहरणीय गुण–कर्म–स्वभाव की बड़ाई करते अघाता नहीं था। ऐसा लगता था कि परमानन्द ने मृत्यु पर्यन्त केवल परोपकार करके पुण्य कमाया था। अकेली पड़ गई इसकी विधवा राधा को लोग ढाढ़स बँधा रहे थे। अपने दोनों देवरों और देवरानियों और भतीजे–भतीजियों से उसने कभी दूजा–भाव नहीं किया था। उस दुख की घड़ी में परिवार की एकता देख बनती थी। हाँ, एक बात किसी की समझ में नहीं बैठी थी। मृत्यु के बाद भी परमानन्द की आँखें बंद नहीं हुई थीं। कोशिशें बेकार गईं थीं, आँखें खुली की खुली रह गई थीं। ले–दे कर एक विचार पर सभी लोग एकमत

थे– कोई अधूरी इच्छा होगी जिसे परमानन्द बिना पूरा किए चल बसा होगा। अगली सुबह श्रद्धानन्द बी.ए ऑनर्ज़ हिंदी पूरा कर चुकी भतीजी और वर्ष भर बाद डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी करनेवाले भतीजे को लेने एयरपोर्ट साढ़े आठ ही बजे पहुँच चुका था। मंत्रियों के कहने पर उन्हें वी.आई.पी. यात्री का दर्जा मिल गया था। उन्हें हवाई जहाज़ से बिना सामानों की चेकिंग किए तुरंत बाहर निकल आने की सुविधा मिली थी। प्लेन ग्यारह मिनट लेट था। दोनों बच्चों को शीघ्र ही एक कस्टम अफ़्सर लगेज सहित बाहर ले आया था। चाचा से गले लगकर दोनों खूब रोए थे। घंटे भर के रास्ते को तय करते हुए उनके आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। श्रद्धानन्द मात्र वाक्य बोला था–

–मास्टर जी शायद जानते थे कि उनको हृदय रोग था, क्योंकि वे चाहते थे कि तुम भारत में एम.बी.बी.एस. करने के बाद फ्रांस जाकर हृदय रोग विशेषज्ञ की डिग्री प्राप्त करते।

–हाँ चाचा! उन्होंने कुछ दिन पहले एक पत्र में इसकी चर्चा की थी।

घर वे लोग साढ़े ग्यारह बजे पहुँच गए थे। बच्चों की माँ राधा उनसे मिलकर विलाप करते हुए फिर बेहोश हो गई थी। घर से कुछ दूरी पर उन्हीं लोगों की ज़मीन में अंत्येष्टि संस्कार सम्पन्न हुआ था। घर लौटकर उपस्थित लोगों की सहानुभूति स्वीकारते हुए घंटा भर लग गया। शाम ढलने से पहले घर की शुद्धि के लिए हवन सम्पन्न किया गया था। लोगों के लौट जाने के बाद एक ही स्थान पर रानी के घर शाकाहारी भोजन तैयार किया गया था। उसी पारिवारिक माहौल में परमानन्द की विधवा ने भोजनोपरान्त बड़े देवर श्रद्धानन्द को एक मोहरबन्द लिफ़ाफ़ा थमा दिया था। उसे खोलकर उच्च आवाज़ में पढ़ा गया था– परमानन्द की वसीयत थी।

–डॉक्टरी पढ़ रहा मेरा बेटा आनंद, हिंदी पढ़ रही मेरी बेटी आनन्दी और उनकी माँ रानी को हमारी ज़मीन–गन्ने की खेती में बराबर का हिस्सा मिलना चाहिए। वे तीनों आपस में ही अपने–अपने हिस्से को बेच सकते हैं या दान दे सकते हैं किसी एक या दो को। हमारा घर मेरे बाद आनंद को मिलना चाहिए परन्तु आनन्दी और उसकी माँ वहाँ रह सकती हैं। आनन्दी को मेरे फ़िक्स्ड बैंक बालेंस में से आधा मिलेगा क्योंकि घर आनंद को मिल रहा है। शेष एक चौथाई बालेंस आनन्द को और एक चौथाई उसकी माँ को। गहनों का बँटवारा आनंदी की माँ करेगी। हमारे घर सटकर जो सम्मेलन सभा का भवन है, उसका दान पहले ही हो चुका है। उसकी देख–रेख पहले जैसे पोट लुई स्थित महासभा करेगी। मेरे सेविंग अकाऊंट में जो पैसे हैं उसके ब्याज से हमारे भवन में हिंदी पढ़ा रहे गुरुजी और बहनजी को मासिक वेतन दिया जाए। यदि छात्रवृत्ति न भी मिले तो आनंद अपने पैसे से फ्रांस जाकर हार्ट स्पेसियालिस्त की डिग्री प्राप्त करके लौटे। यदि संभव हुआ तो डॉक्टर आनंद सत्तरोत्तर आयु में वृद्धों की मुफ़्त में चिकित्सा करना। प्रतिवर्ष हिंदी पाठशाला का वार्षिकोत्सव आयोजित करना और समस्त व्यय स्वयं वहन करना। जीवितावस्था में मैं भारत नहीं जा सका, पढ़ाई पूरी करने के बाद मेरे दोनों बच्चों से मेरी प्रार्थना है कि अपनी माँ को वे तीर्थयात्रा करवाएँ। बनारस में गंगा स्नान के बाद प्रयाग में त्रिवेणी स्नान और उज्जैन में महाकाल के दर्शन करवायें। मेरे अनुजों को पहले ही उनका ज़मीन–जायदाद आदि में हिस्सा मिल चुका है। यदि मुझे कुछ हो गया तब मैं चाहता हूँ कि मेरा पूरा परिवार पूर्ववत एकता और भाईचारे के सूत्र में बँधकर रहे। मैं पूरे होश–हवास में, स्वस्थ और चंगे दिलोदिमाग से इस वसीयत को लिपिबद्ध करके हस्ताक्षर कर रहा हूँ। इसे हमारे नोटेरी ने पंजीकरण करके एक प्रति अपने पास रख ली है, एक तो पोर्ट लुई के रेजिस्ट्रार जनरल दफ़्तर में है और यह तीसरी प्रति आपके हाथों में है। आप सब को मेरा अंतिम नमस्कार।

सभी की आँखें नम थीं। कोई कुछ बोला नहीं। मात्र राधा ने सन्नाटा भंग करते हुए कहा था–

''इस वसीयत में दर्ज हरेक शब्द को पूरा किया जाएगा मास्टर जी।''

beersen.jugasing@icloud.com

गिरिजा दीदी

— श्रीमती कल्पना लालजी
मॉरीशस

गर्मी की छुट्टियाँ हमें पहाड़ों में बितानी अच्छी लगती थीं और हम खुशक़िस्मत थे कि ऐसा सालों से होता आ रहा था। पापा पुलिस में थे और उनकी ड्यूटी गढ़वाल की पहाड़ियों में लगती थी। वे तो बेचारे रात–दिन काम में व्यस्त रहते पर हम मौज उड़ाते और उन दिनों को यादगार बना लेते। दिन भर पहाड़ियों की खाक छानते और फिर जब थकान से चूर होकर घर वापस आते, तो माँ के हाथों का गरमागरम खाना हमेशा हमारी प्रतीक्षा में होता।

गढ़वाल की पहाड़ियाँ थीं भी हरी–भरी और मन भावन, निद्रा त्याग ढलानों पर उड़ते हुए बादलों के झुंड हमसे आँख मिचौली खेलते। इन्हीं पहाड़ियों के बीच बसा था शहर पौढ़ी गढ़वाल। कोटद्वार से पाँच घंटों का सफ़र पहाड़ियों और घाटियों से होकर जाता था और यहीं पर था हमारा छोटा–सा गेस्ट हाउस, कहने को छोटा–सा पर किसी महल से कम न था। चारों ओर चीड़ के घने जंगल खड़े थे, जो सिर्फ़ दिन के उजाले में ही सुन्दर लगते, क्योंकि रात को तो जैसे उन्हें बस हमें डराना ही आता था। छत से पूरा शहर नज़र आता, धुंध से आँख मिचौली खेलती घाटियाँ और पल–पल बनते बिगड़ते रंग–बिरंगे इंद्रधनुष बिलकुल परियों की कहानी से लगते। दूसरी तरफ़ साँप–सीढ़ी की तरह लहराती हुई सड़कें थीं, जिनपर आती–जाती बसें और गाड़ियाँ छोटे–छोटे खिलौनों जैसी दिखती थीं। उन्हें तेज़ी से दौड़ते भागते देख हमें बड़ा आनंद आता और हम घंटों पत्थरों की मुँडेर पर बैठे उन्हें निहारते और शर्तें लगाते रहते कि कौन जीतेगा, फिर भी हमारा मन न भरता। वहाँ आकर हमें लगता जैसे भाग–दौड़ वाली ज़िंदगी से निकलकर स्वर्ग में आ गए हों। यूँ तो हम वहाँ हर साल ही आते थे, पर फिर भी यह शहर और इसकी पहाड़ियाँ हमारे लिए हमेशा नई ही होती थीं।

इंटर की परीक्षा के पश्चात् ऐसी ही एक छुट्टी मुझे हमेशा याद रहेगी। हुआ यूँ कि इस बार बड़ी बुआ के हमउम्र बच्चे भी साथ थे। सो खुशी दुगनी और सारे प्लान पहले से ही तैयार। उस रोज़ भी टोली सवेरे मुँह अंधेरे ही सैर को निकल चुकी थी। मीठी–मीठी–सी ठंड पड़ रही थी। मौसम सुहाना था। एक–दूसरे को छेड़ते हम अनजान गंतव्य की ओर बढ़े जा रहे थे कि अचानक चीड़ के झुरमुट के बीच एक आलीशान बंगला देख सभी दंग रह गए। बंगला काफ़ी पुराना मानो बाबा आदम के ज़माने का–सा लग रहा था। उस पर तेज़ हवा के साथ पत्तियों की सरसराहट किसी डरावनी फ़िल्म का सा माहौल पैदा कर रही थी। इस रहस्यमय वातावरण से बचने के लिए हम वापस मुड़ने ही जा रहे थे कि एक झरने की आवाज़ ने हमारे पैरों में बेड़ियाँ डाल दीं।

कौतूहलवश आगे बढ़े तो देखते क्या हैं कि बंगले के अहाते में एक पहाड़ी झरना यूँ गिर रहा था, मानो गंगा की धारा सीधे शिवजी की जटाओं से निकलकर आ रही हो। चारों तरफ़ छाई हुई धुँध ने उसकी सुंदरता में चार चाँद लगा दिये थे। हम तो ऐसे मंत्रमुग्ध हुए कि वहीं बैठ उस दृश्य का आनंद लेने लगे और जब आस–पास कोई न दिखा तो धीरे से अहाते में भी उतर गये जहाँ चारों ओर गुलाब, गुलदावदी, बेला और चम्पा के रंग–बिरंगे फूलों ने खूबसूरत समाँ बांधा हुआ था। झील में रंग–बिरंगी मछलियाँ तैर रही थीं हम उन्हीं में खोये हुए थे कि यकायक बरामदे में आराम कुर्सी पर एक महिला को बैठे देख सन्न रह गये। उनकी पीठ हमारी ओर थी, सो हम भी आड़ में शांत ही खड़े रहे, फिर डरते–डरते आगे आये कि न जाने वे क्या कहेंगी, बिना पूछे उनके घर में चोरों की भांति कैसे घुसे, तभी अचानक मेरा माथा ठनका डर के उस माहौल में हमने ध्यान ही नहीं दिया था कि सामने बैठी महिला तो हमारी प्रिन्सिपल गिरिजा दीदी हैं।

अब चौकने की बारी हम सबकी थी–

"अरे वे यहाँ कैसे?"

"कितनी बदल गई थी दीदी। इतनी दुबली और बीमार कैसे?''

उन्हें सामने पाकर खुशी भी हुई और मन का डर भी कुछ हद तक दूर हुआ। हमने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें नमस्ते भी किया, पर वे तो न जाने किस दुनिया में खोई हुई थीं।

पिछले साल ही तो हमारे स्कूल से रिटायर हुई थीं श्रीमती गिरिजा देवी। एक ही साल में इतना बदलाव। उन्हें सामने देख मैं न जाने कब अतीत की दुनिया में पहुँच गई। क्या शान थी उनकी उस वक़्त अपनी सख़्ती और अनुशासन के कारण स्कूल तो छोड़ो, आस–पास तक के स्कूलों में भी उनकी धाक थी। उनके सामने सभी काँपते थे। क्या मजाल एक पत्ता भी बिना उनकी आज्ञा के इधर से उधर हो जाये। उनके रहते पूरा स्कूल चम–चम चमकता रहता था, चपरासी तो चपरासी अध्यापक तक उनकी जी–हूजूरी में हाथ जोड़े तैनात नज़र आते थे, किंतु प्यार और आदर सभी करते थे। सबसे बड़ी बात ये थी कि उन्होंने कभी भी अपनी कुर्सी का नाजायज़ फ़ायदा नहीं उठाया था। हमेशा सच का ही साथ देतीं और उसके लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार हो जाती थीं। कितने ही गरीब बच्चों की पढ़ाई का खर्च भी स्वयं ही उठा रही थीं। पर्सनेलिटी ऐसी कि जो उन्हें न भी जानता हो देखते ही पहचान जाये कि ज़रूर किसी कॉलिज की प्रिन्सिपल ही हो सकती है। साड़ी हमेशा सफ़ेद कड़कदार कलफ़ वाली कि बैठें भी तो प्लीटें अकड़ से खड़ी ही रहें, ज़रा भी एक इंच इधर न एक इंच उधर। स्कूल के बच्चे जब उन्हें प्यार से गिरिजा दीदी कहते, तो उनकी मुस्कुराहट देखते ही बनती थी, जैसे उनकी आत्मा तक उस वक़्त बच्चों को देख खुशी से फूली न समाती। प्रसन्नता उनके चेहरे पर हमेशा झलकती थी।

गिरिजा जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन हिंदी भाषा और साहित्य को बड़ी लगन से समर्पित कर दिया था। स्कूल के उत्सवों में जब हम उनका कविता–पाठ सुनते, तो बस उनके दीवाने ही हो जाते। उनकी आवाज़ में एक अनोखा ही जादू था, एक दर्द था जो पल भर में ही किसी को भी अपना बनाने की ताकत रखता था। उनका ये दर्द क्यों इतना गहरा था यह रहस्य उस वक़्त हमारी समझ से बाहर था। विद्यार्थियों में शायद ही कोई ऐसा होगा जो उन्हें पसंद न करता हो। सभाओं में आए दिन उनके चर्चे होते रहते थे। रेडियो और टी.वी. पर उनके साहित्यिक कार्यक्रम अक्सर प्रसारित होते और हम उन्हें देख ऐसे गौरवान्वित होते, जैसे हम खुद ही कार्यक्रम कर रहे हों। मुश्किल से मुश्किल काम वे हँसती–मुस्कुराती हुई करतीं।

गिरिजा दीदी तो मानो हमारे स्कूल की जान थीं। रिटायर होने से कुछ दिन पहले ही सुनने में आया कि उनका इकलौता बेटा अपने परिवार के साथ हमेशा के लिये विदेश में जाकर बस गया था और गिरिजा दीदी अपनी ही धरती पर एकदम अकेली हो गई थीं। हालाँकि उन्होंने किसी से एक शब्द भी न कहा पर धीरे–धीरे उनकी हँसी अब गायब होने लगी थी। आँखें भी अब बहुत कुछ ऐसा कहने लगी थीं, जो न तो किसी ने पहले कभी देखा और न सुना था। कभी–कभी तो ऐसा लगता जैसे उनके भीतर कुछ तो है जो अब सुन्न हो चुका था, पर अफ़सोस इसका इलाज हममें से किसी के पास न था, जिसे वे स्वयं भी बखूबी जानती थीं। कई बार जब उनसे पूछते –

"दीदी आप कैसी हैं?"

"मैं अच्छी हूँ"

कहकर वे चुपचाप गुमसुम यंत्रचलित–सी आगे बढ़ जातीं और बहुत कुछ अनकहा हमारे लिए एक अनबूझ पहेली–सा छोड़ जातीं।

जिस तेज़ी से उनका स्वास्थ्य अब बिगड़ रहा था वह किसी से भी छुपा न था। आरम्भ में तो उन्होंने खुद को कठोरता की आड़ में समेटना चाहा, झूठी मुस्कान से लोगों को खुश करना चाहा पर भला कब तक। एक–एक मिनट का हिसाब रखने वाली गिरिजा दीदी अब लगभग रोज़ाना देर से स्कूल आने लगी थीं। स्वयं को समेटने की लाखों कोशिशों के बावजूद इस बार वे ऐसी टूटीं कि

फिर न उठ सकीं। ऑफ़िस की फ़ाइलें रखकर अक्सर भूल जातीं फिर घंटों बैठी अकेली ही ढूँढती रहतीं। पहले तो किसी ने इस ओर ध्यान न दिया पर जब समय के साथ–साथ भीतर का अल्ज़ाइमर जैसा दुष्ट मर्ज़ उनके मस्तिष्क में अपनी जड़ें फैलाने लगा, तो उनकी मुश्किलें और भी बढ़ने लगीं। अब वे स्वयं अपने लिए भी अजनबी–सी होती जा रही थीं। किसी ने सच ही तो कहा है जब अपने ही मझधार में डूबने को छोड़ दें, तो कौन पार उतारे। एक माँ के लिए उसके बच्चों के बिछोह से बढ़कर और कोई दुःख नहीं है। उन्हें जिस डॉक्टर की आवश्यकता थी, वह तो सात समन्दर पार अपना ही भविष्य संवारने में लगा था। ऐसे में उनकी काठी को कौन सहारा देता। फिर वह दिन भी आया जब न चाहते हुए भी हमने भीगी आँखों से उन्हें विदाई दी। उस दिन शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसकी आँखें उस घड़ी नम न हुई हों। ये तो दुनिया का दस्तूर भी है कि कोई कितना ही अपना क्यों न हो ज़्यादा दूर तक साथ नहीं जाता। आगे का रास्ता हमें अकेले ही तय करना पड़ता है और दो चार दिन बाद सभी उसे बड़ी आसानी से भूल भी जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो जीवन जीना ही दूभर हो जाए। धीरे–धीरे यहाँ भी सब सामान्य पर लौट आया, यही तो इस दुनिया का दस्तूर भी है और फिर सभी की चहेती गिरिजा दीदी बस एक भूली–बिसरी याद बनकर रह गईं।

आज बरसों बाद यूँ उन्हें अचानक अपने सामने पाकर मैं भी हक्की–बक्की रह गई। कुछ क्षण तो मुझे विश्वास ही न हुआ जब देखा कि वही सौम्य मूरत आँखें बंद किए अपनी ही दुनिया में कहीं दूर खोई हुई थीं। आस–पास से एकदम बेख़बर, तो मैं भी सोचने पर विवश हो गई कि ये कैसी दुनिया है? क्या ये वही हिंदी साहित्य प्रेमी महिला हैं, जिसका नाम इस देश में बड़े आदर से लिया जाता रहा है। जिनकी अलमारी का शोकेस आज भी अवॉर्ड्स और सम्मान–पत्रों से भरा पड़ा है। क्या एक अनजान गलियारे का वृद्धाश्रम ही बस उनकी पहचान है। अभी पिछले दिनों ही तो हिंदी प्रचारिणी सभा ने एक स्कॉलरशिप उसके नाम से घोषित की है। केवल यही नहीं अब तो उनकी पुस्तकें भी विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाने लगी हैं। क्या यह एकांतवास ही गिरिजा जी की मेहनत का पुरस्कार है? जीवन के इस मोड़ पर क्यों हम उन्हें भूल जाते हैं, जो देश का गौरव हैं।

गिरिजा दीदी का जीवन एक चलचित्र की भांति मेरे आगे घूम रहा था। मेरी आँखें उनके दर्द से भर आईं, आज वे मुझे न पहचान सकीं और मैं उन्हें पहचान कर भी अपना न सकी। शायद इसी को जीवन कहते हैं और हम भी उन्हें उनके हाल पर छोड़ भारी मन से अपने रास्ते हो लिए। उस पल एक बार फिर सब कुछ पहले जैसा ही था, फ़र्क सिर्फ़ इतना था कि आसमान पर गहरे काले बादल घिर आए थे और हल्की बूंदा–बांदी शुरू हो चुकी थी। मैं ख़ुशक़िस्मत थी कि उन बूंदों की आड़ में अपने आँसू छुपाने में कामयाब हो गयी।

kalpanal2008@yahoo.com

एक नई आशा

— श्रीमती अंजु घरभरन
मॉरीशस

आशा की आँखों से चिंता झलक रही थी और चेहरा हल्दी—सा पीला हो गया था, जैसे किसी ने उसके शरीर से सारा खून निचोड़ लिया हो। अस्पताल के आई.सी.यू. वार्ड के बाहर वह कुर्सी पर बेसुध—सी बैठी थी। बारिश होने के कारण कॉरिडोर में आते—जाते लोगों के जूते—चप्पल से फ़र्श पर मिट्टी—कीचड़ समेत निशाने लगे थे, जिन पर आशा की साड़ी का पल्लू मैला हो रहा था। वह तो खोई—सी अपने जीवन का हिसाब लगाने का निरर्थक प्रयास कर रही थी। रोज़ एक नया ही झंझट, एक नया ही मुद्दा सुलझाना जैसे उसकी किस्मत का लेखा बन गया हो।

आशा का पति प्रकाश सालों अपना काम करता रहा। कभी कुछ न हुआ। पर आज एक झटके में उसके जीवन की काया पलट गई। रोज़ की तरह आशा ने सुबह थैले में खाने का डिब्बा, पानी की बोतल और चाय का थर्मस डालकर प्रकाश के लिए सब तैयार किया था। रोटी खाकर और चाय पीकर प्रकाश लॉरी की ओर बढ़ा और चाबी लगाकर उसने गाड़ी चालू की, तो अपनी घड़ी देखी। सुबह के सवा चार बज रहे थे। जल्दी से लॉरी निकाली और खेतों की ओर निकल दिया। ग्राँ—गोब में घर के निकट वाले खेत में ही उसे जाना था।

चार घंटे बाद वह दर्दनाक दुर्घटना हुई। खेतों के कुछ मज़दूर तथा सेंट—आँतोएन शक्कर कोठी के कर्मचारी अपने वाहन से प्रकाश को घायल स्थिति में अस्पताल लाये थे। उन्होंने ही डॉक्टर और अन्य अधिकारियों को बताया था कि गन्ने के भारी वज़न से लॉरी पलटी थी और प्रकाश इस दुर्घटना का शिकार हुआ। आशा के अस्पताल पहुँचने तक वे लोग जा चुके थे।

शादी के समय प्रकाश क्या था और आज क्या हो गया, यह सोचकर आशा को ज़मीन—आसमान का अंतर दिखा। घर के पीछे बड़े से आँगन में लगे लोंगान के पेड़ के नीचे बैठकर अपने परिवार के साथ वह घंटों मस्ती करता था, पोर्ट—लुईस से लॉरी के लिए कलपुर्ज़े लेना होता, तो सबको साथ लेकर जाता और छोटी—बड़ी खरीदारी के साथ सबको दाल पुरी खिलाना और आलुदा पिलाना जैसे अनिवार्य था। सप्ताहांत वह पूरे परिवार के साथ समुद्र—तट पर पिकनिक मनाता और सबकी खुशियों में अपनी खुशियाँ ढूँढता था। मुश्किल समय में भी प्रकाश ने कभी हिम्मत नहीं हारी और आज ऐसा क्या हो गया कि वह आई.सी.यू. में बेहोश पड़ा था। आशा अपनी उलझनों की पोटली की गाँठें खोल बैठी।

अपनी शादी के बाद पाँच बहनों की शादियों का सारा भार प्रकाश ने उठाया। बहनों पर जान लुटाने को वह सदैव तैयार रहता था। आशा भी यह देख खुश होती थी। वह अपने पिता की इकलौती बेटी थी और अपनी ननदों से वह भी बहनों वाला प्यार ढूँढ़ती थी। बहनों की सगाई, हल्दी, शादी, चौथारी और कपड़े—ज़ेवर से लेकर सारी छोटी—बड़ी ज़रूरतें पूरी करने में प्रकाश कभी पीछे नहीं हटा। पूरे रीति—रिवाज़ के अनुरूप विवाह का हरेक कार्य निपटाया। आशा ने भी पूरा साथ दिया।

प्रकाश के पिता ने अपनी ज़िम्मेदारी कब निभाई? उन्हें पीने से फ़ुरसत हो, तो कुछ सोचें या करें, पीने की धुन ने उन्हें शराब और बुटीक का गुलाम बनाये रखा था। जब भी प्रकाश पिता को समझाने की कोशिश करता तब यह झगड़े का रूप ही लेता और मुश्किलें बढ़ जातीं। बहू अगर कुछ कहे तो और झंझट।

पिता का देहावसान हुआ, तो एक हफ़्ते बाद ही प्रकाश की बड़ी बहन ने जायदाद में अपने हिस्से की बात कर डाली। उसने यह नहीं सोचा कि भाई ने अपने जीवन के सुखों की परवाह न कर उसके प्रति अपना प्रत्येक कर्त्तव्य पूरा किया। अपनी पत्नी के लिए कभी कोई उपहार नहीं खरीदा। आज तक आशा हाथ से पत्थर पर ही कपड़े रगड़ रही थी। लेकिन बहनों को

कोई कमी नहीं हुई। बड़ी बहन को अधिकार की माँग करते देख बाकी बहनें भी उसी के संग हो लीं। खरबूज़े को देख खरबूज़ा रंग पकड़ता है।

पिता की मृत्यु के बाद प्रकाश को अच्छे से शोक करने का समय भी न मिला। सभी संस्कार पूरे नहीं हुए थे कि बहनों ने अपने हिस्से की ज़मीन पर कब्ज़ा कर लिया। प्रकाश से कहा कि वकीलों और अदालती कार्यवाहियों का खर्च वही भरे और पिता द्वारा ज़मीनों पर लिए गये ऋण भी वही चुकाये क्योंकि कर्ज़ तो बेटे को ही चुकाना होता है। एक और हिदायत यह कि सब जल्द–से–जल्द हो जाए, क्योंकि बड़ी बहन को कनाडा वापस लौटना है। ऐसा लगा कि मृत्यु में आने का उसका प्रयोजन पिता के अंतिम दर्शन करना नहीं, अपितु उसके जायदाद में हिस्सेदारी पाना ही था।

आशा उन दिनों भारी परेशानी से गुज़र रही थी। विवाह के करीब दस साल बाद वह फिर से माँ बनने जा रही थी और तभी ससुर जी की मृत्यु और ज़मीन के ये झमेले। उफ्फ़! जा तन लागे सो ही जाने। हर मास कर्ज़ का भार और महीने का खर्च। आने वाले बच्चे के पालन–पोषण के समय ही आर्थिक समस्याओं ने प्रकाश को चिंता में डुबा दिया। फिर भी वह हिम्मत नहीं हारा। आशा अनेक बार प्रकाश का साहस बन सहयोग देती थी। जब कुछ न कर पाती, तो चुप रहकर ही फ़र्ज़ की चक्की चलाती और उसमें पिसती भी रहती। बहनें हर बात का अन्यथा मतलब निकालतीं। बड़ी बहन बात करती तो जैसे दिल पर तीर ही चल जाए।

प्रकाश जब आई.सी.यू. में ज़िंदगी और मौत से लड़ रहा था, तब बहनों के दर्शन दुर्लभ थे। क्या फ़ोन भी नहीं? कहने को पाँच बहनों का इकलौता भाई था। एक बहन कनाडा में थी, पर बाकी चार तो मॉरीशस ही में थीं। छोटी बहन रीना एस.एस.आर.एन. अस्पताल के बिल्कुल पास ईलोत गाँव में थी। शीला चित्रकूट में, मधु रोज़–हिल में और जो गुडलैंड्स रहती थी वह भी कौन–सी दूर थी। रिश्ते सच्चे हों, तो दूरियाँ कैसी? और किसी से मिलना हो, तो घर की दीवार से लगा पड़ोसी का घर भी कोसों दूर ही लगता है।

भाई के हिस्से सब फ़र्ज़ हैं और बहनों का कोई फर्ज़ नहीं। दुःख में तो पराये भी सहानुभूति के दो बोल बोल देते हैं। आशा अपनी शादी में द्वार–पूजा के समय रीना और मधु की बात आज भी भूल नहीं पायी थी–

"महारानी अब हमारे पिता के घर पर राज करने वाली है।"

यह सुनकर आशा को जैसे दो सौ चालीस वॉल्ट का झटका ही लग गया था। उसकी सास अपने पति की आदतों से दुःख सहते हुए बहुत पहले ही स्वर्ग सिधार चुकी थीं।

नव वर्ष के हवन पर बहनों के दर्शन नहीं होते थे। पर दो जनवरी को प्रीति–भोज के लिए वे ज़रूर हाज़िर होतीं क्योंकि गोश्त मछली और अन्य नाना प्रकार के व्यंजन जो पके होंगे। अधिकार सबको पता था, पर कर्त्तव्यों का क्या? पाँच बहनों का एक भाई हो, तो किसी लाड़ले से कम न होता, पर इस परिवार में कर्त्तव्य और ज़िम्मेदारी की घुट्टी केवल प्रकाश ने पी थी। बहनों ने जैसे अलग ही पाठशाला से केवल अधिकारों पर पी.एच. डी. की हो।

बूँदाबाँदी अभी भी हो रही थी। लोगों की कतार वार्ड के बाहर लंबी होती जा रही थी, आशा कभी आँखें बंद कर ईश्वर का ध्यान कर रही थी, तो कभी मोबाइल पर समय देख बेचैन–सी अकेली जूझ रही थी। दूर से अपने पिता को आते देख, उसमें जान आ गयी। उसके पास आकर पिता कुछ न बोलते हुए भी बेटी को समझा रहे थे। आशा भी परेशानी में कम बोलने वालों में थी। वार्ड का दरवाज़ा खुला तो पिता ने आशा के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा–

"जाओ पर प्रकाश की ताकत बनकर, न कि उसके सामने रोकर तुम उसकी हिम्मत तोड़ दो। बाहर आना फिर मैं अंदर जाऊँगा।"

आशा अंदर गयी और पाँचवे पलंग पर प्रकाश को देख उसके पैरों तले ज़मीन हिल गयी। दुनिया की सुध–बुध से अनजान मशीनों का मोहताज बना प्रकाश बेजान–सा पड़ा हुआ था। आशा की आँखों से गंगा–जमुना की धारा बह पड़ी। नर्स ने उसे बाहर जाने

को कहा तो उसे लगा कि अभी तो उसने प्रकाश को अच्छे से देखा भी नहीं था। वह भारी कदमों से बाहर आकर बेंच पर निढाल बैठ गयी। जीवन के सख़्त थपेड़ों से बचने के लिए वह किस छोर से किस डोर को थामे? उसने बस उंगलियों को कसकर आँखें बन्द कर लीं। अब प्रार्थना ही उसका एकमात्र सहारा था। पिता भी वार्ड से बाहर आए तो वैसे ही निराश। फिर हिम्मत जुटाकर आशा से कहा –

"अब हमें जाना होगा। निराली स्कूल से वापस घर लौट गयी होगी।"

बेंच से उठकर आशा अपने पिता के पीछे निर्जीव–सी चल पड़ी। मोटर में बैठते हुए उसने पिता से निराली को कुछ न बताने का निवेदन किया।

सीता आशा की पड़ोसन थी जो उसकी नित्य सहायता करते हुए निराली को भी संभाल लेती थी। अपने नाना को देख निराली भागती हुई उससे लिपट गयी और शिकायत करते हुए माँ से पूछा कि वह नाना के साथ कहाँ घूमने गयी थी। इसका उत्तर दिए बिना आशा निराली को लेकर घर लौटी। ताला खोल वह सोफ़े पर बस्ता रखकर स्वयं भी बैठ गयी। निराली कुछ न समझते हुए नाना और माँ दोनों को निहारती रही और अनेक प्रश्नों से घिर गयी। फिर धीरे से माँ के पास बैठकर उसके हाथ में मोबाइल देते हुए कहा –

"पापा को फ़ोन करो, वे घर आ जाएँ, तो सब ठीक हो जाएगा।"

आशा खुद को समेटते हुए निराली को गोद में लेकर प्यार से उसके बालों में हाथ फेरने लगी। फिर संभलकर बोली –

"बेटी आज पापा की लॉरी का एक्सीडेंट हो गया है, अभी वे अस्पताल में हैं।"

इससे आगे आशा कुछ न कह पायी। निराली ने सहमी–सी आवाज़ में पूछा–

"हम पापा को देखने कब जाएँगे?"

आशा ने समझाया –

"वहाँ बच्चे नहीं जा सकते।"

कुछ देर सोचकर निराली बोली –

"जब तुम पापा से मिलने जाओ तब उनसे मेरी बात करवा देना।"

आशा ने अपने पिता को देखा। पिता ने निराली को अपने पास बिठाकर कहा कि माँ से अधिक सवाल–जवाब न करे और कुछ खाकर अपना गृहकार्य करे।

आशा रसोई में निराली के लिए फल काटने लगी। उसने चाय का पानी गैस पर रखा ही था कि फ़ोन की घंटी बजी। फ़ोन उठाया तो जिस पुलिस इंस्पेक्टर ने सुबह दुर्घटना की ख़बर दी थी उसी ने आशा को बताया कि लॉरी को गैराज भेज दिया गया है और वह सुबह ग्राँ–गोब पुलिस चौकी आकर प्रकाश का सामान ले सकती है। कोई उत्तर न देते हुए आशा ने फ़ोन काट दिया।

शाम से कब रात हो गयी आशा न जान पायी। बिस्तर पर निराली को कंबल ओढ़ाती हुई वह सोचने लगी कि पिता उसके साथ न होते तो क्या होता? प्रकाश की एक भी बहन का फ़ोन नहीं आया। जीवन की लड़ाई में कितना अकेला पड़ गया उसका प्रकाश। अगर बहनें ऐसी होती हैं, तो शायद अकेले होना ही अच्छा है।

अगले दिन आशा अस्पताल जाने के लिए तैयार हो रही थी, तो निराली साथ जाने की ज़िद कर बैठी। आशा अपने पिता और निराली के साथ अस्पताल पहुँची। डॉक्टर अबूबकर वार्ड के बाहर ही आशा को रोकते हुए दबी–सी आवाज़ में बोले–

"लाख कोशिशों के बावजूद भी प्रकाश के सिर में रक्त जमने के कारण हम उन्हें बचा न सके।"

आशा की आँखों के सामने अंधकार छा गया। पिता ने एक हाथ से आशा और दूसरे हाथ से निराली को थामा और अपने आप को भी संभाला। आशा के जीवन की साँसें तो चल रही थीं, पर ज़िन्दगी थम गई थी। विवाह के बाद उसने सोलह संक्रान्ति भी न देखी थी कि उसके सोलह शृंगार मिट गए। पिता भी सोच रहे थे कि क्या उनकी बेटी की किस्मत में इतना ही सुख लिखा था?

प्रकाश का अंतिम क्रिया संस्कार करने का समय आया, तो बहनों ने अपनी उपस्थिति दी और

दुनियादारी के नाम पर आँसू बहाने में आशा का पूरा साथ निभाया। आशा के पिता ने सब काम में आशा का साथ दिया। पिता की ढलती उम्र देख आशा उन्हीं के साथ रहकर उनकी लाठी बनी। अकेली होती तो शायद हाथ–पैर न मारती। पर निराली का पालन–पोषण करना था और उसे अपने पैरों पर खड़ा भी करना था। पिता ने अपनी सारी जमा पूंजी आशा के हाथों थमा दिया। धीरे–धीरे घर में कमरे जुड़ते गये और एक वृद्धाश्रम खड़ा हो गया। आज पिता न रहे। उनकी स्मृति में अन्य वृद्धों की सेवा में व्यस्त रहते हुए आशा आत्मशांति महसूस कर रही थी।

आश्रम के बाहर दोनों तरफ़ अशोक के दो सुंदर पेड़ मानो सबके स्वागत में खड़े थे। प्रकाश की दो बहनों को भी उसी आश्रम में आसरा मिला था। उनके हिस्सों की ज़मीनें बंजर पड़ी थीं क्योंकि न तो उनमें खेती करने की हिम्मत थी और न ही ईख में वह कमाई रही। उनके बच्चों की माँग पर आशा ने उनको आश्रम में स्वीकार किया। जिन्होंने उसे कभी भाभी के रूप में अपनाया नहीं वे ही आशा के सहारे जीवन के अंतिम दिन बिता रही थीं। निराली एम.बी.ए. पूरा कर आशा की सहायता करने में संलग्न थी।

संध्या का समय था आशा और निराली आश्रम में लगी क्यारियों को पानी देकर अंदर आयीं, तो आशा रसोई की ओर बढ़ गई। पचपन लोगों के लिए रात का भोजन तैयार हो रहा था। थोड़ा हाथ बटाकर आशा रसोई से निकली, तो निराली अपने पिता, नाना एवं कनाडा वाली फूफू की तस्वीरों के आगे बड़ी श्रद्धा के साथ फूल सजा रही थी। यह देख आशा की आँखें भीग गयीं। उसने यंत्रवत् हाथ से पल्लू उठाया और आँखों को पोंछते हुए वह निराली की ओर बढ़ गयी।

anjumonga@hotmail.com

मार्ग प्रेरणा का

– बीबी साहेबा फ़र्ज़ अली
मॉरीशस

लिखते–लिखते जब भी युसुफ़ मियाँ को अपने आप में घुटन–सी महसूस होती, तो वे अपने कमरे से बाहर निकल आते। अपने आँगन में सजाए हुए गमलों की हरी–भरी बेलों और जड़ी बूटियों में अपने विचलित मन को बहलाने का बहुत ही प्रयत्न करते। और जब इस के बावजूद भी वे असफल रहते तो उन्हें लगता कि वे इस घुटन वाले वातावरण से निकलकर कहीं दूर चले जाएँ। जब कभी उन्हें ऐसी स्थिति मेहसूस होती तो वे अपने समस्त परिवार को भूल जाते और दूसरे ही पल वे अपने घर से बाहर निकल जाया करते।

वे पैदल कभी अपने निवास के पास वाले समुद्र तट पर पहुँच जाते, तो कभी अपने गाँव के पास वाले उस जंगल की ओर बढ़ जाते। समुद्र तट के अधभीगे बालू पर तो कभी वहाँ की काली चट्टानों पर बैठकर वे आती–जाती लहरों में अपने मन की शांति को तलाशते रहते।

ऐसी ही स्थिति में जब वे जंगल की ओर जाते, तो वहाँ की भीनी–भीनी हवा में गहरी सांसे लेकर अपनी घुटन से मुक्त होने की कोशिश करते, जिसमें वे बिरले ही सफल रहते। समुद्र तट से जब भी वे उफ़नती लहरों को तट की चट्टानों से टकराते देखते, तो उनको अपने बच्चों की याद सताने लगती। ऐसी स्थिति में वे अपनी असफलता को अपने में संजोये घर लौट आते। आते ही वे अपनी उस असफलता से खीझकर बेंच पर अपने छोड़े लिखित परचों को मलीदा बनाकर हवा में रुई की तरह उड़ा देते।

वह रात का अंतिम पहर था, वे अपने नये उपन्यास के दूसरे अध्याय को लिखने में लीन थे। अचानक सड़क

के आवारा कुत्तों के रोने से उनकी चेतना में खलल पड़ गई। वे आगे लिखना चाहकर भी कुछ नहीं लिख सके। वह रात उन्हें भारी–सी लगने लगी। वे बेचैन हो गए। उनका मन घुटने लगा। उस रात की बेला में उनके मन की बेचैनी न तो उन्हें जंगल की ओर और न ही समुद्र तट की ओर ले गई। उनकी आँखें भी बेचैन थीं। उनको ऐसा लगा कि इस बार उन्हें मन की शांति के साथ–साथ आँखों की ठण्डक की भी आवश्यकता है। देखते–देखते उनकी उँगलियों की पकड़ से सफ़ेद कागज़ पर घिसती कलम एकाएक लुढ़क गई। मेज़ पर जलती बिजली बत्ती की अगवानी में अपना कमरा छोड़कर वे बाहर निकल आए। चारों ओर घटाटोप अंधेरा छाया हुआ था। उस अंधेरे में हवा भी सहमी थी। एक पत्ता भी नहीं हिल रहा था। नींद के आगोश में समूची प्रकृति कैद थी। घर की दहलीज़ पर राजू और कालू को सोते देखकर युसुफ़ मियाँ को यह ख्याल आया कि क्यों न इन दोनों को अपने साथ ले लें, सफ़र अच्छा कट जाएगा। फिर वे सोचने लगे कि अपने मन की खुशी के लिए इन दो जानवरों को कष्ट क्यों दूँ। और उनका पहला सोच मात खा गया।

उन्होंने बिना कुछ सोचे समझे तुरन्त अपनी साइकिल ली और बिना किसी को बताए पहली बार ऐसी रात की अंधेरी में घर से निकल पड़े। कहाँ जाने के लिए? उन्हें कुछ पता नहीं। बस वे चल पड़े एक अंजान दिशा की ओर।

देश के उत्तरी प्रांत के अपने उस विशाल गाँव से वे साइकिल चलाते–चलाते बहुत दूर तक के फ़ासले तय कर चुके थे। उन्होंने साइकिल रोकी और मुड़कर पीछे देखा। रात का अंधेरा अब भी गहन था। उन्होंने सर उठाकर गगन की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। तारों की झुंड में उनको वह सबसे बड़ा और सबसे अधिक जगमगाता ध्रुव तारा नज़र नहीं आया, जो वे अपने आँगन से देखने के आदी थे। उन्होंने गहरी–गहरी सांसें लीं, पर उन्हें यहाँ के पवन में तम्बाकू पकने की गंध नहीं आई। पर वहाँ उन्हें समुद्र की बीसाईंद गंध अवश्य आई।

उन्हें पता चल गया कि उनका अपना गाँव बहुत पीछे छूट गया है। उन्हें उस गाँव में मुर्गे की बांक सुनाई देने लगी। अब तो वे असमंजस में पड़ गए कि आगे जाएँ या पीछे को लौटें। इसी बीच उन्हें दूर से आज़ान की सुरीली गूंज सुनाई दी। इस गूंज से वहाँ का पूरा वातावरण निर्मल होकर जाग उठा। पक्षी भी अपनी नींद से जागकर उपासना में चहचहाना आरम्भ कर दिये थे।

युसुफ़ मियाँ न चाहते हुए भी आज़ान की इस सुरीली गूंज के बुलावे का पीछा करते हुए उस गाँव की मस्जिद तक पहुँच ही गए। उस धार्मिक सभा में अपनी उपस्थिति देने के लिए। वे मन–ही–मन यही सोच रहे थे कि उनकी यह खास उपस्थिति से उनको यह भी मालूम हो सके कि वे किस गाँव तक आ पहुँचे हैं।

आसमान पर सफ़ेद लकीरों का खींचना आरम्भ होने वाला था। अभी सूर्योदय होने में बहुत देर थी। मस्जिद के विशाल आँगन में लोगों की चहल पहल आरम्भ हो गई थी। वहाँ के उपस्थित लोग एक ही प्रकार के वस्त्र में दिख रहे थे और वस्त्र भीनी–भीनी खुशबू से महक रहे थे। युसुफ़ मियाँ भी कुर्ता और सलवार पहने हुए थे इसीलिए वे उस महफ़िल में शामिल होने से नहीं हिचकिचाए। वे वज़ू खाने तक पहुँचे और अन्य लोगों की तरह उन्होंने भी वज़ू किया। फ़व्वारे के उस शीतल जल से उनके समूचे शरीर में एक स्फूर्ति–सी आ गई।

जमात के साथ नमाज़ अदा करने के बाद वे बाहर आए। मस्जिद की दालान में रखी लकड़ी की हरी बेंच पर दो आदमी बैठे आपस में बातें कर रहे थे। दोनों की बातों से लगा कि वे इसी गाँव के किसी गरीब किसान की गीबत करने में लगे हुए हैं। इस गरीब की इस तरह से पगड़ी उछाले जाने का कारण बस यह था कि उसकी बेटी किसी गैर कौम के लड़के को अपना दिल दे बैठी है।

युसुफ़ मियाँ को इन दोनों की बातों से ईमाम साहब की तकरीर याद आ गई जो अभी–अभी नमाज़ के बाद की थी। ईमाम साहब ने कहा था कि किसी की गीबत करना बहुत बड़ा गुनाह है। युसुफ़ मियाँ को इस बात से दुख हुआ कि लोग इतनी जल्दी ईमाम साहब के

उपदेश को कैसे नकार सकते हैं। लोग अच्छे उपदेशों को तो सुनते हैं, पर उन्हें अपने दिमाग में बिठाने के बजाय दूसरे कान से निकाल देते हैं।

युसुफ़ मियाँ सोचने लगे कि इस सम्पूर्ण जगत के रचयिता ने हम मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ जीव बना दिया तो है। पर यहाँ तो लोग मनुष्य होकर भी मनुष्यता का गला घोटने में लगे हुए हैं। इसी दुविधा की स्थिति में उन्हें शहर के उस सबसे बड़े रईस ताजिर करीम खाँ याद आ गए, जिनकी बेटी की शादी अभी हाल ही में बड़े धूम–धाम से रचाई गई थी। और जिसमें बड़े– बड़े लोग निमंत्रित थे। उस रईस की बेटी का विवाह भी तो एक दूसरी कौम के लड़के से हुआ था।

समाज में इस दो प्रकार के नापतोल से उनका विद्रोही मन खामोशी में चीत्कार उठा।

– "गरीबी और अमीरी के नाप–तोल में इस प्रकार का अंतर क्यों?"

"जो अमीरों के लिए जायज़ है, वही गरीबों के लिये क्यों नहीं?"

"खुदा का घर तो इबादत के लिए है। तो फिर यहाँ बैठकर लोग गीबत क्यों करते हैं?"

जब युसुफ़ मियाँ को इन तीनों क्यों का जवाब नहीं मिला, तो वे लौट आए अपनी साइकिल के पास।

उस पूरबी गाँव का आसमान अपनी लालिमा बिखेरकर सूर्योदय का संदेश दे रहा था। वे अपनी साइकिल लेकर चल पड़े उसी गाँव के समुद्र की ओर सूर्योदय को नज़दीक से देखने के लिए।

पूरबी क्षितिज को चीरते हुए सूर्य अथाह समुद्र के दर्पण में झाँककर आसमान पर चढ़ने का मार्ग ढूँढ रहा था। इस प्रकार क्षितिज के चीरे जाने से उसी दिशा के आसमान और समुद्र में खून की लालिमा फैलने लगी थी। जिससे रात डरकर अपनी काली चादर पश्चिम की दिशा में समेटने लगी थी। इस सुंदर बेला के दृश्य से मगन होकर चिड़िया भी अपने कलरव में लीन हो गई थीं।

युसुफ़ मियाँ को अपने जीवन में पहली बार सम्पूर्ण सूर्योदय देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। इसी बीच उन्हें किसी की पुकार सुनाई दी –

"उन्तरा बेटी! उन्तरा बेटी! गाय और बकरियों को चारा देना मत भूलना।"

उन्होंने पलटकर देखा, तो सड़क के उस पार वाले आँगन में एक कमसिन लड़की को पीतल के लोटे से जल गिराकर सूर्य को अर्घ्य चढ़ाते हुए देखा। युसुफ़ मियाँ को यह देखकर बहुत ही अच्छा लगा। उनके मन के कोने का एक तार झंकार उठा और वह झंकार उनके कानों में यह कहती रही –"यही तुम्हारी मंज़िल है। अपनी मंज़िल को पहचानो!"

वे कभी क्षितिज की ओर निहारते तो कभी सड़क के उस पार अपनी दृष्टि दौड़ाते। उनको एक साथ मन की शांति और आँखों की ठंडक मिल गई। वे साहस बटोरकर उन्तरा को रोकना चाहते थे, पर वह तो अपने बाबा के पीछे कुटिया के भीतर चली गई थी।

सूर्य के चढ़ने के बाद युसुफ़ मियाँ को अपने बच्चों और जुलेखा की याद आई। वे चल पड़े अपने गाँव की ओर। घर पहुँचने पर उन्होंने अपने कमरे की मेज़ पर बिजली बत्ती को वैसा ही जलते पाया जैसा कि वे छोड़ गए थे। उन्होंने बिजली बत्ती बुझाई और खिड़की के परदे को सरकाया। सूर्य के प्रकाश में अपने लेख को देखा। इस बार उन्होंने लेख के परचों को नहीं छितराया बल्कि उनके मन में और लिखने की प्रेरणा जाग उठी। वे बैठकर लिखते रहे लिखते रहे .....

s.furjully@gmail.com

घुटन

– प्रो. नीलू गुप्त
कैलिफ़ोर्निया, अमेरिका

नीता तेज़ कदमों से चलकर पार्क में पहुँची। उसे डर था कि कहीं सुजाता उसकी प्रतीक्षा करके चली न जाये। रात उसने मुझे फ़ोन करके ज़रूर ही आने को कहा था। शायद अपने मन की कोई बात मुझसे करना चाहती थी। तुषार आज जल्दी उठ गये और उन्होंने मुझे चाय के लिए रोक लिया और मुझे देर हो गई। सवेरे के समय पार्क में कितना आनंद आता है, कितनी खुली हवा मिलती है और फिर सब मित्रों से भी तो गपशप हो जाती है। मन कितना प्रसन्न और हल्का हो जाता है। नीता यही सब सोचती जा रही थी, उतने में उसे देख सुजाता चिल्ला पड़ी "अरे नीता मैं तो कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। बस मैं जाने ही वाली थी कि तुम दिखाई दे गईं"।

"सॉरी सॉरी मैं तो बहुत जल्दी आना चाहती थी, किंतु देर हो गई। डर था कहीं तुम चली न जाओ" नीता ने कहा।

"हाँ जाने वाली तो थी। चलो अच्छा हुआ तुम आ गईं। तुमसे मिलकर अच्छा लगता है। आज इतनी देर कैसे हो गई तुम्हें?" सुजाता ने पूछा।

"अरे क्या बताऊँ बस आज तुषार भी जल्दी उठ गये और फिर चाय पिये बिना तो वे आने ही नहीं देते और वे भी अपने हाथ से चाय बनाकर पिलाते हैं" नीता ने कुछ सकुचाते हुए कहा।

"बहुत ही भाग्यशाली हो तुम, पति के हाथ की चाय का स्वाद ही और होता है। तुमने तो पहले जन्म में मोती दान किये होंगे। तुम्हारे दोनों बेटे कुणाल और मृणाल भी तो तुम्हारा कितना ख़याल करते हैं" कहते हुए सुजाता ने एक लम्बी साँस भरी।

"हाँ वह तो है सुजाता पर तुम्हारी जैसी प्यारी और गुणी सहेली पाकर भी तो मैं अपने को धन्य समझती हूँ" नीता ने कहा।

"नहीं नहीं नीता मुझे तो तुमसे मिलकर बहुत अच्छा लगता है। वैसे तो मैं अमेरिका में बीस साल से हूँ और मेरी पहचान भी बहुत लोगों से है, किंतु कुछ ही समय में तुम्हारे साथ बहुत ही अपनापन लगने लगा है। हाँलाकि कुछ तो पुराने साथ पढ़े हुए मित्र भी यहाँ आकर मिले हैं।" इधर–उधर की बातें दोनों करती रहीं।

नीता को लगता रहा कि सुजाता उससे कुछ कहना तो चाहती है, पर कह नहीं पा रही है और नीता भी चाहते हुए उससे कुछ न पूछ पाई। नीता कुछ ऐसा वातावरण बनाना चाहती थी कि सुजाता स्वयं ही उससे अपने मन की बात कहे।

"नीता क्या सोच रही हो चलो, अब घर चलें मेरा बेटा भी सोकर उठ गया होगा। चलकर उसके लिए कुछ गर्म–गर्म नाश्ता बनाऊँगी" सुजाता ने कहा।

"अच्छा चलो चलते हैं, मेरे साथ तुम मेरे घर चलती तो अच्छा रहता" नीता ने कहा। "नहीं फिर कभी सही" सुजाता बोली और दोनों अपने–अपने घर की ओर चल पड़ीं।

दिन इसी तरह बीतते गये, दोनों सहेलियाँ पार्क में मिलती रहतीं, सुजाता कुछ कहना चाहती शायद कह न पाती। फिर भी दोनों एक दूसरे के करीब आती रहीं।

अचानक एक दिन सरला का फ़ोन आया। "अरे नीता मैं सरला बोल रही हूँ। नहीं पहचाना, मैं तुम्हें मिली थी पंद्रह अगस्त के प्रोग्राम में।"

"अरे हाँ–हाँ अच्छा तुम सरला सक्सेना। पहचान लिया। कैसी हो? कैसे याद किया आज?" नीता ने कहा।

"कुछ नहीं ऐसे ही। तुमने तो फ़ोन नहीं किया। मैंने सोचा चलो मैं ही कर लूँ। मैं आज तुम्हारे घर आने के लिए सोच रही थी, क्या आज तुम्हारे पास समय है?" सरला ने पूछा।

"हाँ–हाँ आ जाओ मैं आज बिल्कुल खाली हूँ" नीता ने कहा। जल्दी–जल्दी नीता काम समेटने में लग

गई जिससे कि सरला के आने से पहले वह अपने घर का सब काम समाप्त कर ले। ठीक दो घंटे के पश्चात् सरला आ पहुँची। आवभगत करने के बाद चाय की चुस्की लेते हुए नीता ने सरला से पूछा कि घर का पता ढूँढने में उसे कोई परेशानी तो नहीं हुई।

"नहीं–नहीं परेशानी कैसी, मैं तो इधर आती रहती हूँ। मेरी सहेली सुजाता इधर पास में ही रहती है।"

"अरे सुजाता तो मेरी भी सहेली है। चलो उसे भी बुला लेते हैं" नीता ने कहा।

"नहीं–नहीं वह नहीं आयेगी, वह तो बहुत दुखी है और बहुत परेशान रहती है। क्या उसने तुम्हें कुछ नहीं बताया। उसके बहू बेटे की कुछ समस्या है।"

"नहीं तो मुझसे तो कुछ नहीं कहा, मुझे लगता तो था कि सुजाता कुछ चिंतित–सी रहती है। पर न वह कुछ कह पाई, न मैं ही कुछ पूछ पाई" नीता बोली।

"सुजाता का बेटा अल्कोहलिक है, बहुत शराब पीता है, इसलिए उसकी पत्नी उसके साथ नहीं रहना चाहती और बेटा उसे छोड़ना नहीं चाहता, क्योंकि उसे बहुत प्यार करता है। वैसे बहू तो इसके लिए सुजाता को ही दोषी ठहराती है, क्योंकि उसे लगता है कि शादी करवाकर उसकी सास ने उसके साथ धोखा किया है।" खैर चलो मैं चलती हूँ, पर तुम मेरे नाम से सुजाता को कुछ मत कहना और फिर सरला चली गई।

परंतु उसके बाद नीता को बहुत ही चिंता होने लगी, रात भर ठीक से सो भी नहीं सकी, क्योंकि उसे भी सुजाता से बहुत लगाव हो गया था।

अगले दिन सवेरे पार्क में जब सुजाता मिली, तो उसे लगा कि सुजाता की आँखें रोने से सूज गई हैं और बहुत ही उदास लग रही है।

नीता से रहा न गया, उसने सुजाता का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा कि "क्या बात है तुम बहुत उदास हो। हम दोनों अच्छी मित्र हैं, एक दूसरे से दुख बाँटने से कुछ हल्का होता है।"

"हाँ नीता तुम ठीक कहती हो। मेरा मन बहुत परेशान रहता है, मुझसे अपने बेटे की परेशानी देखी नहीं जाती" और उतना कहकर सुजाता फूट–फूटकर रो पड़ी। उसका इतने समय से रुका हुआ बाँध जैसे फूट पड़ा।

नीता ने कुछ देर सुजाता को ऐसे ही रोने दिया ताकि उसका मन हल्का हो जाये, फिर सांत्वना देते हुए नीता ने उससे कहा कि "बताओ यदि मैं तुम्हारे किसी काम आ सकूँ।"

"मैं तुमसे अपने मन की व्यथा काफ़ी दिन से कहना चाहती थी, परंतु कह नहीं पाई। मैं सोचती थी कि मैं तो दुखी हूँ ही, तुम्हें भी अपने दुख से क्यों दुखी करूँ। सच बात तो यह है कि मुझे तो अमेरिका के इस स्वतंत्र वातावरण में बहुत ही घुटन होती है।"

"स्वतंत्र वातावरण में घुटन कैसी, मैं समझी नही? यहाँ सबको अपनी ज़िंदगी अपने तरीके से जीने का पूरा अधिकार है। यदि आर्थिक रूप से आप किसी पर निर्भर नहीं करते, तो आपको किसी प्रकार की परेशानी नहीं होनी चाहिए और फिर तुम्हें तो अच्छी खासी पेंशन मिलती है सुजाता फिर ये घुटन कैसी? मैं समझी नहीं।" नीता ने कहा।

"तुम्हारी बात ठीक है, मुझे आर्थिक रूप से कोई कमी नहीं है, परंतु हम जिस वातावरण में पले और बड़े हुए हैं, वह यहाँ से भिन्न था। माँ का दिल तो तुम समझती हो न, वह बच्चों को दुखी नहीं देख सकती, बच्चे उसकी परवाह करें या न करें।"

"किसी सीमा तक तो ठीक है सुजाता, हमें बच्चों की परवाह तभी तक करनी चाहिए जब तक वो हमसे ऐसा चाहें। कई बार मैंने देखा है कि हमारे बहुत अधिक देखभाल करने से भी वे परेशान होने लगते हैं। वे लोग भी अपने और मित्रों की तरह स्वतंत्र रहना चाहते हैं" नीता ने कहा। "खैर छोड़ो बताओ आखिर बात क्या है?"

सुजाता ने बताया कि किस तरह वह अपने हँसते खेलते परिवार, दो बेटे और पति के साथ अमेरिका आई थी। "दिल्ली में हमारी बहुत अच्छी नौकरी थी। बस हमारा कुछ बुरा समय आ गया था, तो हम यहाँ आ गये। कुछ समय बाद दिल का दौरा पड़ने से मेरे पति का देहांत हो गया। छोटी उम्र थी, बड़ा बेटा कुछ बुरी

संगत में पड़ गया और शराब पीने लग गया। मैंने बहुत कोशिश की, पर उसकी आदत कुछ कम होने की बजाय और बढ़ती गई क्योंकि इस देश में किसी प्रकार की रोक टोक तो है ही नहीं। इसीलिए तो मुझे यहाँ के स्वतंत्र वातावरण में घुटन–सी होती है। अपने देश भारत में होते, तो शायद रिश्तेदारों की रोकटोक और देखभाल से मेरा बेटा इस रास्ते से हट जाता" सुजाता ने कहा।

इस तरह बात करते–करते बहुत समय हो गया था, इसलिए दोनों अपने–अपने घर चली गईं। नीता सोचती रही क्या सच में ये अमेरिका के स्वतंत्र वातावरण का दोष है या इंसान की अपनी समझ का।

समय बीतता गया और धीरे–धीरे सुजाता अपने दिल का दर्द नीता के साथ बाँटती रही, कहते हैं दुख बाँटने से बहुत राहत मिलती है। सच में सुजाता को मेरे साथ दुख बाँटने से राहत बहुत मिलती थी और मैं भी उसे जितना हो सकता था समझाती रहती थी।

एक दिन सुजाता ने बताया कि उसकी बहू लवली ने तलाक के लिए प्रार्थनापत्र दिया है और इस बात से उसके घर का वातावरण बहुत ही खराब हो गया है, क्योंकि अब तक तो बेटे को आशा थी कि शायद समझौता हो जाये, पर अब वह भी समाप्त हो गई। बात बहुत दुख की थी, एक बसा बसाया घर उजड़ने जा रहा था। सुजाता को तो खैर इस बात का बहुत ही दुख था। वह भी अपनी बहू को बहुत चाहती थी, बड़े ही चाव से उसे ब्याह कर लाई थी, लाखों में एक थी उसकी बहू। बार–बार सुजाता कहती मेरे घर को तो किसी की नज़र लग गई है। मैं उसे बहुत समझाती पर ''जाके पैर न फटी बिवाई सो क्या जाने पीर पराई'' या फिर ''पर उपदेश कुशल बहुतेरे''। सुजाता का दुख कम न हो पाता और जो कुछ कम होता भी, तो बेटे का दुख और उससे भी अधिक शराब पीकर उसका तड़पना उससे न देखा जाता। दिन तो ठीक ठाक निकल जाता पर शाम ढलते ही और उस पर मंडराती रात दर्दनाक और ख़ौफ़नाक काली चादर ओढ़े हुए आती थी, सिहर उठती थी सुजाता। बेटा और बेटे की साथिन बोतल जिसमें बेटा अपने सारे ग़म उड़ेल देना चाहता था या जिसके सहारे वह अपने सारे ग़मों को भूल जाना चाहता था। न किसी से मिलना, न किसी की कलेजे को चीरती हुई हमदर्दी, न किसी की झूठी सांत्वना, कुछ भी तो नहीं भाता था बेटे को। उसे तो यहाँ तक कि परछाई की तरह साथ रहने वाली माँ, जो हर समय बेटे का मुँह ही देखती थी या बेटे की एक आवाज़ पर दौड़कर चूल्हा जलाकर गर्म–गर्म रोटी सेककर खिलाने में अपना सौभाग्य समझती थी, तनिक भी नहीं भाती थी। भाती भी क्यों उसे तो सारी मनुष्य जाति से ही दुराव–सा लगने लगा था।

बेटा दूसरा हो जाये पर माँ दूसरी नहीं हो सकती। जब मन स्थिर न हो तो शरीर भी साथ छोड़ने लगता है, यही हाल तो था बेचारी सुजाता का। मैं उसे प्रतिदिन समझाती उसकी हिम्मत वापस लाती और वह भी मुझसे बराबर वायदा करती कि आज अवश्य बेटे से बात करेगी कि यह क्या पागलपन है? मर्द बच्चा है मर्द बन, जो भी मुसीबत है उसका हिम्मत से सामना कर। पर बेटे के सामने शायद उसकी अपनी ही सारी हिम्मत काफ़ूर हो जाती या फिर बेटे का एक ही जवाब उसे निरुत्तर कर देता। अक्सर बेटा कहता "माँ मुझे पैसे का कोई ग़म नहीं, आधा क्या लवली कहती तो मैं पूरा ही उसे दे देता, पर मुझसे उसकी बेवफ़ाई बर्दाश्त के बाहर है। जीवन निर्वाह के लिए पैसा मुझसे और उस पैसे से ऐश किसी और से कहाँ का न्याय है।" कई बार उसने लवली को अपनी ही कम्पनी के किसी आदमी के साथ घूमते हुए देखा था और फिर उसकी ये सब चर्चा और लोगों से भी सुनने को मिलती थीं कि लवली ने गैरकानूनी तरीके से किसी के साथ घर बसा लिया है और उसी के कहने पर वह यह सब अपने अधिकार माँग रही है।

बात तो सही थी इसका कुछ भी जवाब हमारे पास नहीं था सिवाय इसके कि यह तो अमेरिका का कानून है और यह सभी के लिए है, इसमें कोई भी क्या कर सकता है। नियमानुसार ही आपको चलना होगा। समय अपनी गति से चलता है, आगे–आगे समय क्या करवा देगा या नियति अब क्या रंग दिखायेगी कौन जानता है।

सुजाता का फ़ोन आता रहता था न मालूम उसका मन क्यों बार–बार कहता था कि कुछ न कुछ अनहोनी होकर रहेगी। सवेरा होता तो मुझे भी लगता कि कहीं कोई बुरा समाचार सुजाता से सुनने को न मिले।

सुजाता को लगता रहता कि कहीं रोहित आत्महत्या न कर ले और उसका दिल काँपता रहता, रात को भी बार–बार उठकर बेटे के कमरे में झाँककर उसे सोता देख संतोष की साँस लेती।

एक दिन सुजाता मुझे पार्क में मिली और एकदम मेरे गले लग गई "अरे नीता आज तो मैं बहुत खुश हूँ।"

सुजाता को एक लम्बे अरसे बाद प्रसन्न देखकर मैं भी बहुत ही प्रसन्न हुई। इससे पहले कि मैं कुछ कहती सुजाता स्वयं ही बोली "कल रोहित ने अपने मित्रों को चाय पर बुलाया था और अपने हाथ से उनके लिए कई किस्म के स्नैक्स भी बनाये थे।" एक लम्बे अरसे के बाद उसके चेहरे पर इतनी प्रसन्नता देखी है और मुझे लगता है कि उसने हालात से समझौता कर लिया है।

"अरे सुजाता इससे अच्छी तो कुछ बात हो ही नहीं सकती। चलो अब तुम भी चैन की नींद सो सकोगी।" कुछ देर इधर–उधर की बातें करने के बाद हम दोनों अपने–अपने घर चले गये। दो चार दिन मैं कुछ व्यस्त हो गई और सुजाता से मेरी बात न हो पायी, वैसे मैं इस बीच सुजाता की ओर से कुछ निश्चिंत सी भी हो गई थी।

तभी अचानक सवेरे–सवेरे सरला का फ़ोन आया, बड़ी ही घबराई हुई आवाज़ में और कहने लगी "अरे नीता क्या तुमने आज का अखबार देखा, सब कुछ समाप्त हो गया, बेचारी सुजाता..... "

"क्या, क्या सुजाता, क्या हुआ सुजाता को, मैंने अखबार नहीं देखा।"

"देखो जल्दी, रोहित ने लवली को....."

इतने में तुषार ने अखबार से समाचार सुनाया कि रोहित ने अपनी पिस्तौल से लवली को भून दिया और इससे पहले पुलिस उस तक पहुँच पाती उसने अपने को भी गोली मार ली। आगे और विस्तार से लिखा था कि लवली मकान का और सामान का मूल्य निर्धारित करवाने खुद रोहित के घर आई थी। लवली के द्वारा हुई बेवफ़ाई और उस पर यह सीनाजोरी रोहित सहन न कर पाया और उसने लवली के पार्थिव शरीर को सदा के लिए ढेर कर बेवफ़ाई का सबक सिखा दिया, अपने सीने की आग को बुझाया या कहें कि उसने खुद को भी मौत के हवाले कर सीने में दहकती आग को सदा के लिए शांत कर लिया। इस लोक में न सही परलोक में ही सही, शायद दोनों साथ रह सकेंगे।

मुझे ध्यान आया कि शायद अपनी इसी योजना को निर्धारित करने के बाद उसने अपने मित्रों के साथ एक शाम हँसी खुशी से बिताई होगी।

सारा समाचार पढ़कर मेरी आँखों से झर–झर आँसू गिरने लगे, बेटे रोहित तूने ये क्या किया एक बार तो जन्म देने वाली माँ के बारे में सोचा होता, जो टकटकी लगाये तेरी खुशियों की बाट जोहती रहती थी।

बहुत साहस कर मैं सुजाता के पास गई, गले से लगाया, दोनों आँसू अपनी मूक भाषा में कुछ कहते रहे। इससे पहले मैंने भी अपने को शायद इतना शब्दहीन कभी नहीं पाया था। सुजाता को सांत्वना देने के लिए शायद मेरे पास कोई शब्द ही नहीं थे।

सुजाता की शून्य की ओर ताकती हुई आँखें शायद यही कह रही थीं, इसीलिए मैं बार–बार कहती थी न कि अमेरिका के "स्वतंत्र वातावरण में मुझे घुटन होती है।"

nilugupta@yahoo.com

पन्ने जो पढ़े नहीं

— डॉ. हंसा दीप
टोरंटो, कनाडा

निम्मी जी टी.वी. पर एक ही कार्यक्रम रोज़ देखती हैं, वह है जुल्मी जगत, अपराधों की दुनिया में घुसे–फँसे लोग जो अपने आस–पास एक समानांतर दुनिया खड़ी कर लेते हैं, जिसमें एक के बाद एक संगीन जुर्म की कड़ी जुड़ती रहती है। अंधेरी और ख़ौफ़नाक दुनिया जो अपने–पराए किसी को नहीं देखती, सबको खत्म कर देती है। आखिर क्यों देखती हैं वे ऐसा कार्यक्रम जो डरा देता है, रात में नींद में भी वे ही चीज़ें दिमाग में घूमती हैं, क्यों उन डरावने दृश्यों को देखकर उन्हें सुकून मिलता है, इसका जवाब है उनके पास। बार–बार इन घटनाओं को देखते हुए वे मन को यह समझाना चाहती हैं कि उनके साथ जो हुआ वह कम से कम इतना भयावह तो नहीं था।

वे इस दुनिया के लोगों द्वारा किए जा रहे उन सारे अपराधों को देखना चाहती हैं, जो लोग अपनों के साथ करते हैं, बर्बरतापूर्वक। वे हर बार सुनती हैं कि अपराधी पहले दस्तक देता है अगर हम उस पर ध्यान दें, तो अपराध शुरू होने से पहले ही खत्म हो जाता है। जीवन के बीते पल दृश्य–दर–दृश्य सामने आते तो देखते हुए लगता कि सचमुच जीवन के हर मोड़ पर किसी न किसी बात की दस्तक तो सुनाई दे ही जाती है अगर आँख–कान खुले हों तो। देखने के लिये एक निगाह काफ़ी नहीं होती, अलग–अलग निगाहों से चीज़ों को देखने की आदत होनी चाहिए।

अगर इस बात की पुष्टि करनी हो तो उनके आँख–कान सबसे बड़े गुनाहगार थे। सब कुछ देखते–सुनते थे मगर कभी उस दस्तक को पहचान नहीं पाए। आँखें होते हुए भी अंधापन लिये, कान होते हुए भी बहरापन लिये और शायद जीभ होते हुए भी गूंगापन लिये ढोती रहीं अपनी विवशता को। संवेदनहीन इंद्रियों के साथ जीती रहीं वे। अधिक पढ़ी–लिखी नहीं थीं तो क्या आठवीं पास तो थीं। घर–परिवार को संभालते कभी कोई डिग्री आड़े नहीं आयी तो फिर ऐसा क्या हुआ कि उनके स्त्रीत्व को काठ मार गया। क्यों सबसे बड़ी बेवकूफ़ निकलीं वे और उनकी दिमागी दौड़ जो जीवन की दौड़ में शामिल होने के बजाय अलग हो गयी उस जीवन से ही। अपने घर में घुसती दस्तक अंदर पहुँच कर उन्हें ही बाहर कर गयी। आहिस्ता–आहिस्ता बनता घर से बाहर का रास्ता इतने समझदार तन–मन को दिखाई ही नहीं दिया।

दिखाई भी कैसे देता वे तो अपने अंदर चल रहे ताने–बाने के जाल में उलझी थीं। कहीं से कहीं रिश्ते जोड़ रही थीं और वे तार जुड़ गए उन्हीं की अस्मिता से। अपने स्नेह और प्यार के सागर को लुटाती रहीं वे। सोचा भी नहीं कि जिस पर लुटा रही हैं वह उसका असली हकदार है भी या नहीं। उनकी आँख के नीचे आस्तीन में साँपों का डेरा बनता रहा और उन्हें पता भी नहीं चला कि आस्तीन के वे साँप अपने फन फैलाए कब से डँस चुके हैं उन्हें, उनका सर्वस्व लूट कर कुंडली मार कर बैठ चुके हैं।

वे सारी बातें जो उनके सामने होती थीं, वे सारे ठहाके जो उनके सामने लगते थे, वे सारी रीतिकालीन कविताएँ जो उनके सामने नए शब्द और नए प्रतीक लाती थीं, समझायी जाती थीं, नए अर्थों और नए बिंबों को सामने लाती थीं। वे झुकी निगाहें, उन शैतान निगाहों के साथ मिलकर उनके अपने स्त्रीत्व पर चोट करती रहीं और वे नादान बनी रहीं। किसी एक संकेत को भी समझ लेतीं, तो शायद ये दिन न देखने पड़ते। उनकी सोच में ऐसी बातें अपनी जगह नहीं बना पायीं, हवा के रुख को पहचान नहीं पायीं।

उनका अपना भरा–पूरा परिवार था। देवर–ननदों की शादियाँ करके दोनों पति–पत्नी राहत की साँस लेकर ऐसा महसूस करते जैसे अपनी ज़िम्मेदारियाँ पूरी करके गंगा नहा लिये। उनके पति जो तदर्थ सहायक

प्राध्यापक के रूप में कॉलिज में पढ़ा रहे थे, वे धीरे–धीरे साल–दर–साल सीनियर होते अब विभागाध्यक्ष हो गए थे। कई छात्र उनके निर्देशन में शोध करने लगे। उनकी धाक बढ़ने लगी। पति की धाक बढ़ी तो पत्नी भी अपने आप ही रोबवान हो गयी। शोध–कार्य के लिये अतिरिक्त सहायता की ज़रूरत होती, तो कई छात्र घर आते। उन्हें बहुत अच्छा लगता जब ये सारे युवा शाम को आकर उनके घर बैठते, 'सर' से सीखते–पढ़ते और वापस घर जाते। 'सर' 'सर' सुनते–सुनते उनकी भी ऐसी आदत हो गयी थी कि अपने पति को वे भी 'सर' ही बुलाने लगीं।

छात्रों से भरा–पूरा उनका घर उन्हें एक बड़े परिवार के मुखिया होने का अहसास दिलाता था। इन युवाओं का जोश–खरोश उन्हें अपने घर की हवाओं में बहता दिखाई देता। उन छात्रों में से एक लड़की रश्मि तो उनकी इतनी पसंदीदा छात्रा थी कि उसे लेकर उन्होंने कई ख़्वाब बुन डाले थे। रश्मि बहुत ही विनम्र और सरल स्वभाव की थी। प्यारी–सी, गुड़िया–सी बच्ची इतनी सीधी–सादी थी कि सर कहें कि – "बैठ जाओ" तो वह बैठ जाए, सर कहें कि – "खड़े हो जाओ" तो बगैर सवाल किए वह खड़ी हो जाए। सर और मम्मीजी की अनन्य भक्त थी वह। उन्हें मम्मीजी इसलिये कहती थी कि उनका बेटा अंश भी उसी की उम्र का था अपनी पढ़ाई खत्म करके दूसरे शहर में नौकरी कर रहा था। रश्मि एम. ए. फ़ाइनल में थी और सर के निर्देशन में थीसिस लिख रही थी।

सुना था कि उसकी माँ नहीं है, बचपन में ही चली गयी। उन्हें उस पर बहुत दया आती। बहुत चुप रहती थी वह लेकिन होशियार थी, अपने काम को बहुत अच्छी तरह करने वाली। सर कहते थे कि जिस तरह से वह लिखती है ऐसा लगता है जैसे वे बोल रहे हों और वह उन्हें सुनते हुए सारे जवाब दे रही हो। बिल्कुल उनकी अपनी भाषा में जवाब मिलते थे। अपने पिता के साए में पल रही बच्ची माँ की ममता को तरसती थी शायद यही वजह थी कि निम्मी जी के लिये वह उनकी बेटी जैसी थी। उसके पापा को कहीं काम के सिलसिले में बाहर जाना होता, तो वहीं छोड़कर जाते उसके अपने सर के घर। निम्मी जी को रश्मि के पिता का यह विश्वास बहुत भाता, बहुत ध्यान रखतीं उसका। एक तरह से उन्होंने इस बात का ज़िम्मा ही ले लिया कि जब भी उसके पिता बाहर जाएँ रश्मि को उनके पास छोड़ जाएँ। एक ही बेटा तो था, दिल में बेटी की कमी को इससे पूरा करती थीं वे। कई बार सोचा कि उससे कहे तुम मेरी बहू–बेटी बन जाओ, अपना बेटा अंश घर आता तो उसके साथ समय बिताने को कहतीं मगर ऐसा करने से प्रोफ़ेसर साहब को कड़ी आपत्ति होती, कहते – "रिश्तों को किन्हीं शब्दों में सीमित करके मत रखो, रिश्ते ख़ैरात में नहीं मिलते, बनाए जाते हैं।"

वे जवाब देतीं – "रिश्ते तो बन ही गए हैं।"

"तुम्हारे कहने से कोई किसी से रिश्ता नहीं जोड़ लेगा, एक–दूसरे की केमिस्ट्री होनी चाहिए।" उनके स्वर में मज़बूती होती।

"हमारी बेटी नहीं है तो बस एक बेटी–सी बहू को घर में देखने का ख़्वाब देखने लगी थी मैं।"

"इसका मतलब यह तो नहीं कि हम हर किसी लड़की को अपनी बहू–बेटी मान लें। हवा में उड़ना बंद करो, अपनी इस उड़ान को ज़रा नियंत्रण में रखना सीखो। प्रेक्टिकल बनो।"

"मैं किसी से कह तो नहीं रही हूँ, बस समय का इंतज़ार है।"

"तुम्हें पता नहीं है समय बदल चुका है, यह युवा पीढ़ी अपने बनाए रास्तों पर जीती है। तुम्हारी समझ में नहीं आएँगी ये बातें। फ़ालतू बातें सोचना बंद करो।"

वे चुप रह जातीं। पति का ज्ञान उनके स्नेह को दबाने में सक्षम हो जाता लेकिन उनकी ममता उस बगैर माँ की बच्ची पर बरसती रहती। कई बार जब मौसम खराब होता व रश्मि का काम खत्म नहीं होता तो वे उसे वहीं सोने के लिये राज़ी कर लेतीं। अच्छा लगता कि घर में एक बेटी है जिसके होने से घर में रौनक हो जाती है। अंश जब भी आता उसके साथ उसे खेलते–बतियाते देखतीं तो उनकी दूर दृष्टि उसे कई अलग–अलग रूपों में देखने लगती। स्त्री की कल्पनाएँ कितनी दूर

तक जा सकती हैं कोई उनके मन से पूछकर देखे जो बेहिसाब ढेर सारी जोड़–तोड़ में लगा रहता।

अपने साफ़–सुथरे छोटे–से सरकारी क्वार्टर को और सजाकर रखने लगी थीं वे। उसके लिये चाय, नाश्ता खाना सब ऐसे तैयार होता जैसे अपने बच्चे के लिये कर रही हों। रश्मि भी इस बात से बहुत प्रभावित थी। कई बार वह कहती भी थी कि – "मम्मी जी, मैं आपका, सर का इतना कर्ज़ कैसे चुकाऊँगी। मुझसे यह ऋणमुक्ति कभी न हो पाएगी।"

वे उसके सर पर प्यार से हाथ फेर कर कहतीं – "कैसा ऋण और कैसी मुक्ति, यह तुम्हारा अपना घर है।"

यह कहते हुए उनकी आँखें दूर कहीं अपने बेटे अंश और रश्मि की जोड़ी को आशीर्वाद दे रही होती थीं। एम. ए. का जब रिज़ल्ट आया तो रश्मि ने टॉप किया था। हर ओर उसके नाम के चर्चे थे। मगर वह तो बस एक ही रट लगाए रहती कि – "यह सब सर की मेहरबानी है। उनकी मदद के बगैर मैं कुछ नहीं कर पाती।" उसकी झुकी आँखें सर के प्रति अपनी भक्ति से अभिभूत–सी दिखतीं। अपने सर के लिये श्रद्धा और विश्वास से भरी होतीं, लबालब।

सर मुस्कुराते, रश्मि की सफलता पर गर्व भरी मुस्कान उसका स्वागत करती और वह इसे अपना इनाम समझकर खुश हो जाती। इसी खुशी में सर की अनुपस्थिति में घर में मम्मी जी के साथ बैठकर गप्पें लड़ायी जातीं। अपने अभ्यास के लिये, दोहराने के लिये वह उन्हें समझाती कविताओं के अर्थ जो अभी–अभी समझे थे। दोनों मिलकर हँसते, ताश खेलते, साथ में टी.वी. भी देखते।

अपने घर में रश्मि की उपस्थिति निम्मी जी के लिये खास होती। उसके लिये एक अलग पलंग तैयार किया था उन्होंने जो लाइब्रेरी वाली मेज़ के पास था, ताकि पढ़ते–पढ़ते, अपना काम खत्म करते–करते वह वहीं सो जाए। रश्मि के पिता को सर और उनके परिवार पर पूरा भरोसा था। वैसे भी वे काम के सिलसिले में अक्सर बाहर रहते थे। बेटी के सिर पर इतने अच्छे सर के परिवार का वरदहस्त हो इससे अच्छी तो कोई बात हो ही नहीं सकती थी उनके लिये। रश्मि के पिता की इस बात का सर ने और उनकी पत्नी ने भरपूर स्वागत किया था।

अंश के लिये कई और अच्छी नौकरियाँ उसके कदमों में थीं। एक अच्छी नौकरी मिलते ही वह देश से बाहर चला गया। अब दोनों पति–पत्नी के अकेलेपन में रश्मि का आना–जाना बेहद सुकून भरा होता था उनके लिये। जब भी अंश से बात करतीं तो अपने पास बैठी रश्मि को फ़ोन अवश्य पकड़ातीं यह कहकर कि पापा के और कॉलिज के समाचार तुम्हें रश्मि से मिल जाएँगे। जब अंश और रश्मि देर तक फ़ोन पर बतियाते, तो उसी दौरान अपने घर में बजतीं शहनाइयों के स्वर उनके कानों में अमृत घोलते रहते। अपने दिल में लड्डू फूटने लगते, तो सर की बात याद आती आगाह करते हुए – "नियंत्रण रखो, प्रेक्टिकल बनो।" वे मुस्कुरा देतीं यह सोचकर कि सर तो बूढ़े होने लगे हैं उन्हें ये प्यार मोहब्बत की बातें अब अच्छी नहीं लगतीं। किताबी कीड़ा बनकर रह गए हैं।

अपने पति की नासमझी पर बरबस ही मुस्कुरातीं वे उस दिन को याद करने लगतीं जब शादी की रात सर इतने थके हुए थे कि वहीं नीचे बरामदे में सो गए थे और वे अपनी चारपाई पर सिर टिकाकर रात भर खर्राटे लेती रही थीं। उन दोनों को करीब आने में ही महीनों लग गए थे। सुना है आजकल के बच्चे तो यह सब कुछ पहले ही कर लेते हैं। कर लेते होंगे रश्मि जैसी लड़की और अंश जैसा बेटा हो तो अपने माता–पिता की तरह ही सब कुछ परम्परागत होगा।

"साथ–साथ बच्चे रहेंगे, बात करते रहेंगे तो आपसी रिश्ता तो बनेगा ही" यही सोचकर वे निश्चिंत हो जातीं। सब कुछ करती थीं बस कभी खुद प्रेक्टिकल होकर नहीं सोचा सर की बात का मतलब। सच कहा था उस दिन सर ने कि "तुम्हारी समझ में नहीं आएँगी ये बातें।" नहीं समझ पायीं वे अपने पति के भीतर का वह सच जो एक दिन उनके सामने आया, तो रेत का महल धराशायी हो गया, भरभरा कर धड़ाम से गिर गया।

उस दिन रश्मि के पापा कस्बे से बाहर जा रहे थे। बारिश के मौसम में बच्ची अकेले न रहे इसलिये सर के घर आकर छोड़ गए थे। मूसलाधार बारिश में चारों ओर से झम–झमाझम की आवाज़ें आ रही थीं। सर लाइब्रेरी में अपना काम कर रहे थे। रश्मि भी अपने पलंग पर बैठकर कुछ पढ़ रही थी। उसकी आगे की पढ़ाई के लिये एम. फ़िल. करने के प्रस्ताव आकार ले रहे थे, जिसके कारण सर के साथ बैठकर लंबी–लंबी चर्चाएँ चलतीं। सामान्यतः रात दस बजे के बाद निम्मी जी जाग नहीं पाती थीं। दिन–भर की आवाजाही, किचन का, सफ़ाई का काम उन्हें थका देता था।

बस उस दिन भी अपने रोज़ के समय पर चाय–बिस्किट के सारे डिब्बे रश्मि को बताकर वे सोने चली गयीं ताकि पढ़ते–पढ़ते भूख लगे तो बच्ची को तकलीफ़ न हो। इस स्नेहिल ममता को लुटातीं वे अपने कमरे में जाकर निश्चिंत होकर सो गयीं। बरसात के कारण हल्की–सी ठंड हो गयी थी। सोने के दो–एक घंटे के बाद उन्हें हल्की–सी खाँसी चलनी शुरू हुई, तो पानी के लिये उठना पड़ा। अपने बगल में सर को नहीं देखा तो लगा कि – "हे भगवान अभी तक उस बच्ची को पढ़ा ही रहे हैं। एक ही दिन में सारा ज्ञान दे देंगे, मार डालेंगे क्या बच्ची को।"

नींद में अपने मन ही मन बड़बड़ातीं वे जब लाइब्रेरी में कदम रख रही थीं तो अंदर की बत्ती बुझी हुई थी। खिड़की से छनकर आती दुधिया रोशनी में अंदर की किताबें साफ़ दिखाई दे रही थीं। उन्हें लगा कि बच्ची पढ़ते–पढ़ते सो गयी है लेकिन "सर कहाँ हैं, कहीं दिखाई नहीं दे रहे"। उनींदी आँखों ने सामने जो देखा तो लाइब्रेरी के उस पलंग के चार पायों के बीच में न जाने भूकंप आया हुआ था, तूफ़ान की लपेट में था या फिर कविताओं की प्रेक्टिकल कक्षा थी जहाँ किसी कविता के मधुमास को मधुरात में समझाया जा रहा था। रश्मि और उसके 'सर' दोनों एक दूसरे से लिपटे बेसुध थे। रश्मि का अल्हड़ युवा शरीर सर के हाथों में ऐसे था जैसे कोई बच्चा अपना मनचाहा खास तोहफ़ा कुबूल कर रहा हो। वह मदमस्त–सी उस बाहुपाश में अपने ऋणों से मुक्ति पा रही थी। एक दूसरे के आगोश में वे दोनों इस कदर खोए थे कि निम्मी जी की आहट को महसूस नहीं कर सके। वे चिल्ला सकती थीं, वे चक्कर खाकर गिर सकती थीं, वे उस जोड़े की प्रणय लीला को वहीं रोक सकती थीं लेकिन ऐसा कुछ नहीं किया उन्होंने। दबे पैर वहाँ से लौट आयीं।

जिस बच्ची को वे अपने परिवार में चाहती थीं वह किसी न किसी रूप में उनके सामने ही उनके परिवार में आ चुकी थी। केमिस्ट्री भी दिख गयी थी, प्रेक्टिकल होने की जो बात कही गयी थी वह भी उनके सामने थी।

अपने कमरे में तो आ गयीं वे पर वह रश्मि का वह माँसल शरीर रह–रहकर सामने आता और उन्हें बहुत कुछ कह कर चला जाता। सामने लगा दर्पण जिसमें रोज़ शृंगार करके खुद को निहारती थीं वे, बड़ी–सी बिन्दी लगाकर खुश होती थीं वही दर्पण आज उनके भीतर का नंगापन बाहर ला रहा था। वे सूखे सलवटी स्तन, वे सफ़ेद होते बाल और वह कमर से नीचे की स्पन्दनहीन देह मुँह चिढ़ा रहे थे, उस कुँवारी अल्हड़ नवयौवना के अंगों के सामने अपने अस्तित्व को नकार रहे थे। एक ऐसी अबूझ पहेली बन चुकी थी उनकी देह कि मन के रास्तों में कोई नेह, प्यार, ममता या और कुछ बचा नहीं था अब। एक स्त्री के स्त्रीत्व को ललकारती वह प्रतिच्छाया उस दृश्य को उनके सामने लकीरें खींचते हुए रंगों की शीशियाँ उड़ेलती जा रही थी एक के बाद एक, जिनमें लगातार बदलते रंगों के मिश्रण का अंतिम रंग स्याह होता जा रहा था। सारे रंगों की रंगीनियों को अपने में लीन करता हुआ उनकी आँखों के सामने था घना, काला स्याह रंग।

नहीं सो पायीं अपने उस पलंग पर जो उनका अपना नहीं रहा था। नहीं रह पायीं अपने उस कमरे में जिसमें वे इंसान से एक वस्तु में बदल गयी थीं। यह सब कब से हो रहा था उन्हें इस बात का कोई अंदाज़ा नहीं था, बस जो देखा वह ऐसा दृश्य था कि काश! उन्होंने वह सब न देखा होता, काश! उस दिन पानी के लिये न उठतीं, काश! उनकी ज़िंदगी में वे कलुषित पल जगह न बनाते!

इस समय उनकी थरथराती देह को न अपने बेटे की चिंता थी न किसी और की, वे तो बस जाना चाहती थीं। दूर, कहीं दूर जहाँ न कोई शिक्षक नाम का प्राणी हो और न कोई छात्र नाम का, न कोई कविता हो और न ही कोई कवि।

सुबह हुई तो निम्मी जी अपने कमरे में नहीं थीं, जा चुकी थीं अपने पति को छोड़कर, अपने बसे–बसाए घर को छोड़कर। किसी को कुछ कहने की, बोलने की स्थिति में थीं ही नहीं वे। बगैर कुछ कहे कोसों दूर अपने गाँव आ गयीं, वापस लौटकर नहीं गयीं। कोई नहीं आया उन्हें लेने। कुछ महीनों बाद एक कागज़ आया था जिस पर उन्हें हस्ताक्षर करने थे। तलाक का कागज़ नहीं था, वह तो था अपने बेटे के नाम सारी संपत्ति करने का जो अब युवा था, विदेश में था।

अपने पति की भलमनसाहत का एक ठोस सबूत कि वे सदा ही अपनी पत्नी और बच्चे अंश के लिये ही सब कुछ करते रहे। उन्हें यह जानने की ज़रूरत कभी महसूस नहीं हुई कि वे कैसे हैं, रश्मि कैसी है, क्या दोनों ने शादी कर ली। अंश से भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। उसका फ़ोन आता और जब वह पूछता कि "वे क्यों वहाँ रह रही हैं" तो वे जवाब देतीं – "यहाँ गाँव की ज़मीनों का कोई ध्यान रखने वाला नहीं है न, इसीलिये।" अंश समझता था कि माँ वहीं पली बढ़ी हैं, गाँव में रहना उन्हें अच्छा लगता है और वह खुश था यह जानकर कि अब तो माँ वहाँ की सरपंच बन चुकी हैं। पूरे गाँव में दबदबा है उनका। उनके एक इशारे पर गाँव वाले आ जाते हैं। वहाँ के कई विकास के कार्यक्रमों का ज़िम्मा उठा लिया है उन्होंने।

निम्मी जी के लिये यह सब इतना आसान भी नहीं था लेकिन अब जीवन में किसी कठिनाई से डर नहीं लगता था उन्हें। अपने समूचे समर्पित पारिवारिक जीवन का जो पारितोषिक उन्हें मिला था उसके सामने तो यह दुनिया बहुत आसान ही थी। बीती दुनिया से अलग अपनी एक दुनिया बना ली उन्होंने जहाँ सिर्फ़ वे हैं और उनका काम है गाँव वालों की मदद करना। आज इतने सालों बाद भी वे उस दृश्य को भूल नहीं पायी थीं जिसने उनका बसा बसाया घर तहस–नहस कर दिया था। याद है उन्हें उन दिनों कई–कई दिन हो जाते थे वे उनके पास फटकते भी नहीं थे। देर रात तक पढ़ने का बहाना रहता था उनके पास। विभागाध्यक्ष की ज़िम्मेदारी है उन पर यह सोचकर वे अपने समय पर सो जाती थीं।

क्यों नहीं सोच पायीं कि उनका पति अब अपनी भूख मिटाने के लिये पत्नी के पास नहीं आता। वे अनकही दूरियाँ क्या एक समझदार दस्तक नहीं थी, जो पत्नी को सुनकर समझ लेना था। काश! थोड़ी–सी समझ होती तो खुद को इतना बेवकूफ़ तो नहीं बनने देतीं। कैसे रहती रहीं उस रासलीला के बीच। अपने ही घर में अपने ही परिवार में, अपने ही बिछाए पलंग पर उनके खिलाफ़ साज़िश होती रही। अगर उन्हें पता होता तो कब से इस रिश्ते से उन्हें आज़ाद कर देतीं फिर उन्हें इस तरह वह दृश्य ताउम्र प्रताड़ित तो नहीं करता।

उनके बेटे को भी उनसे अलग कर दिया गया था – "माँ खुद नहीं चाहतीं मेरे पास रहना, तुम्हारी माँ अपनी इच्छा से गयी हैं, बगैर बताए गयी हैं।" बेटे अंश के सामने अपना भविष्य था। वहीं किसी गोरी से शादी कर ली थी। माँ से मिलने भी आया तो कभी नहीं पूछा कि आखिर वे पापा के साथ क्यों नहीं हैं। वह तो वैसे भी नौकरी करने लगा था, माँ के साए की ज़रूरत नहीं थी उसे।

एक रिश्ता टूटता है तो कई कड़ियाँ बिखर जाती हैं। वही हुआ उनके साथ भी। परिवार के तीन सदस्य तीन दिशाओं में बस गए थे। कोई किसी से जुड़कर नहीं रह पाया था। अब कोई भी इस दस्तक को सुनने लगे या फिर समझने लगे, देर तो हो ही चुकी थी। इतनी देर कि घड़ी की सुइयों को वापस बारह तक आने के लिये सदियाँ लग जाएँ। गाँव वालों से घिरे रहने में, उनके लिये काम करने में निम्मी जी इतनी थक जाती थीं कि सोते ही नींद आ जाती। जब भी खाली समय मिलता वे अपने प्रश्नों के उत्तर खोजने में लग जाती थीं। आज भी कुछ इस तरह अतीत में खोने लगी थीं कि एक

समाचार आया, प्रोफ़ेसर की हृदयाघात से मृत्यु हो चुकी है, उनका सामान लेने के लिये उन्हें जाना पड़ेगा।

वे नहीं जाना चाहती थीं, रश्मि से मिलकर अपनी बची ज़िंदगी खराब नहीं करना चाहती थीं मगर कोई विकल्प नहीं था। जब वे अपने उस घर में पहुँचीं तो कोई नहीं था वहाँ। सुनसान घर था। लग नहीं रहा था कि वहाँ कोई स्त्री रहती थी। सब कुछ बेतरतीब था। मन जानना चाहता था कि उनके जाने के बाद कैसी रही होगी उनकी और रश्मि के जीवन की घड़ियाँ। जो सुना वह और भी अलग था। इतना अलग कि जैसे किसी अधखुली किताब के पन्नों के राज़ खुल रहे हों एक के बाद एक। निम्मी जी के वहाँ से जाने के बाद छः–सात महीने तक रश्मि और अन्य छात्र पढ़ने के लिए आते थे। अकेले रहते–रहते उनकी तबीयत लगातार खराब रहने लगी, तो समय से पूर्व सेवा निवृत्ति लेकर वे घर में ही रहा करते थे। उसके बाद रश्मि की शादी हो गयी थी। प्रोफ़ेसर का बाहर आना–जाना बिल्कुल बंद था। अकेले रह गए थे, निम्मी जी को याद किया करते थे। एक रात ऐसे सोए कि सवेरे उठे ही नहीं।

यह सब सुनना अविश्वसनीय था, उनकी सोच से बिल्कुल अलग था। समझ नहीं पायीं कि किस वजह से वे और रश्मि दोनों साथ नहीं रह पाए। उनके इतना करीब होकर भी रश्मि ने किसी और से शादी कर ली। उनकी तबीयत खराब हुई, रिटायर हो गए तो सारे साथ छूट गए। क्या वह सब सिर्फ़ एक आकर्षण भर था। रश्मि ने अपनी गुरु दक्षिणा तो दे दी थी, एक नहीं कई बार फिर वहाँ क्यों ठहर कर रहती। वह तो और युवा हो रही थी और वे और बूढ़े। कब तक उसकी ज़रूरतों को पूरा कर पाते। कविताओं से बहलाने का समय शायद खत्म हो गया होगा।

क्यों वे अपनी निम्मी के पास आने का साहस नहीं कर पाए, क्यों पश्चात्ताप के दो आँसू नहीं बहा पाए, क्यों खामोशी से मौत का इंतज़ार करते रहे। ज़रूर पुरुष के दंभ ने रास्ता रोका होगा, शायद इस बात का भी डर रहा होगा कि निम्मी कहीं मना न कर दे या फिर उनसे नज़रें मिलाने का साहस ही न जुटा पाए होंगे। एक बार सिर्फ़ एक बार कहकर तो देखते कि "निम्मी घर आ जाओ, तुम्हारी जगह और कोई नहीं ले सकता।" सालों बाद उनका अपना प्यारा–सा शब्द ज़बान पर था "सर", आज वे अपने सर को याद करने लगी थीं, अपने दिल की गहराइयों में एक टीस थी – "सर ने बहुत पढ़ा, बहुत पढ़ाया मगर उन दोनों के अपने जीवन की किताब के कई पन्नों को बगैर पढ़े, बगैर समझाए छोड़ दिया।"

hansadeep8@gmail.com

ज़िन्दगी और मौत के बीच की चुप्पी

– श्री तेजेन्द्र शर्मा

लंदन, यू.के.

यादव शर्मा की पत्नी की मृत्यु हो गई है। वह ख़बर सुनकर चुप–सा हो गया है। उसे अपनी ही प्रतिक्रिया समझ नहीं आ रही। पिछले पाँच दिन से काम पर नहीं जा रहा। उसने मौत को बहुत क़रीब से देख लिया था। जीवन विहीन चेहरा... ज़िन्दा इन्सान से लाश तक की उन्नीस मिनट की यात्रा उसने अपने ही स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर देखी और महसूस की थी। दरअसल वह स्वयं इस यात्रा का एक अहम किरदार भी तो है।

उसके शरीर ने प्रतिक्रिया देने से जैसे साफ़ इन्कार कर दिया था। उसे दूसरी तरफ़ से आती हुई यादव शर्मा की आवाज़ किसी एअरपोर्ट या रेलवे स्टेशन की उद्घोषणा जैसी ही लगी। वह जानता है कि अपने मित्र की पत्नी के दाह संस्कार में शामिल नहीं हो पाएगा। इस समय केवल मृत्यु को जी रहा है। मृत्यु जीवन का अन्त है या सोच की शुरुआत? इस समय उसे यादव शर्मा की पत्नी की मृत्यु झिंझोड़ नहीं पा रही, क्योंकि

वह पहले से ही एक अनजान मनुष्य की लाश से जूझ रहा है।

ज़ाहिर है कि यादव शर्मा की पत्नी ने भी बहुत कष्ट सहे होंगे। उसे डायबिटीज़ की बीमारी थी। दाएँ घुटने के नीचे की टांग को काट देना पड़ा था। गैंगरीन हो चुका था। उसने अंतिम बार उन्हें उनके पुत्र के विवाह पर देखा था। चेहरा पहचान में नहीं आ रहा था। कितनी कमज़ोर हो चुकी थीं। याद आ गई उनसे पैंतीस वर्ष पुरानी पहली मुलाकात। कितनी युवा थीं, खूबसूरत, उनकी चाल में एक ठसक थी और अब एक टांग कट गई और फिर दुनिया से विदा भी ले ली। यादव शर्मा का जीवन तो पहले ही एक टांग पर चल रहा था, अब तो शायद रुक–सा गया है।

रिश्ते इन्सान को ताक़त भी देते हैं और अपनी अनुपस्थिति से जर्जर भी कर देते हैं। पति–पत्नी और एक पुत्र का छोटा–सा परिवार अपनी गति खो चुका था। यादव शर्मा को अपनी पत्नी के हाथ का खाना बहुत पसन्द था। कई बार यादव शर्मा के दफ़्तर में जाकर वह भी उस खाने का स्वाद चख़ चुका है। कमल ककड़ी की सूखी सब्ज़ी और अचार दोनों पर उन्हें महारत हासिल थी। फ़ोन की दूसरी तरफ़ उसे यादव शर्मा का चेहरा बार–बार टूटता–सा दिखाई दे रहा था। उसकी आँखों से यादव शर्मा की पत्नी की पहचान जैसे गायब हुई जा रही थी।

उसे यादव का नाम हमेशा चक्कर में डाल देता है। वह यादव भी है और शर्मा भी, दरअसल उसका पूरा नाम यादव चन्द्र शर्मा है। अपने जीवन में इस नाम वाला दूसरा कोई इन्सान उसने नहीं देखा है।

यादव शर्मा के घर पहुँचना भी किसी भूल–भुलैया से कम नहीं है। हैरो से ऑस्टरली तक न तो कोई सीधी बस ही जाती है और न ही कोई मेट्रो ट्रेन। उसने अपने मित्र गूगल से पूछा कि कैसे पहुँचा जाए। कोई सीधा रास्ता नहीं, फिर भी सबसे छोटा रास्ता लगा कि 140 नम्बर की बस पर हैरो से नॉर्थहोल्ट और वहाँ से 120 नम्बर की बस लेकर ऑस्टरली पहुँचा जाए। यादव शर्मा ने प्यार जताते हुए कहा कि भाई मेरे आप 'वेस्ट ड्रेटन' के बस स्टॉप पर उतर जाना, वहाँ से मैं आपको ले लूँगा।

सड़क पर ही दोनों एक दूसरे के गले लग गये। यादव भी दुख से उबरा हुआ लग रहा था। कम से कम ऊपरी तौर पर तो ऐसा ही लग रहा था। यादव अपनी मर्सिडीज़ लेकर आया था।

उसे यह देखकर अच्छा लगता है कि उसके सभी दोस्तों के पास मर्सिडीज़ या बी.एम.डब्ल्यू. कारें हैं। मगर उसके पास कार है ही नहीं। उसे लन्दन में कार की ज़रूरत ही महसूस नहीं होती। वह बड़ी शान से कह देता है, "भाई हम तो रेलगाड़ी के मालिक हैं। भला हमें क्या ज़रूरत है कि हम कार जैसी बेकार चीज़ के लिए पैसे खर्च करें।"

यादव शर्मा उसे अपने घर ले गया था। न जाने क्यों वह किचन की तरफ़ देखने लगा। महसूस हुआ कि अभी भाभी आकर पूछेंगी "की हाल है भाई साब? तुसी आजकल आंदे नहीं।... ते बिटिया आजकल की कर रही है?" भाभी, जब कभी भी मिलती थी ये उनके तयशुदा सवाल होते थे। बत्तीस साल की पहचान है यादव से उसकी। इतनी लम्बी पहचान में न तो वे लंगोटिया यार बन पाए और न ही अजनबी रहे। एक दूसरे के दर्द को समझने वाले मित्र, एक दूसरे के साथ खड़े होने वाले मित्र, यादव हमेशा उसकी प्रशंसा करता है कि उसने बहुत जल्दी भारतीय समुदाय में अपनी एक पहचान बना ली है।

न तो यादव ही अपनी पत्नी के बारे में बात कर रहा है और न ही वह स्वयं। अचानक यादव बोल पड़ता है, "उनकी दाईं टांग में गैंगरीन हो गया था। उनकी टांग भी काटनी पड़ी। दरअसल ज़बरदस्त डायबिटीज़ थी उनको, ज़ख़्म कभी भरा ही नहीं।" यादव स्वयं भी भूल जाता है कि वह यह बात कितनी बार बता चुका है। उसके लिए पत्नी की टांग कट जाना एक दु:स्वप्न से कम नहीं था। शायद पत्नी की मृत्यु से कहीं अधिक।

यादव किचन में दाख़िल हुआ और स्वयं चाय बनाने लगा, "यार आज तो कमाल ही हो गया। मैं तो तुम्हारे लिए साउथ हॉल से समोसे लाया ही था, बेटा

भी हाउंसलो से समोसे और पकौड़े ले आया है। आज तुम्हारी डबल पार्टी है।"

कोई पत्नी की मृत्यु पर अफ़सोस जताने आया है और यादव उसे डबल पार्टी खिला रहा है। क्या इतनी जल्दी सभी घाव भर गये। पुत्र तो बाक़ायदा हंस बोल रहा है। वह तय नहीं कर पा रहा है, एक तरफ़ तो वह स्वयं सबको कहता फिरता है कि हमें अंग्रेज़ों से सीखना चाहिए कि मृत्यु का उत्सव कैसे मनाया जाता है। और दूसरी तरफ़ यादव शर्मा और उसके पुत्र को देखकर आश्चर्यचकित हो रहा है।"

यादव की बातों में वह अपनी बत्तीस वर्षीय मित्रता की गहराई महसूस कर रहा है, "सुनो यार, एक काम करते हैं आज तुम्हें अपने घर के पीछे वाले खेतों में लेकर चलता हूँ।" यहाँ लन्दन के बीचों–बीच भी खेत मौजूद हैं। और उसके बाद ऑस्टरली पार्क।

यादव उसे अपने घर के साथ वाली पतली सी कच्ची गली में से सचमुच के खेतों में ले जाता है। फिर एक चौड़ी–सी सड़क से गुज़रता हुआ एक विशाल से पार्क में पहुँच जाते हैं दोनों।

ऑस्टरली पार्क, एक अद्‌भुत नज़ारा है। ज़िन्दगी के सभी तत्त्व मौजूद हैं, चमकता हुआ सूरज, ख़ूबसूरत झील, बालों से खेलती हुई हवा, हल्की–हल्की गीली मिट्‌टी और ऊपर नीला आसमा, हंसते बोलते चलते परिवार, अंग्रेज़, अश्वेत, भारतीय, चीनी, सभी उन पलों का आनन्द उठा रहे हैं। हमारे साथ चीकू भी है, यादव का प्यारा–सा कुत्ता। "आजकल यह मोटा हो रहा है, थक बहुत जल्दी जाता है!"

कुत्ता भी थक जाता है, भला वह ऐसा कभी क्यों नहीं सोच पाया। यह कुत्ते पालने के शौक भी तो अमीरों के चोंचले हैं, मगर यादव तो कोई ऐसा अमीर नहीं है। मिडल क्लास का ही बन्दा है, यादव अमीर है या नहीं, यह कुत्ता तो देखने में खाते पीते घर का लगता है। कभी किसी ज़माने में करता होगा घर की रखवाली, आजकल तो नख़रे उठवा रहा है।

सामने से एक अंग्रेज़ लन्दन अण्डरग्राउण्ड की यूनिफ़ॉर्म पहने चला आ रहा है। उसे देखते ही यादव की आँखों में पहचान उभरी, "ग्रेग काम पर आ रहे हो या जा रहे हो?"

"अभी ऑस्टरली स्टेशन जा रहा हूँ। वहाँ से एअरपोर्ट, आज लेट शिफ़्ट है।"

"ग्रेग यह मेरे दोस्त हैं, यह भी अण्डरग्राउण्ड में काम करते हैं"

"नहीं नहीं ग्रेग, मैं ओवरग्राउण्ड में हूँ, ट्रांसपोर्ट ऑफ़ लन्दन"

"चलो यार कोई बात नहीं, अपना माई बाप तो एक ही है, बॉरिस जॉन्सन, दि ग्रेट मेयर ऑफ़ लन्दन।"

यादव शर्मा और ग्रेग शायद रोज़ मिलने वालों में से हैं, हाँ हाँ एअरपोर्ट पर एक दूसरे को दिखाई दे जाते होंगे।

वह भी तो उसे प्रतिदिन अपने स्टेशन पर आते–जाते देखता था, आँखों में पहचान भी बन चुकी थी, एक दूसरे को देखकर आँखें आपस में नमस्कार कह लेतीं, अंग्रेज़ आँखें, भारतीय आँखें, कहीं कोई असमंजस नहीं, बस पहचान... होने का अहसास। उसका नाम पता चला भी तो उसकी मृत्यु के बाद।

केविन नाम था उसका, अब पता भी चला तो क्या फ़ायदा, इस नाम से उसे पुकार तो पाएगा नहीं। अपराध बोध हमेशा सालता रहेगा कि उसे बचा नहीं पाया। क्या इन्सान के हाथ में है जीवन और मृत्यु? क्या उसने हर संभव प्रयास नहीं किया कि केविन को बचाया जा सके? लगता है उसी से कोई कमी रह गई थी।

पूरे स्टेशन पर सी.सी.टी.वी. कैमरे लगे हुए हैं। अधिकारियों ने हादसे को हर कोण से देखा। बार–बार रिवाइण्ड और फ़ास्ट फ़ॉर्वर्ड करके देखा, फिर उसे ईमेल के ज़रिये शाबाशी भी दी कि उसने बहुत सलीके से अपने काम को अंजाम दिया। मगर क्या इतना ही काफ़ी है? उसे क्यों यह अहसास खाए जा रहा है कि केविन को बचाया जा सकता था, वह बार–बार अपने दिमाग की फ़िल्म रिवाइण्ड करके देखता है, सोचता है।

ग्रेग बाय करता हुआ आगे बढ़ गया। यादव अपने चीकू को पुचकारने लगा है। चीकू रुक–रुककर अपने

शरीर को कुछ अजीब ढंग से खींच रहा है। शायद अपने शरीर के पुट्ठों में दर्द महसूस करने लगा है। कहते हैं न कुत्ते दूर से मौत की उपस्थिति पहचान लेते हैं। उनके रोने की आवाज़ें सुनाई देती हैं। रात को कुत्ते के रोने की आवाज़ वातावरण को भयानक बना देती है। कभी–कभी हैरानी होती है, यह कुत्ते के रोने की आवाज़ कभी लन्दन में सुनाई नहीं दी। क्या लन्दन के कुत्ते मौत को पहचान नहीं पाते या फिर केवल गलियों के आवारा कुत्ते ही मौत को महसूस कर सकते हैं।

स्टेशन पर तो किसी कुत्ते के रोने की आवाज़ नहीं सुनाई दी। फिर भी वहाँ मौत पहुँच गई। केविन तो चला गया, मगर वह स्वयं चार दिन तक मौत से जूझता रहा। उसकी रीढ़ की हड्डी में मौत की ठण्डक जैसे पसर गई है। काम पर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा। रह–रहकर उसे यही ख़याल कोंचता रहता है कि प्लेटफ़ॉर्म नम्बर दो की दूसरी बैंच पर बैठा एक ज़िन्दा बात करता आदमी कैसे एक लाश में परिवर्तित हो गया था। उसका अपना शरीर रह–रहकर झुरझुरी ले उठता है। पूरा सप्ताह काम पर नहीं लौट पाया। ब्रिटेन में रहने का सुख भी है कि यहाँ इन्सान के जज़्बात को न केवल समझा जाता है, बल्कि उसे काउंसलिंग की सुविधा भी है। उसकी कम्पनी ने ही उसे काउंसलिंग के लिए भेजा। उसके मन से अपराध–बोध मिटा पाना आसान नहीं है।

वैसे यादव शर्मा ने भी तो पिछले फ़ोन के दौरान बताया था कि उसकी पत्नी हस्पताल में हैं। उसे गैंगरीन हो गया था और दाएं घुटने के नीचे से पूरी टांग काटनी पड़ गई थी। डायबिटीज़ बहुत बढ़ चुकी थी... करीब सात महीने से अस्पताल के चक्कर लगाते–लगाते यादव थक चुके थे। उन्हें अपने पुत्र का विवाह भी अचानक ही तय करना पड़ा था। डॉक्टरों ने पत्नी को बस कुछ महीने दिये थे। समय तेज़ी से निकल रहा था, अभी जीवन की दोपहर में ही अमावस की काली रात का सा सन्नाटा महसूस होने लगा था।

मगर आज लगता है कि यादव शर्मा उस दर्दनाक हादसे से बाहर आ चुके हैं। क्या इतना ही आसान होता है मौत की ठण्डी भयानक पकड़ से छूट पाना। ऑस्टरली पार्क की झील, उसमें तैरती बतखें और हंस, नीला पानी, नीला आसमान, ऊपर चमकता सूरज और वातावरण की ठण्डक, ऐसे ही तो बनता है पिक्चर पोस्ट कार्ड। यादव शर्मा अपनी हर बात हँसी से शुरू करता है। उसके चरित्र की विशेषता है कि वह अपने आप पर भी हंस लेता है और हालात पर भी। बहुत बार तो उसकी बात ही "हे..हे..हे..." से शुरू होती है।

अचानक यादव शर्मा एक गाइड बन जाता है। ऑस्टरली पार्क का इतिहास बताने लगता है और उसे अठारहवीं शताब्दी में ले जा खड़ा कर देता है। वहाँ के टी–रूम में जाकर दोनों 'कॉफ़ी–लाते' पीते हैं। चीकू को शायद अब कूं कूं करने में भी मेहनत पड़ती है, बस गुड़मुड़–सा होकर वहीं साथ में बैठ जाता है।

वह सोचने लगता है कि क्या इस माहौल में यह ज़रूरी है कि यादव शर्मा उसे ऑस्टरली पार्क का इतिहास बताए। कॉफ़ी के दौरान कुछ समय के लिए चुप्पी–सी छा गई है। वह अपनी कॉफ़ी में एक पैकेट 'स्वीट अण्ड लो' डालकर उसे लकड़ी के चम्मच से हिला रहा है। आजकल चाय–कॉफ़ी में चीनी नहीं लेता। पिता को शूगर की बीमारी थी, डरता है।

"यार एन.के., एक बात बताओ" बस इतना कहकर यादव शर्मा चुप हो गया।

"बात तो पूरी करो यार।"

"वो क्या है कि घर वाले पीछे लग गये हैं कि दूसरी शादी कर लूँ। अब इस उमर में, हे हे हे...!"

"तुम्हारे घर में और कौन कौन है जो शादी के लिये दबाव डाल सकता है?"

"मम्मी हैं ना, फिर बड़े भाई साहब भी हैं। मगर मुझे नहीं लगता कि मैं करने वाला हूँ।"

वह सामने तैरते हुए हंसों के जोड़े और बतखों को देखते हुए थोड़ा दार्शनिक–सा हो गया, "देखो यादव भाई, अगर किसी की पहली शादी सफल और सुखी हो, जैसे कि तुम्हारी थी, तो वह दूसरी शादी करने से हमेशा कतराएगा। क्योंकि वह अपनी दूसरी पत्नी की तुलना अपनी पहली पत्नी से करता रहेगा। और अगर

किसी की पहली शादी लड़ाई और कलह की भेंट चढ़ गई हो, तो भला वह क्यों दोबारा उस झंझट में पड़ना चाहेगा?" यादव शर्मा एक बार फिर अपने चीकू के साथ हल्की–सी मस्ती में जुट गया था।

आज की दोपहर कितनी खुशनुमा है, मगर उस दिन...

उस दिन वह दोपहर की शिफ़्ट में काम कर रहा था। बारह बजकर बाईस मिनट पर शिफ़्ट की शुरूआत थी। लन्दन में सूर्य चमक रहा था। हैच-एण्ड स्टेशन का प्लेटफ़ॉर्म नम्बर एक सूर्य की रोशनी से दमक रहा था। वहाँ से रेलगाड़ी लन्दन यूस्टन तक जाती है। रास्ते में सभी स्टेशनों पर रुकती हुई। बीच में हैरो एंड वील्डस्टोन, वैम्बले सेन्ट्रल, विल्ज़डन जंक्शन और क्वीन्स पार्क जैसे महत्त्वपूर्ण स्टेशन भी आते हैं। इस प्लेटफ़ॉर्म पर फूलों की खूबसूरत क्यारियाँ बनी हुई हैं। केविन काम पर जाने के लिए इसी प्लेटफ़ॉर्म का इस्तेमाल करता था।

प्लेटफ़ॉर्म नम्बर दो पर छाया थी। आज पहली बार छाया हो, ऐसा भी नहीं था, मगर आज की छाया, मौत की छाया बनकर आई थी। अपनी आदत के मुताबिक़ जब–जब रेलगाड़ी प्लेटफ़ॉर्म पर आकर रुकती है, वह अपने बुकिंग ऑफ़िस से बाहर आकर गेटलाइन पर खड़ा हो जाता है। आते–जाते मुसाफ़िरों के साथ हंसी मज़ाक, चुहल करता रहता है। उसके स्टेशन पर आ जाने के बाद से यात्रियों को भी बेहतर महसूस होने लगा है। उन्हें कई बार विश्वास ही नहीं होता है कि यह लन्दन का कोई स्टेशन है, क्योंकि यहाँ का एक स्टाफ़ मेम्बर गुड मॉर्निंग भी करता है; हाथ भी मिलाता है; मुस्कुराकर बात भी करता है, जैसे किसी छोटे कस्बाई इलाक़े का स्टेशन हो।

अपनी शिफ़्ट के टाइम को लेकर वह हमेशा सोच में पड़ जाता है। यह सोचकर मुस्कुरा देता है कि शिफ़्ट शुरू होती है बारह बजकर बाईस मिनट पर और समाप्त होती है रात आठ बजकर सत्ताइस मिनट पर। कभी समझ नहीं पाता कि यह शिफ़्ट बारह बजकर पच्चीस मिनट से शुरू हो कर रात आठ बजकर तीस मिनट तक क्यों नहीं चल सकती। वह रेलवे की बहुत–सी बातें नहीं समझ पाता। मगर फिर अपने सिर को एक हल्का–सा झटका देता है और काम में व्यस्त हो जाता है। सीटी बजाकर हिंदी फ़िल्मों के गीतों की धुन बजाना उसका प्रिय शगल है।

वह आते–जाते मुसाफ़िरों के चेहरे पढ़ने का प्रयास करता रहता है। शाम को पाँच बजकर ग्यारह मिनट की गाड़ी से एक महिला लाल रंग का रेनकोट पहने उतरती है और तीर की मानिन्द दरवाज़े से निकलते हुए ऑयस्टर गेट पर लगाकर ये जा और वो जा करती अदृश्य हो जाती। सुबह जाते हुए वह भी गुड मॉर्निंग करती है, मगर शाम को न जाने उसे क्या हो जाता है।

ठीक इसी तरह वह केविन को भी रोज़ देखा करता था। अपनी अण्डरग्राउण्ड रेलवे की यूनिफ़ॉर्म पहने। हमेशा उसकी तरफ़ देखकर मुस्कुराता था केविन। वैम्बले सेन्ट्रल स्टेशन पर काम करता था। उसकी पत्नी भी रेलवे में ही थी। क्वीन्स पार्क स्टेशन पर कार्यरत। बिल्कुल अपने पति की तरह लम्बी चौड़ी, मगर उसे स्वयं मालूम नहीं था कि केविन और एलीना पति–पत्नी हैं। वैसे दोनों के लिए अलग–अलग पहचान ज़रूर बन चुकी थी आँखों में। जैसे एक रिश्ता–सा कायम हो गया था।

रिश्ते निभाने में तो माहिर है यादव शर्मा। एअरलाइन के बहुत से कर्मचारियों के साथ बीस–बीस साल से दोस्ती है। यह उसी की इस आदत का नतीजा है कि वे दोनों आज प्रकृति की सुन्दरता का रसपान करते ऑस्टरली पार्क में साथ–साथ चल रहे थे। "तुम्हें पता है न वेद जी को भी कैंसर हो गया है। गले में है, बहुत ही अजीब–सी जगह पर है। उनका पूरा जबड़ा काटकर दोबारा फ़िट करना पड़ेगा।"

एक बार फिर मौत की सोच, यह मौत बार–बार क्यों उन दोनों के बीच आकर खड़ी हो जाती है, कैंसर हुआ है तो वेद जी को भी बुलावा आया ही समझो। वेद जी रिश्ते में यादव शर्मा के बड़े भाई जैसे हैं। एम.बी.ई. हैं, कम्यूनिटी में उनकी सेवाएँ एम.बी.ई. तक तो ले आईं

मगर कैंसर से कैसे छुटकारा दिला पातीं।

पास की झील से बत्तख़ों की आवाज़ें सुनाई देने लगी हैं। छोटे–छोटे बच्चे भी आपस में बातें कर रहे हैं। वह देखता है कि अंग्रेज़ जब परिवार के साथ होता है तो बहुत धीमे सुर में बात करता है। मगर जब गुस्सा होता है, तो गालियाँ भी मोटी–मोटी देता है। सूरत के पारसी भी शायद हार मान जाएँ। यहाँ भी अन्तर पीढ़ियों का है। मारग्रेट थैचर के बनाए कानून के बाद की पीढ़ी गालियों का इस्तेमाल तो ऐसे करती है जैसे कि सांस ले रही हो। वहाँ नज़दीक ही एक हैल्प पॉइण्ट भी बनाया गया था। किसी को किसी भी तरह की सहायता की आवश्यकता हो।

वह स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म नम्बर दो के इन्फ़ॉर्मेशन 'हेल्प पॉइण्ट' का बटन दबाकर टेस्ट कर रहा था कि वह काम कर रहा है या नहीं। वह 'गेटलाइन' पर वापिस लौटा ही था कि एक औरत केविन को सहारा देते हुए वहाँ तक लाई। उसने देखा कि केविन की दाईं आँख के नीचे गाल पर चोट लगी है और हल्का–सा लहू बह रहा है। उसका चेहरा पीला–सा पड़ता दिखाई दे रहा था।

यादव शर्मा बता रहा था कि भाभी को करीब सात महीने तक अस्पताल में रहना पड़ा था। वह रोज़ अपनी पत्नी को मरते देखता था। मौत का असर शायद उस पर इस कदर छा चुका था कि जब उसकी पत्नी की असल में मृत्यु हुई, उसे कोई गहरा झटका नहीं लगा। पत्नी भी अकलमन्द थी। उसने जायदाद के सारे कागज़ात पर पहले ही हस्ताक्षर कर दिये थे। अपने पुत्र का विवाह भी उन्होंने ज़बरदस्ती जल्दी करवाया था। यादव जानता था कि स्थिति कितनी गंभीर हो चुकी है।

वे दोनों चले जा रहे थे एक दूसरे से मौत के बारे में बात करने से अभी भी बच रहे थे। चेहरों पर गंभीरता आती भी थी मगर जल्दी ही उसे दूसरी राह दिखा दी जाती थी, "एन.के. तुम्हें याद है एक परसर हुआ करता था तुम्हारे साथ राम महाजन?"

"हां हां, वो तो मेरा ही बैचमेट था। उसने एक एअर होस्टेस से शादी भी कर ली थी। वह तो फ़्लाइंग सीखकर पाइलट बन गया था।"

"हाँ, हाँ! कल वही आ रहा है। डायरेक्टर ऑफ़ ऑपरेशन बन गया है।"

"अगर उसकी पत्नी उसका साथ न देती तो अभी ज़्यादा से ज़्यादा चैक परसर तक ही पहुँचता।"

"मगर हैरानी की बात यह है कि दोनों में तलाक़ हो गया है। जब तक संघर्ष के दिन थे, तब तक तो पत्नी की ज़रूरत रही मगर जैसे ही कमाण्डर बना, बस, ज़िन्दगी कहाँ समझ आती है एन.के.।"

यहाँ हैच–एण्ड स्टेशन पर वह भी समझ रहा था कि मामला गंभीर है। उसने जल्दी से गेट को चाभी से खोला और केविन को अन्दर प्लैटफ़ॉर्म नम्बर दो पर लगे बैंच पर बिठा दिया। वह भागकर अपने बुकिंग ऑफ़िस में पहुँचा और एम्बुलेंस का नम्बर मिलाया। एम्बुलेंस का नम्बर तो जल्दी ही मिल गया मगर वे इस तरह के ऊलजलूल सवाल पूछने में वक़्त ज़ाया करते हैं कि सामने वाला कोफ़्त से भर जाता है, "क्या यात्री जीवित है, क्या वह सांस ले रहा है, क्या उसके सिर पर चोट आई है, क्या उसका रंग पीला पड़ चुका है या फिर नीला पड़ गया है, क्या उसकी सांस नॉर्मल है, क्या वह चल सकता है, क्या वह करवट बदल सकता है, क्या वह बोल पा रहा है, क्या खून बह रहा है?"

वह सोचता है कि क़ायदे क़ानून भी किसी न किसी इन्सान ने तो बनाए ही होंगे। अगर यह महत्त्वपूर्ण पल अगर व्यर्थ न गँवाए जाएँ, तो शायद मरीज़ की जान बच सकती है। मगर एम्बुलेंस वालों की सोच अलग ही है। वे अपना यूनिट वहाँ भेजने से पहले पक्का कर लेना चाहते हैं कि उन्हें किस स्तर के पैरामैडिक्स वहाँ भेजने चाहिए। सच तो यह है कि यदि हम क़ायदे कानूनों पर चलने लगें, तो विश्व भर की सभी संस्थाओं का चक्का जाम हो सकता है। तभी तो हर कम्पनी के कामगरों का पहला हथियार होता है नियमों के अनुसार काम। यानी कि अगर कामगर नियमों के अनुसार काम करने लगें तो अधिकतर कम्पनियाँ बन्द होने की कगार पर आ जाएँ।

एअरलाइन में एक नया नियम आया था, तभी तो वह समय से पहले ही रिटायरमेण्ट ले पाया। अभी तो पैंतालीस का ही था। थक गया था अपनी नौकरी से,

उसके भीतर का कलाकार उसे बार–बार ललकारता था कि कहाँ फँस गया, छोड़ यह नौकरी और कर कुछ ढंग का काम।

यादव शर्मा ने ही उसे लन्दन में बसने में सहायता की थी। बी.बी.सी. में समाचार वाचक के तौर पर आया था। यादव बहुत गर्व से कहता था, मेरा यार बी.बी.सी. में काम करता है। समस्या एक ही थी कि बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस रेडियो लन्दन में नहीं सुना जा सकता था। शॉर्ट वेव पर केवल भारत में ही सुनाई देता था। कुछ लोग तो इसका मज़ाक भी उड़ाते थे – बिहार ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन। तीन साल में ही दुखी हो गया था, भारत से कहीं अधिक चमचागिरी यहाँ भारतीय भाषा के सेक्शन में थी। उसे घुटन होने लगी थी। अगर बात ज़िन्दगी और मौत पर आ जाए, तो कठोर निर्णय लेने ही होते हैं। वह भी बी.बी.सी. छोड़कर रेलवे में ट्रेन ड्राइवर बन गया, एक नई चुनौती।

फिर ज़िन्दगी और मौत के इस खेल में भला क्यों वे इतने क़ायदे क़ानून बीच में ले आते हैं। हाँ उसे कुछ तो करना होगा, केविन के चेहरे के रंग की लाली आहिस्ता–आहिस्ता ग़ायब होती जा रही थी। उसकी जगह नीलापन लिए पीला रंग चेहरे पर छाया जा रहा था। उसके मुंह से बस बुड़बुड़ाहट–सी सुनाई दे रही थी "प्लीज़ मुझे बचा लो, मुझे बचा लो, प्लीज़।"

उसने जल्दी से केविन की टाई ढीली की, स्वैटर की ज़िप खोली और उसके दिल पर अपनी हथेली से मसाज करने लगा। प्लेटफ़ॉर्म पर लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। तमाशबीन तो हर देश और समाज में होते हैं, यहाँ भी थे। सबके चेहरे पर एक ही सवाल दिखाई दे रहा था, क्या हुआ। सब देख रहे थे कि वह केविन को बचाने के लिये संघर्ष कर रहा है। मगर फिर भी जानना चाहते थे। इतने में प्लेटफ़ॉर्म नम्बर दो पर एक गाड़ी आकर रुकी। अब ज़ाहिर है कि उसमें से यात्री उतरेंगे भी और चढ़ेंगे भी। लोगों का घेरा बढ़ता जा रहा था। उस समय वह स्टेशन को अकेला संभाले हुए था, शनिवार को वैसे भी बुकिंग ऑफ़िस में वह अकेला ही होता है, गेटलाइन पर कोई नहीं रहता।

उसके मन के भीतर का भीरू इन्सान लन्दन में भी शनि के बारे में सोचने लगा था। मगर यहाँ के समाज में तो शुक्रवार और तेरह तारीख़ को अशुभ मानते हैं। इन्सान भला अपनी परवरिश से कैसे मुक्ति पा सकता है। केविन का नीला पीला होता चेहरा उसे चेतावनी दे रहे थे। ऐसे में एक कमीना–सा ख़याल उसके दिल में आया, अब तो उस ख़याल को कमीना ही कहा जा सकता है। उसने सोचा कि क्यों न अपने मोबाइल फ़ोन से केविन का एक फ़ोटो खींच लिया जाए। यदि बाद में दफ़्तर वालों ने कुछ पूछा तो मेरे पास एक सुबूत तो होगा, फिर अचानक उसके दिल ने उसे धिक्कारा। यह कैसी छोटी बात सोची उसने, इस वक़्त उसका ध्यान केवल केविन की तरफ़ होना चाहिए। केविन को बचाना ही उसका एकमात्र लक्ष्य है।

यादव शर्मा का पूरा ध्यान अब अपने चीकू पर लगा था। चीकू को देखकर साफ़ महसूस हो रहा था कि उसकी सांस फूलने लगी है। यादव शर्मा अपने पुत्र को फ़ोन कर रहे थे। फिर वही चिरपरिचित हँसी। यह इन्सान कभी परेशान होता ही नहीं क्या?

परेशानी में एक महिला और एक पुरुष यात्री उसकी सहायता कर रहे थे। वे केविन से किसी तरह संबंधित नहीं थे। उसे पाँच साल पहले फ़र्स्ट–एड का एक कोर्स करवाया गया था। याद करने का प्रयास कर रहा था कि दिल का दौरा पड़ने पर क्या–क्या करना चाहिए। वह लगातार अपनी धुंधली पड़ गई ट्रेनिंग से काम ले रहा था। हाथ सधे हुए ज़रूर थे मगर विश्वास से भरपूर नहीं थे। उसे अपने पर झुंझलाहट भी हो रही थी। आख़िर ऐसा क्यों होता है कि किसी इन्सान की ज़िन्दगी की डोर एक दूसरे आदमी के हाथ में अटक जाती है। नहीं ऐसा नहीं होना चाहिए, क्या डॉक्टर उसको बचा लेते?

डॉक्टर तो यादव की पत्नी को भी नहीं बचा पाए। कितनी ठेठ साउथहॉल वाली पंजाबी बोलती थीं वे। और यादव पक्का चांदनी चौक दिल्ली वाला, दरीबे और परांठे वाली गली की भाषा। विवाह के बाद ही लन्दन आया था। यहाँ आकर एअरलाइन में नौकरी शुरू की तो

कभी बदली नहीं, समर्पण यादव के जीवन की पहचान है। रिश्तों के प्रति समर्पित, नौकरी के प्रति समर्पित, यारों के लिए पूरी तरह से समर्पित। उसे अपने बारे में कोई गलतफ़हमी नहीं है। सरलता उसके जीवन का सार है। एक ही पुत्र है, उस एक रिश्ते के लिए जी रहा है। पुत्र और बहू उसके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग हैं। उन्हीं के माध्यम से यादव ने मृत्यु में से भी जीवन के कुछ पल चुरा लिये हैं।

"एन. के. यहाँ एक किसान ताज़ा सब्ज़ियाँ भी लाता है। रुको अभी देखते हैं। वैसी सब्ज़ियाँ सुपर मार्केट में नहीं मिलतीं कभी। उसकी सब्ज़ियाँ ऑर्गेनिक होती हैं।" और यादव शर्मा ने सब्ज़ी वाले को ढूँढना शुरू कर दिया। यादव की सादगी उसके दिमाग से केविन की मौत को बाहर निकाल कर ही दम लेगी। सामने चमकती हुई सब्ज़ियाँ दिखाई दे रही हैं। सफ़ेद गोभी, चमकती गाजरें, शलजम, लीक, ऐस्पैरेगस, प्याज़ और पालक। मशरूम सुन्दर भी हो सकते हैं, पहली बार महसूस हुआ।

मौत का रंग भी तो सफ़ेद होता है। सफ़ेद कफ़न में शरीर लिपट जाता है। जीवन के बाकी सभी रंग उस सफ़ेद कफ़न में सिमट जाते हैं। कुछ ही पलों में मिट्टी में मिल जाती है। चाहे जल के मिले या फिर गल के मिले, मिलना तो मिट्टी में ही है। इन्सान से कितना भी प्रेम क्यों न हो, उसका मुर्दा संभालकर नहीं रखा जाता। मृत्यु एक विराम है, जो रिश्तों को भी विश्राम देती है और चाहत को भी। फिर नये रिश्ते बनते हैं, नई चाहतें पैदा होती हैं। मौत चाहे असाधारण हीरो की या फिर अनजान साधारण ज़ीरो की, शरीर की हालत वही होती है... एक सी। शरीर को गलना है, बू मारना है और अंततः हड्डियाँ ही बचनी हैं। वह हड्डियाँ चाहे गंगा में बहा दी जाएँ या फिर कब्र की शोभा बढ़ाएँ।

मौत से यादव शर्मा भी जूझ रहा था और वह स्वयं भी। यादव शर्मा की मौत में गैंगरीन था, कटी हुई टांग थी और सात महीने का अस्पताल। उसकी मौत में पचास वर्ष का छः फुटा जवान था और हार्ट अटैक था। अचानक उसकी आँखों के सामने दोनों मौतें गडमड हो जाती हैं। केविन की टांग गैंगरीन से कट जाती है और यादव शर्मा की पत्नी को हार्ट अटैक होने लगता है, दोनों लाशें उसे परेशान करने लगी हैं।

यादव शर्मा का बेटा आ गया है, अपनी कार लेकर... मर्सिडीज़ कार में उनका कुत्ता चीकू पूरे अधिकार से जाकर पिछली सीट पर बैठ गया है। अपनी सांसें ठीक कर रहा है। बेटा अपने पिता से शिकायत भरे लहज़े में पूछता है, "आपको मालूम तो है कि चीकू इतनी दूर तक नहीं चल सकता, फिर आपने रिस्क क्यों लिया?"

"कुछ नहीं मैंने सोचा कि चलो आज ट्राई कर लेते हैं। और हाँ अंकल खाना घर पर ही खाएँगे"

"कोई बात नहीं, राजमा चावल बने हुए हैं। बाहर से तन्दूरी रोटी और सब्ज़ी ले आता हूँ। अंकल तो लहसुन प्याज़ खा लेते हैं ना?"

वह चीकू को देखे जा रहा है, यादव शर्मा और उसके पुत्र की बातें उसे बिल्कुल सुनाई नहीं दे रही हैं। चीकू की हालत देखकर उसे लगता है कि उसकी टांग में गैंगरीन हो रहा है, उसकी टांग कटने वाली है, नहीं नहीं, चीकू का हार्ट फ़ेल हो रहा है, मगर मौत तो कुत्ते के रोने से होती है। किन्तु अगर मरने वाला कुत्ता स्वयं हो तो कौन रोएगा?

अब वह ज़िन्दगी और मौत के बीच की चुप्पी को महसूस कर रहा है।

tejinders@live.com
kathauk@gmail.com

दोनों आसमानों के रंग

— ज़किया ज़ुबैरी
लंदन, यू.के.

"अम्मीजान...! आज इस तारीख को लिख लें और मन में बैठा लें कि 'मैं सरदार अमजद अली ख़ान, ख़ुदा को हाज़िर–ओ–नाज़िर जानकर पाक परवरदिगार के सामने आपकी क़सम खाकर कहता हूँ कि जब तक निन्नानवे हिन्दुस्तानी नहीं मार लिए चैन से नहीं बैठूँगा। अल्लाहपाक के निन्नानवे नामों के हर एक नाम पर एक एक हिन्दू गिराऊँगा। अम्मीजान आप भी क़सम खाइये कि किसी भी वजह से अगर मैं ऐसा न कर सका, तो आप भी मुझे अपना दूध माफ़ नहीं करेंगी।"

''बेटा ऐसी नफ़रतों से क्या कभी कोई काम बना है...! कोई फ़ायदा नहीं ऐसे जज़बाती फ़ैसलों का। हमें तुम्हें क्या मालूम वहाँ इतनी ऊँचाई पर अकेले पड़े–पड़े जवान खून उस ठंडक में भी इतना गरम और ज़ालिम क्यों हो जाता है, जो दरिंदों की तरह एक दूसरे को खा जाते हैं।''

उस छोटे–से घर की एक–एक वस्तु जैसे डोल गई। ताक़ पर रखे कलामे–पाक के वरक़ काँप गए। बिजली के बल्ब की रोशनी जैसे मद्धम होकर जलने बुझने लगी। सरदार अमजद अली ख़ान की सोच की तरह हर ओर वीरानी और अन्धेरा–सा छा गया। मगर सरदार की सरदारियत में रत्ती भर भी लचक न पैदा हो सकी।

"माँ तुम माएँ हिन्दुस्तानियों की ज़्यादतियों और मज़ालिम को ऐसे ही माफ़ करती रहीं, तो उन बेईमानों ने जो छोटा–सा हिस्सा हमारे देश के नाम पर हमको अपना देश बनाने को दिया है, वह भी वापस हड़प जाएँगे। हमारे देश के वजूद को सफ़हे–हस्ती से मिटा देंगे। हिजरत में हम मुसलमानों का कितना खून बहा है। एक–एक का बदला गिन–गिन के लूँगा।"

"बेटा ख़ून तो दोनों ओर का बहा है। और दोनों के ख़ून का रंग भी लाल ही था। हाथ, पैर, कान, नाक, रंग, मिज़ाज, खाना, पीना सभी तो एक ही जैसा था!"

"अम्मीजान आप नहीं बदल सकतीं। अपनी ही सी बोले जाएँगी। अब कान खोलकर सुन लीजिए, मेरा तबादला कश्मीर का हो गया है और मैं जा रहा हूँ। देख लूँगा हिन्दुस्तानी पंडितों को, कैसे नहीं छोड़ते हमारा कश्मीर!"

बंटवारे के वक़्त से बन्दरबाँट कर के बैठे हैं। हमारे देश का इतना बड़ा–सा हिस्सा हथिया लिया और अब हमारा कश्मीर भी हड़प कर लेना चाहते हैं। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। हरगिज़ नहीं। कभी भी नहीं। बस कह दिया नहीं... नहीं... नहीं... । अमजद अली पागल हुआ जा रहा था।

"वो क्या हड़प कर लेंगे। तुम्हारे जैसे लोग ही तो चले थे अपना एक नया संसार बसाने, उन लोगों ने तो नहीं कहा था अलग हो जाने को। अक्ल है तो आप ही देख लो क्या बना लिया है अपने देश को।"

"बस अम्मीजान बस। मेरी बीवी और मेरा बेटा, मेरी अमानत का ख़याल रखियेगा। मैं अब नहीं रुकने वाला।"

"और मेरी अमानत का ख़याल कौन रखेगा? मेरे जिगर के टुकड़े का? मुझ विधवा ने अकेले पूरी ज़िंदगी तुझे पाल पोसकर बड़ा किया और आज तू इस बुढ़ापे में हम सब को अकेला छोड़कर चला जा रहा है!"

"अम्मी जान ऊपर खुदा है, वो देखभाल करेगा आप सब की।"

सरदार अमजद अली ख़ान चल दिया। अपनी अंतरात्मा को मारकर, माँ से कड़वी–कसैली बातें बघारकर कश्मीर आज़ाद कराने। बीवी और बेटे को रोता बिलखता, बूढ़ी माँ की लाठी बनने के बजाय, बन्दूक उठाकर अपने परिवार की देखभाल की ज़िम्मेदारी माँ के बूढ़े कन्धों पर लादकर, अपने जुनून की पूर्ति करने, निन्नानवे हिंदुस्तानी मारने, नफ़रतों का थैला अपने जिस्म–ओ–दिमाग़ पर लपेटे रवाना हो गया।

ये सब पगला गये हैं। माँ ने एक ठंडी सांस के साथ सोचा। मोटी मलमल के चौड़े से दुपट्टे को पीछे से खींचकर चांदी जैसे बालों को ढांका। घुटने सिकोड़कर उस पर सर को टिकाकर दोनों घुटनों के गिर्द दोनों बाहों को जकड़कर बैठ गईं। दोनों हाथों की उंगलियों को ऐसे एक दूसरे में जकड़ लिया, जैसे अब ये ताला कभी नहीं खुलेगा। मुंह को ऐसे छुपा लिया कि किसी को मालूम न होने पाए कि आज माँ भी टूट गई है। माएँ टूटती हैं, तो न बन्दूक की आवश्यकता होती है और न ही बारूद की। ऐसा तूफ़ान आता है कि गुनाहगारों को चुन–चुनकर बहा ले जाता है। मगर माँ फिर भी बेटे की रक्षा और सलामती की प्रार्थना करती रही। गिड़गिड़ाती रही भगवान के आगे। पूरा शरीर झुरझुरा रहा था, प्रयत्न कर रही थी कि कोई देखने न पाए वरना सब हिम्मत हार जाएँगे। अभी तो बहुत लम्बी यात्रा करनी है उन तीनों को एक दूसरे की लाठी बनकर।

पाँच वर्ष का पुत्र बस एक ही रट लगाए हुए था "अब्बू जी मत जाओ, मत जाओ मेरे अब्बू जी, मुझे साथ ले चलो!" बेटा चीखें मारता रहा, हिचकियों से रोता रहा पर अब्बूजी तो शिकार पर निकल पड़े थे। कमर पर कसी हुई पेटी, जिस्म पर कलफ़ लगी वर्दी, ऐसा महसूस होता था जैसे उसका तमाम वजूद अकड़ गया हो। एक–एक कदम ऐसे ज़मीन पर मार रहा था जैसे अपने ही देश की धरती का सीना चीरकर ढेरों खून से सिंचाई कर देगा।

जाते हुए एक बार भी मुड़कर नहीं देखा उसने। शायद बेटे की हिरणों जैसी सहमी हुई आँखों की ताब न ला सकता हो। माँ की गोद की मुलायम गरमी उसकी क़सम न तोड़ दे। बीवी का जवान जिस्म अपनी ज़ुल्फ़ों में न गिरफ़्तार कर ले।

वह चला गया...

बेटे ने खाना बंद कर दिया...

दुल्हन रानी की आँखों का काजल बह गया...

माँ टूट गई...

सेहन में मोगरे के जो फूल लगे थे, अब वह खिलते और मुरझा जाते, कोई न तोड़ता, न गजरा बनाता और न ही कान के बड़े–बड़े छेदों में ठूँसकर पहनता। कपड़े सुखाने की आँगन में एक सिरे से दूसरे सिरे तक बंधी हुई डोरी, जो कि पहले छोटी पड़ जाती थी अब बड़ी पड़ने लगी थी। पप्पू मियाँ कपड़े टाँगते ही उसके आगे पीछे घूमने लगते, हर कपड़े की ठंडक को गालों से लगाते और अंत में उसके पीछे छुपकर अब्बूजी–अब्बूजी मुझे ढूँढिये, मैं कहाँ हूँ...! नीचे से टाँगें नज़र आ रही होतीं फिर भी अब्बू जी पूरी तरह उसे यक़ीन दिलाते कि कहाँ हो बेटे दिखाई नहीं दे रहे हो और आज कपड़े तो सूख रहे थे पर पप्पू उसके क़रीब भी नहीं गया। दूर से बैठा कपड़ों को देखता रहा। शायद इंतज़ार कर रहा था कि आज उसके अब्बूजान कपड़ों के पीछे से बस अभी निकल आएँगे।

आज अब्बूजी के वापस न आने पर पप्पू ने पूछ ही लिया कि अब्बूजी अभी तक आए क्यों नहीं? क्या मेरे लिए खिलौने लेने गए हुए हैं?

ऐसा सवाल था जिसका जवाब कोई न दे सका...!!

वे खिलौने लेने नहीं, वे जानों से खेलने गए हुए हैं...

अम्मीजान और दुल्हनरानी ने एक साथ यही सोचा पर कह न सकीं।

पप्पू का खाना पीना छूटने लगा। खाना न खाने की वजह से दुबला होता जा रहा था।

"अरे दुल्हन रानी साथ बैठकर अपने हाथ से खिलाओ, तो शायद कुछ तो पेट में पड़ जाएगा, वरना कहीं बीमार न हो जाए। बड़ी मुश्किल होगी। बाप तो निन्नानवे हिन्दुस्तानी मारने के जुनून में गया हुआ है। यहाँ हम औरत–ज़ात जीते–जी मर जाएँगे।"

दुल्हन रानी क्या करती, कैसे खिलाती, मुँह में ठूँस तो सकती थी, पर निगलवा तो नहीं सकती थी। प्यार से, डाँटकर, मारकर, सज़ा देकर हर तरह से कोशिश करती पर पप्पू से खाना खाया ही न जाता। ज़बरदस्ती खा लेता तो उगल देता या नहीं तो दस्त लग जाते। वह रोने लगता, तो यही सवाल उठता कि बाप के चले जाने के कारण ज़हन पर असर हो गया

है। फिर सास–बहू खिलौने दिलवाने की लालच देतीं। बाहर पार्क में ले जाने के वास्ते देतीं, पप्पू सब कुछ हासिल कर लेता पर मन की ऊबकाई को कैसे रोकता। पीला पड़ता जा रहा था। बाप तो ऊँचाई की ओर बढ़ता जा रहा था। हिन्दुस्तानियों के ख़ून का प्यासा अपने अंदर लगी हुई आग को उनके ख़ून से बुझाने। नफ़रत और गुस्सा रोम–रोम से फूटा पड़ रहा था और पाँच बरस का बेटा बाप की याद में किसी तलवार या बन्दूक के बिना ही न मालूम बीमारी की ओर बढ़ता चला जा रहा था। अकेलेपन की बीमारी, बाप से दूरी की बीमारी, बाप की बीमार सोच की बीमारी।

"दुल्हन रानी, बच्चे को किसी बड़े डॉक्टर को दिखाना चाहिए। अगर हमने ऐसे ही पड़ा रहने दिया, तो कहीं लेने के देने न पड़ जाएँ। बाप कश्मीर जीतने गया हुआ है, हम यहाँ इस जिगर के टुकड़े के जीवन से न हाथ धो लें...!"

"अम्मीजान बड़े डॉक्टर के लिए बड़े पैसे भी तो चाहेंगे। और अम्मीजान आजकल तो बड़ा डॉक्टर जो ज़्यादा पैसे माँगे वही समझा जाता है। हमारे देशों में तो डिग्री भी खरीद ली जाती है।

"ऐ मेरे खुदा हम कहाँ जाएँ? किससे मदद माँगें? हम क्यों चले आए अपना घर बार छोड़कर? बड़े चले थे आज़ाद मुल्क बनाने। हम तो इस आज़ाद मुल्क के क़ैदी बनकर रह गए हैं। ये कम्बख़्त व ढेरे ज़मींदार हुकूमत कर रहे हैं। इनको किसी की कोई परवाह ही नहीं। अपने पेट की दोज़ख भरते रहते हैं। अपनी औलाद को खिला–पिलाकर साँड बना देते हैं। बाहर पढ़ने को भेज देते हैं। मुल्क को जो पैसा ख़ैरात में आता है, वहीं वे वापस ले जाकर जायदादें बनाते हैं। वहाँ के बैंकों में छुपाकर रख लेते हैं। जब गद्दी से उतरेंगे तो उसी पैसे से खुद अय्याशी करेंगे। हम यहाँ भूखे मरते रहें। हमारे बच्चे जो हमारी खुशियों की आख़िरी उम्मीद होते हैं, वे या तो कश्मीर जीतने को भेज दिए जाते हैं या नहीं तो बीमारी निगल जाती है उनको।"

"अम्मीजान आप इतनी परेशान न हों, इंशाअल्लाह पप्पू ठीक हो जाएँगे।"

"कैसी मासूमियत की बातें करती हो दुल्हन रानी। बिना इलाज मुआलज़े के तो जानवर भी नहीं सेहतमंद हो पाता है। हिदुस्तान में जब हमारी भैंसें बीमार हो जाती थीं, तो उनको मवेशियों के अस्पताल भेजा जाता था। अगर कुत्ते को चोट लग जाती थी, तो उसको भी हल्दी और साबुन मिलाकर गरम कर के लेप लगाकर पट्टी बाँध दी जाती थी। बिटिया तुम तो अभी बच्ची हो। ना समझ पाओगी इन बातों को। अच्छा चलो फ़ोन लगाओ मेरे बेटे को मैं बात करती हूँ। तमाम सूरतेहाल बताती हूँ। बदबख्त बंदूक उठाकर दूसरों के बच्चों को अनाथ करने गया हुआ है, यहाँ अपना बच्चा ज़िंदगी की बाज़ी हारने लगा है। पीला पड़ता जा रहा है। जैसे सरसों की कोठरी में बंद कर दिया गया हो।"

"दुल्हन रानी मेरा जी घबराने लगा है। ज़रा तीन क़तरे कोरामीन के पिला दो। मैं कोरामीन की दवा तो हिंदुस्तान ही से आने जाने वालों के हाथ मँगवा लेती हूँ। यहाँ तो न जाने क्या–क्या मिला देते हैं। घरों के आंगनों में तो चॉक पीस–पीसकर गोलियाँ बना लेते हैं। मरीज़ गोलियाँ खाता जाता और मौत के दहाने पर खड़ा हो जाता है, तो लेकर भागे फिरते हैं इधर से उधर।"

"अम्मीजान, आपने फ़ोन लगाने को कहा था। मैंने लगाया तो, मगर उठाया नहीं।"

दुल्हन रानी ने अम्मीजान की और कोई बात तो सुनी नहीं। पति से बात करने को तो वह तड़प ही रही थी। जल्दी से फ़ोन मिलाने की कोशिश करने लगीं, पर असफल रहीं। घबरा–सी गई। बुरे–बुरे विचार सताने लगे। कहीं किसी बेगुनाह की जान तो नहीं ले ली? कहीं आप ही ज़ख्मी तो नहीं हो गए? पप्पू ने लेटे–लेटे आवाज़ दी, "अम्मी पानी पिला दो।"

"ऐ दुल्हन रानी बच्चे का पेट खाली है, कुछ मुँह में डाल दो फिर पानी पिलाना।"

"मुझे नहीं खाना है कुछ भी, अम्मी जल्दी से पानी दो, बहुत प्यास लगी है।" ग़टाग़ट ऐसे पानी पी गया जैसे मरुस्थल में बैठा हो। ऐसा प्यासा जैसे वर्षों से पानी न देखा हो। शायद प्यास बाबुल मिलन की थी। बड़ी–बड़ी आँखें पूरे चेहरे पर केवल वही दिखाई दे रही थीं। पाँच

वर्ष के बच्चे की बेरौनक आँखें, आँखों की चमक कहाँ खो गई थी किसी को नहीं मालूम।

हिकमत और आयुर्वेद दोनों में हर बीमारी का इलाज जिगर से शुरू किया जाता है। दुल्हन रानी तेज़–तेज़ क़दम बढ़ाती हकीम जी के आगे–आगे घर की ओर भागती आ रही थीं कि हकीमजी भी तेज़–तेज़ चलें। हकीमजी ऊँचा सफ़ेद पाजामा और उतना ही लम्बा ढीला–ढाला बंद गले का सफ़ेद कुर्ता और सर पर सफ़ेद टोपी ओढ़े लाठी टेकते–टेकते घर के आँगन के दरवाज़े से भीतर आये। हर क़दम पर या–अल्लाह. ..बिस्मिल्लाह... जाप करते जाते। अम्मीजान को ऐसा महसूस हुआ कि कहीं दुल्हन रानी मस्जिद के इमाम को तो नहीं पकड़ लाई हैं।

हकीम जी ने अंदर क़दम रखते ही अम्मी जी को 'अस्सलाम–ओ–अलैकुम हमशीरा साहेबा' कहा, तो अम्मीजान आवाज़ पहचान गईं और उनकी आवाज़ भर्रा गई जवाब देते हुए, रुआंसी आवाज़ में बोलीं "हकीम जी अल्लाहपाक के बाद इस बच्चे की ज़िंदगी आप ही के हाथ में है। ख़ुदारा इस बच्चे को सेहतयाब कर दीजिये। न जाने इस मासूम को किसकी नज़र लग गई है।" उनको यक़ीन था कि हकीम जी के इलाज से उनका पप्पू ज़रूर ठीक हो जाएगा। क्योंकि हकीम जी अल्लाह वाले हैं। उनके हाथ में शिफ़ा तो होगी। उन पर अल्लाह का करम भी होगा।

हकीम जी ने आते ही पप्पू मियाँ से कहा ज़बान दिखाइएगा साहेबज़ादे। पप्पू रोने लगे, मेरे अब्बूजान ज़बान दिखाने को मना करते थे। मैं नहीं दिखाऊँगा। यह सुनते ही सास बहू की आँखों से भी बेमौसम मेह बरसने लगा। हकीम जी घबरा गए कि उन्होंने क्या गलती कर दी कि सारा घर रोने लगा। अच्छा लाओ बेटे नब्ज़ दिखाओ। कोई पंद्रह मिनट तक हकीम जी नब्ज़ पकड़े बैठे रहे और फिर उसकी आँखें खींच–खींच कर देखीं और घोषणा कर दी कि बच्चे का जिगर खराब हो गया है। दिन में पाँच खुराक, दवा का नुसखा लिखकर पच्चीस रुपए फ़ीस लेकर जैसे आए थे वैसे ही चले गए। अम्मीजान और दुल्हन रानी दोनों चुप खड़ी एक दूसरे को देखती रहीं। शायद एक ही बात सोचती रहीं कि 'अब क्या होगा?'

अम्मीजान जैसे सोते से जागीं! और दुल्हन रानी को भी झिंझोड़ा और फिर उनका सर अपने सीने से लगा लिया और पूरी हिम्मत से आवाज़ में ठहराव पैदा करते हुए प्यार से कहा जाओ बेटी दौड़ो हकीम जी के पीछे। कहीं दवाखाना बंद करके निकल न जायें। बेचारी दुल्हन रानी बेटे को लिपटाकर प्यार भी न कर पाई। सर पर दुपट्टा डाला और भागीं हकीम जी के पीछे। ये दवाएँ खिलाना और उसको खिलाने से पहले बच्चे को तैयार करना भी जान जोखिम का काम था। बेचारी थक जाती थी। खाना पकाना, घर की सफ़ाई करना, अम्मीजान को खाना खिलाना, उनकी दवाएँ भी समय पर देना। पप्पू तक पहुँचते–पहुँचते बिल्कुल टूट जाती थी। पप्पू को दवा खिलाना दूभर हो जाता था। जो बच्चा एक से एक अच्छा खाना न खा रहा हो, वह हकीम जी की खट्टी–मीठी–कड़वी–कसैली दवाएँ क्या खाएगा। पति बहुत याद आता। काश वे यहाँ होते कुछ बोझ बाँट लेते। या शायद पप्पू बीमार ही न होता। आज वह भी सोचने पर मजबूर हुई कि पता नहीं ये कश्मीर आज़ाद कराने का जुनून क्यों सवार हुआ!

कोई भावात्मक बात ही जुनून का रंग धारण कर लेती है। और जुनून का कोई तोड़ नहीं होता और न ही उसकी कोई परिभाषा होती है। जब जुनून सर पर चढ़ जाए, तो भगत सिंह पैदा हो जाते हैं। अपने देश से प्यार के नशे में मतवाले, अपने देश को चुराने वाले डाकुओं से लड़कर अपनी कुर्बानी दे देने वाले जियाले, इनके नामों से तो इतिहास लिखा जाता है। और वही जुनून नाथूराम गोडसे का जन्मदाता भी होता है। घृणा नफ़रत और खून का प्यासा, इन्सान से हैवान बना देता है। तो क्या मेरा पति सरदार अमजद अली ख़ान भी इन्सान से हैवान...नहीं... नहीं मैं ऐसी बात नहीं सोचूँगी उनके लिए... वे तो अपनी सरहदों की रखवाली करने गए हुए हैं। बेचारे घर का आराम छोड़कर न जाने कहाँ ठोकरें खा रहे होंगे। खाने को भी मिलता होगा कि नहीं? और पता नहीं कितने दिनों तक सो भी नहीं पाते

होंगे। सोने के बारे में सोचते ही दुल्हन रानी सिहर–सी गई। खड़े–खड़े ही बीरबहूटी की तरह लाल होकर सिकुड़–सी गई, शरम की लहर चेहरे पर मुस्कान बनकर फैल गई।

"ऐ दुल्हन कोई चुटकुला याद आ गया है क्या? बेटी तुम तो भूल ही गईं कि अभी बच्चे के लिए दवा का काढ़ा भी पकाना है।"

दुल्हन रानी चौंककर अपनी असली भयानक दुनिया में वापस आ गई। दुनिया भयानक तो उसी समय हो गई थी जब पतिदेव इतना भयानक सपना लेकर कश्मीर जीतने निकले थे। उन्हें जीतने का भी कोई इतना शौक़ नहीं था, जितना निन्नानवे हिंदुस्तानी मारने का।

क्या शौक़ है! आज पहली बार दुल्हन रानी की सोच विद्रोही होने लगी थी। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि ये हिंदुस्तानी मारने की क्या रट लगा रखी है। क्या हिंदुस्तानी इन्सान नहीं होते! क्या उनके माँ–बाप, बाल–बच्चे और दुल्हन रानियाँ नहीं होतीं! उनका रंग, नाक नक़्शा क्या हमारे जैसा ही नहीं होता! क्या अपनों के लिए उनका मन नहीं बेचैन रहता। वे भी तो कश्मीर में बैठे सोचते होंगे कि छुट्टी मिले, तो परिवार से मिलने जाएँ। और... और ये मेरा पति सरदार अमजद अली ख़ान क़सम खाए बैठा है कि निन्नानवे बेगुनाह हिदुस्तानियों को मौत के घाट उतारेगा कि वे कश्मीर पर क़ब्ज़ा करना चाह रहे हैं। दुल्हन रानी को आज पहली बार अपने पति की पत्नी होने पर शरम महसूस हुई।

पप्पू भी बेसुध चुपचाप गुड़मुड़ी बना बिस्तर पर लेटा हुआ था। अब तो उसका खेलने–कूदने, खाने–पीने, हँसने–रोने किसी चीज़ का भी तो जी नहीं चाहता।

हकीम जी की दवा का हाल संदल जैसा था कि सर के दर्द के लिए संदल लगाना लाभदायक है, पर उसको घिसना और लगाना भी तो दर्दे–सिर होता है!

अम्मीजान मोबाइल को उल्टा पकड़े क्या बेटा क्या बेटा बार–बार चिल्ला रही थीं। आवाज़ नहीं सुनाई देती बड़बड़ाईं। पप्पू उठकर बैठ गया। दादी के हाथ से फ़ोन खींच लिया और एक सांस में अब्बू जी... अब्बू जी... की रट लगा ली। सरदार अमजद अली खान के हाथ से जैसे बन्दूक छूट गई। "बेटे कैसे हो? कैसे हो मेरे लाल क्या हुआ मेरे जिगर के टुकड़े को? कोई बताओ मुझे, कोई बोलता क्यों नहीं? पप्पू मेरा बच्चा कैसा है तू? ठीक तो है ना मेरा चांद मेरा सूरज!

आज सरदार अमजद अली ख़ान आए थे ख़ुशख़बरी देने कि उन्होंने किस बहादुरी से रात में सरहद पार करके सोते हुए चार हिंदुस्तानी मार लिए हैं। अभी पिचानवे बाकी हैं। साल भर में इन्शाअल्लाह हम वह भी पूरे कर लेंगे।

दुल्हन रानी ये सुनकर चकरा गई। ये ऐसा कौन–सा इतना बड़ा फ़र्ज़ निभा रहे हैं, जिसके कारण इनकी दिल्जोइ की जाए। उन्होंने सीधे बता दिया कि बच्चा बेहद बीमार है। हकीम जी जिगर की बीमारी बता कर गए हैं। पल–पल जैसे पिघलता जा रहा है। अब सरदार अमजद अली ख़ान ज़मीन पर सिजदे में पड़ा गिड़गिड़ा रहा था। परवरदिगार से बेटे के जीवन का सौदा कर रहा था। ऐ पाक परवरदिगार मेरा जीवन भी मेरे बेटे को दे दे।

"बेटे तूने जो चार मारे हैं वे भी तो किसी पप्पू के बाप होंगे, किसी जवान लड़की का सिन्दूर होंगे, किसी माँ की आँखों का नूर होंगे।"

"अम्मीजान ये हिन्दुस्तानी बड़े हरामज़ादे हैं। इनकी जितनी भी धुनाई कर लो, पर कश्मीर छोड़ने को नहीं तैयार होते।"

"वे कोई हमारी तरह थोड़े ही हैं। वे देशभक्त लोग हैं, जान दे देंगे पर भारत–माता की रक्षा करना उनका धर्म होता है। और हम कैसे ईस्ट पाकिस्तान छोड़कर भाग लिये थे। वहाँ बांगलादेश बन गया और हमारे सिपाही अपनों को ही लूटते खसोटते रहे। "भारत तिरानवे हज़ार लोगों को बंदी बनाकर ले गया। बाद में पछताए तो क्योंकि तिरानवे हज़ार को खिलाना–पिलाना और रखना आसान काम नहीं था।"

"अम्मी मुझे उल्टी आ रही है।" दुल्हन रानी के सारे दिन की यही ड्यूटी होती इधर–से–उधर भागती

फिरतीं। बाथरूम में जाकर चार आँसू बहा आती। कोई नहीं था जिससे दुःख–दर्द बाँट सकती। अम्मीजान 'उनसे' बात कर रही हैं। शायद वापस आने का कोई रास्ता निकाल लेंवे। दुलहन रानी इसी आशा में धीरे से कमरे में पहुँची तो आज पहली बार जीवन में अम्मी जान को फूट–फूटकर रोते देखा। दुल्हन रानी कमसिन होने के कारण पप्पू की बीमारी को इतना ख़तरनाक नहीं समझ रही थी। अम्मीजान की एक ही रट थी "बेटे अगर अपने बेटे के साथ कुछ समय गुज़ारना है, तो फ़ौरन वापस आ जाओ।"

"सर! मेरा एक ही बेटा है उसका जिगर ख़राब हो गया है। सर मुझे वापस जाना है। नहीं सर मुझ पर दया कीजिए, मुझे जाने दीजिए। वह नहीं रहा तो मेरी ज़िन्दगी का कोई मतलब नहीं रह जाएगा सर।"

"ये फ़ौज की नौकरी है कोई खिलवाड़ नहीं। यहाँ आप किसी मक़सद से आए हो, पहले उसको पूरा करो।"

"सर उसमें तो समय लगेगा, सर।"

"तो समय लगाओ। याद है न जो कसम खाई थी और कॉन्ट्रेक्ट पर लम्बा–सा साइन किया था। सरदार अमजद अली ख़ान पूरी एक लाइन भर गई थी तुम्हारे हस्ताक्षर से। आए हुए अभी साल भी नहीं बीता और बीवी याद आने लगी। उसके लिए बेटे का बहाना बना रहे हो। आज अमजद अली ख़ान पहली बार किसी के पैरों पर पड़ गया। सर! मेरा बेटा... मेरा बेटा... मेरा बेटा मर जाएगा... मुझे जाने दीजिये... सर जी... ।"

उसका बस नहीं चल रहा था कि कश्मीर के उन रूखे–सूखे पहाड़ों से एक छलांग लगाए और बेटे को उठाकर दबोच ले, गोल–गोल घूम जाए, बेटा चिल्लाता रहे अब्बूजी रुक जाइए... अब्बूजी... । अमजद अली ख़ान चौंक कर रुक गया। उसे एक क्षण के लिए समझ नहीं आया कि वह कहाँ तक पहुँच गया है। बस तेज़ी से गोल–गोल ऊँची–नीची सड़क पर दौड़ती जा रही थी। अमजद अली ख़ान की सोच उससे भी तेज़ भाग रही थी। रात हो गई बस में ऐसी ख़ामोशी थी जैसे मुर्दा दफ़न करने जा रहे हों। जहाँ जिसकी मंज़िल आती वह चुपचाप उतर कर किसी ओर को निकल जाता। आज अमजद अली ख़ान को अपनी मंज़िल दूर भागती महसूस हो रही थी।

दूर से जब दरख़्तों के बीच से जुगनू की तरह चमकती रोशनी नज़र आने लगी, तो उनको अम्मी जान का सफ़ेद मलमल का दुपट्टा याद आने लगा, जिसमें रात को जुगनू पकड़ कर दुपट्टे में क़ैद कर लिया करते थे। उसमें से जुगनू की रोशनी छन–छनकर आती तो पूरे सहन में नाचते फिरते और अम्मीजान दुपट्टे के लिए शोर मचाती रहतीं कि वापस करो दुपट्टा, मेरा सर खुला है, तेरे अब्बा आते होंगे। बड़ी मुश्किल से अमजद अली जुगनू को आज़ादी की सांस लेने देता। जुगनू ऐसा खो जाता अंधेरे में कि अपनी रोशनी जिसपर वह गर्व करता था, उसको गुल कर देता। आज अमजद अली ख़ान भी अंधेरे की ओर अग्रसर था। उसको भविष्य का कोई पता नहीं था कि क्या होने वाला है!

बस के रुकते ही अमजद अली तेज़–तेज़ क़दमों से टैक्सी के अड्डे की ओर भागा। बिना मोल भाव किए घर की ओर रवाना हो गया। भूल गया कि किसको मारने चला था और कौन मरा जा रहा है। घर में सोता पड़ा हुआ था। पप्पू के कराहने की आवाज़ इस खामोशी को तोड़ रही थी। बाप जैसे ही पप्पू के ऊपर झुका, पप्पू ने अब्बूजी कहकर गले में हाथ डालकर उठना चाहा पर उठ न सका। कराहने लगा। पप्पू के कमज़ोर हाथ, मुँह से बीमारी की महक, सूखा लकड़ी जैसा शरीर अमजद अली को रुला देने के लिए काफ़ी था।

लम्बा चौड़ा फ़ौजी घर के एक कोने में खड़ा आँसू बहाता रहा। अम्मीजान और दुल्हन रानी थककर बेखबर सो रही थीं। पप्पू ने अब्बूजी को आवाज़ दी, तो दुल्हन रानी ने थपथपाते हुए सो जाने को कहा।

अम्मीजान, अब्बूजान आ गए हैं।

सो जा बेटे अभी तो बहुत रात पड़ी है। बातें करोगे तो अम्मीजान भी जाग जाएँगी।

"अब्बूजान....अब्बूजान कहाँ गए आप?"

आज सरदार अमजद अली ख़ान चोरों की तरह छुपा कोने में खड़ा अपने अपराध को महसूस कर

रहा था कि कैसे पूरे परिवार को बेसहारा छोड़कर निन्नानवे हिंदुस्तानी मारने चला गया था। पप्पू की हालत देखने के बाद अब और किसी से मिलने की हिम्मत नहीं जुट पा रही थी। कोने वाली कुर्सी जिस पर हमेशा बैठा करता था आज मिट्टी से अटी उसी तरह उसी के इन्तज़ार में खाली रखी हुई है। वह चुपचाप उस पर बैठ गया अपने मसले हुए यूनिफ़ार्म में, जिसकी कलफ़ टूट चुकी थी, चमकदार जूते मिट्टी से अटे हुए थे। जो कसी बेल्ट थी, वह भी ढीली हो गई थी। दुल्हन रानी के हाथ का खाना नहीं मिलता था। रोज़ दाल सब्ज़ी कैसे खाई जाती, रोज़ मांस खाने वाले से। हफ़्ते में एक दिन मांस मिला करता था, पर उसमें इतनी बिसान्द होती कि खाया नहीं जाता था। यहाँ दुल्हन रानी के हाथ का खूब भुनाई किया खाना खाने के बाद कोई खाना अच्छा नहीं लग सकता था।

"अब्बूजान किधर गए आप? अब्बूजान मुझे उठाइए" आज पप्पू खुद उठकर चल भी नहीं सकता था।

या ख़ुदा! ये क्या हो गया है मेरे बेटे को। धीरे से उठकर पप्पू को गोद में लिया, तो ऐसा लगा जैसे हड्डियाँ चुभ रही हों। उसने घबराकर लाइट जला दी, अम्मीजान और दुल्हन रानी भी पप्पू पप्पू लाइट क्यों जला दी कहती हुई उठ बैठीं। जैसे ही नज़र पड़ी बाप की गोद में हड्डियों का ढांचा दुबका बैठा हुआ है। दोनों रोने लगीं। पप्पू और सरदार अमजद अली ख़ान ने भी आँसुओं से रोना शुरू कर दिया। चारों रो रहे थे, चुप कराने वाला कोई नहीं था। एक तूफ़ान था, जिसके टल जाने की कोई आशा नहीं नज़र आ रही थी।

"अब्बूजान प्यास लगी है पानी पिला दीजिए।" दुल्हन रानी जल्दी से उठने लगी। "नहीं मुझे अब्बूजान के हाथ से पानी पीना है।" अब्बूजान भूल गए थे किधर को जाएँ। पप्पू ने रस्ता दिखाया अपनी पतली बाहों को मुश्किल से ऊपर उठाकर। जाते–जाते अम्मीजान ने चाहा अपने बेटे को सीने से लगा लें, पर वह तो अपने बेटे की चाहत में डूबा हुआ था। दुल्हन रानी हमेशा की तरह खामोश अपनी बारी का सब्र से इन्तज़ार करती रही।

"अम्मीजान आपके ज़िम्मे अपनी अमानत कर के गया था। आपने ये कैसी देखभाल की?"

"क्या मैंने तुमसे कहा था कि तुम जाओ और मैं तुम्हारी ज़िम्मेदारी निभाऊँगी? बोल, कहा था मैंने? मैं कहती हूँ जवाब दे मेरी बात का। बहुत दुःख दे लिए तूने। अब मैं चुप नहीं रहूँगी। तुझको शर्म नहीं आती अपनी करतूतों पर। अभी तो सो जाओ सवेरे बात होगी।"

सरदार को अम्मीजान ने कभी इस तरह नहीं डाँटा था। आज उनकी सरदारियत नीलाम होती नज़र आई। चुपचाप कमरे में घुस गए। दुल्हन रानी भी झपाक से पीछे–पीछे कमरे में पहुँच गई। अन्दर अंधेरे कमरे से सिसक–सिसक के रोने की आवाज़ें आती रहीं और सुबह के इस पहर में हर तरफ़ खामोशी छा गई। और फिर चिड़ियों ने अपनी चूं चूं से सुबह की आमद की खबर दी।

"दुल्हन रानी उठो नाश्ता बनाओ कितना लम्बा सफ़र करके आया है। भूखा होगा। दुल्हन रानी मुस्कुराई और लपककर किचन में पहुँच गई। हल्की–हल्की मोगरे की खुशबू आज बहुत अर्से बाद हवा के ठंडे झोंके के साथ दुल्हन रानी के बालों से खेलती हुई आगे बढ़ गई। आज दुल्हन रानी रसोई में गुनगुना रही थी। पप्पू बाप के सीने पर सर रखे घुटनों को जैसे तह करके सीने से चिपकाए बंद नाक से गहरी सांस ले रहा था। कभी अपनी सूखी लकड़ी जैसी बाहें बाप के गले में डाल देता। बाप उन बाहों को हल्के–हल्के सहलाता। ये क्या हो गया मेरे ख़ुदा मेरे बच्चे को! आज सरदार अमजद अली ख़ान बेबस हो गया था, बच्चे की इस हालत को देखकर।

बेटे सरदार उठो और बच्चे को किसी बड़े अंग्रेज़ी डॉक्टर को दिखाओ। वे ठीक से मुआयना कर के बताएगा कि अब क्या किया जाए। हकीम जी तो बस ये कह गए कि जिगर ख़राब है। इतनी मानो दवाएँ घोलकर, पीसकर, पकाकर पिलाने को दे गए हैं कि बच्चा हलका न हो जाता है। सारे दिन दवाएँ पी–पीकर।

अरे भई हर काम की कोई इंतहा भी होती है!

पलंग पर बैठे–बैठे फिर से आवाज़ लगाई 'सरदार बेटे अब उठ भी जाओ वक़्त कम है। जितनी जल्दी हो सके बच्चे का मुआयना करवा लो। अल्लाह का नाम लेकर ले जाओ देखो डॉक्टर क्या बताता है?

सरदार अमजद अली ख़ान आज कितना मजबूर लग रहा था। एक हारा हुआ सिपाही। कितना आसान था निन्नानवे सोते हुए दुश्मनों को हमेशा के लिए सुला देना। मगर आज अपने एक बच्चे के जीवन की भीख माँग रहा था, बिस्तर में लेटा हुआ डर रहा था। डॉक्टर के नाम ही से कि न मालूम क्या बीमारी बता देगा मेरे बच्चे को।

"अम्मीजान गज़ब हो गया। अम्मीजान कुछ करिये मेरे बच्चे के लिए, दुआ माँगिये कि अल्लाह मेरे पप्पू को सेहत अता करे।" आज सरदार अमजद अली ख़ान का लम्बा चौड़ा शरीर बेजान–सा हो गया था। ठोड़ी काँप रही थी, आँखें फाड़े हुए थे, झपक नहीं रहे थे कि कहीं आँसुओं का बांध टूट न जाए और बेइख़्तियार बहने न लगें। कांपती आवाज़ से दुल्हन रानी को भी आवाज़ दी और अम्मी के पलंग पर उनसे क़रीब होकर बैठ गए जैसे बचपन में घबराकर अम्मी जान से लिपट जाया करते थे। उनकी गोद में घुस जाया करते थे, अब्बाजान के ख़ौफ से। आज फिर अमजद अली कंपकंपा रहा था, चुप्पी लग गई थी। दुल्हन रानी अपने सब्र को समेटे चुपचाप खड़ी बेटे की ओर टकटकी लगाए देखे जा रही थी।

"अरे बेटे कुछ बोलो भी, मेरा जी घबरा रहा है। दिल बैठा जा रहा है। दुल्हन रानी एक घूंट पानी में तीन क़तरे कोरामीन के डालकर ले आओ।"

"अम्मी जान डॉक्टर ने कहा है पप्पू मियाँ के जिगर ने काम करना बंद कर दिया है। ख़राब हो चुका है मेरे बेटे का जिगर।" और आज सिपाही सरदार अमजद अली ख़ान बेबस बैठा अम्मीजान के कंधों पर सिर रखे बे मौसम के मेह बरसा रहा था।

"बेटे हिम्मत करो उठो मुँह धो लो। दुल्हन रानी इसको ठंडा पानी पिलाओ।" सास को अपने बेटे की फ़िक्र थी और दुल्हन रानी को अपने की। किसी को क्या मालूम उस नाज़ुक दुल्हन रानी को अपनी अम्मी किस क़दर याद आ रही थी।

"अब क्या होगा? क्या कहता है डॉक्टर?"

"जिगर बदलवाना पड़ेगा, ये कहकर फिर माँ से लिपट गए" अम्मी जान इतने पैसे कहाँ से आएँगे?"

"बेटा मालूम तो करो लगेंगे कितने।"

"बाहर के ही देशों में जिगर बदला जा सकता है।"

"और क्या यहाँ नहीं बदल सकते। यहाँ भी तो बाहर से पढ़कर आए हुए सैंकड़ों डॉक्टर पड़े हुए हैं।"

"अम्मी जान जिगर बदलने का ऑपरेशन बहुत मुश्किल होता है, यहाँ नहीं हो सकता।"

"क्या बस लंदन और अमेरिका ही में हो पाता है?" अम्मी जान ने और बारीकी में जाते हुए पूछा।

आज हकलाते हुए सरदार अमजद अली खान के होंठो पर कंपकंपाते हुए एक और नाम आया पर कहीं गहरे कुँए में जाकर गुम हो गया। खंखारने लगे, गला साफ़ करते हुए बोले, "अम्मी जान वो... क्या है कि... हिन्दुस्तान... में भी होता है और दूसरे देशों के मुक़ाबले में आधे पैसों में हो जाता है।"

दुल्हन रानी ने इत्मीनान की सांस ली और अपने दुपट्टे से खुशी के आंसुओं को खुश्क करने लगीं। उनको महसूस हुआ कि अब उनका पप्पू स्वस्थ हो जाएगा, उसको मैं खूब पढ़ाऊँगी, वह जो चाहेगा वही पढ़ने दूँगी, मैं उसको छूत–छात, जाति–पाति, ऊँच–नीच इन सब अंधविश्वासों से बहुत दूर रखूँगी। खुशी के सपने देखते–देखते एकदम से चौंकी और जल्दी से अम्मीजान का नाश्ता लेने रसोई में भागी।

अम्मीजान ने आगे और पूछताछ की कि भारत के किस शहर में होता है ऑपरेशन।

"अम्मी जान मैं इतना बेगैरत नहीं कि दुश्मन देश में जाऊँ और अपने इकलौते बेटे के जिस्म में किसी ग़ैर मज़हब वाले का जिगर लगवा दूँ। नहीं अम्मीजान ये मुमकिन नहीं है। बल्कि नामुमकिन है, बिल्कुल नामुमकिन। उस देश में तो जाऊँगा ही नहीं और न

ही मेरा बेटा कदम रखेगा उस दुश्मन देश की नापाक ज़मीन पर।"

दुल्हन रानी अमजद अली को ज़ोर–ज़ोर से बोलता सुनकर घबराकर वापस आ गई और ये सुनकर जो वे बक रहे थे, उनसे चुप नहीं रहा गया। आज उनके इकलौते लाड़ले बेटे के जीवन का सवाल था। दुल्हन रानी ने फ़ैसला कर देने के अंदाज़ में कहा "मैं ले जाऊँगी अपने बेटे को। ये उसकी ज़िंदगी का सवाल है। मैं झूठी दुश्मनी और फ़ालतू के ईगो की खातिर अपने बेटे का जीवन नहीं भेंट चढ़ने दूँगी।"

दुल्हन रानी आज तक कभी भी इस तरह नहीं मुख़ातिब हुई थी। आज तो बेहद रोब व दबदबे के साथ फ़ैसला सुना दिया। ममता जब बोलती है, तो उसको बड़े–बड़े देवी देवता भी नहीं रोक पाते। ममता पानी का वह रेला है, अगर तूफ़ान बन जाए तो सब कुछ तहस नहस हो जाता है। अगर यही ममता प्यार की ज्वाला उज्जवलित कर दे, तो सूरज की किरणें भी ठंडी पड़ जाती हैं।

दुल्हन रानी फैसला सुना चुकी थी और अब सब चुप बैठे हुए थे।

आज तो पप्पू ने भी मुँह खोला "अब्बूजी आप मुझे मर जाने देना चाहते हैं?''

बाप काँप गया "नहीं बेटा हरगिज़ नहीं'' ये कहकर पप्पू को ज़ोर से सीने से चिपका लिया।

तो फिर अब इंतज़ार किस बात का है, कार्यवाई शुरु करो। मालूमात हासिल करो, फ़ोन लगाओ डॉक्टरों को, उनसे बातचीत करो कि उस देश के किस शहर में जिगर की बीमारी का अच्छा इलाज हो सकता है। और हाँ, कहाँ सस्ता भी पड़ेगा, आजकल वहाँ का मौसम भी अच्छा होगा। भई हमारे ज़माने में तो गुलाबी जाड़ों में मज़ा आ जाता था। सरसों फूट रही होती थी, पीले–पीले फूल सारे जग को चमका देते थे। मटर के फूल भी लाजवाब होते थे। हरे–हरे पत्तों में सफ़ेद–सफ़ेद नाजुक से फूल और वहाँ की मटर भी किस क़दर लज़ीज़ होती थी। मीठी और खुशबूदार। गद्दर अमरूद हम सब दरख्तों से ही तोड़कर खाया करते थे। दरिया का पानी उतर जाता था, पर गुलाबी जाड़ों की चांदनी कितनी सुहानी होती थी। हम लड़कियाँ सारी–सारी रात चमन में बैठे गाने गा रही होतीं। आज अम्मीजान जैसे अपने अतीत में डूब जाना चाहती थीं।

दुल्हन रानी के फ़ैसले के बाद से अमजद अली ख़ान खामोश हो गये थे और अम्मीजान बोल रही थीं। शायद खो गई थीं अपनी जवानी की मीठी यादों में, बंटवारे में आई हुई हर जवान लड़की अपना रोमांस वापस अपनी जन्मभूमि में ही ढूँढ पाती हैं। वहीं महसूस कर पाती है अपने सुनहरे दिन। बला से सपनों ही में क्यों न हो। न जाने कब से इस चिंगारी को दबाये हुए आज अम्मीजान की हिम्मत हो गई थी अपने नशीले अतीत के नशे में डूब जाने की। आज दादी–पोते ने मिलकर सरदार अमजद अली ख़ान को खामोश कर दिया था।

वह गर्दन झुकाये बैठा हुआ था। ज़मीन को घूरे जा रहा था, जैसे कोई खोई हुई क़ीमती चीज़ ढूँढ रहा हो।

"अब्बूजी, मुझे ले चलिए मैं जल्दी से खेलना, दौड़ना, भागना चाहता हूँ।"

सर झुकाये ज़मीन को पैर के अंगूठे से कुरेदते हुए अमजद अली ख़ान किसी गहरी सोच में डूबा हुआ था।

उसने सोचा ही नहीं था कि जिन बेगुनाहों का खून करके, उनके बच्चों को यतीम करके, उनकी औरतों को बेसहारा कर देना चाहता था, आज उन्हीं के सामने हाथ फैलाने जा रहा है। बेटे के जीवन की भीख माँगने।

अभी वीज़ा लेने की समस्या से भी जूझना था। अमजद अली को तो वीज़ा मिलना असम्भव–सा ही लगता था, मगर समस्या यह थी कि किसी पुरुष के बिना केवल महिलाएँ एक इतने बीमार बच्चे को लेकर अकेली जा भी नहीं सकती थी। अम्मीजान चिंतित थीं कि कहीं अमजद अली एक और नाटक न खड़ा कर दे कि उसे वीज़ा ऑफ़िस नहीं जाना है। पर वह तो सवेरे चार बजे अंधेरे में बासी मुँह ही जाकर लाइन में लग गया था। आज वह बेटे के कारण भारत का वीज़ा लेने वाली लाइन में लगा हुआ है। प्रार्थना कर रहा है वीज़ा मिल जाने की।

और गुज़रे हुए कल, रात के अंधेरे में बिना वीज़ा लिए अंदर घुस गया था और चार को मौत के घाट उतार आया था। अपने को माफ़ कर देता था, ये समझाकर कि उधर वालों ने भी हमारे जवानों का भी तो सर धड़ से अलग करके बिना सर की लाशें भेज दी थीं। तभी तो हमारा ख़ून खौल गया था। हमारे भीतर इंतक़ाम की ज्वाला भड़क उठी थी। हमने भी बेसर की लाशें भेज दी थीं। बिल्कुल वैसे ही जैसे उन्होंने भेजी थीं।

आज तक ये नहीं मालूम हो पाता है कि अपनी–अपनी ज़िद पूरी करने के लिए क्यों गरीबों के गले कटवा दिये जाते हैं। ये बेचारे जवान बच्चे जो फ़ौज में भरती होते हैं अपने परिवार की भूख मिटाने, उनके तन को ढाँकने, उनको चार अक्षर पढ़ाने के लिए, जीवन के पथ पर आगे बढ़ते हुए उन जवानों के पदचिह्न दिखाई तो देते हैं, पर वापस आते नहीं नज़र आते। सारी इच्छाएँ, सारे अरमान दिल में लिए शहीद कर दिये जाते हैं। बच्चे अनाथ हो जाते हैं। पत्नियों के हाथों की चूड़ियाँ तोड़ दी जाती हैं, उनके अरमानों का गला घोंट दिया जाता है, सफ़ेद कपड़े शरीर पर लपेट दिये जाते हैं और विधवा का पर्चा काट दिया जाता है। माएँ रो–रोकर आँखों की रोशनी खो देती हैं, उनके सारे सपने अधूरे रह जाते हैं। चंद लाख रुपये उनके जीवन की क़ीमत उनके घर वालों को दे दी जाती है और फिर पलटकर नहीं देखा जाता कि परिवार किस नरक में पहुँच गया है।

आज लाइन में लगे अमजद अली सोचे जा रहा था कि फ़ॉर्म कैसे माँगेगा। लाइन धीरे–धीरे आगे बढ़ती जा रही थी। दिल की रफ़्तार लाइन से बहुत तेज़ चल रही थी। हिम्मत पस्त होती जा रही थी। फ़ॉर्म लेते हुए उसके हाथ काँप रहे थे। गले में थूक फंस गया था। कुछ कहे बिना फ़ॉर्म अधिकारी के हाथ से झपट लिया और उसको गोल लपेटकर बंदूक की नाली की तरह बना लिया और एक आँख पर रखकर दूसरी आँख बंद कर ली कि जैसे निशाना लेने जा रहा हो। फिर आप ही चौंककर घबरा गया और चारों ओर चोरों की तरह ताकने लगा, फिर तेज़ क़दम उठाता हुआ घर की ओर भागा और फ़ौरन ही फ़ॉर्म भरने बैठ गया। जो कुछ जानकारी माँगी गई थी, वह सब भरने के बाद वीज़ा मिलना तो असम्भव लगता था। पर उसके भारत जाने का कारण इतना भावात्मक था कि देर तो लगी पर एक एन.जी.ओ. की सहायता से वीज़ा मिल गया।

अमजद अली ख़ान समझ नहीं पा रहा था कि वीज़ा मिल कैसे गया। हो सकता है हिंदुस्तानी डॉक्टर के पत्र के कारण मिला हो। उस पत्र में तो मेरे इस पेशे का ज़िक्र भी नहीं किया गया है। ये हिंदुस्तानी किस मिट्टी के बने होते हैं, जो मुझ जैसे घटिया सैनिक को अपने देश में आने दे रहे हैं।

आज घर में पप्पू के बीमार पीले चेहरे पर भी पीली सी मुस्कान फैल गई। "अब्बूजी अब मैं ठीक हो जाऊँगा न दादी अम्माँ के घर जाकर...?"

अमजद अली ख़ान चौंक गया पप्पू के मुँह से उस देश का ज़िक्र सुनकर। "हाँ बेटे, दुआ करो कि तुम्हारे लिए नए जिगर का इंतज़ाम हो जाये।" एक सेकंड के लिए अमजद अली ये सोचकर काँप गया कि निन्नानवे प्रतिशत जिगर तो किसी हिंदू ही का हो सकता है। और जो ख़ून चढ़ाया जायेगा वह भी किसी हिंदू का ही होगा, न मालूम जात क्या होगी!!

दुल्हन रानी जाने की तैयारी कर चुकी थीं। वह अपना काम ख़ामोशी से कर लिया करती। अम्मीजान पोते के लिए परेशान थीं, पर अकेले छूट जाने के लिए और अधिक घबरा रही थीं। पैसे खर्च होने का भी कारण था। अपनी दुल्हन रानी को भी ऐसे गम्भीर समय में रुकने को नहीं कह सकती थीं। अमजद अली खान इस क़ाबिल नहीं थे कि उनसे अकेले जाने की आशा की जा सकती। दुल्हन रानी ने ये फ़ैसला भी कर दिया कि अम्मीजान हमारे साथ चलेंगीं। उनको भी अपना घर याद आता है।

अमजद अली ख़ान तो भौचक्के रह गये, अपनी माँ की धरती पर पहला क़दम रखते ही उनको महसूस हुआ जैसे बातचीत करने के संस्कार कुछ अलग से हैं। आम तौर पर एक नर्माहट–सी थी सब के रवैये में। वहाँ कोई किसी का नाम बिना 'जी' लगाये नहीं ले रहा था।

पहले तो फ़ौजी जवान को ये बात समझ नहीं आई। वे समझे थे कि शायद ये परिवार का नाम है, पर सबका एक ही नाम? उस समय चौंके जब उनको भी आवाज़ दी गई 'अमजद अली खान जी'।

अमजद अली खान भयभीत थे कि कहीं टैक्सी वाला निचोड़ न ले। पर टैक्सी तो अस्पताल की ओर से भेजी गई थी। या ख़ुदा ये माजरा क्या है? ये 'प्रीपेड' टैक्सी चाहे तो पैसे माँग ले पर इसने तो आप ही बता दिया कि किराये की चिंता न करें अस्पताल पैसे देगा। ये सब देखने में तो हमारी ही शक्ल सूरत के हैं, एक ही–सा रंग, आँख, कान, नाक, बाल, जिस्म सब एक–सा, पर मिज़ाज क्यों इतना अलग? अब अमजद अली ख़ान से चुप नहीं रहा गया। अम्मीजान से पूछ ही लिया कि ये इतने ठंडे मिज़ाज के क्यों हैं?

अम्मीजान तो अपने अतीत में डोल रही थीं। बहती चली जा रही थीं। खो गई थीं उन मधुर यादों में, शांत और ठंडी लहरें उनको कहीं से कहीं बहाये लिए चली जा रही थीं। हवा का एक हलका–सा झोंका उनके चांदी जैसे बालों को छेड़ जाता, तो अम्मीजान मुस्कुरा देतीं। उनके साथ तमाम कायनात झूम उठती। हर ओर से क़हक़हे और बादामी लम्बी–लम्बी पलकों वाली आँखें गुदगुदाने लगतीं, अपने घर जो आ गई थीं।

अमजद अली की आवाज़ पर अम्मीजान चौंक गईं। कुछ शरमा भी गईं कि कहीं बेटे को अंदाज़ा न हो जाये कि वे किन ख़यालों में गुम थीं। उनका सब कुछ तो यहीं रह गया था। जो कपड़े पहने थीं, उसी में ले जाई गई थीं। बिनती करती रहीं, मुझे न ले जाओ। यहाँ इतने लोग हैं, मैं भी रह लूँगी पर कौन सुनता था किसी की आवाज़। एक ही धुन थी सबको, अपने घर जाने की। इन्हें कोई बताये कि ये मूर्ख अपना घर तो छोड़कर जा रहे थे। मिनटों में अपने पराये हो गए। लोहे की सलाखों से सीमायें बाँध दी गईं। एक दूसरे से नफ़रत को बढ़ावा दिया जाने लगा। जो जितनी नफ़रत करता, जितनी अधिक गालियाँ देता, वह उतना ही बड़ा देशभक्त समझा जाता।

घरों में बैठे काम कम बातें ज़्यादा होतीं। पैर पर पैर चढ़ाकर चार लोग बैठ जाते, हाथों से पैरों की उंगलियों में कंघी करने लगते। पैरों से उठती कुगंध से वातावरण कुगंधी हो जाता। वाद विवाद गरम होने लगता, आवाज़ें भी तेज़ होने लगतीं। बहस जितनी तेज़ होती उतनी ही तेज़ी से पैरों की उंगलियाँ मरोड़ी जातीं। कुत्ते बिल्ली की लड़ाई छिड़ जाती, ध्वनियाँ चारों ओर फैलने लगतीं। इस नये अपनाये हुए देश में आये भी बरसों बीत गये पर आज भी एक समूचा देश टूट जाने पर बहस होती रहती है। हल कुछ नहीं निकलता। खाना निकल जाता है, तो खाने पर बैठकर पीछे छोड़कर आये घर और खाने की चीज़ों को याद करते–करते सोने का समय हो जाता और कुछ घंटों के लिए आकाशवाणी विश्राम को बंद हो जाता। जल्दी ही खुल जाने के लिए।

"हाँ बेटे, मैं भी तो यही समझाती रही हूँ कि कोई फ़रक नहीं हम सब में। सच पूछो तो हम सब एक ही संसार के रहने वाले हैं। एक ही जगह से आये हैं। जाना भी एक ही जगह है। हमारा खाना–पीना, उठना–बैठना सब एक–सा है। न मालूम कौन लोग हैं जो हमको एक दूसरे से प्यार नहीं करने देते। हमारे बीच घृणा के बीज बोते और नफ़रत की खेती काटते रहते हैं। अगर रहने वालों के स्वभाव ठंडे, नरम और शान्त हों, तो धरती माता भी उस प्रेम को समझती और ठंडी रहती है।

पप्पू भी यहाँ आकर खुल गया था। अपने घर में तो चुप पड़ा कराहता रहता था।

हवाई अड्डे पर जो टैक्सी आई थी, उसके ड्राईवर साफ़ा पहने डाढ़ी में सरदारजी को देखते ही पप्पू ने ज़ोर से कहा, "अस्सलाम अलैकुम मौलाना..."

"वालैकुम अस्सलाम पुत्तरा, तुसी पाकिस्तान से आये हो?" "असी भी लहोर दे हैं।"

अमजद अली ख़ान हिल गया कि अब क्या होगा, पप्पू ने ये क्या हिमाक़त की। हम सब को मरवा दिया। टैक्सी वाले को मालूम हो गया कि हम मुसलमान हैं और पड़ोसी देश से आये हैं। दुल्हन रानी तो मैके आ गई थी, खामोशी से खुश हुए जा रही थी अकेले–अकेले। अम्मीजान भी खामोश थीं। जैसे खुशी के हर क्षण को अपने भीतर समा लेना चाहती हों। ये भी डर था कि

कहीं अमजद अली ख़ान इन सास–बहू की खुशियों की दिल में उठती हलचल को भाँप न जाये।

ट्रैफ़िक बहुत था। गाड़ी धीरे–धीरे चल रही थी। चौड़ी–चौड़ी सड़कें, ऊँचे–ऊँचे पुराने दरख्त, जो अम्मीजान के ज़माने में बच्चे थे, आज वे भी जवान हो गये थे। मोटरें, बसें, स्कूटर्ज़ और रिक्शे सभी रेस में लगे हुए थे। अमजद अली खान एकटक बाहर ही झांके जा रहा था। दुल्हन रानी का मन किया सड़क के किनारे ठेले पर बिकती पाव–भाजी खाने का, पर डॉक्टर ने सख़्ती से मना किया था कि कोई भी सड़क पर बिकता खाना न खाये। जिगर में इंफ़ेक्शन ही तो होकर इतनी भयंकर बीमारी लगी है पप्पू को।

अमजद अली गाड़ी में बैठा सोचे जा रहा था कि मैं मुसलमान हूँ, पड़ोसी देश से आया हूँ, कोई मुझे शक की नज़रों से देख ही नहीं रहा है। कहीं ये लोग मुझे खुदानख्वास्ता हिंदू तो नहीं समझ रहे हैं। मैं तो सोच रहा था यहाँ हिंदुओं के बाल उस्तरा फिरे होंगे और पीछे चुरकी लटक रही होगी। किसी–किसी में तो गाँठ भी लगी होगी। मगर ये कैसे हो गया हम सब एक ही से लगने लगे। उसके मन में हज़ारों प्रश्न डूबते और उभरते रहे। वह खुद जैसे आकाश में उड़ रहा था। वहाँ से नीचे देख रहा था।

"आ गए आप — आइए तशरीफ़ लाइए।" इस बार अम्मीजान और दुल्हन रानी भी चौंक गईं।

"मैं डॉक्टर सिंह हूँ।"

हड़बड़ा गईं दोनों। "इतनी अच्छी उर्दू बोलते हैं आप!"

"ये उर्दू तो नहीं है। हिंदुस्तानी भाषा है। यहाँ हम सब एक आकाश तले रहते हैं, एक ही–सा खाते–पीते, पहनते–ओढ़ते और एक ही भाषा बोलते हैं।"

डॉक्टर प्यार से बात करता जाता और पप्पू से उसकी बीमारी के बारे में मालूम करता जाता। माँ बाप ने आज पहली बार पप्पू को बड़ों की तरह अपनी बीमारी के बारे में बताते सुना था। पूरी जाँच के बाद डॉक्टर ने बताया कि बच्चे का आधा जिगर खत्म हो चुका है। इसलिए आधा ही ट्रांसप्लांट करने से बच्चे का जीवन सम्भल जायेगा। डॉक्टर पप्पू से खूब बातें करता रहा।जब जिगर का पूरा चेकअप हो गया तब पप्पू से डॉक्टर ने बताया कि वह किस बीमारी का डॉक्टर है। आज पप्पू की आँखों में सितारे जगमगाते दिखाई देने लगे थे। उसको भी अपने जीवन में ठंडी दूधिया चांदनी फैली दिखाई देने लगी। डॉक्टर ने पप्पू को खून के टेस्ट, अल्ट्रासाउंड, एम.आर.आई. वगैरा के लिये भेज दिया था।

आखिर अमजद अली ने पूछ ही लिया कि "आधा जिगर आयेगा कहाँ से?" अच्छे और समझदार लोग अपनी विल में लिख देते हैं कि मरने के बाद अगर मेरा कोई अंग किसी और के काम आ जायेगा तो मेरी आत्मा चैन से रहेगी।

या अल्लाह कैसे–कैसे लोग होते हैं। इतने बहादुर, इतने अज़ीम, इतने रहमदिल, अमजद अली का जी व्याकुल हो उठा, आँखें भर आईं, उसको नहीं समझ आया कि वह इतना भावुक क्यों हो गया। कभी–कभी जब मंज़िल निकट आती नज़र आती है, तो इन्सान अंदरूनी खुशी को बर्दाश्त करने के लिए आँसुओं का सहारा लेता है। खुशी के आँसू, ग़म के आँसू, शर्मिंदगी के आँसू, ये आँसू भीतर की गंदी मैल को धो देते हैं। भीतर सड़ते हुए पश्चात्ताप के दर्द को भीतर से बाहर निकाल देते हैं और जानवर से इन्सान बनाने में सहायता देते हैं।

अमजद अली भावुक हुए जाता था। यहाँ के लोगों का व्यवहार महसूस करके। कुछ गिरने की आवाज़ सुनकर चौंक जाता, सतर्क हो जाता फिर आप ही शर्मिंदा हो जाता। पश्चात्ताप नींदें हराम कर देता है, घुन की तरह चाटने लगता है। अमजद अली के भीतर पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। सोचता मैं इन प्यार–प्रेम के व्यवहारों का कर्ज़ा कैसे उतारूँगा।

डॉक्टर सिंह भी इस परिवार के पास दो तीन बार आता, सरहद के उस पार बसे बिछड़े हुए परिवारों के बारे में बातें करता, वहाँ के गली–कूचे, खेत–खलियानों के बारे में पूछता, उस चौड़ी हरे–हरे दरख्तों की लाइन वाली सड़क, उस पर वह सफ़ेद घर के बारे में भी जानना चाहता जहाँ जल्दी में भयंकर हमले के ख़ौफ से उसकी नानी अम्माँ छूट

गई थीं। काश वह इतना बड़ा होता कि उनको गोद में उठाकर भाग पाता। डॉक्टर सिंह ये सब बहुत हल्की आवाज़ में बिना गुस्सा किये कहता और चुप हो जाता। गहरी सांस लेकर बोलता 'काश हम सब साथ ही रह रहे होते। एक ही होते। पप्पू जी को जो जिगर लगाया है, वह मेरे परिवार के बच्चे ही का है। मैंने सोचा इस बच्चे की पूरी हिस्ट्री मैं जानता हूँ। पप्पू जी से बेहतर और कौन हो सकता है जिसे मैं अपने परिवार के बच्चे का जिगर दे सकता। वह अपना बच्चा था, ये अपने देश का बच्चा है।

वह सुनसान डोरी फिर से कपड़ों से आबाद हो गई। मोगरे के फूलों की खुशबू चारों ओर फैलने लगी। हवा ने उस खुशबू को अपनी झोली में भरकर खुशी से झूमकर नाचना शुरू कर दिया। वापस आकर अम्मीजान ने भी गजरा पहनना शुरू कर दिया। दुपट्टा भी धनक के रंगों में रंगा जाने लगा।

खूबसूरत यादें लेकर अम्मी, अमजद, पप्पू और बहुरानी वापिस अपने मुल्क़ अपने शहर पहुँच गये। पप्पू के चेहरे की रंगत और सेहत दोनों बेहतर हैं। आज अमजद को कोई शिकायत नहीं कि उसके बेटे के जिस्म में हिन्दू जिगर या खून प्रवाह कर रहा है।

दुल्हन रानी अमजद को चोरी–चोरी देखे जाती, कानों में फूलों की बालियाँ पहनकर हल्के भूरे बालों की मोटी–सी चोटी आगे को डाल लेती। पास खड़ी होकर अम्मीजान से नज़रें बचाकर चुपके से अमजद के बालों में उंगलियाँ फेर देती।

"अम्मीजान देख रही हैं", अमजद डराने को कहते और फिर दुल्हन रानी का चौंक जाना देखकर ज़ोर से हंसते।

अम्मीजान ने पूछ लिया "क्या बात है? बेटे! अब ये बताओ कब तलक बैठे हँसते रहोगे? काम वाम पर जाने का इरादा नहीं है क्या?"

नहीं अम्मीजान अब उस काम पर वापस जाने का कोई इरादा नहीं। अब ज़िन्दगी का एक ही मक़सद हो सकता है, अब मैं दुनिया को आपकी निगाह से देखना चाहता हूँ। दोनों आसमानों के रंग एक ही हैं।

zakiiaz@gmail.com

उम्मीद

– श्री ब्रसील नागोड वितान

श्रीलंका

उल्लू की आवाज़ नन्दू के कानों में पड़ते ही लगा कि कुछ अजीब–सा होने को है। उसने खाट से उठकर आँगन में आकर आकाश की ओर देखा। पूरा आकाश साफ़ दिख रहा है। बादल रहित आकाश की पूर्वी दिशा से चाँद ऊपर आ रहा है और तारे चमक रहे हैं। मगर पूरी तरह उनका प्रकाश नहीं बढ़ा था, क्योंकि रात अभी भी यौवन पार कर रही है।

गाँव के सभी लोगों की उम्मीद बारिश है, जिसके साथ उनका सारा जीवन बंधा हुआ है। समय पर पानी पड़ने से गाँव वालों के खेत–खलिहान खिल उठते हैं। दाने फूटते हैं। मौसम के परिवर्तन के साथ आये अकाल ने गाँव वालों की उम्मीदें उजाड़ दीं। नन्दू की कल्पना थी कि नये साल के पहले सभी फ़सलें घर आने के बाद नये साल का आनन्द खूब उठा पायेंगे। ओस के कण पड़ने से वातावरण शीतल होता जा रहा है और टपकती बूँदें शीतलता का आभास दे रही हैं, लेकिन कुछ दिनों से गर्मी बढ़ रही है, जिससे सूखी हवा ने वह शीतलता भी समाप्त कर दी। नन्दू ने घरवाली को आवाज़ लगायी....

"मीना.... ओ मीना....ज़रा बाहर आ....."

मीना तीन बच्चों की माँ है। पहली लड़की राधा दसवीं कक्षा में पढ़ती है और दूसरा सोनू पाँचवीं कक्षा में। तीसरा गोद में है जो तीन साल का है। छोटा बच्चा सुला के मीना अपने कपड़े तथा चोली ठीक करते हुए

बाहर आयी और पूछा, बुलाया है क्या? क्या बात है?

"मेरा हवा से बात करने का कोई इरादा नहीं। अरे सुनो मीना.... मुझे बहुत शंका हो रही है और मन कह रहा है कुछ अजीब तो होने को है?"

"अचानक तुम्हारे मन में यह कौन–सी शंका आ गयी? घुमा–घुमाकर क्या बताने जा रहे हो? साफ़–साफ़ कहो क्या हुआ....?"

"हमारी सारी उम्मीदें यह अकाल खा जाएगा... पानी बरसने का नाम भी नहीं है। अगर बारिश समय पर नहीं पड़ेगी, तो सारी की सारी खेती उजड़ जाएगी।"

शोकाकुल स्वर में लड़खड़ाते होंठों से नन्दू के मुंह से ये शब्द निकले। उसकी आवाज़ में निराशा थी। गरम साँसों में जो वेदना छिपी है वह हवा के साथ मिलकर मेरा भी कलेजा छू रही है और ठंडी हवा शीतल बना रही है।

"देखो, पौधे लगाए अभी चार दिन हो गये, अभी तक बारिश की एक बूंद भी नहीं पड़ी। मैं देख के आया सभी सूख गये।"

"दिल इतना भावुक मत बनाओ और अशुभ मत सोचो। जल्दी ही जल्दी इन्द्र भगवान हमारा क्रन्दन सुनेगा।"

"अरे! मैं कहना भी भूल गयी....,बेटी बता रही थी कि अपने कॉलिज के लिए कुछ नयी किताबें खरीदनी हैं। बेटे के जूते भी फटे हुए हैं।"

"तुम तो हमेशा निर्धनता का गाना सुना रही हो लेकिन मैं अकेला क्या करूँ? मुझे भी लगता है कि हमारे बच्चे काफ़ी तकलीफ़ों में हैं। दिन–रात सोचता रहता हूँ कि दो जून कैसे खिलाऊँ?"

"कल्यानी ने कहा कि हवेली की मेम साहब ने छोटे–मोटे काम के लिए मुझे हवेली बुलाया है। मैंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया और बताया कि आपसे पूछकर ही बताऊँगी।"

"नहीं–नहीं, तू किसी के घर में हाड़ी–बर्तन धोने नहीं जाएगी। मेरे जीते जी यह कभी नहीं होगा और बच्चों को संभालकर घर के काम–काज देख लो। जूना छोड़कर जूना भले ही, कुछ–न–कुछ खिलाऊँगा। आज तक क्या मैंने किसी को भूखे रखा है? जब तक अपने तन में दम–साँस होगा, तब तक भूखे नहीं मरने दूँगा। समझी।"

"अगर मैं कुछ कमाने जाऊँ, तो तुम्हें भी कुछ सहारा मिलेगा, सभी भार अकेले क्यों ढो रहे हो? कष्ट सहते–सहते शरीर ढल गया और बूढ़ी उम्र से पहले ही बुढ़ापा दिख रहा है।"

"चुप..... जाने दो। जा अन्दर और काम देख। जो मैंने कहा बस इतना है।"

मीना गुस्से में अन्दर जाकर तीनों बच्चों को अपने पास खींचकर सोने लगी। नन्दू भी जाकर खाट पर लेट गया। अंधेरे में छत पर डाले कपड़ों के बीच से चाँद का हल्का प्रकाश उसके चेहरे पर पड़ रहा था। छत की तरफ़ देखते–देखते नन्दू को नींद आ गयी।

"ओह नन्दू भैया! तड़के तुम कहाँ जा रहे हो?"

"हाँ कालू भैया, घरवाली का रोना–धोना और बच्चों का क्रन्दन बर्दाश्त के बाहर है। सारी की सारी खेती अकाल खा जाएगा और घर का दाम दिन–पर–दिन बढ़ता जा रहा है। जीवन निर्वाह मुश्किल होता जा रहा है। घर–द्वार छोड़कर नौकरी की तलाश में कहीं दूर जाने के लिए निकला हूँ। मालूम नहीं कहाँ जाऊँ और क्या कमाऊँ।"

"रुको नन्दू, मैं तुझे नौकरी का एक सुराग दूँगा, तो तू जाकर मेरे देवर से पूछ ले।"

"कहाँ पर है वह?

"वह शहर के पास एक पत्थर तोड़ने की मिल चला रहा है। मुझे भी काम पर बुलाया था, पर मुझे जाने की फ़ुरसत कहाँ है भैया? तुम जाकर उससे पूछ लो, मुँह नहीं मोड़ेगा। और हाँ.... बताना कि मैंने तुम्हें भेजा है....।"

"कालू भैया लाख–लाख शुक्रिया!!"

उजड़ती खेती की चिंता में वह आगे बढ़ रहा था। उसके दिल–दिमाग में अपनी पत्नी के कटु शब्द चुभ रहे हैं और बच्चों की विवशता चारों तरफ़ मंडरा रही है।

नन्दू को पत्थर के मिल में नौकरी मिल गयी, पर

उसे तब लगा कि यहाँ काम करना आसान नहीं है। झुलसती गर्मी में धधकने वाले पत्थरों के साथ लड़ना बहुत मुश्किल है। लेकिन पत्नी और बच्चों की खुशी के लिए सब बर्दाश्त करने लगा। सबसे खतरनाक बात यह थी कि पत्थर तोड़ने के लिए बम्ब लगाते हैं जिससे निकलने वाली धूल तथा पत्थरों के टुकड़े कभी–कभी खून भी बहा देते हैं।

सूरज अपनी तेज़ किरणें फैलाते हुए चमक रहा है और नन्दू हथौड़े से पत्थरों पर प्रहार कर रहा है। एकदम धड़ाम की आवाज़ के साथ धुएँ के बीच से प्रकाश की रेखा दिख पड़ी।

"मुझे बचा लो, अगर मुझे कुछ होता है, तो मेरी पत्नी और बच्चे मर जाएँगे.... । बचाओ....ब...ब....च्....चा. ...ओ....."

इसी आवाज़ से त्रस्त मीना झटके से अन्दर से बाहर निकल पड़ी और तीनों बच्चे रोने लगे। मीना धनुष के निकले तीर की तरह नन्दू के पास जाकर बोली, "अरे! इतने ज़ोर से क्यों चिल्लाते हो? आकाश गरज रहा है। कहीं तुम गरजने की आवाज़ सुनकर डर गये क्या?" मीना ज़ोर से बोली।

"देखो बारिश का मौसम शुरू हुआ है और बारिश की बूंदें पड़ने लगी हैं।"

नन्दू ने शर्माते हुए धीरे–धीरे आँखें खोली और देखी।

"हाँ.... बारिश की बूंदें पड़ रही हैं और इन्द्र भगवान ने हमारी चिंता सुनी"

"हाय! मेरी खेती.... हाय मेरे बच्चे...नई उमंग लेकर बारिश आ गयी।"

नन्दू के चेहरे पर उम्मीद की हँसी की रेखा खिंच आयी। पत्नी को पास बुलाकर बिठाया और उसकी आँखों की तरफ़ देखा, दोनों की आँखें मिलीं और ज़ोर से हँसने लगीं।

bresilsusl@yahoo.com

माओइ और विशाल मछली

– श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'
न्यूज़ीलैंड

माओइ जब छोटा था, तो उसका एकमात्र सपना था कि वह भी अपने बड़े भाइयों के साथ मछली पकड़ने जाए। जब भी उसके भाई मछली पकड़ने के बाद घर लौटते, तो उसका एक ही प्रश्न होता, "क्या मैं अगली बार आपके साथ मछली पकड़ने जा सकता हूँ?"

माओइ के भाई हमेशा बहाना करते, "नहीं, तुम हमारे साथ मछली पकड़ने जाने के लिए अभी बहुत छोटे हो। हमें अपनी नौका में मछलियाँ रखने के लिए बहुत सी जगह की ज़रूरत रहती है।"

माओइ प्रतिवाद करता, "मैं केवल थोड़ी–सी जगह ही लूँगा और मैं आपको बिल्कुल परेशान नहीं करूँगा, मैं वादा करता हूँ।"

सबसे बड़ा भाई जवाब देता, "तुम इतने पतले हो कि हम तुम्हें मछलियों का चारा समझ कर गलती से शायद बाहर फेंक दें और तब मछलियाँ तुम्हें खा जाएँगी।"

माओइ गुस्सा हो जाता। "मैं उन्हें सिखाऊँगा", वह खुद से कहता,"मैं साबित करूँगा कि मैं कितना कुशल हूँ!"

माओइ ने अपने मन में स्वयं को एक महान मछुआरा साबित करने की एक योजना बनाई। एक रात जब माओइ अकेला था तो उसने सन (Flax) से एक मज़बूत मछली पकड़ने की डोरी (लाइन) बुननी शुरू कर दी। वह डोरी बुनते–बुनते अपने कबीले का पारंपरिक मंत्र पढ़ता जा रहा था। उसके कबीले में यह धारणा थी कि यदि डोरी बुनते समय इस मंत्र का उच्चारण किया जाए तो 'लाइन' खूब मज़बूत हो जाती है।

जब उसकी बुनाई समाप्त हुई तो माओइ ने अपनी

नानी के जबड़े की जादुई अस्थि को इसमें चुपके से सुरक्षित बांध लिया।

अगली सुबह जल्दी उठकर माओइ अपनी मछली पकड़ने की डोरी साथ ले, नौका में जा छुपा।

जब भाइयों ने नौका को समुद्र में खींचकर छोड़ना शुरू किया तो उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ क्योंकि नौका इस बार कुछ भारी थी।

"आज नौका कुछ भारी जान पड़ती है।" एक भाई बोला, "क्या तुम सब ज़ोर से धक्का लगा भी रहे हो?"

"आज सुबह कनू बहुत भारी है, क्या आप वाकई मदद कर रहे हैं?" एक ने कहा।

"मुझे लगता है कि आप बहुत ज़्यादा खाना खा रहे हैं!" दूसरे ने हँसकर कहा।

"अपनी बातें रहने दो और ज़ोर लगाओ!" सबसे बड़े भाई ने कहा।

भाइयों में से किसी को भी माओइ के छुपे होने की भनक तक न थी। जब माओइ ने महसूस किया कि उसके भाइयों ने लंगर छोड़ दिया है, वह जानता था कि वे अब अपने घर से बहुत दूर निकल चुके हैं और अब लौटना संभव नहीं है। तब माओइ ने अपने भाइयों के सामने प्रकट होकर उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया।

"अरे! तुम यहाँ क्या कर रहे हो?" एक ने कहा।

"तो....तुमने हमें धोखा दिया!" दूसरा बोला।

"अब समझ आया कि हमने अभी तक एक भी मछली क्यों नहीं पकड़ी है!"

माओइ के भाई उससे बहुत नाराज़ हुए।

माओइ ने अपनी बात उनके सामने रखी, "मैं मछली पकड़ने आया हूँ, क्योंकि नानी ने कहा था कि मैं बहुत बड़ा मछुआरा बनूँगा। अपनी 'लाइनों' को नीचे जाने दो, क्योंकि मैं अपने 'मंत्र' का पाठ करूँगा तो तुम इतनी मछलियाँ पकड़ोगे, जितनी पहले कभी न पकड़ी होंगी।" माओइ ने अपना मंत्र शुरू किया। भाइयों ने पानी में अपनी लाइनें फेंक दी और तुरन्त मछली पकड़ना शुरू कर दिया। एक के बाद एक मछली फँसती गई और पूरी नौका भर गई।

मछलियों से भरी नौका देखकर सभी भाई बहुत प्रसन्न थे। वे अपने आप को सर्वोत्तम मछुआरे बता रहे थे व अपनी तारीफ़ स्वयं करते जा रहे थे।

"अब मेरी बारी है, मैं मछलियाँ पकड़ता हूँ।" माओइ खुशी से झूम उठा।

माओइ को अपने थैले में से अपना कांटा निकालता देख सभी बड़े भाई उसका मज़ाक उड़ाने लगे, "तेरे इस कांटे से मछली तो क्या कोई समुद्री घास भी फँस जाए तो गनीमत समझना!"

माओइ ने उन्हें अनसुना करते हुए मछली पकड़ने के चुग्गे के लिए पूछा तो भाइयों ने साफ़ मना कर दिया और उस पर हँसते रहे।

माओइ को जाने क्या सूझा! उसकी मुट्ठियाँ ज़ोर से भिच गई थीं। उसने बहुत ज़ोर से अपने नाक पर एक मुक्का मारा। अगले ही क्षण उसकी नाक से खून बह रहा था। उसने अपने खून से अपने मछली पकड़ने वाले कांटे को लेप लिया। उसका मछली पकड़ने का चुग्गा तैयार था। फिर उसने नौका पर खड़े होकर अपना जादुई मन्त्र पढ़ते हुए, अपना कांटा समुद्र में फेंका।

उसकी 'लाइन' व कांटा समुद्र में बहुत गहरे डूबते चले जा रहे थे और फिर कहीं बहुत गहराई में उसका कांटा जा फँसा था।

पूरी नौका ज़ोर–ज़ोर से हिलने लगी थी। माओइ के भाई हँसना भूलकर अपने को संभालने में लग गए थे। "डोरी काट दो!"

"हम सब डूब जाएँगे। जल्दी से डोरी काट दो, माओइ!" दूसरे ने कहा।

माओइ ने उनकी एक न सुनी और पूरे ज़ोर से अपनी डोरी खींचने लगा। उसके कांटे में एक बहुत बड़ी मछली फँसी हुई खींची चली आ रही थी।

इतनी बड़ी मछली को अपनी नौका की ओर खींची चली आती देख सभी भाई मारे डर के ज़ोरों से कँपकपा रहे थे।

"यह वही बड़ी मछली है जो बहुत पहले नानी ने कहा था कि हमें मिलेगी। तुम इसका ख़याल रखो, मैं अपने और लोगों को बुला कर लाता हूँ।"

सभी भाई सहमति से वहीं ठहर गए और माओइ

घर की ओर चला गया।

माओइ के जाते ही उसके लोभी भाई मछली को काटने लगे।

जब माओइ अपने कबीले के और लोगों के साथ लौटा तो सभी लोग इतनी बड़ी मछली देखकर दंग रह गए।

"माओइ, तुम सबसे श्रेष्ठ मछुआरे हो!" कबीले के लोगों ने उसे शाबाशी दी।

माओइ के भाई अब भी विशाल मछली के टुकड़े काटने में लगे थे। 'कौन–सा हिस्सा किसका होगा' पर भी विवाद हो रहा था। माओइ के भाइयों की लालची प्रवृत्ति जग–ज़ाहिर हो गई थी, लेकिन सभी माओइ की तारीफ़ कर रहे थे।

माओइ के भाई विशाल मछली के इतने टुकड़े काट चुके थे कि ऐसे लगता था जैसे वहाँ बड़े–बड़े परबत और खाइयाँ बन गई हों।

कहते हैं, यही बाद में न्यूज़ीलैंड के परिदृश्य का हिस्सा बन गए और पहाड़ों व खाइयों के रूप में आज विद्यमान हैं।

कालांतर में विशाल मछली नॉर्थ आइलैंड (उत्तरी भू–भाग) बन गई व माओइ की नौका साउथ आइलैंड (दक्षिण भू–भाग) है।

editor@bharatdarshan.co.nz

किताबें

– डॉ.जसवीर त्यागी
दिल्ली, भारत

शीशे की अलमारी में बंद किताबें
उदास हैं

वे खामोशी से देखती हैं
कि उन्हीं की आँखों के सामने
कोई हड़प रहा है उनका हक़

धीरे–धीरे उन्हें
बेदखल किया जा रहा है घरों से

किताबों की उजास भरी दुनिया में
बढ़ रहा है सघन अंधकार
यह देख–जानकर
किताबों को बहुत चोट लगती है

कभी–कभी
उन्हें गुस्सा भी आता होगा
पर वे उसे ज़ाहिर नहीं करती
और मौन होकर
माताओं की तरह सब सहती रहती हैं

वे जानती हैं कि
मर्यादाओं और अनुशासन के पहरेदार
हर वक़्त उन पर
अपनी पैनी निगाह रखते हैं
किताबें अपने लिए
कुछ बड़ा या भव्य नहीं चाहतीं
बस वे अपने हिस्से का समय
और थोड़ा–सा प्यार माँगती हैं

वे घण्टों–घण्टों, महीनों–महीनों
और कभी–कभी तो
वर्षों इंतज़ार करती हैं

कि कोई उनके पास आये
बैठे–बतियाये, बिताये कुछ
समय उनके साथ भी
जिसे सौंप सकें वे
अपने जीवन की संचित अनमोल निधि

वे चाहती हैं
कि मायावी मोबाइल
कुछ देर के लिए
उनके पाठकों को अकेला छोड़ दे

ताकि वे दिल खोलकर
बतिया सकें अपनों के संग
साझा कर सकें
किताबों की दुनिया के सुख–दुःख

मोबाइल है कि
आदमी को
कभी अकेला छोड़ता नहीं ।

drjasvirtyagi@gmail.com

बाबू जी सेवानिवृत्त हो गए हैं

– श्री विनोद कुमार पाण्डेय
गाज़ियाबाद, भारत

हाथों में सब्ज़ी का थैला,
अंतर्मन में सवालों का झमेला,
उलझते, रीझते, खीझते,
और कभी मुस्काते,
गोल–मटोल आँखों में,
एक उम्मीद लिए,
कभी इस, कभी उस दुकान जाते,
इधर–उधर भागते, मोल भाव करते,
बहू–बेटे की कमाई के चार पैसे,
बचाने की जद्दोजहद में कितनी तल्लीनता से लिप्त हो गए हैं,
और बेटा–बहू कहते हैं, बाबू जी सेवानिवृत्त हो गए हैं।

कड़कड़ाती ठंड में,
भोर तक काँप उठती है,
ओस की बूंदें,
बर्फ़–सी लगती हैं,
नींद खुद उनींदी–सी होती है,
ख्वाब एक छोटे अंतराल के लिए,
ठहर जाता है,
उस वक्त बाबू जी दूध और अख़बार
की साज संभाल में लगे होते हैं,
घने कुहरे और ठंडी हवाओं के बीच,
सब कर्त्तव्य पिता के, सदैव बखूबी निभाते रहे,
अनगिनत खुशियों से हर पल जिनको सँवारते रहे।
आज वही भावनाओं से रिक्त हो गए हैं,
और बेटा–बहू कहते हैं कि बाबू जी सेवानिवृत्त हो गए हैं।

चाय की हलकी–हलकी घूँटें,
और एक सुखद अध्याय का आरंभ,
रोज़ पोते को स्कूल छोड़ना,
एक हसीन पल,
तेज़ कदमों के साथ,
बहकते हुए चलना, मचलना,
वृद्धावस्था का चंचल,
बचपन में बदलना,
दादा जी–दादा जी
मोहक शब्द
तोतली आवाज़ और मुस्कान का
कानों में घुलना,
स्नेह का सच्चा दर्शन
अन्यथा प्रेम, श्रद्धा, आदर अब सब विलुप्त हो गए हैं,
और बेटा–बहू कहते हैं कि बाबू जी सेवानिवृत्त हो गए हैं।

वर्तमान की वीरानियों में,
अतीत की झनकार तो होती है,
पर अब उतनी नहीं गुदगुदाती,
बस याद भर कौंध जाती है,
जीवन के इस मोड़ पर आ गए,
जहाँ आवश्यकता निरर्थकता की ओर अग्रसर है,
उम्र समय के असर से बेखबर है
सब कुछ स्थिर है
परंतु आज भी,
यह मन जीवन के अंतिम पल तक यहीं,
अपनों के बीच में ही रहने की ज़िद पाले बैठा है
यद्यपि समस्त इच्छाओं से तृप्त हो गए हैं, भले।
और सब कहते हैं कि बाबू जी सेवानिवृत्त हो गए हैं।

voice.vinod@gmail.com

अंतिम पहर में सदी

– प्रो. चंद्रकांत सिंह
नई दिल्ली, भारत

जब–जब प्रेम कविताएँ लिखना चाहता हूँ
नहीं लिख पाता
कलम प्रेम की बजाय
हिंसा का व्याकरण रचती है
कोशिश करता हूँ हिंसा से बचूँ
और आने वाली सदी के लिए
छोड़ जाऊँ कुछ खूबसूरत कविताएँ
नहीं लिखी जाती प्रेम कविताएँ
जबकि उन्हें लिखने की हर तरकीब आज़माता हूँ।

दुश्मनों के पास जाता हूँ इस सोच के साथ
कि अब टकराव नहीं, बहस नहीं, युद्ध नहीं
अब हर संभव कोशिश हो
प्रेम को बचाने की।

अब मैं लावे की तरह नहीं
दीपक की तरह जलूँ
अंधेरे में सोई धरती को बचाता हुआ।
इस बीच एक चिंगारी जला डालती है
अपनों का घर
अमानुष समझे जाने की
एक ज़िद कायम है।

जब–जब लिखने बैठता हूँ
अपने समय का खूबसूरत सच
न जाने क्यों कुछ लोग
लड़ने को उतारू
दोनों हाथों को खोले हुए
मैं जानता हूँ कि लड़ने और मरने से कुछ हासिल न होगा
इसलिए मैं हृदय में बुद्ध की करुणा लिए
जाना चाहता हूँ हत्यारों की ओर
मैं जाना चाहता हूँ प्रेम की डोर लिए
उस शख़्स की ओर
जो शराफ़त को बेचना चाह रहा है।

आज जब अहिंसा का मतलब हिंसा है
नेह का मतलब कटारें हैं, तलवारें हैं
मैं प्रेम में लिपटी हुई कविताएँ लिए
जाना चाहता हूँ उसकी ओर
जो नफ़रत की दीवारें खड़ी करना चाह रहा है।

आख़िर कब तक चलेगी हिंसा
कब तक चलेंगे असलहे
हत्या में डूबी यह सदी अब अपने अंतिम पहर में है।
अब अधिक दिन नहीं चलने वाले बर्बरता के हथियार
अब दुनिया इनसे ऊब चुकी है।

जब दुनिया निढाल सोना चाहेगी धरती की गोद में
मुझे उम्मीद है उस वक्त मेरी कविताएँ
दुनिया को सुलाने में
मददगार साबित होंगी
जब एक नई सुबह लिए उठेगी दुनिया
तो वह हत्याओं से दूर
हरे–भरे मैदानों में चहक रही होगी
और उसे हँसता हुआ देख
मैं खुशी से लोट–पोट हो जाऊँगा।

damantewari@gmail.com

फिर एक बार

– श्री राधे श्याम भारतीय
जयपुर, भारत

'जीवन एक समर है, मुझे युद्धरत ही मरने दो'
कह समा गया वह शिवांश फिर शिव में।
फैला गया अध्यात्म चेतना
प्राची और प्रतीची में?
प्लावित कर गया सम्पूर्ण विश्व को
परम सत्य और परम तत्त्व के परम ज्ञान में।
थे कौन तुम?
कर्म–पिपासु या ज्ञान–जिज्ञासु,
बीथोवन* के थे स्वर वृत्त
या सेवाहित संन्यासी आवृत्त,
श्रमदेवता की स्तुति मूर्तिमान
लाजरस** की समाधि पर खड़े यीशु समान
कर्म ललकार में कृष्ण समान,
सारी संज्ञाएँ सम्मुख तुम्हारे हुईं अप्रतिहत,
जो भी थे तुम, विश्व ने माना थे तुम अद्‌भुत।
हे काली माँ के आविष्ट उपासक!
हे विश्वविजयी तरुण नायक!
हे हैडेल के वृन्दगान!
हे मानव उद्धार के सत्यवान!
हे तर्क बुद्धि आवेशित सिंह मय अयाल!
हे प्रखरतम मेधा की धधकती ज्वाल!
हे कर्मशक्ति देवकंठ के निर्माल्य माल!
तुमसे यह छिपा कहाँ होगा
मानव शुचिता फिर झुलस रही,
क्षुद्र स्वार्थों में दब पद–दलिता हो रही,
शक्ति आज आडंबर का दम भर रही,
करुणा अब नृशंसता की चेली हो रही,
हे कारयित्री शक्ति के ऊर्ध्व उत्स!
हे नरेन हे नरेन्द्र!
हे विविदिशानंद, हे विवेकानंद!
विच्छिन्न करने को घन अंधकार
अस्तित्व धरो फिर एक बार,
अवतरो भारत भूमि पर
और फिर एक बार

bhartiya.radheyshyam3@gmail.com

- बीथोवन* – विश्वप्रसिद्ध महान संगीतज्ञ जो श्रवणशक्ति से हीन थे।
- लाजरस** – यीशु के अभिन्न मित्र।

हे अनंत

— श्री आशीष कुमार कंधवे

दिल्ली, भारत मेरे
चुप हो जाने से
क्या ये धरती घूमना बंद
कर देगी
हवाएँ चलनी बंद हो जाएँगी
सूरज की रोशनी
कहीं खो जाएगी...?

बोलते तो शब्द हैं
तुम मुझे पकड़ सकते हो
मेरे शब्दों को नहीं
तुम मुझे बाँध सकते हो
मेरी कल्पनाओं को नहीं

शब्द कभी सीधे नहीं चलते
करते हैं अनुसरण पृथ्वी का
गोल–गोल घूमकर
फिर वहीं पहुँच जाते हैं
जहाँ से चले थे

कुछ सार्थक शब्द
जब मिलते हैं
सम्पूर्ण धरा खिल उठती है
और गाने लगती है
उमंग के गीत

मौन–मृत्यु में
शोर–सन्नाटे में
चीख–पुकार में
प्रलय–अंधकार में
शब्द कभी
अकेले नहीं होते

यह संपूर्ण धरा
यह संपूर्ण प्रकृति
यह संपूर्ण आकाश
और मेरा अस्तित्व

शब्दों से ही तो भरे हुए हैं
बेशक, तुम सदियों से मौन हो
लेकिन मैं समझ सकता हूँ
तुम्हारे द्वारा गढ़ी गयी
शब्द–सृष्टि को

कदाचित मैंने थोड़ी
साधना और की होती
शब्द–पथ की

मैं तो अयोग्य हूँ
शब्दों की आँख–मिचौली में
ढूँढता रहता हूँ
स्वयं में तुम्हारे
ब्रह्म–अस्तित्व को
और शब्दों में तुमको

मेरे इस भ्रम को बनाए रखना
यथार्थ और स्वप्न में
हे अनंत!
हे अनंत!!

aadhuniksahitya@gmail.com

मैं स्त्री हूँ

– डॉ. जेन्नी शब़नम
नई दिल्ली, भारत

मैं स्त्री हूँ
मुझे ज़िंदा रखना उतना ही सहज है जितना सहज
मुझे गर्भ में मार दिया जाना
मेरा विकल्प उतना ही सरल है जितना सरल
पुराने को हटाकर नया परिधान खरीदना
मैं उतनी ही बेज़रूरी हूँ
जिसके बिना दुनिया अपूर्ण नहीं मानी जाती
जबकि इस सत्य से इंकार नहीं कि
पुरुष को जन्म मैं ही दूँगी
और हर पुरुष अपने लिए स्त्री नहीं
धन के साथ मेनका चाहता है

मैं स्त्री हूँ
उन सभी के लिए जिनके रिश्ते के दायरे में नहीं आती
ताकि उनकी नज़रें
मेरे जिस्म को भीतर तक भेदती रहें
और मैं विवश होकर
किसी एक के संरक्षण के लिए गिड़गिड़ाऊँ
और हर मुमकिन
ख़ुद को स्थापित करने के लिए
किश्त–किश्त में कर्ज़ चुकाऊँ

मैं स्त्री हूँ
जब चाहे भोगी जा सकती हूँ
मेरा शिकार
हर वो पुरुष करता है
जो मेरा सगा भी हो सकता है
और पराया भी
जिसे मेरी उम्र से कोई सरोकार नहीं
चाहे मैंने अभी–अभी जन्म लिया हो
या संसार से विदा होने की उम्र हो

मैं स्त्री हूँ
इस बात की शिनाख्त
हर उस बात से होती है
जिसमें स्त्री बस स्त्री होती है
जिसे जैसे चाहे इस्तेमाल में लाया जा सके
मांस का ऐसा लोथड़ा
जिसे सूंघकर बौखलाया भूखा शेर झपटता है
और भागने के सारे द्वार
स्वचालित यन्त्र द्वारा बंद कर दिए जाते हैं

मैं स्त्री हूँ
पुरुष के अट्टहास के नीचे दबी
बिलख भी नहीं सकती
क्योंकि मेरी आँखों में तिरते आँसू
बेमानी माने जा सकते हैं
क्योंकि मेरे अस्तित्व के एवज़ में
एक पूरा घर मुझे मिल सकता है
या फिर
ज़िंदा रहने के लिए
कुछ रिश्ते और चंद सपने
चक्रवृद्धि ब्याज से शर्त
और एहसानों तले घुटती साँसें
क्योंकि
मैं स्त्री हूँ!

jenny.shabnam@gmail.com

जल–दर्पण

– श्री ओम नागर
राजस्थान, भारत

1

जब नहीं था दर्पण
तब भी था जल

सृष्टि में जब
न जीव था न जीवन
समय के गर्भ में बन रहे थे
जीवों के चेहरे
तब भी जल था

रोज़ तीन चौथाई जल में
अपना अक्स देखती
यह पृथ्वी
बहुत उदास है इन दिनों
पहले–पहल
जल से बन रहा था जीवन

सृष्टि
की आँखों में था जल
मनु
की आँखों में इच्छा–बीज
श्रद्धा
की आँखों में जीवन

2

जल जो
बचा है अभी
घुटक दो घुटक
नदी–दो नदी
जोहड़–दो जोहड़

कुँआ दो कुँआ
टाँके दो टाँके
भरे हैं अभी
तपते मरुथल के बीच

प्यास का हलक गीला है
कुछ दिन
बचाते–बचाते
बच ही जाता है घड़े में
जल कहने जितना

प्यासे कौवे की
चोंच पर उघड़ा है
पानी के हवा होने का
अंतिम निशान।

3

जल–दर्पण में
हमारे समय का चेहरा
बहुत खुरदरा
बहुत बदसूरत

जल–दर्पण में
चेहरा देखकर
पहली बार शर्मायी थीं।
सारी नायिकाएँ

जल–दर्पण में
तैरती दो सजीव छवियाँ
गुम हो गई कहीं

जब नहीं था दर्पण
तब जल ही जल था

आज दर्पण ही दर्पण
जल नहीं दिखता।

4
न जल झूठ बोलता
न दर्पण

दर्पण साफ़ है
चेहरा धूल–सना

जल दूषित है
और चेहरा धुला।

omnagaretv@gmail.com

द्वंद्व

– सत्या शर्मा 'कीर्ति'
झारखण्ड, भारत

मैं स्वतंत्रता और परतंत्रता
के बीच झूलती
असहाय, किंकर्त्तव्य–विमूढ़–सी
खड़ी हूँ सदियों से
मात्र बनकर एक प्रतीक...

हमेशा की तरह बना दिया
तुमने मुझे देवी और
बाँध दी मेरी आँखों पर पट्टियाँ...

ताकि देख न सकूँ
निर्दोषों पर होते अत्याचार
देते झूठी गवाहियाँ
रिश्ते को होते हुए शर्मसार
बिकते हुए ईमान
खाते झूठी कसमें...

चीखती है मेरी आत्मा
झूठ के ढेर पर
हारते सत्य को देखकर
अच्छाई की लाश पर
जश्न मनाती बुराई को देखकर

रोती हूँ अपने गरीब और
असहाय बच्चों की मजबूरी पर
मेरी आँखों से भी बह निकलते हैं
रक्त के आँसू
पर हो जाते हैं ज़ब्त
उन्हीं काली पट्टियों में...

मैं तौलती रह जाती हूँ
अपनी ममता और तुम्हारे छल
अपने हाथों की तराजू में...

satyaranchi732@gmail.com

न्याय आवाहन

— श्रीमती सारिका मूंदड़ा
भारत

शोभा नहीं देती अब
आँखों की काली पट्टी
हाथों में थमा तराजू
असहाय–सी लगती हो
शिकार–सी लगती हो...
किसी चाल का
षड्यंत्र हेतु
फेंके हुए किसी जाल...
अंधापन... कैसे हो सकता है?
प्रतिरूप सच्चे न्याय का...
चाहो तो देख लो
धृतराष्ट्र को
हे देवी!
अब पट्टी खोलो
फैलाओ तीक्ष्ण दृष्टि
घुमाओ अग्नि नेत्र
भस्म कर दो
हर कुचक्र को ...
तौलो सत्य–असत्य को
न्याय के मानदंड को
सोचो,
तनिक सोचो...
न्याय के दूरगामी परिणाम को
आवश्यक है
गढ़ो नए विधान
गढ़ो नए मानदंड
देवी...
असहाय नहीं तुम...
न्याय हो,
हो सर्व सशक्त
मोहरा नहीं स्वार्थी कुचक्रों का
जन–जन की पुकार हो तुम
जो अब भी न दिखाया साहस
ऐसा न हो कहीं...
निराशा से ग्रसित
स्वयं जनता ही कर ले
न्याय प्रक्रिया पूर्ण
न होगा फिर...
तुम्हारे पास भी विकल्प
देर से ही सही...
पर... न्याय करो
आस टूटने से पहले
उठो...
तोड़ो अपनी बेड़ियाँ
मुक्त बनो कि न्याय हो
मुक्त बनो कि न्याय हो...

sarikamoondrasd@gmail.com

वीर विनायक दामोदर सावरकर

— डॉ. अ. कीर्तिवर्धन
मुज़फ़्फ़रनगर, भारत

गणेश, विनायक और नारायण, मातृभूमि के बेटे,
पिता दामोदर सावरकर से क्रांति की शिक्षा पायी।
राष्ट्र–हित में इतिहास रचा सबसे आगे रहते,
अट्ठारह सौ तिरासी में जन्मे विनायक मंझले भाई।
हरि चापेकर क्रांतिकारी ने जब फाँसी फन्दा चूमा,
तेरह वर्षीय विनायक ने तब बदले की कसमें खायी।
सावरकर ने अंग्रेज़ों से स्वतंत्रता की माँग उठाई,
विदेशी वस्त्रों की होली प्रथम उसने ही जलवाई।
दामोदर से घबरा अंग्रेज़ों ने विद्यालय से हटवाया,
पढ़ने का लिया संकल्प, फिर लंदन से डिग्री पायी।
'क्रांतिकारी आंदोलन' से ब्रिटिश शासन घबराया,
'इंडिया हाऊस' को सावरकर ने तीर्थ पहचान दिलाई।
तेईस वर्ष की आयु तक पंद्रह सौ ग्रंथ पढ़ डाले,
अण्डमान के पत्थरों पर भी क्रांति अलख जगाई।

अखण्ड भारत का पक्षधर था, वीर सावरकर महान,
जिसकी रग–रग में भारत और आज़ादी जिसकी माई,
कोल्हू में पेला उसको, दो जन्मों का कारावास मिला,
तिरासी वर्ष की आयु में प्रभु–चरणों में जगह बनाई।

a.kirtivardhan@gmail.com

आज की हिंदी की दूरदर्शी संतान

— श्री घनश्याम शर्मा मोहाबीर
मॉरीशस

मैं सोच हूँ, विचार हूँ,
कल का निर्माण करने वाला आज हूँ।
तो मेरा स्वागत क्यों नहीं किया जाता?

मैं जोश हूँ, उत्साह हूँ,
सपनों से भरी एक आवाज़ हूँ।
तो मुझे अनसुना क्यों किया जाता?

मैं एक कहानी हूँ, एक उपन्यास हूँ,
कल को रचने वाला साहित्य हूँ।
तो मुझे दराज़ में क्यों रखा जाता?

मेरे शब्द में भी शक्ति है,
मेरे अर्थ में भी अभिव्यक्ति है,
मेरे नमन में आपका सम्मान झलकता है,
मेरे वचन में आपका आदर महकता है,
जब बहसों में आपका सारा समय खर्च जाता है,
बड़ों के शब्दयुद्ध में मेरा अर्थ व्यर्थ जाता है।
ऊहापोह में सारे कौन मेरी सुनता है?
मौन मत करो मुझे,
गौण मत करो मुझे,
मैं आज हूँ, मैं आप हूँ, समाज हूँ, वरदान हूँ,
मैं चेतना हूँ, उड़ान हूँ,
मैं आज की हिंदी की दूरदर्शी संतान हूँ।

keeteshsharma@gmail.com

सूर्योदय

– श्री कविराज बाबू
मॉरीशस

शोभायमान प्रकृति का, अभिन्न अंग है सूर्योदय।
बिना सूर्योदय के, जीवन का हर पथ अंधकारमय।

जब रात्रि की कालिमा, छा जाती चहुँ ओर।
तब सूर्य की किरणें, हैं आती करने भोर।

किरणों के स्पर्श से, सकल संसार जग जाता।
अंधकार पर प्रकाश विजय, आत्मबल को बढ़ाता।

पत्तों पर ओस की बूंदें, मोतियों–सी चमकतीं।
महकने लगते फूल, कुसुमित लताएँ खिल उठतीं।

आलस्य त्यागकर, पशु–पक्षी हो जाते क्रियाशील।
अन्न–जल की खोज में, बन जाते वे प्रयत्नशील।

उगने पर सूर्य के, साथ–साथ प्रकृति के ही।
कर्म–पथ पर चल पड़ते, उन्नतशील मानव भी।

सूर्योदय, मात्र प्रकृति की नहीं एक प्रक्रिया।
विश्व को कर्मशील बनाने की है यह क्रिया।

जो हैं फँस जाते, दुःख के गहन अंधकार में।
उगते सूरज को देख, वे धरते धीरज मन में।

है आशा का प्रतीक, सूर्योदय का दृश्य अनुपम।
आत्मा का परमात्मा से, हो रहा मधुर संगम।

bkavisham5@gmail.com

मेरी हिंदी, मेरी पहचान

– श्री सहलील तोपासी
मॉरीशस

दा दा ता ता मा मा पा पा
ये थे मेरे पहले अक्षर,

कभी माँ ने कहा था मुझसे।
बचपन में अ आ इ ई पढ़ी मैंने
मिला मुझे व्यंजनों का ज्ञान
तब बिना किसी कठिनाई के
सीख ली मैंने हिंदी
क्योंकि सीख चुका था मैं
पैदा होने के कुछ महीने बाद
हिंदी के वे सुनहरे अक्षर।

प्यार में,
धोखे में,
हर उस पहली सोच में
डोरी–सी थी हिंदी
कॉलिज में उत्तीर्ण
सर्वश्रेष्ठ परिणाम
प्रतिष्ठित करती रही मुझे हिंदी।

भुलाए नहीं भूल पाता हूँ
कंधे पर जब आई थी 'बिन्दी'
तब भी बनी अभिव्यक्ति की भाषा हिंदी
प्रेम के उस हर रंग में
वाहिका बन बही हिंदी ।

हर भावना को,
हर अच्छे–बुरे अनुभव को,
हर चोट को,
हर टीस को,
हर पनपते विचार को
अस्मिता देती है हिंदी।

दोस्त बने,
जान–पहचान बढ़ी
जीवन को एक दिशा मिली
कई आयाम खुले
नई उड़ानें मिलीं
जिसके पीछे कारण थी हिंदी
कभी न सोचा था एक दिन
दिनचर्या बन जाएगी हिंदी।

हिंदी की रोटी खाता हूँ
मेरी पहचान है हिंदी,
हिंदी से जुड़ा हूँ,
मजबूरी नहीं मेरा सौभाग्य है।
मिट सकता हूँ मैं,
लेकिन
पहचान मेरी न मिट पाएगी।

इस विशाल वृक्ष का पत्ता हूँ मैं
झर भी जाऊँ एक दिन तो
मुझे न कोई परवाह है
पूर्ण रूप से आश्वस्त हूँ
क्योंकि,
नया एक निकल ही आएगा
मेरे बाद
शोभा बढ़ाने हिंदी की।

sehlil1986@gmail.com

उर में आता कोई

– श्री गोपाल बघेल 'मधु'
टोरंटो, कनाडा

उर में आता कोई चला जाता
सुर में गाता कभी विचलाता;
सुनहरी आभा कभी दिखलाता,
कभी बे–रंग कर चला जाता!

वश भी स्वयं पे कब रहता,
भाव भव की तरंगें मन बहता;
नियंत्रण साधना किये होता,
साध्य पा के कहाँ रहता!

जीव जग योजना विविध रहता,
विधि उचित कहाँ अपनाता;
कष्ट अपनी चलन से पाता,
दोष दूजों पर लगा जाता!

मुक्त द्रष्टा बने विचर चलते,
ध्येय उनके कहाँ कोई होते;
संदेश सतत जो हृदय पाते,
वही करते हुए नज़र आते!

समर्पित त्वरित प्रायः रहते,
स्वतः स्फूर्त भुक्त नित रहते;
प्रकृति से कर्म गुण प्रकट पाते,
हिये परमात्म 'मधु' टपकाते!

gpbaghel@gmail.com

शब्द

– इंदु बरोत
लंदन, यू.के.

मन को मन से जोड़ते हैं शब्द,
एक दूसरे से तोड़ते भी हैं शब्द।
शब्दों का ये खेल है कैसा, कोई न ताकतवर इनके जैसा।
द्रौपदी के शब्दों ने ही करवा दिया था महाभारत युद्ध।
कुछ न कहने के बावजूद, सब कुछ कह जाते हैं शब्द।
शब्द होते हैं, कभी कोमल तो कभी कठोर।
कर देते हैं मन को कुंठित तो कभी भाव–विभोर।
कुछ शब्द देते हैं बाँध, तो कुछ कर देते हैं स्वच्छंद।
कैकेयी के शब्दों से ही दशरथ हो गये थे वचनबद्ध।
कुछ न कहने के बावजूद, सब कुछ कह जाते हैं शब्द।
बोलने से पहले, नाप–तौलकर बोलिये शब्द।
साक्षरता–निरक्षरता दिखाते हैं शब्द।
अर्थ का अनर्थ भी कर देते हैं शब्द।
कुम्भकर्ण ने वरदान में माँगा इंद्रासन
शब्दों की हेराफ़ेरी से उसको मिल गया निद्रासन।
कुछ न कहने के बावजूद, सब कुछ कह देते हैं शब्द।
मर्यादा न कोई सीमा है शब्दों में।
सब कुछ बिकता है शब्दों से।
शब्दों के मायाजाल से ही, लोग हवा तक देते हैं बेच
और बेच देते हैं कहानी भी।
शब्दों के मायाजाल से ही बिक जाता है
तीनों लोक में फैला पानी भी।
हँसाते भी हैं शब्द तो रुलाते भी हैं शब्द।
कुछ न कहने के बावजूद सब कुछ कह देते हैं शब्द।
किसी भी मर्यादा पर रुकते नहीं हैं शब्द।
ठूंठ बने अर्थों पर भी, झुकते नहीं हैं शब्द।
भर जाते हैं बाणों के घाव, किंतु नहीं भरते हैं शब्दों के घाव।
कभी मासूम तो कभी नासमझ हो जाते हैं शब्द।
कुछ न कहने के बावजूद, सब कुछ तो कह जाते हैं शब्द।

indu.barot@yahoo.in

मुहब्बत

– सुश्री एस.एच.एन. दुलांजलि
श्रीलंका

झाँक रहा कोई आसमान से
कर लेता इला का चुंबन
अपने मृदु करतल से
खिल उठती प्रसन्नता से इला
करने लगती मुहब्बत
आसमान के मेहमान से

इला की सखियाँ खिलकर
सजाने लगती उसे
रंगों और खुशबू से।
छोड़ न पाये मेहमान
चाहकर भी उसे

स्वागत के लिए प्रेमी मेहमान के
गाने लगती मंगल गीत चिड़िया रानी
यत्न करती छूने को उसे
पर हार जाती
हर पल मेहमान से

थोड़ा–सा गर्व, थोड़ा प्यार
फैलाता अपनी बाहें इला की ओर
सकुचाती लज्जा से इला
सोचने लगता है मेहमान
नहीं करती युवती उससे प्यार
सह नहीं पाता वह अस्वीकार

प्रिय की क्रोधाग्नि से
पीड़ित हो उठी इला
सखियाँ फूल मुरझायी वेदना से
छिप गई चिड़िया
डर और बेचैन से

भर जाता हृदय करुणा से मेहमान का
कबूल कर लेता अपने गुनाहों को सिर झुकाकर
बह जाती लहू की धारा उसके नैनों से
रंगीन हो जाता आसमान उन आँसुओं से
बुलाना चाहती युवती वापस उसको
पर
समय कहाँ रुकता है
सोने गयी धरित्री कल उसी के इंतज़ार में

आज भी वही हुआ जो कल हुआ था
दोनों समझ चुके थे न मिल सकेंगे कभी
पर
न रह सकते
देखे बिना एक–दूसरे को
इसलिए
वही होता आ रहा है सदियों से
इनके बीच
जो
पहली मुलाकात में हुआ दोनों के बीच

nalikadulanjali@gmail.com

ऐसा हो भारतवर्ष

– श्री गजराज सिंह
दोहा, क़तर

रंग वर्ण और सम्प्रदाय का, भेदभाव ना हो आपसी
कर्त्तव्य परायण प्रशासक हों, राजधर्म की हो वापसी
अटूट अलौकिक ऐसे ग्रह पर, अपनी अद्‌भुत छवि हो
विश्व–गुरु अति प्रेरणात्मक, ऐसा अपना भारतवर्ष हो
तमिल तेलुगु और केरल में, रिमझिम–रिमझिम वर्षा हो
कन्नड़ गोवा महाराष्ट्र में, मलय पवनमय मधु हर्षा हो
बंग से नागाभूमि और दार्जिलिंग में अमन हो
विश्व–गुरु अति प्रेरणात्मक, ऐसा अपना भारतवर्ष हो
सिक्किम आसाम की धरती, वर्णन में नहीं आतीं
अरुणाचल और मेघालय से, म्यांमार तक सब मुस्कातीं
हिमाचल कश्मीर से लेकर, जम्मू तक भव्य मुकुट हो
विश्व–गुरु अति प्रेरणात्मक, ऐसा अपना भारतवर्ष हो
पंचनदी से हरियाणा तक, बृजभूमि में हो सवेरा
पगड़ी राजस्थानी पहनूँ, गुजरात में करूँ बसेरा
यमुना–गंगा तल पर श्वेत दुग्ध सरित प्रवाह हो
विश्व–गुरु अति प्रेरणात्मक, ऐसा अपना भारतवर्ष हो
मगध से भुवनेश्वर तक, गायें गाथा मिलकर सारे
मध्यराज्य की उज्जैयनि ने, दिये सारे कष्ट निवारे
अविभाज्य इकाई हो राष्ट्र, सबको बड़ा गर्व हो
विश्व–गुरु अति प्रेरणात्मक, ऐसा अपना भारतवर्ष हो
भूखा–नंगा रहे न कोई, सर पर सबके छत हो
बाल–बालिके शिक्षण–पथ पर, वृद्ध सेवा की लत हो
विकास कार्य संयम से करने, राष्ट्र की सही गति हो
विश्व–गुरु अति प्रेरणात्मक, ऐसा अपना भारतवर्ष हो
रंक धनी सब हर्षित बोलें एक ही स्वर में
भ्रष्टाचार मिटे 'गज' भू से, ध्वनि गूँजे अम्बर में
सत्य निष्कपट अहिंसात्मक नव–पीढ़ी का गठन हो
विश्व–गुरु अति प्रेरणात्मक, ऐसा अपना भारतवर्ष हो

gajrajsingh2000@yahoo.com

वैश्विक भगवान की खोज

– डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव
मेल्बर्न, ऑस्ट्रेलिया

नया ज़माना, नयी संस्कृति, नूतन है परिवेश
वैश्वीकरण के आँचल में पलता देश–विदेश।

वैश्वीकरण की दुनिया में गाऊँ किसका गान?
प्रभु प्रार्थना भी है अनूदित – कैसे करूँ मैं ध्यान?
भाषाओं का अद्‌भुत मिश्रण – कैसे लूँ संज्ञान?
माफ़ करो प्रभु, कर पाऊँगा केवल तुम्हें प्रणाम।

युवाकाल की हँसी गँवाकर, विज्ञान गणित को गले लगाकर
इस प्रतियोगी दुनिया में अपनी पहचान बना पाया,
खान–पान और रहन–सहन में पश्चिम का हुआ प्रवेश
कैसे रखूँ सुरक्षित अपनी संस्कृति का लौकिक निर्देश?
पुस्तक को दीमक चाट गए, संस्कृत का नहीं ज्ञान
अंग्रेज़ी का दामन पकड़ा जाने सकल जहान।

श्लोकों का अर्थ समझना – है दुष्कर संग्राम
पंडित की वाणी भी लगती दिनचर्या का काम
टेलीविजन के परदे पर प्रभु, तुम बन गए सितारा
धन अर्जन के निमित्त तुम्हारा होता है बँटवारा।

जगह नहीं रखने को कमलनयन की मूर्ति
बहुमंज़िले संकीर्ण फ़्लैट में कैसे हो इच्छा पूर्ति?
स्मार्टफ़ोन में रख ली मैंने उनकी सुंदर तस्वीर
यदा–कदा सुन लेता हूँ उन पर अर्पित संगीत।

बचपन बीता दिल्ली में, अध्ययन किया लंदन में
शादी हुई बीजिंग में और रहता सिडनी में
हिंदी, इंग्लिश, मंदारीन का भँवर–जाल आँगन में
बच्चा मेरा उलझ गया है उनके ही धागों में,
कैसे तुम्हें पुकारूँ भगवन भाषा के चक्कर में
स्वीकार करोगे मेरा अर्पण किस भाषा में?

पत्नी को कैसे बतलाऊँ अपने मन की उलझन
अभी समझना बाकी है उसके दिल की धड़कन।

शिक्षक 'गूगल' की महिमा से एक हुआ संसार
पूजा–पाठ धर्म–कर्म भी बना विश्व व्यापार
विश्व नागरिक बनकर मैंने जीत लिया संसार
वैश्विक रूप दिखाकर भगवन, कर दो अंतिम उपकार।

kkps1944@gmail.com

दूर कहाँ तुम चले गए हो

– श्री पीयूष कुमार द्विवेदी 'पूतू'
फ़तेहपुर, भारत

दूर कहाँ तुम चले गए हो, भार हुए दिन–रात।
चैन सौंपकर अपना, पायी आँसू की सौगात।।

वादे तुमने किए हज़ारों, लेकिन नहीं निभाया।
राह अभी चलना है बाकी, अपना हाथ छुड़ाया।
जर्जर मन में नित यादों का, चलता झंझावात।
दूर कहाँ तुम चले गए हो, भार हुए दिन–रात।।

बर्फ़ अनवरत पीड़ाओं की, लगी हृदय पर गिरने।
धीरे–धीरे लगा क्षितिज पर, घोर तिमिर भी घिरने।
बोझिल कदमों को आगे का, पंथ नहीं है ज्ञात।
दूर कहाँ तुम चले गए हो, भार हुए दिन–रात।।

सुख सब उड़े तितलियाँ, रंग छोड़कर अपने।
पलकों को भारी लगते हैं, वो बासंती सपने।
दो–दो हाथ पड़े नित करना, ग़म की बिछी बिसात।
दूर कहाँ तुम चले गए हो, भार हुए दिन–रात।।

putupiyush@gmail.com

मैं उनके ही मन भाऊँ

– श्रीमती ममता सिंह राठौर
गाज़ियाबाद, भारत

लाज का घूँघट मैं न ओढ़ूँ
पलकें अपनी मैं न खोलूँ
तेरी बतियाँ मैं न बोलूँ
मीठा–मीठा मन में घोलूँ

तेरे ही रंग में रंग जाऊँ
पर तेरी तरह न इठलाऊँ
नाम तेरा न लेके बुलाऊँ
रोम–रोम से तेरी हो जाऊँ

सातों वचन मैं साथ निभाऊँ
मेरे सजन मैं कह नहीं पाऊँ
लाज की बिंदिया कजरा लगाऊँ
उनके ही बस मैं मन भाऊँ

mamtasinghrathore75@gmail.com

तेरा नाम

– डॉ. मनीषा शर्मा
इन्दौर, भारत

मेरा मन जैसे नील गगन हो गया
तेरा नाम अधरों पर आया
रोम–रोम पुलकित हो गया
सैकड़ों मंगल मंत्र, फाग के छन्द
गूँजने लगे कानों में
सिर मेरा सजदे में झुक गया। तेरा नाम ...

कसने लगा देह को बाँहों का घेरा
छुईमुई–सा सिमटा हुआ तन
फूलों की तरह खिल गया। तेरा नाम ...

साँसों में घुलने लगी साँसें
कुछ बोली कुछ अनबोली–सी बातें
जीवन मधुमास का सवेरा हो गया। तेरा नाम ...

dr.manishasatish@rediffmail.com

गंगा

– श्री भगवान पाण्डेय
बिहार, भारत

हे जगत तारिणी, विष्णुपदी
शिव–प्रिया, भगवती देव नदी।
गिरिराज सुता, गौरी भगिनी
कर दो माँ मेरी विमल मति।।

गुणगान तुम्हारा कर पाऊँ,
भावों से तू भंडार भरो।
लेखनी चले स्वर फूट पड़े
माँ शक्ति का संचार करो।
हे क्षमावती कुछ भूल करूँ
तो क्षमा सहित उपकार करो।
पावन अवतरण दिवस पर माँ
मेरा प्रणाम स्वीकार करो।।
त्रिभुवन की तू सार, हार वसुधा का ब्रह्म स्वरूपा
पृथ्वी की शृंगार मलिका तेरा रूप अनूपा।
सिद्ध–संत–मुनी–ज्ञानी–योगी, देव–नाग–सुर भूपा
तेरे तट का सेवन करके पाते ब्रह्म अरूपा।।

महिमा तेरी कैसे गाऊँ
मनवांछित फल देने वाली।
तू कल्प लता सोपान स्वर्ग की
कलि कलंक हरने वाली।।
भारत की तू पहचान बनी
त्रैलोक्य भ्रमण करने वाली।
गिरिराज हिमालय को खंडित कर
सप्त सिन्धु भरने वाली।।
तू ताप–पाप हरने वाली
सागर विहार करने वाली
उल्लसित जटा शिव की करके
पर्वत सेतू झरने वाली।।

है विनय हमारी हे गंगा तुमसे अपनी पहचान रहे
तेरा प्रवाह अविरल हो ताकि बचा ये हिंदुस्तान रहे।।

तू नरक निवारिणी जय गंगे
कल्याणकारिणी जय गंगे
उल्लसित तरंग किलोल करे
तू मनोहारिणी जय गंगे।।
तरल तरंग मधुर कल–कल
ध्वनि युक्त धवल जल धारा।
रोग, शोक, त्रय ताप नसावन
कुमति कलाप निवारा।
जो स्नान करे, जो पान करे
जिसने मुख नाम उचारा।
उन जीव–जनों को माता ने
भवसागर पार उतारा।।
विष्णु के नख से निकली तो ब्रह्म कमण्डल आयी
शिव सान्निध्य प्राप्त करने को शंकर जटा समायी।
सूर्य–वंश की तीन पीढ़ियाँ तपी ना तुमको पायी
तुष्ट भगीरथ से होकर तू चली धरा हर्षायी।।

जिनके निमित्त पृथ्वी पर माँ
तुमने आना स्वीकार किया।
उन साठ हज़ार सगर पुत्रों का
तुमने माँ उद्धार किया।।
उपकार तुम्हारा है हम पर
वसुधा को सुधा रस धार दिया।
जितने नभ में हैं तारे
उतने जन तुमने तार दिया।।

तू मोक्ष दायिनी है गंगे
औषधि प्रदायिनी है गंगे।
जीवों के प्राणों की स्वामिनी
त्रैलोक्य भाविनी है गंगे।।
ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की
दशमी तिथि का वरण हुआ।
हस्त नक्षत्र वार बुध दिन
गंगा का अवतरण हुआ।।
जड़ को चेतन करने वाली
धन–धान्य धरा भरने वाली।
तू परमानंदमयी हो माँ
तू दुख संहार करने वाली।।
गंगा ने धरती पर आकर
जन–जीवन को तुष्ट किया।
सभ्यता बनायी श्रेष्ठ यहाँ
संस्कृति उदात्त को पुष्ट किया।।
हर जीव यहाँ निर्भीक रहे
यम से, सब को संतुष्ट किया।
धरा के हर एक वासी ने
प्रतिदान में माँ को रुष्ट किया।।

स्वर्ग लोक से आकर गंगा पावन धरा बनायी
मृत्युलोक के अधम निवासी किए अपावन भाई।
औद्योगिक कचरे से मैली हुई गाद से खाई
किस विकास की तरफ़ देश का पाँव बढ़ा है भाई।।

वन देवी की अस्मत नीलाम हो
कंकरीट की शान रहे।
हरी–भरी धरती पर पैदा
होता रेगिस्तान रहे।।
गंगा की चिंता किसे है चाहे
जल से सस्ती जान रहे।
किस दौर में आये हैं हम
जिसमें ज़िंदा ना इनसान रहे।।

संस्कृति नहीं बच पाएगी
सभ्यता रसातल जाएगी।
प्रतिकूल प्रकृति के चलने पर
वह दण्ड हमें दे जाएगी।।
माँ तुमने तो उपकार किया
पर हमने जो व्यवहार किया।
अपराधी हैं, हम लज्जित हैं
इसको हमने स्वीकार किया।।

तुम क्षमा करो हे क्षामामयी
तुम दया करो हे दयामयी।

sbpandey2881982@gmail.com

चल पड़े हैं

– मंजूषा मन
छत्तीसगढ़, भारत

चल पड़े हैं हम भँवर में
कागज़ों की नाव ले।
राह में कांटे बिछे और
हम हैं नंगे पाँव ले।

फ़ौज तूफ़ानों की आये
देखो मेरे सामने,
कोई न साथी सफ़र में
आये मुझको थामने।
अब चलो तन्हा चलें हम
अपने–अपने घाव ले।
चल पड़े हैं....

कागज़ों की कश्तियों का
क्या भरोसा हम करें।
ज़िन्दगी होती यही है
क्यों भला हम ग़म करें।
स्वप्न को नौका बना
चल हौसलों का ताव ले।
चल पड़े हैं...

manjusha.doshi.ext@ambujacement.com

दोहे

– डॉ. रत्नाकर नराले
टोरंटो, कनाडा

वंदन दोहा छंद को, जिसमें कल चौबीस ।
गेय परम शुभ छंद ये, दिया हमें जगदीस ।।

उसी सुमंगल छंद में, कहें आज इतिहास ।
सबक सिखावेगा हमें, कहाँ करें विश्वास ।।

दरसाने को दिल बड़ा, दया दुष्ट पर व्यर्थ ।
यह न जिसे पल्ले पड़ा, उसके साथ अनर्थ ।।

यही सूत्र है नीति का, रखे सदा जो याद ।
गड्ढे में वह न गिरे, यह सुनने के बाद ।।

कौन मित्र के योग्य है, कौन बदलता रंग ।
कालकूट किसमें भरा, किसका जाली ढंग ।।

खानदान जिसका सड़ा, जानो उसको विघ्न ।
ओछा धोखेबाज़ वो, होगा सदा कृतघ्न ।।

कौन साधु या साँप है, कौन है दगाबाज़ ।
जिसके हिरदय पाप है, बिगाड़ देगा काज ।।

कौन बला का बीज है, किसमें ज़रा न लाज ।
धूर्त फ़रेबी कौन है, इसका हो अंदाज़ ।।

किसकी नीयत है बुरी, कौन नीच हैवान ।
किसके दिल में कीच है, कौन तमस–गुणवान ।।

कौन भला है, कौन बुरा, कौन संत या दुष्ट ।
पहिचानेगा जो सदा, वही रहे संतुष्ट ।।

क्या उसकी औकात है, कैसा उसका वंश ।
क्या उनके गुण–धर्म हैं, कितना सत् का अंश ।।

मन में कितना मैल है, किस बदले की प्यास ।
जानो कितनी सभ्यता, फिर उस पर विश्वास ।।

किसमें कुमति है भरी, किसका करना खंड ।
किसको करनी है क्षमा, किसको देना दंड ।।

जो नर बेईमान है, उससे क्या इकरार ।
उसकी झूठी याचना, करो सदा इनकार ।।

काँटा छोटा ही सही, होता विष का मूल ।
उसे छोड़ कर देह में, देगा आगे शूल ।।

चिनगारी छोटी भी हो, दावाग्नि का बीज ।
वैरी पर करना दया, आत्मघात की चीज़ ।।

एक सड़ी–सी प्याज़ भी, कर देती दुर्गंध ।
एक बूँद भी ज़हर की, हने कुटुंब संबंध ।।

लापरवाही अल्प भी, बने फाँस की डोर ।
गलत समय जो भूल की, फल उसका फिर ग़ोर ।।

यद्यपि तुम अति शूर हो, बल भी हो भरपूर ।
दुश्मन को ना समझ कर, हो जाओगे चूर ।।

नीति नियम को छोड़कर, अगर किया अविचार ।
जनम–जनम भुगतें सज़ा, वंशज रिश्तेदार ।।

दूषित जिसका खून है, उनपर कर विश्वास ।
आत्मघात का फिर उसी, गले लगेगा फाँस ।।

पृथ्वीराज चौहान

महा प्रतापी वीर था, राणा पृथ्वीराज ।
हुआ, न होगा, ना ही है, उसके जैसा आज ।।

उसने कीन्हा एक ही, नीति–प्रतिकूल काम ।
कृतघ्न को करके क्षमा, मिला ग़ोर अंजाम ।।

चिरस्थायी परिणाम से, हुआ अमित नुकसान ।
म्लेच्छों को सत्ता मिली, गये अनगिनत प्राण ।।

धनु से निकला तीर जो, वापस लौट न पाय ।
लगा रोग जो देह में, अंग न काटा जाय ।।

दिल्ली अरु अजमेर का, राजा पृथ्वीराज ।
सर्वश्रेष्ठ भट वीर वो, सर्वस्तुत्य है आज ।।

पृथ्वीराज अजमेर का, राजपूत चौहान ।
दिल्ली का वह नृप बना, दत्तक–सुत सम्मान ।।

वीरों का वह वीर था, गुण संपन्न सुरेश ।
योद्धा पृथ्वीराज था, अजमेर का महेश ।।

बाहुबली वह परम था, महान अश्व सवार ।
इन्द्र समान स्वरूप था, कर उसके तलवार ।।

क्षत्रिय श्रेष्ठ पराक्रमी, शूर विक्रमी धीर ।
महाधनुर्धर मारता, आँख मूँदकर तीर ।।

कला रसिक उत्कृष्ठ था, प्रेम–रंग रस लिप्त ।
पत्नी प्रिय संयोगिता, अथाह जिससे प्रीत ।।

दानी पृथ्वीराज था, दया क्षमा भंडार ।
धर्मवीर शिवभक्त था, याद रखे संसार ।।

ग़ोरी

मियास–उद्दीन ग़ोर का, महादुष्ट सुलतान ।
बार–बार हमला करे, भारत पर घमासान ।।

सन ग्यारह सौ बानबे, आया संकट ग़ोर ।
किया द्रोह सुलतान ने, नमकहराम अग़ोर ।।

कृतघ्न का करके भला, भयी भयानक भूल ।
एहसान फ़रामोश वो, दीन्हा भीषण शूल ।।

दूरदृष्टि यह ना जिसे, होता उसका नास ।
मुँह के बल औंधा गिरे, और गले में फांस ।।

दिल्ली पर उसने किया, हमला दसवीं बार ।
हारा फिर से युद्ध में, कैद हुआ इस बार ।।

क्षमा याचना खूब की, दिया झूठा अहसास ।
कीन्हा पृथ्वीराज ने, छद्मी पर विश्वास ।।

छोड़ दिया सुलतान को, करके बहु सम्मान ।
दूध पिलाया साँप को, सुहृद सच्चा मान ।।

विनाश की हो जब घड़ी, पापी लगता पूत ।
झूठा लगता सत्य है, मिथ्या लगे सबूत ।।

नीति छोड़कर जो किया, उदारता से काम ।
महा भयानक फिर मिले, उसका दुष्परिणाम ।।

हमला तुम पर जो करे, शस्त्र–सैन्य के साथ ।
उसको जीवन दान क्यों, करना आत्मघात ।।

रण पर आता युद्ध को, लेने तुमरी जान ।
उस पर करनी क्यों दया, शठ को सुहृद मान ।।

अवध्य के वध के लिए, शास्त्र कहत जो पाप ।
ना करके वध वध्य का, वही लगत है आप ।।

कीन्हा जो अफ़गान में, करने धर्म प्रसार ।
वह दुहराने हिंद में, आता बारंबार ।।

घणी विफलता हिंद में, पाकर भी दस बार ।
ग़ोरी लज्जित ना हुआ, ना माना वह हार ।।

हमला ग्यारहवाँ किया, ग़ोरी ने घमासान ।
लेकर सेना आ गया, भारत में सुलतान ।।

सेवक लाया साथ में, ऐबक कुतुबुद्दीन ।
ग़ोरी समान दुष्ट था, धर्म–प्रसारण लीन ।।

आया जब वह हिंद में, साथ मिला जयचंद ।
घर का भेदी, लालची और बुद्धि का मंद ।।

ग़ोरी को दी सूचना, जयचंद ने तत्काल ।
वन में पृथ्वीराज है, कर दो उस पर चाल ।।

निहार हमला म्लेच्छ का, अकस्मात अनिवार ।
अवाक् पृथ्वीराज था, लड़ने बेतैयार ।।

छिड़ी लड़ाई ज़ोर की, लड़ा खूब रणवीर ।
शर से आहत, गिर पड़ा, बदल गयी तकदीर ।।

कैद किया सुलतान ने, नमकहरामी जोड़ ।
दीन्हीं पृथ्वीराज की, दोनों आँखें फोड़ ।।

ग़ोरी वापस जब गया, संग लिये चौहान ।
ऐबक को दिल्ली मिली, बना नया सुलतान ।।

ऐबक ने फिर नगर में, कीन्हे अत्याचार ।
गिरा दिये मंदिर कई, करने खड़ा मिनार ।।

आये जब वे ग़ोर में, ग़ोरी में था जोश ।
आयी जनता महल में, जय! जय! करती घोष ।।

भरा प्रदर्शन ग़ोर में, ग़ोरी को आनंद ।
बंदी पृथ्वीराज था, सँग बरदाई चंद ।।

उच्च मंच पर था खड़ा, ग़ोरी का सुलतान ।
प्रजा खड़ी थी देखने, तीरंदाज़ तूफ़ान ।।

खड़े मंच के सामने, अन्धे पृथ्वीराज ।
सँग बरदाई चंद भी, बाज रहे थे साज ।।

करके पृथ्वीराज को, गुप्त–भाष संकेत ।
बरदाई ने दे दिया, उसे ठीक संदेश ।।

चतुर–बाँस, चौबीस गज, उँगल–अष्ट प्रमाण ।
वहाँ खड़ा सुलतान है, चूकियो मत चौहान ।।

छोड़ा पृथ्वीराज ने, उसी लक्ष्य पर बाण ।
लगा बाण सुलतान को, छोड़े उसने प्राण ।।

rnarale@yahoo.ca

ग़ज़ल

– श्री हर्षवर्धन आर्य
दिल्ली, भारत

1

ये आँसू कभी मोती, कभी अंगार होते हैं
कभी फूल होते हैं, कभी ये खार होते हैं।

प्रणय और प्रीत में अक्सर पलक पलने में पलते हैं
जो टूटे और दिल से बरसे तो प्रलय की धार होते हैं।

छलकते हैं खुशी में, तो सभी को ये हँसाते हैं
जो रूठी आँख से निकले, तो ये तलवार होते हैं।

उसे ग़र चाँद लेना है, तो केवल चाँद लेना है
ये ज़िद्दी, लाड़ले बच्चे का पहला प्यार होते हैं।

महकते ये जलज संवेदना के क्षीर सागर में
किसी पत्थर जिगर की आँख में दुश्वार होते हैं।

भले ही बेशकीमती हों किसी की आँख के आँसू
रुदाली की मगर रोटी का ये आधार होते हैं।

लगी हो काम में जब माँ, तो उसे बुलाने को
मचलते भूख से बच्चे का ये शृंगार होते हैं।

किसी की आँख से बेबात बहते हैं, कोई चाहकर
बहा पाते नहीं बेबस, बहुत लाचार होते हैं।

2

सूखे पत्ते पर लिखकर मजमून उड़ाकर चला गया
कोई अपने हाल–ए–दिल का गीत सुनाकर चला गया।

चोंच खोलकर प्यासी चिड़िया ने बादल को देखा तो
निर्जल था सो, आँसू की दो बूँदें गिरा कर चला गया।

धड़कन थम जाती है और कलेजा मुँह को आता है
अन्न उपजाने वाला भूखा, फाँसी खाकर चला गया।

सूखे के मारे किसान पर उस पल क्या बीती होगी
भूखे बच्चे को जो खाली थाल थमाकर चला गया।

दूध–दूध की रट बच्चे की सुन बेचारा क्या करता
अक्स दिखाकर पानी में बस चाँद पिलाकर चला गया।

भोली जनता ढूँढे उसको संसद के गलियारों में
जो, रोटी संग मुफ़्त मिलेगी दाल बताकर चला गया।

3

मेरी नज़रों ने जिधर देखा, उधर है तू ही तू
हँस रहा है रूप अपना माँ को देकर हू–ब–हू।

माँ की आँखों की हँसी में दवा भी है, दुआ भी
माँ की मुस्कानों का जादू, रंग–ओ–ग़म सब उड़न–छू।

दिल के बदले क्यों दिया पत्थर उन्हें मेरे खुदा
लूटते मासूम कलियों की जो निश–दिन आबरू।

कर लिये तबदील श्मशानों में लोगों ने मकां
कोख में बिटिया को मारे फूँकते घर में बहू।

ज़िंदगी की दौड़ में जाने कहाँ पीछे छूटी
माँ के आँचल की महक, बाकी रही बस आरजू।

अश्क माँ के रौशनाई बन फलक पर लिख रहे
हर्ष हो जग में ना फैले, बेकसूरों का लहू।

aryaharshvardhan2@gmail.com

आवाज़ गुम हो गई है

– श्रीमती बेनू कांत
पंजाब, भारत

जगमगाते हैं आदमी के बनाए सूरज
आदमी की ही आवाज़ गुम हो गई है

दर्द में मुस्कुरा लेते थे ये लब अक्सर
लगा सदमा तो आवाज़ गुम हो गई है

अब पहचान खुद की पहले से ज़्यादा है
दुनिया की भीड़ में आवाज़ गुम हो गई है

दिल उड़ने की ख़्वाहिश रखता है हरदम
फड़फड़ाते परों की आवाज़ गुम हो गई है

यादों के सहारे जीना भी तो क्या जीना
दम घुटती यादों की आवाज़ गुम हो गई है

कैसे सुनाएँ अब तुम्हें अपने दिल का हाल
अल्फ़ाज़ है मेरे पर आवाज़ गुम हो गई है

पुलवामा

– डॉ.सुनील गुलाबसिंग जाधव
महाराष्ट्र, भारत

पात्र

1. आर्मी जवान – महासिंग (उम्र – 30)
2. महासिंग की पत्नी – शीतल (उम्र – 25)
3. महासिंग के पिता (उम्र – 60)
4. महासिंग की माँ (उम्र – 55)
5. मोसिन – महासिंग का मित्र (उम्र – 30)
6. शिरीन – मोसिन की पत्नी (उम्र – 28)
7. मुन्ना – मोसिन का बेटा (उम्र – 10)

14 फ़रवरी को सुबह तीन बजे आतंकवादियों ने ढाई सौ किलो बम से भरी हुई कार से आर्मी की एक बस को उड़ा दिया, जिसमें 44 जवान शहीद हुए।
उन जवानों और उनके परिवार के प्रति समर्पित एकांकी

(नोट–एकांकी में चित्रित कथावस्तु पुलवामा की घटना की प्रतिक्रिया रूप में लिखी गई है। यह कहानी सत्य घटना पर आधारित काल्पनिक कहानी है। किसी को इस कहानी से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दुःख पहुँचता है, तो मैं क्षमा चाहता हूँ।)

दृश्य 1

आर्मी कैंप में सांस्कृतिक उत्सव मनाया जा रहा है। महासिंग और मोसिन ने हाल ही में दो आतंकवादियों का खात्मा किया है। आज खुशी दुगनी है। सभी सैनिक अपनी कलाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। मोसिन के एक देशभक्तिपरक गीत पर नृत्य होता हैं। सभी सैनिक नृत्य के बाद तालियाँ बजा रहे है।

मोसिन : *देश को मिटा सके इतना दम तो किसी में नहीं।*
लड़ते हुए मर जाऊँ, मिट जाऊँ तो कोई ग़म नहीं।
जब–जब भी मेरे देश पर कोई बुरी नज़र डालेगा। तब–तब मेरे जैसे हज़ार मोसिन खड़े होंगे इस देश की रक्षा के लिए। मिटा देंगे उन गद्दारों और आतंकियों का वजूद। मेरे बंदूक की हर गोली हर वक्त इंतज़ार कर रही है, उन आतंकिस्तान के आतंकियों का। मैं मरते दम तक लड़ता रहूँगा और देश की सुरक्षा करता रहूँगा। जय हिन्द साथियो!
(प्रतिक्रिया रूप में सैनिकों की गूंज – जय हिन्द!)

एंकर : धन्यवाद मोसिन जी! खूंखार आतंकवादी का खात्मा करने वाले जवान मोसिन के दमदार सम्बोधन और नृत्य के बाद दूसरे वीर जवान महासिंग, जिन्होंने खूंखार आतंकवादी का खात्मा किया है, मैं उन्हें मंच पर आमंत्रित करता हूँ। वे अपना सम्बोधन करें और गीत सुनायें।

महासिंग : धन्यवाद मित्र! मेरे जैसे हर सैनिक को अपने घर–परिवार की याद आती है। हर सैनिक को कई बार परिवार और देश किसी एक को चुनना पड़ता है। मैंने हमेशा देश को चुना, पर फुर्सत के पलों में अपने माता–पिता, पत्नी की याद तो ज़रूर आती है। आज का गीत मैं अपनी पत्नी के लिए सुनाऊँगा। मेरी पत्नी गाँव

में हर वक्त मेरा इंतज़ार करती होगी। मुझे याद करती होगी। *(जेब से अपनी पत्नी की तस्वीर निकालता है और उसे देखते हुए गीत गाता है।)*

''मेरे दिल में बसने वाली,
मेरी जान गोरिये।
मेरा प्यार गोरिये,
मेरा यार गोरिये।
मैं तुझको हमेशा याद करता हूँ,
मेरे दिल में बसाता हूँ।''

(सैनिकों द्वारा तालियों की गूंज।)

धन्यवाद दोस्तो! जब–जब मुझे देश की सेवा का मौका मिलेगा, तब–तब मैं देश के गद्दारों और दुश्मनों का खात्मा करता रहूँगा। मैं देश के लिए नहीं मरूँगा। ना ही मैं किसी गोली और बम का शिकार होऊँगा। मैं देश के लिए ज़िन्दा रहूँगा। ताकि देश की मैं हमेशा सुरक्षा करता रहूँ। जय हिन्द!

(प्रतिक्रिया रूप में सैनिक – जय हिन्द!, वन्दे–मातरम)

दृश्य 2

(महासिंग आर्मी सैनिक पाँच दिन की छुट्टी पर अपने गाँव लौटा है। तीन माह बाद महासिंग घर आया है। घर पर माता–पिता और उसकी पत्नी इंतज़ार कर रहे हैं। इंतज़ार करते–करते पत्नी खेत में स्थित तालाब पर कपड़े धोने के लिए चली जाती है।)

महासिंग : माँ–बापू मैं आ गया। *(दोनों के पैरों को छूता हुआ आशीर्वाद लेता है।)* बापू तू कैसा है? सब ठीक है ना? पिछली बार खाँसी थम नहीं रही थी, अब ठीक है ना और वह पैरों का दर्द अब कैसा है?

महासिंग के पिता : बेटा, अब तू आ गया है। मुझे अब कोई तकलीफ़ नहीं है। जो दर्द और थकान थी, तुझे देखकर और मिलकर सब उड़ गई। *(कंधे पर हाथ रखते हुए।)* तू बता, तू कैसा है? सब ठीक–ठाक है ना? अब की बार कितने दिनों की छुट्टी पर आया है।

महासिंग : पूरे पाँच दिनों की बापू। आपको शिकायत रहती है ना कि मैं तीन–छह माह में सिर्फ़ एक या दो दिनों के लिए ही आता हूँ। अबकी बार पाँच दिन के लिए आया हूँ। बापू मेरे बस में होता तो हर रोज़ आता। पर देश को हमारे जैसे सैनिक की ज़रूरत है। हम घर पर आराम करेंगे, तो हमारा देश कैसे सुरक्षित रहेगा। दुश्मन तो चूहे और मच्छरों की भाँति घात लगाये बैठे होते हैं। कब कहाँ से आ जायें, पता नहीं।

पिता : सही कहा बेटा, मुझे अपने आप पर गर्व है, जो तुझ जैसे पुत्र को मैंने जन्म दिया। और हमारे देश में घर के भेदी भी तो है।

महासिंग : हाँ बापू, इन्हीं भेदियों और गद्दारों के कारण हमें बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। वरना कंगाल आतंकिस्तान की क्या औकात कि वह हमारे देश पर बुरी नज़र डाले और हमारे घर में घुस आये। यहाँ उसे कोई मदद करता है, तब ही तो वे यहाँ आते हैं।

माँ : बाप–बेटे में ही बात चलती रहेगी या मुझसे भी बात करोगे?

महासिंग : *(हँसता है।)* मेरी प्यारी माँ तुझसे ही तो मिलने आया हूँ। तू कैसी है? अब तुझे आँखों से कैसे दिखायी दे रहा है। माँ मैं तेरे लिए एक चश्मा लाया हूँ। एक मिनट हँ ....यहीं बैग में रखी थी। ये लो यह रही। यह लो माँ चश्मा, इसे पहनो। अब कैसे दिख रहा है।

माँ : *(बेटे के चेहरे को दोनों हाथों से पकड़ती*

है। और उसे गौर से देखते हुए चूमती है।)
बेटा, अब मुझे पहले से भी साफ़–साफ़ नज़र आ रहा है। *(बेटा, इधर–उधर देख रहा है।)* कहाँ देख रहे हो बेटा? शीतल को ढूँढ रहे हो। जा, वह खेत गई है। तेरा बड़ा इंतज़ार करती है बेटा। हर रोज़ इस सड़क की ओर देखती रहती है कि तू कब आयेगा। अपने आँसू ना दिखे इसीलिए अपने पल्लू से छिपा लेती है। जा, जल्दी जा खेत में तालाब पर बैठी हुई तेरा ही इंतज़ार कर रही होगी। *(बेटा शर्माता है।)*

महासिंग : हाँ माँ ...अभी जाता हूँ।

दृश्य 3

(गाँव से कुछ दूरी पर है महासिंग का खेत। खेत में एक छोटे से तालाब के किनारे महासिंग की पत्नी शीतल बैठी कपड़े धो रही है। कपड़े धोने की आवाज़ और कुछ गुनगुना रही है। महासिंग वहाँ धीरे से पहुँचता है।)

शीतल : घर आजा रे माही, तेरा रास्ता मैं देखूं .... *(फ़िल्मी गीत गुनगुना रही है।)*

महासिंग : *(बिना आहट किए आता है और अपनी पत्नी की आँखों पर अपने हाथ रख देता है।)*

शीतल : माही ..... *(हँसती है)* तुम आ गये? माही मैंने पहचान लिया अब तो आँखों से अपने हाथ हटाओ।

महासिंग : शीतल तुमने मुझे पहचान लिया। मैंने तो कोई आवाज़ भी नहीं की।

शीतल : मैं अपने पति को आँख बंद कर के भी पहचान सकती हूँ। और मैं तुम्हारा स्पर्श कैसे नहीं पहचान सकती हूँ? तुम तो मेरे रोम–रोम में बसे हो। तुम मेरी जान हो, तुम मेरी धड़कन हो। माही तुम्हें देख कर आज मैं कितनी खुश हूँ, मैं तुम्हें बता नहीं सकती। माही–माही–माही ....। मैं तुम्हें बता नहीं सकती कि मैं तुमसे कितना प्यार करती हूँ।

महासिंग : मैं भी तुम से बहुत प्रेम करता हूँ शीतल। मैं वहाँ सरहद पर अक्सर तुम्हें याद करता रहता हूँ। तुम्हारी तस्वीर को देखकर उसमें तुमको ही समझकर गले लगाता हूँ।

शीतल : कहा कुछ नहीं ... पर अब की बार तीन महीने बाद घर आ रहे हो। मैंने तुम्हारे बिना तीन महीने कैसे काटे है ..पता है तुम्हें ... हर दिन और रात मुझे सताती है। मुझ पर हँसती है। अब बताती हूँ सबको मेरे पति मेरे पास है। देखती हूँ कैसे मुझ पर हँसते हैं। चलो ठीक है अबकी बार कितने दिनों की छुट्टी पर आये हो। कुछ दिन तो साथ में रहोगे ना?

महासिंग : पूरे पाँच दिन की छुट्टी पर आया हूँ मेरी जान। ये पाँच दिन सिर्फ़ और सिर्फ़ तेरे लिए हैं।

शीतल : और फिर सरहद पर चले जाओगे, है ना?

महासिंग : हाँ, ड्यूटी है तो जाना होगा ना! शीतल एक सिपाही की निजी ज़िन्दगी बहुत कम होती है। वह होती है, तो देश के लिए। जिस दिन यह ड्यूटी मैंने जोंइन की तब ही मैंने अपने आप को देश के प्रति समर्पित कर दिया था। सिपाही, आर्मी मतलब देश के रक्षक और रक्षक अपनी भारत माता की रक्षा करते–करते कब शहीद हो जायेगा कहा नहीं जा सकता। फिर मैं तुमसे प्यार करता हूँ और तुम्हें अक्सर याद करता हूँ।

शीतल : माही, मैं भी तुम्हारे और देश के बीच कभी नहीं आऊँगी। देश पहले और परिवार बाद में ..। मैं भी एक देशभक्त सैनिक की पत्नी

हूँ। सरहद पर मैं नहीं जा सकती किन्तु अपने पति का सरहद पर आत्मविश्वास तो बढ़ा सकती हूँ। यह भी तो देशभक्ति है। माही जब भी तुम सरहद पर रहो.. तब तुम मुझे याद मत करना... क्योंकि मैं तुम्हारी हूँ और हमेशा तुम्हारी ही रहूँगी। जब भी मेरी याद आये तब अपने दिल में झाँककर देख लेना मैं तुम्हें वहीं हँसती–खिलखिलाती, रूठती–मनाती नज़र आऊँगी।

महासिंग : थैंक्यूँ शीतल ... तुम्हारी ऐसी बातों से ही मेरा मनोबल बढ़ता है। सच्चा देशभक्त मैं नहीं तुम हो... तुम हो इसीलिए मैं हूँ। फिर से थैंक्यू शीतल।

शीतल : थैंक्यू बाद में, तुमने वादा किया है कि छुट्टियों के यह पाँच दिन मेरे होंगे।

महासिंग : हाँ.. शीतल, यह पाँच दिन तुम्हारे ही हैं।

शीतल : तो चलो मेरे साथ ... *(धोने के लिए लाये हुए कपड़े वहीं तालाब किनारे रखती है।)*

महासिंग : पर कहाँ?

शीतल : चलने के लिए कहा.. सीधे मेरे पीछे चले आओ। चलो, जल्दी चलो... वह देख रहे हो अमराई .. हमें बस वहाँ चलना है। .... लो आ गई अमराई। अब नीचे झुको ..

महासिंग : क्या कह रही हो शीतल मैं तुम्हारा पति हूँ।

शीतल : इसीलिए कह रही हूँ। नीचे झुको ...

महासिंग : लो खुश ...

शीतल : अभी नहीं ...मुझे आपके कंधे पर चढ़ना है।

महासिंग : अच्छा इतनी–सी बात ...ठीक है। चढ़ जाओ। हाँ.. ठीक से बैठो.. बैठ गयी..

शीतल : हाँ बैठ गयी। अब थोड़ा आगे सरको हाँ... बस–बस ..

महासिंग : क्या कर रही हो शीतल?

शीतल : कुछ नहीं आम तोड़ रही हूँ।

महासिंग : धत्त... अरे पहले बता दिया होता तो पेड़ पर चढ़ कर आम से भरा टोकरा लाकर तुम्हारे सामने रख देता ।

शीतल : मुझे आम का टोकरा नहीं चाहिए। मुझे आपके कंधे पर चढ़कर ही आम तोड़ना था। अब चलो आगे बढ़ो ...

महासिंग : अब नीचे भी उतरोगी.. या नहीं?

शीतल : क्यों मेरे जवान इतने से हार गये।

महासिंग : हारा नहीं पर किस ओर चलना है, बताइये रानी साहिबा?

शीतल : बस चलते रहो ... हुक्म की तामील होती रहे। वरना रानी नाराज़ हो जायेगी।

महासिंग : जी, रानी साहिबा ... जो आपका हुक्म।

शीतल : रुको–रुको मुझे इस इमली के पेड़ से इमली तोड़नी है। वह रही लटकती हुई इमली... हाँ–हाँ तोड़ लिया। अब नीचे उतारो ...*(महासिंग शीतल को नीचे उतारता है ।)*

महासिंग : शीतल... कब से मेरे मन में एक बात आ रही है । आम और इमली दोनों ही खट्टी चीज़ें हैं। आज तुम्हें खट्टी चीज़ें बड़ी पसंद आ रही हैं। तुम्हें तो यह खट्टी चीज़ें पसंद नहीं थीं। फिर.... मैं कुछ समझा नहीं? कहीं तुम माँ तो बनने वाली नहीं ना? पर यह कैसे हो सकता है। हमारा विवाह होकर आज पूरे सात साल हो रहे हैं। अब तक हमें कोई संतान नहीं हुई। अब कैसे हो सकती है। वैसे भी हमारे ऐसे भाग्य कहाँ कि मैं बाप और तुम माँ बन जाओ।

शीतल : माही ज़रा सोचो, अगर तुम्हें पप्पा कहने वाला और मुझे मम्मी कहने वाला मिल जाये तो कैसा रहेगा?

महासिंग : पर यह कैसे हो सकता है? कहीं तुम गोद लेने के बारे में तो नहीं सोच रही हो ना?

शीतल : नहीं–नहीं । सचमुच का हमारा बच्चा होता तो... सोचो...

महासिंग : अं.... नहीं सोच सकता। क्योंकि हमारी किस्मत में यह सब कहाँ। होता तो छह साल पहले ही हो जाता। पर..?

शीतल : पर क्या? अगर मैं कहूँ कि तुम सचमुच के बाप और मैं माँ बनने वाली हूँ, तब तुम क्या करोगे?

महासिंग : बस शीतल ऐसी बातें मुझसे ना करो। मुझे अपने आप पर दुख होता है।

शीतल : दुखी होने की कोई बात नहीं.. अब खुशी से उछलने की बारी है। मैं सचमुच की माँ और तुम बाप बनने वाले हो।

महासिंग : क्या सच... मुझे यकीन नहीं होता।

शीतल : *(अपने पति के सर पर हाथ रखते हुए)* मैं आपके सर की कसम खाकर कहती हूँ कि तुम सच में ही बाप बनने वाले हो... जो मैं झूठ बोलूँ तो ..

महासिंग : *(शीतल के मुँह पर हाथ रख देता है।)* बस आगे कुछ मत बोलो... क्या मैं सचमुच बाप बनने वाला हूँ। *(हँसता है)* भगवान का लाख–लाख शुक्र है। *(और गालों को चूमता है। उसे उठाकर गोल घुमाते हुए।)* शीतल, शीतल, शीतल... शीतल। *(दोनों हँसते हैं।)*

शीतल : अब बस करो। मुझे नीचे उतारो...

महासिंग : हाँ–हाँ पर मुझे अपने बच्चे को देखना है।

शीतल : देखो आपका बच्चा कह रहा है। पप्पा मुझे आने में अभी देरी है। आपको और पाँच महीने रुकना होगा। इतना उतावलापन ठीक नहीं। मुझे नीचे उतारो।

महासिंग : नहीं उतारूँगा ... मैं तुम्हें नहीं अपने बच्चे को उठाकर घुमा रहा हूँ।

शीतल : पर मैं बच्चा नहीं.. बच्चा आएगा पांच महीने बाद। अब छोड़ो वरना मार दूँगी। *(सर पर प्यार से मार देती है।)*

महासिंग : आह... लग गया।

शीतल : कहा था ना मार दूँगी। आप भी न बच्चे जैसे कर रहे हो।

महासिंग : अच्छा बाबा ठीक है, उतारता हूँ। आराम से... अब ठीक है। कहीं पैर फिसल ना जाये। ध्यान से चलना।

शीतल : हाँ–हाँ मेरी फ़िक्र मत करना। मैं चल सकती हूँ। *(आगे दौड़ने के लिए होती है।)* पकड़ो मुझे.. पकड़ो–पकड़ो ....

महासिंग : रुको... मैं कहता हूँ रुको शीतल! गिर जाओगी।

शीतल : पकड़ो मुझे.... *(पैर फिसल जाता है।)* आह ..... *(चिल्लाती है।)*

महासिंग : शीतल ..... *(चिल्लाते हुए नींद से जागता है। महासिंग आर्मी बस में है।)*

मोसिन : क्या हुआ महासिंग... कोई बुरा सपना देखा क्या?

दृश्य 4

मोसिन का घर – मोसिन की छुट्टियाँ खत्म हो ही गई है। वह सरहद पर वापस लौटने की तैयारी कर रहा है।

मोसिन : शिरीन अब चलने का वक्त हो गया है। वतन का बुलावा आ गया है। फ़र्ज़ निभाने जाना है। तुम अपना और मुन्ना का खयाल रखना। और हाँ... यह टावल कहाँ रखा है। कब से ढूँढ रहा हूँ, मिल ही नहीं रहा है।

शिरीन : आप मेरी और मुन्ना की फ़िकर ना कीजिएगा जी। हम यहाँ एकदम सुरक्षित है। जब तक सरहद पर मेरे शोहर जैसे जवान रहेंगे, तब तक देश के किसी भी शिरीन और मुन्ना को फ़िकर करने की कोई ज़रूरत नहीं होगी। आप बस अपना खयाल रखें।

मोसिन : मैं अपना खयाल रखूँगा। पर मुझे अभी इस वक्त टावल की ज़रूरत है। मैं कब से

उसे ढूँढ रहा हूँ। मिल ही नहीं रहा है। वह टावल मेरे लिए ख़ास है, क्योंकि उस पर तुमने अपने हाथों से मेरा नाम लिखा था। जब भी उसे देखता हूँ मैं तुम्हें अपने पास पाता हूँ।

शिरीन : *(शरमाते हुए)* धत्त ...। अभी ढूँढती हूँ।

मोसिन : शरमा गई *(हँसता है।)* शिरीन तुम जब भी शरमाती हो, तो और भी खूबसूरत लगने लगती हो। हमारी शादी को दस साल हो गये फिर भी तुम्हारी खूबसूरती थोड़ी भी कम नहीं हुई है।

शिरीन : *(मुस्कुराते हुए)* हाँ–हाँ मुझे पता है। टावल ढूँढ रही हूँ। यहीं तो रखी थी। कहाँ चला गया। भीतर के कमरे में देखती हूँ। कहीं वहाँ तो नहीं है। *(भीतर चली जाती है।)*

मुन्ना : *(पीछे से नकली बंदूक अपने पिता पर तानते हुए।)* हेंड्स अप! अपनी गन नीचे फेंक दो वरना तुम्हारी खोपड़ी उड़ा दूँगा।

मोसिन : *(डरने का अभिनय करते हुए)* मुझे माफ़ कर दो मुन्ना साहब, दुबारा ऐसी गलती नहीं करूँगा।

मुन्ना : मैं दुबारा गलती का मौका नहीं देता समझे। चुपचाप अपनी गन मेरे हवाले कर दो। एक बार माफ़ी मतलब हमारे देश के साथ गद्दारी, साला तुम लोग हमारे देश पर बुरी नज़र डालते हो। तुम्हें तो गोली से उड़ा देना चाहिए। डिशक्यांऊँ।

मोसिन : *(मरने का अभिनय करता है और मुन्ना को पकड़कर गुदगुदी करता है। दोनों हँसते हैं।)*

मुन्ना : पप्पा छोड़ो मुझे गुदगुदी हो रही है।

मोसिन : अरे ऐसे कैसे छोड़ दूँ मेरे शरारती मुन्ना... अच्छा चलो छोड़ता हूँ। बेटे तुझ में देश भक्ति के जज़्बे को देख कर मुझे खुशी हो रही है। तू जब बड़ा होगा ना तब देश का सिपाही बनना और देश की रक्षा करना। और ये टावल तुम्हारे पास है।

शिरीन : टावल मिल गया। मुन्ना के पास था। टावल ओढ़कर मिशन पर आया था। *(हँसता है।)*

शिरीन : और मैंने सारा घर छान डाला। फिर भी मैं कहूँ कि टावल कहाँ रख दिया है।

मोसिन : शिरीन मैंने स्कूल की फ़ीस भर दी है। राशन और खर्चे के लिए मैं अपना ए.टी.एम. कार्ड और पासवर्ड यहाँ छोड़कर जा रहा हूँ। तुम अपनी सुविधा अनुसार खर्च करना। ठीक है!

(दरवाज़े पर बेल होती है।) शिरीन ज़रा देखना कौन आया है।

शिरीन : दरवाज़ा खोलती है। अरे, महासिंग भैया आप। आइए–आइए। मुन्ना के पप्पा तैयार ही हो रहे है।

महासिंग : मोसिन अभी तैयार नहीं हुए। हमें जल्दी निकलना होगा। वरना हमें पहुँचने में देर हो जायेगी।

मोसिन : यार, तैयार हो गया हूँ। बस बैग पैक करना बाकी है। पाँच मिनट में चलते हैं। तब तक एक कप चाय हो जाये। शिरीन एक कप चाय बनाना। *(शिरीन चाय बनाने के लिए भीतर चली जाती हैं।)*

महासिंग : यार मोसिन, एक खुशखबरी है। मैं बाप बनने वाला हूँ। पूरे छह साल बाद मुझे यह खुशी मिल रही है।

मोसिन : बधाई, महासिंग। अब तुम भी बाप बनने वाले हो और यह खुशखबरी सूखी ही। मिठाई–विठाई खिलाओगे भी या ऐसे ही। शिरीन सुनती हो महासिंग एक खुशखबरी लाये हैं। तुम फूफी बनने वाली हो।

शिरीन : *(चाय का कप लाकर हाथ में देते हुए।)* सच, बधाई भैया। बस एक बात की कमी थी सो आज पूरी हो गई। भाभी कब घर

पर ला रहे हो।

महासिंग : बहन, अगली बार जब छुट्टियों पर आऊँगा तो यहाँ लेता आऊँगा। पक्का। *(घड़ी की ओर देखता है।)* मोसिन हमें देर हो रही है। अब हमें चलना चाहिए।

मोसिन : सही कहा, चलो चलते हैं। शिरीन और बेटा मुन्ना अब चलता हूँ। मुन्ना अब घर की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी तुम्हारी। समझे। शिरीन अपना खयाल रखना, चलता हूँ। जल्द लौटकर आऊँगा।

शिरीन : भैया इनका ख़याल रखना।

महासिंग : बहना तुम चिंता मत करना, मैं हमेशा मोसिन के साथ रहूँगा। यह भाई जब तक है, तब तक तुम्हें चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

मोसिन : अब चलते हैं। चलो महासिंग ...

शिरीन : ऐसा लग रहा था मानो सारी बातें, सब कुछ अभी इस वक्त मेरे सामने घटित हो रहा है। मुन्ना के पप्पा कह रहे थे। टावल लाकर देना। उसपर तुम्हारे हाथों से मेरा नाम लिखा है। उसे देखकर मुझे तुम्हारी याद आती है। और जाते–जाते कह रहे थे, शिरीन अपना खयाल रखना, मैं जल्दी आऊँगा। पता नहीं चला कि यह सारी बातें पिछले पाँच दिन पहले की थी। मुन्ना के पप्पा तुम जल्दी आना, मैं तुम्हारा यहाँ इंतज़ार करूँगी। और इस बार नया टावल और रुमाल होगा। और उस पर तुम्हारा नाम लिखा होगा। टावल और रुमाल तुम्हें हमेशा मेरी याद दिलाते रहेंगे। तुम्हारे जाने के बाद मुझे तुम्हारी बहुत याद आती है। *(गीत गाती है।)*

''याद आ रही है, तेरी याद आ रही है।
तेरे जाने से जान जा रही है।
याद आ रही है, तेरी याद आ रही है।''

दृश्य 5

पुलवामा की घटना को आज 12 दिन हो रहे हैं। मोसिन का घर–पत्नी अपने पति मोसिन की तस्वीर को देखते शांत बैठी है। तो मोसिन का 10 साल का लड़का गुस्से में अपनी नकली बंदूक उठाकर दुश्मनों को खत्म करने के लिए जाना चाहता है।

माँ : रुको बेटा, पहले बड़े हो जाओ। अपने आपको तैयार करो और फिर जाओ। बेटा दुश्मन वीर नहीं है। कायर है, जो चूहों की भांति छिपकर आता है। और पीठ पर वार करता है। दुश्मन अगर वीर होता, तो मैं तुझे भेज देती पर कायर दुश्मन को मारने के लिए तुझे उनकी चालों को समझना होगा। तब ही तुम उसे मार सकते हो। बेटा, तुझे इतना ही नहीं। अपने देश में ही बसे उन कुछ गद्दारों को पहचानना होगा, जो उन्हें बिल बनाकर दे रहे हैं। पहले उन्हें और फिर कायर दुश्मन को मारना बेटे।

बेटा : अच्छा मम्मी.. ठीक है। तू कहती है तो मैं तैयारी करके जाऊँगा। और देश के एक–एक दुश्मन को चुन–चुनकर मारूँगा। *(माँ उठती है और टीवी चलाती है।)*

न्यूज़ : 14 फ़रवरी को सुबह तीन बजे आतंकवादियों ने ढाई सौ किलो बम से भरी हुई कार से आर्मी की एक बस को उड़ा दिया। उन्हें लड़ने का मौका भी नहीं मिला था। 44 जवान शहीद हुए थे। आज 26 फ़रवरी को रात बारह बजे शहीदों की तेरहवीं से पहले बारहवें दिन, रात 12 बजे, मिराज 12 ने पाकिस्तान के जैश–ए–अहमद के ठिकाने चकोटी, बालाकोट, मुज़फ़राबाद में 1000 किलो

बम गिराकर अपना बदला ले लिया। 44 शहीदों का बदला 300 आतंकवादियों को मारकर लिया गया।

बेटा : देश ने बदला ले लिया। पर अभी मेरा बदला पूरा नहीं हुआ। भारत के बेटे 44 शहीदों का बदला लेंगे।

suniljadhavheronu10@gmail.com

नशा छोड़ो, सुख से जीओ

– श्री नफ़े सिंह कादयान
गगनपुर, भारत

पात्र परिचय

कमली	–	नाटक की मुख्य पात्र, गाँव की एक वंचित गरीब स्त्री
रिन्कू, बबली	–	कमली के स्कूल में पढ़ रहे बच्चे
रलदू	–	कमली का शराबी पति
प्रेमवती	–	कमली की पड़ोसन
डीपू होल्डर	–	गाँव में राशन वितरित करने वाला व्यक्ति
ताई	–	गाँव के स्वयं सहायता समूह की प्रधान
अन्य	–	गाँव सरपंच, पंचायत सचिव और कुछ अन्य व्यक्ति

दृश्य 1

मंच के आगे से पर्दा उठता है। मंच के पीछे मुख्य पर्दे पर गाँव की सरकारी राशन वितरण दुकान का दृश्य अंकित। सुबह के समय को दर्शाती मंच पर पूरी रोशनी। (अगर संभव हो तो गाँव के माहौल जैसा, पक्षियों के चहचहाने, पशुओं के रंभाने की आवाज़ों वाला धीमा संगीत चलाएँ) मंच पर एक कुर्सी के आगे मेज़ रखी है। कुर्सी पर गाँव में लोगों के राशन कार्डों पर राशन वितरित करने वाला डीपू होल्डर बैठा है। उसके हाथ में रजिस्टर है और आँखों पर नज़र का चश्मा है। वहाँ हाथों में राशन कार्ड लिए गाँव के कुछ स्त्री, पुरुष मेज़ को तीन ओर से घेरे हुए हैं। पुरुषों ने कुर्ता, पजामा, धोती, लुंगी जैसी पोशाकें पहनी हैं। कुछ के कंधे पर सूती तौलिये हैं। औरतें सूट, सलवार, साड़ी पहने हुए हैं। डीपू होल्डर लोगों के राशन कार्ड में तारीख दर्ज कर उनसे पैसे लेकर अपने रजिस्टर पर दस्तखत करवाकर उन्हें पर्ची काटकर दे रहा है। उसकी मेज़ से कुछ दूर चार–पाँच बोरी गेहूँ की रखी हैं, जिनमें से एक बोरी से डीपू होल्डर का सहयोगी लोगों से पर्ची ले गेहूँ तोल कर दे रहा है। वहाँ स्त्रियों की संख्या अधिक है, पुरुष कम हैं।

कमली पंजों के बल खड़ी हो हजूम के पीछे से आवाज़ लगाती है : ऐ भाई, जल्दी पर्ची बना, मेरा एक घण्टे से नम्बर नहीं आया। मेरे साथ आई कई औरतें गेहूँ तुलवाकर जा चुकी हैं।

डीपू होल्डर तल्ख स्वर में : मेरे क्या दस हाथ लगे हैं, जो जल्दी पर्ची बना दूँ, तेरा नंबर आएगा तो आवाज़ लगा दूँगा। रजिस्टर पर अंगूठा लगा, लड़के से गेहूँ तुलवा लेना।

कमली की पड़ोसन प्रेमवती ऊँचे स्वर में : यह अंगूठा क्यों लगाएगी भाई? कमली अपने हस्ताक्षर अच्छी प्रकार कर सकती है। सरकार द्वारा चलाए जा रहे सर्व शिक्षा अभियान के तहत यह इतना पढ़ना–लिखना सीख गई है कि तेरी रजिस्टर पर लिखी लांडी हिंदी भी पढ़ सकती है।

(भतेरी के बोलते ही वहाँ एकत्र सब लोग हँसते हैं।)

डीपू होल्डर : हाँ हाँ, क्यों नहीं, पिछले कुछ वर्षों में सरकार द्वारा चलाए जा रहे जन सुधारों से गाँवों में बहुत बदलाव आया है। मेरे रजिस्टर पर पहले जहाँ अधिकतर स्त्रियाँ अंगूठा लगाती थीं, अब हस्ताक्षर करती हैं। अब तो प्रौढ़ शिक्षा से आपके गाँव की अस्सी वर्षीय अंगुरी देवी भी साईन करने लगी है।

वहाँ खड़ा एक व्यक्ति चुटीले अंदाज़ में : अब तो तेरे तराजू बट्टे भी औरतें चैक कर लेती हैं।

दूसरा व्यक्ति : और क्या, पहले तो यह कई प्रकार से बेईमानी करता था। लकड़ी की डंडी वाली तराजू में पत्थर के बनाए बट्टों से तुलाई कर हेरा–फेरी से पैंतीस की बजाए तीस किलो गेहूँ तोल कर दे देता था।

एक स्त्री : इसकी तो मिट्टी के तेल में भी बेईमानी थी। अपने पाँच लिटर के बर्तन को अंदर से पीटकर उसमें बारीक छेद कर देता, जिससे तोलते समय काफ़ी तेल वापिस इसके ड्रम में गिर जाता था। ये तो भला हो शिक्षा मंत्रालय द्वारा चलाए गए 'सर्व शिक्षा अभियान' और उपभोक्ता मंत्रालय द्वारा चलाए गए 'जागो ग्राहक जागो' अभियान का, जिससे पढ़–लिखकर गाँव के लोगों में जागरूकता आई और उन्होंने खाद्य एवं आपूर्ति विभाग में इसकी शिकायत की, तो यह मीटर वाले तराजू से नाप–तौलकर के ठीक राशन देने लगा।

डीपू होल्डर खिसियाते हुए : कहाँ बेईमानी कर ली इस गाँव के साथ? नाप–तौल करके देख लो।

एक व्यक्ति : ओये! बस रहने दो, ज़्यादा मत बजाओ इसकी, अब तो यह बंदा ईमानदार बनकर ठीक तौलकर देता है।

कमली डीपू होल्डर की तरफ़ देख कर हंसते हुए: हाँ हाँ, अब तो यह ईमानदार बन गया, मेरी तो भैंस भूखी खड़ी है, खेतों से घास भी काट कर लाना है, जल्दी गेहूँ तुलवा दे।

(कमली डीपू होल्डर से पर्ची ले उसके सहयोगी से गेहूँ तुलवाकर सर पर रखकर अपने घर की तरफ़ जाती है।)

पर्दा गिरता है।

दृश्य 2

पर्दा उठता है।

मुख्य पर्दे पर ग्रामीण माहौल का दृश्य। कमली के घर के सामने नीम पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर गाँव के कुछ लफ़ंगों के साथ उसका नक्कारा शराबी पति रलदू ताश खेल रहा है। ताश खेलता हुआ उनमें से एक हाथ से जर्दा रगड़ रहा है, तो दूसरा बीड़ी के सुट्टे लगा रहा है। साथ में हुक्का भी रखा है, जिसमें उनका एक साथी ज़मीन पर पत्ता डालकर बार–बार हुक्के की नली मुँह से लगा धुआँ खींचता है। सभी लोग ठहाके लगाते हुए ताश की बाज़ी को लेकर बहस कर रहे हैं। कमली के घर के आगे खुले बरामदे में भैंस बंधी है।

रलदू : पान रंग की पंजी लग गई नहीं तो अबके सुक्की बाज़ी हो गई थी।

साथी खिलाड़ी : सुक्की वैसे ही हो जाती, अभी तो हुक्म की बेगम भी मेरे पास थी।

एक साथी कमली को सर पर गेहूँ लेकर आते देख: लै भाई रलदू आ गई तेरी ईंट की बेगम। अब बचना, सर पर बजेगी।

कमली उनके पास से गुज़रते हुए गुस्से से : सारे लफ़ंगे मेरे ही घर के सामने मंडली लगा के बैठ गए। यहीं धरती का बीच है, कुछ शर्मो–हया तो है नहीं, थोड़ा बहुत काम–धाम भी कर लिया करो।

रलदू : मेरी सास्सू की घूंघट कर ले, तेरे जेठ बैठे हैं। जब तक पाँच–सात खलवे तेरी कमर पर नहीं बजते तेरी खुरक नी मिटती।

कमली जाते–जाते : अब की बार मार के दिखाइये, तुझे थाने की हवा खिलवाऊँगी।

(कमली गेहूँ का कट्टा बरामदे के एक कोने में रखती है। उसकी भैंस चारे की खुरली में अगले

दो पाँव रखे खड़ी है। वह डंडा उठा भैंस की पीठ पर मारते हुए अपने पति पर आया गुस्सा भैंस पर उतारती है।)

कमली चिल्लाकर भैंस को डंडा मारते हुए : कभी चारे की खुरली में गोबर कर देती है, कभी उसमें पाँव रख खड़ी हो जाती है, तेरी सारी अक्ल घास चरने गई है क्या?

भैंस सींग हिलाकर पाँव पीछे हटाते हुए : तेरा गुस्सा मुझ पर ही उतरता है, अपने मर्द से तो डरे, मुझ पर वार करे, दो चार डंडे जाकर अपने मर्द के पाछे पर जमा दे, तो वह एकदम सीधा हो जाएगा।

कमली की पड़ोसन प्रेमवती दरांती ले उसके पास आते हुए : बहन जल्दी चल घास काटकर लाते हैं, आज तो गेहूँ तुलवाने के चक्कर में दिन चढ़ आया।

कमली झरोखे में रखी दरांती उठाते हुए : चल री सखी, यो मेरे वाला लफ़ंगा शराबी तो ताश ही खेलता रहेगा, हमने तो चलती चक्की में पिसना ही है, भैंस का पेट भी भरना, बच्चे भी पालने है।

(कमली और प्रेमवती दरांती, पल्लियाँ ले खेतों की तरफ़ चल देती हैं।)

पर्दा गिरता है।

दृश्य 3

पर्दा उठता है।

मुख्य पर्दे पर खेत–खलिहानों, पेड़–पौधों का दृश्य। हवा के चलने, पक्षियों के चहचहाने, कोयल के कूकने जैसा मध्यम संगीत, खेतों की तरफ़ जाते हुए कमली अपने मन का गुब्बार प्रेमवती से निकालने लगती है। घर से निकलने से लेकर खेतों की मेड़ों से घास काटकर घर लाने तक दोनों में घर की समस्याओं को लेकर बातचीत होती है।

कमली : क्या बतलाऊँ सखी, मेरे तो भाग ही फूटे हुए हैं। इस छोटे से गाँव में जब मैंने लाल जोड़े में कदम रखे थे, तो न जाने क्या–क्या सपने देखे थे। दिल में बड़ी उमंगें थीं, पर नशेड़ी अमली खसम ने मेरे सारे सपनों पर पानी फेर दिया। दिन भर ताश खेलता है, रात को टल्ली होकर आता है, अगर मैं कुछ कहती हूँ, तो मूआ पीटने लगता है। ये तो सरकार ने मुझे बहुत सहारा दे दिया, वरना तो बच्चों सहित आत्महत्या करने की नौबत आ जाती।

प्रेमवती : सच कहती हो बहन, इस महंगाई के ज़माने में सरकार हमें सस्ते दामों पर गेहूँ, चावल, चीनी दे रही है। हमारे बच्चों की पढ़ाई–लिखाई के लिए किताब–कापियाँ, वर्दी के लिए पैसे दे रही है।

कमली : और नहीं तो क्या, सरकार द्वारा गरीबी उन्मूलन के लिए चलाई जा रही महात्मा गांधी बस्ती योजना से हमें सौ–सौ गज के प्लॉट मिल गए, सरकार ने टूटियाँ लगाकर दो सौ लिटर पानी की टंकियाँ दे दी, अब तो मनरेगा के तहत हमें सौ दिन रोज़गार भी मिलने लगा है।

प्रेमवती : हाँ बहन, सरकार हम गरीबों का बहुत ख्याल रख रही है, मेरी बड़ी लड़की दूसरे गाँव में पढ़ने जाती है। पहले वह पैदल चलकर टाइम से स्कूल नहीं पहुँच पाती थी, सरकार की तरफ़ से उसे साइकिल मिल गई, अब झट से स्कूल पहुँच जाती है।

कमली ईख की मेड़ से घास काटते हुए : मुझे तो पहले शौच के लिए बाहर झुण्ड–झाड़ियों के पीछे बैठते बहुत शर्म आती थी। हर समय ये डर लगा रहता था कि न जाने कब कोई मर्द निकल आए। सरकार ने स्वच्छता अभियान में शौचालय बना कर दे दिये। अब शौच के लिए बाहर जाने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

प्रेमवती : अब तो सरकार ने कॉलोनियाँ पास कर हमारे पक्के मकान बनवा दिये, गाँव की गलियाँ भी पक्की बन गई। पहले बरसात के समय इन गलियों में इतना कीचड़ हो जाता था कि हमारे

पाँवों की उंगलियाँ तक गल जाती थीं।

कमली : वो तो ठीक है बहन, पर इन शराबियों का क्या करें? इनका कुछ इलाज हमें ही सोचना ही होगा।

प्रेमवती : हाँ ये तो है, गाँव के आधे से अधिक लोग शराबी हो गए हैं। हम महिलाओं को ही एकता बनाकर इन्हें सबक सिखाना होगा।

(घास की गठरियाँ ले दोनों घर आती हैं।)

पर्दा गिरता है।

दृश्य 4

पर्दा उठता है।

मुख्य पर्दे पर ग्रामीण माहौल का दूसरा दृश्य वाला पर्दा। धीमा संगीत। कमली खेतों से लाई घास की गठरी बरामदे में लगी हाथ से कुट्टी काटने वाली मशीन के पास रखती है। वहाँ बंधी उसकी भैंस उसे देख ज़ोर–ज़ोर से रंभाने लगती है। उसके बच्चे बबली और रिन्कु अपने स्कूल बैग कमर पर लटकाए घर में प्रवेश करते हैं।

कमली रंभाती हुई भैंस की तरफ़ देखकर : लगता है ये नखरो नहाएगी अब, जब से सरकार ने गाँव के तालाब को पक्का कराया है, महारानी नहाने के लिए कुछ ज़्यादा ही प्यास में रंभाने लगी, रिन्कु बेटा, बस्ता खूंटी पे टाँगकर इसे तालाब में नहला के ला, मैं तुम्हारे लिए रोटी बनाती हूँ।

रिन्कु : माँ मैं भी भैंस के साथ तालाब में नहा आऊँ। पहले तो उसके कीचड़ में जलखुंभी, झाड़–झंकार उगा रहता था, जब से पक्का बना है साफ़ पानी में गाँव के सारे लोग नहाते हैं।

कमली : बेटा अपनी भैंस की पूंछ पकड़कर नहाना, अभी तू छोटा है कहीं डूब न जाए।

रिन्कु : ठीक है माँ।

(रिन्कु भैंस खोलकर बाहर की तरफ़ जाता है। कमली घर के अंदर धुआँ रहित चूल्हे में लकड़ी जला रोटी पकाने लगती है। बबली चूल्हे के पास एक टाट बिछाकर रोटी खाती है। थोड़ी देर में रिन्कु वापस आ भैंस को खूंटे पर बांधकर रोटी खाने के लिए बबली के पास आकर बैठ गया।)

बबली रिन्कु को डांटते हुए : हाथ साबुन से धोकर रोटी खा, स्कूल में मास्टर जी हमें समझाते हैं कि पहले साबुन से हाथ धोकर आओ, फिर आकर रोटी खाओ।

रिन्कु उठकर नल पर साबुन से हाथ धोकर दोबारा बैठते हुए : दीदी मैं भूल गया था।

बबली : हाथों पर गंदगी के कीटाणु होते हैं, जो हमें बीमार करते हैं इसलिए हाथ को अच्छी तरह से साबुन से धोकर ही भोजन करना चाहिए, ये अच्छी बातें हमेशा याद रखनी चाहिए। *(कमली बच्चों को रोटी खिलाकर उठकर एक रोटी भैंस के मुँह में देती है, तो वह उसे नहीं खाती।)*

कमली : हाय, हाय! क्या हो गया है हमारी भैंस को? रोटी नहीं खा रही, चारा भी नहीं खाया, खुरली में ज्यों का त्यों पड़ा है।

तभी कमली को अपनी पड़ोसन प्रेमवती गली से गुज़रती दिखाई देती है, उसे देख वह आवाज़ लगाती है।

कमली : अरी बहन, देखना हमारी भैंस को क्या हुआ, चारा नहीं खा रही।

प्रेमवती दूर से ही : मुझे तो बहुत काम है सखी, लगता है तेरी भैंस का हाजमा खराब हो गया, इसे कड़वी सरसों और काले नमक की पेढ़ी बनाकर खिला दे, घास खाने लगेगी।

कमली : ठीक है, अभी खिलाती हूँ। वह कड़वी सरसों और काले नमक की पेढ़ी बनाकर भैंस को खिलाती है, मगर फिर भी वह घास नहीं खाती।

मंच पर एक बार अंधेरा उजाला होता है।

कमली की एक और पड़ोसन आकर उसे कहती है : बहन प्रेमवती से तेरी भैंस की बीमारी का पता

चला। तेरी यह भैंस दस–बारह किलो दूध देती है इसलिए सब जलते हैं। लगता है इसको किसी की नज़र लग गई। ये ले काली रस्सी में बंधी चाम की जुत्ती, इसे मौलवी से पढ़वाकर लाई हूँ, भैंस के गले में बांध दे, शर्तिया ठीक हो जायेगी, आखिर पड़ोसी ही सुख–दुःख में साथ देता है।

कमली : ला बहन बहुत मेहरबानी तेरी। कमली पड़ोसन के हाथ से रस्सी लेकर भैंस के गले में बाँध देती है।

मंच पर दो–तीन बार अंधेरा उजाला होता है, जिसमें सूर्य और चांद रूपी सफ़ेद लाइट का गोला पूर्व पश्चिम की तरफ़ चलता है। मंच पर दर्द भरी धुन का संगीत चलता है। एक बार फिर पूर्ण रोशनी हो जाती है।

कमली भैंस की पीठ पर हाथ फिराते हुए रुआँसे स्वर में : हे भगवान! तीन दिन हो गए, यह दूध देना भी बंद हो गई। इसी का दूध बेचकर तो मैं अपना परिवार पाल रही थी। अब क्या होगा हम गरीबों का? रे बेटा रिन्कु, (*अपने बेटे को आवाज़ देती हुई*) सारे टोटके आज़मा के देख लिए, यह भैंस तो और भी ज़्यादा बीमार हो गई, अब तो इससे खड़ा भी नहीं हुआ जाता। जा बेटा पशु अस्पताल के डॉक्टर को बुला के ला।

रिन्कु घर के अंदर से बाहर आते हुए : माँ, मैं तो पहले ही कह रहा था झाड़–फूँक मंत्र पढ़ने से कुछ नहीं होता, इसे पशु डॉक्टर ही ठीक करेगा, पर आप तो मुझे बच्चा समझ के डांट देती हो।

कमली हताश स्वर में : बेटा पड़ोसी जैसा कह रहे थे, मैंने किया। जा बुला ला। अब तो डॉक्टर साहब का ही सहारा बचा है।

रिन्कु : ठीक है माँ, मैं अभी साइकिल पर चढ़कर डॉक्टर को बुला कर लाता हूँ।

एक बार मंच पर अंधेरा, उजाला होता है। बाहर से रिन्कु के साथ पशु डॉक्टर प्रवेश करता है। उसके एक हाथ में चमड़े का दवाई वाला बैग है।

पशु डॉक्टर आकर भैंस को चैक करते हुए : इसे तो बड़ा तेज़ बुखार है, बहुत खराब हालत हो चुकी है इसकी, जब बीमार हुई थी पहले ही दिन इसे दवाई क्यों नहीं दिलवाई?

कमली : डॉक्टर जी, घरेलू टोटके, झाड़–फूँक आज़मा कर देख रहे थे।

पशु डॉक्टर : झाड़–फूँक से अगर इन्सान और पशु ठीक हो जाते, तो डॉक्टरों की क्या आवश्यकता है? सरकार ने हर गाँव में लोगों के इलाज के लिए प्राथमिक अस्पताल बनाए हैं। पशुओं के लिए हम जैसे पशु डॉक्टर लगा रखे हैं। यह सब तुम्हारी भलाई के लिए ही हैं और आप लोग हैं कि अब भी टोने–टोटकों में विश्वास रखते हो। लो ये दवाई मैडिकल स्टोर से लाकर अपनी भैंस को पिला देना। वैसे तो मुझे तेरी भैंस के बचने के आसार कम ही दिखाई दे रहे हैं। *(डॉक्टर ने एक पर्ची पर दवाई लिख कमली के हाथ में थमा दी।)*

कमली : हाय! ऐसा मत कहो डॉक्टर जी। अगर भैंस को कुछ हो गया हम बरबाद हो जायेंगे।

पशु डॉक्टर : ये तो झाड़–फूँक में चार–पाँच दिन निकालने से पहले सोचना था। अब तो भगवान पर भरोसा रखकर दवाई खिला दो। यह कह डॉक्टर चला जाता है।

कमली डॉक्टर की दी हुई पर्ची बबली को दिखाते हुए : बेटी डॉक्टर ने तो पूरे साढ़े चार सौ रुपये की दवाई लिख दी और घर में फूटी कोड़ी भी नहीं है, अब क्या होगा।

बबली अपने स्कूल बैग की किताब से पाँच सौ का नोट निकाल कमली को देते हुए : लो माँ इन पैसों से दवाई ले आओ, सरकार गरीब घरों के बच्चों को छात्रवृत्ति देती है, ये पैसे मुझे कल स्कूल से मिले थे।

कमली प्यार से बबली के सर पर हाथ रखते हुए बोली : बेटी एक तुम हो जिसे छोटी उम्र में ही घर की चिन्ता है और एक वो तेरा शराबी बाप है जो ज़हर पीकर गंदी नालियों में पड़ा रहता है।

कमली पाँच सौ का नोट और पर्ची रिन्कु को पकड़ाते हुए : साइकिल पे बैठकर जल्दी शहर

जाकर दवाई ले आ बेटा। हमारी भैंस की तो ज़्यादा ही हालत खराब हो रही है।

एक बार पर्दे पर अंधेरा, उजाला होता है।

रिन्कु दवाई लाकर कमली को देते हुए : लो माँ ले आया दवाई। इसे पानी में घोलकर भैंस को पिला दो।

कमली भैंस को दवाई पिलाने उसके पास आती जाती है मगर तब तक भैंस की आत्मा उसके शरीर से अलग हो गई। मंच पर दर्द भरी धुन बजती है। कमली ज़ोर–ज़ोर से रोने लगती है। उसके रोने की आवाज़ सुनकर उसके कई पड़ोसी दुख व्यक्त करने उसके घर पहुँचते हैं।

कमली रोते हुए : हाय! मेरा तो ये ही सहारा था। दूध बेचकर अपने बच्चों का पेट भर रही थी, अब मैं क्या करूँ? अब घर का खर्च कैसे चलेगा?

प्रेमवती कमली के पास आकर : बहन भाग्य का लेखा कोई नहीं मिटा सकता, तेरे दुख से हम सब बहुत दुखी हैं।

एक पड़ोसन : बहन मेरा बताया टोटका तूने ठीक से नहीं आज़माया वरना भैंस नहीं मरती।

दूसरी : इसे तो किसी की बुरी नज़र लग गई थी, बुरी नज़र तो बसे हुए घरों को उजाड़ देती है।

कमली का पति रलदू एक व्यक्ति के साथ नशे में झूमता हुआ आकर : अरे! हट जाओ एक तरफ़, भैंस उठाकर हड़वारों में ले जायेगा ये मोची, दो सौ रुपये पहले ही ले रखे हैं इसके चाम के।

कमली : हाय! ये नीच मेरी भैंस का चाम भी बेचकर दारू पी गया, भैंस को हाथ लगाकर दिखा, मैं तो इसका संस्कार करूँगी।

रलदू : साली जब तक पाँच–सात डंडे तेरी कमर पे नहीं लगते, तेरी खुरक नहीं मिटती, अभी करता हूँ तुझे सीधी।

रलदू डंडा उठाकर कमली को मारने लगा तो उनके मोहल्ले की रहने वाली प्रधान ताई आ गई।

ताई पैर से जुत्ती निकाल रलदू को दिखाकर डाँटते हुए : अब मार के दिखा इसे, अभी तेरा थोबड़ा लाल करती हूँ।

रलदू डंडा फेंककर अपने साथी की तरफ़ देखता हुआ : आ रे बाहर चलते हैं, मैं औरतों के मुँह नहीं लगता।

(रलदू के बाहर जाते ही कमली ताई को देखकर ज़ोर–ज़ोर से रोने लगती है।)

ताई कमली के सर पर हाथ रखते हुए : रो मत बेटी, मैं तेरी मदद करने आई हूँ। तेरी भैंस के मरने की खबर मिली तो दौड़ी चली आई। ऐसी ही समस्याओं के हल के लिए सरकार हमें स्वयं सहायता समूह खोलने के लिए प्रेरित करती है। हमारे समूह को तो तीन वर्ष से ऊपर हो गए। अब उसमें सरकार की तरफ़ से भी पैसा जमा करवाया गया है। तुम तो जानती ही हो मैं समूह प्रधान हूँ। मैं तुझे समूह से पचास हज़ार रुपए तक लोन दिलवा दूँगी। नई भैंस खरीद ले। दूध बेचकर पैसे किस्तों में चुका देना। मैं आज ही स्वयं सहायता समूह के सदस्यों की बैठक बुलवाती हूँ।

प्रेमवती : हाँ ताई तेरी मदद करेगी, मैं भी समूह की सदस्य हूँ। ए.डी.सी. कार्यालय की तरफ़ से हर गाँव में अनुसूचित जाति की स्त्रियों को स्वावलंबी बनाने के लिए ग्यारह सदस्यों पर आधारित स्वयं सहायता समूह बनाए गए हैं। इनमें सभी सदस्य पचास रुपये हर महीने देते थे। सरकार की तरफ़ से भी इसमें दस हज़ार रुपये प्रोत्साहन राशि डाल दी जाती है। इस प्रकार समूह के पैसे में वृद्धि होती रहती है। ज़रूरत पड़ने पर गाँव का कोई भी व्यक्ति इस पैसे में से काम करने के लिए लोन ले सकता है।

कमली : ताई आप मुझे भैंस के लिए लोन दिलवा दें, आप का अहसान हो जायेगा मुझ पर।

ताई : अहसान की कोई बात नहीं बेटी, इससे तो हमारा समूह भी चलता है और आप जैसे जरूरतमंदों की मदद भी हो जाती है। अच्छा चलती हूँ। एक घण्टे बाद आँगनवाड़ी भवन में पहुँच जाना। वहीं बैठक होगी।

कमली ताई की बात सुनकर राहत की सांस लेती है : ज़रूर पहुँच जाऊँगी ताई।

पर्दा गिरता है।

दृश्य 5

पर्दा उठता है।

पर्दे पर आँगनवाड़ी की इमारत का दृश्य। मंच पर स्वयं सहायता समूह की प्रधान ताई, प्रेमवती, कमली सहित समूह से जुड़ी गाँव की अनेक महिलाएँ उपस्थित। ताई खड़ी होकर उन्हें सम्बोधित कर रही है। सभी महिलाएँ बैठी ताई की बात बड़े ध्यान से सुन रही हैं।

प्रधान ताई : समूह की सभी बहनों को प्रणाम। हमने आज की यह बैठक आँगनवाड़ी के बच्चों की छुट्टी के बाद इसलिए रखी है, ताकि उनकी पढ़ाई में व्यवधान न पड़े। इस आंगनवाड़ी में सरकार द्वारा छोटे बच्चों को पौष्टिक भोजन देने की व्यवस्था की गई है। उन्हें दलिया, खिचड़ी और अन्य कई प्रकार के खाद्य पदार्थ दिए जाते हैं। इसके अलावा हर रोज़ दोपहर तक गाँव के सभी नन्हे–मुन्नों को चित्रों की सहायता से पढ़ना–लिखना सिखाया जाता है और उन्हें उठने–बैठने, शौच करने, हाथ धोने, भोजन करने के तरीके आदि सिखाए जाते हैं। ये मैं इसलिए बता रही हूँ, ताकि आप सभी अपने तीन–चार साल तक के बच्चों को आँगनवाड़ी में ज़रूर भेजें। अब मैं आज की बैठक के मुख्य विषय पर आती हूँ। बहनों जैसा कि आप सभी जानती हो हमारे समूह को सुचारु रूप से चलते हुए तीन वर्ष हो गए, अब तक इस समूह के बैंक खाते में ब्याज सहित दो लाख दो हज़ार तीन सौ पच्चीस रुपये जमा हो चुके हैं। इसके लिए सभी सदस्याएँ बधाई की पात्र हैं। आज की यह बैठक कमली की समस्या हल करने के लिए बुलाई गई है। बीमारी से इसकी भैंस मर चुकी है और आप सब को मालूम ही है कि इसका पति हर समय नशे में टल्ली रहता है, घर का खर्च इसे ही चलाना पड़ता है। मैं सभी बहनों से अनुरोध करती हूँ कि इसे समूह के साझे खाते से पचास हज़ार का लोन दिया जाए, ताकि ये नई भैंस खरीदकर, दूध बेचकर अपने घर का खर्च चला सके।

सभी स्त्रियाँ हाथ उठाकर : प्रधान जी हमें आपका यह प्रस्ताव मंजूर है।

कमली हाथ जोड़कर : मेरी मदद करने के लिए मैं प्रधान ताई और सभी बहनों का दिल से आभार व्यक्त करती हूँ।

बहनों मेरे लिए ये प्रस्ताव तो आप ने पास कर दिया मगर इन शराबियों का भी कुछ हल निकालो। हमारे गाँव में मेरे पति सहित अनेक नशेबाज़ हैं, जो कोई काम–धंधा तो करते नहीं , उलटे हमसे मारपीट करते हैं। हम खेत खलिहान में भी काम करते हैं और घर का चूल्हा–चौका भी संभालते हैं।

प्रेमवती खड़ी होकर : कमली सही कह रही है। हम खेतों से चारा काटकर लाते हैं। चारा मशीन में उसकी कुट्टी काटकर अपने पशुओं को खिलाते हैं, दूध निकालना, रोटी बनाना, कपड़े धोना, बर्तन मांजना, झाड़ू बुहारना, सब काम हम ही करते हैं। इतना करने के बाद भी कुछ घरों में मर्द हमें प्रताड़ित करते हैं। आखिर कब तक हम ये अत्याचार सहेंगे।

एक स्त्री : और क्या, अब हम शिक्षित हो चुके हैं। अब हम सभी स्त्रियों को एकता बना कर घरेलू हिंसा का प्रतिरोध करना होगा।

दूसरी : हमें अपने गाँव की सभी बहनों को दहेज प्रथा, विधवा विवाह, भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक कुरीतियों के प्रति भी सजग करना ही होगा।

तीसरी स्त्री : जब से गाँव में परचून की दुकानों पर अवैध रूप से दारू बिक रही है, मर्द हर समय नशे में टल्ली रहने लगे हैं। ताश खेलने और दारू पीने के अलावा इन्हें कोई काम नहीं है। अब तो स्कूल,

कॉलिजों में पढ़ने वाले लड़के भी बियेर पीने लगे हैं। कुछ दिनों में ये पूरे नशेबाज़ बन जाएँगे और अपने घर और देश पर बोझ बन जाएँगे। इस समस्या का कोई हल सोचो?

चौथी स्त्री : आप सभी बहनें बिल्कुल सही कह रही हैं। अगर हम सभी स्त्रियाँ मिलकर इन दुकानदारों का विरोध करें, तो इस समस्या से मुक्ति मिल सकती है। गाँव में शराब मिलनी बंद हो गई तो अनेक मर्दों की लत छूट सकती है। तो बहनों चलो सरपंच के पास चलकर सबसे पहले इनकी शिकायत करते हैं। अगर वह कार्रवाई नहीं करता, तो फिर हम पुलिस थाने में इसकी शिकायत करेंगे।

ताई : हाँ ये सही हल है, चलो हम सरपंच की चौपाल में जाते हुए आशा वर्कर और महिला मण्डल की स्त्रियों को भी साथ ले लेते हैं।

पर्दा गिरता है।

बंद पर्दे के बाहर की तरफ़ सभी स्त्रियाँ नारे लगाती हुई चहल कदमी–सी करती हैं – 'समाज को जगाना है, नशा मुक्त बनाना है। नशे कारण जग छूटे, देखो कितने घर टूटे। नशे की जिनको प्यास है, नालियों में उनका निवास है। दूध, दही, लस्सी, पीयो, नशा छोड़ो सुख से जीओ। स्त्रियों का नशा मुक्ति अभियान देख दर्शक दीर्घा की तरफ़ बैठे कुछ पुरुष भी उनके साथ आकर नारे लगाते हैं और उनके साथ सरपंच की चौपाल की तरफ़ जाते हैं।

दृश्य 6

पर्दा उठता है।

पीछे पर्दे पर चौपाल का दृश्य। आगे दो–तीन खाट पड़ी हैं, जिनके ऊपर गाँव सरपंच के साथ कुछ और व्यक्ति भी बैठे हैं। गाँव के कुछ स्त्री, पुरुष जब नशा विरोधी नारे लगाते उसकी चौपाल में आते हैं, तो वह खाट से खड़ा हो हैरानी से उनकी तरफ़ देखता है।

सरपंच स्त्रियों के साथ आए पुरुषों की तरफ़ देखकर हँसते हुए : ये चोटी वालियों की फ़ौज बनाकर कहाँ चढ़ाई करने का इरादा है भाई लोगों।

वहाँ खाट पर बैठा एक व्यक्ति : सरपंच साहब मुझे तो ऐसा लग रहा है आज तेरे ऊपर चढ़ाई होगी।

प्रधान ताई गुस्से से : ये फ़ौज तुम्हें चोटियों से बाँधकर घसीटेगी। गाँव के बच्चे तक जानते हैं कि तेरी सरपंची में यहाँ खुले आम दारू बिक रही है। ऐसा कैसे हो सकता है कि एक–एक वोट का समीकरण बनाने वाले को छल्लियाँ उघाड़ते कौवे न दिखाई दे।

ताई के साथ आया एक पुरुष : ताई ये शराब कैसे बंद कराएगा, इसे तो हमेशा शराबियों का वोट खिसने का डर लगा रहता है।

कमली : हो सकता है ये शराब बेच रहे दुकानदारों से कमीशन भी लेता हो।

प्रेमवती : लेता क्या हो, एक चाय के खोखे वाला तो इसकी गली में ही शराब बेच रहा है, ये पक्का दलाली कर रहा है।

चौपाल में बैठा एक व्यक्ति खड़ा हो सरपंच के कान में फुसफुसाते हुए : सरपंच साहब, शराबियों के तो दस–बीस वोट हैं, अगर औरतों को नाराज़ कर दिया, तो आपकी ज़मानत ज़प्त हो जाएगी।

सरपंच अपने को चारों तरफ़ से घिरा देख हाथ जोड़ लोगों की खुशामद करते हुए : अरे नहीं मेरी माताओं, बहनों, भाइयों, मुझे वाकई इस बारे में कोई जानकारी नहीं है। अगर गाँव में कोई गलत काम कर रहा है, तो उसे रोकना मेरा कर्त्तव्य बनता है। चलो अभी आपके साथ चलकर उन्हें शराब बेचने से मना करता हूँ।

ताई : हाँ हाँ चलो सभी, समाज को जगाना है, नशा मुक्त बनाना है। चलो सभी आज गाँव में बिक रही अवैध शराब को बंद करवाते हैं।

पर्दा गिरता है।

ताई के इतना कहते ही सरपंच सहित गाँव के सभी स्त्री, पुरुष नशे के खिलाफ़ नारे लगाते हुए बंद पर्दे के आगे चहल कदमी करते हैं।

दृश्य 7

पर्दा उठता है।

पीछे पर्दे पर गाँव की गलियों, दुकानों का दृश्य। आगे गाँव में एक परचून की दुकान। कुछ बच्चों की टॉफ़ियाँ, चूर्ण, चिप्स पाऊच टंगे हुए। काऊंटर पर कुछ छोटे डिब्बों में चना, मूंग दाल के सैम्पल। दुकानदार चोरी से छुपाकर एक व्यक्ति को शराब की बोतल पकड़ाता है, मगर तभी ताई, कमली, गाँव सरपंच अन्य स्त्री, पुरुषों के साथ वहाँ पहुँच जाते हैं।

ताई व्यक्ति के हाथ से शराब की बोतल छीन कर सरपंच को दिखाते हुए : ये देखो सरपंच साहब, कैसे ये दुकानदार गाँव के लोगों को नशेबाज़ बना रहे हैं।

कमली काऊंटर के अंदर झाँकते हुए : वो देख ताई इसने शराब की पूरी पेटी छुपा रखी है।

सरपंच दुकानदार से : तुझे पता है इस नशे का कितना घातक असर लोगों पर हो रहा है। तुम्हारे थोड़े से लालच ने कई घरों को बरबाद कर दिया। तुझे अभी पकड़ कर पुलिस के हवाले करते हैं।

दुकानदार हाथ जोड़कर सरपंच से माफ़ी माँगते हुए : सरपंच जी अबकी बार माफ़ कर दो, मैं कसम खाता हूँ आज के बाद कभी शराब नहीं बेचूँगा।

सरपंच : ठीक है, आज के बाद अगर शराब बेचता मिला, तो तुझे ग्राम पंचायत की बैठक बुला, जुर्माना लगाकर पुलिस के हवाले करेंगे।

ताई शराब की बोतल का ढक्कन खोल नाली में बहाते हुए : बहनों इसकी सभी बोतलें उठाकर नाली में बहा दो। हर रोज़ शराबी गंदी नाली में होते थे, आज उनकी शराब होगी।

(सभी औरतें आगे बढ़ बोतलें उठाकर नाली में बहा देती हैं।)

प्रेमवती : चलो बहनों सरपंच के साथ अगले दुकानदार की खबर लेते हैं।

पर्दा गिरता है।

सभी लोग पर्दे के आगे फिर शराब के विरुद्ध नारे लगाते चलते हैं।

दृश्य 8

पर्दा उठता है।

मुख्य पर्दे पर सातवें दृश्य वाले गाँव की गलियों, दुकानों का दृश्य। आगे एक बेन्च रख खोखे पर चाय पकोड़े बेचने वाला लोगों को शराब पिला रहा है। वहाँ कमली का पति रलदू दो–तीन ग्रामीणों के साथ बैठा शराब पी रहा है। अवैध शराब बेच रहा खोखे वाला भी नशे में पूरा टल्ली हो झूम रहा है। ताई, कमली, सरपंच और गाँव के अन्य स्त्री, पुरुषों के दल को नारे लगाते हुए अपनी तरफ़ बढ़ते देख रलदू और उसके साथी झूमते गिरते पड़ते भाग खड़े होते हैं, मगर खोखे वाले पर उनका कोई असर नहीं होता, वह बोतल निकालकर सरपंच को दिखा पैग लेने लगता है।

खोखे वाला शराब का जाम सरपंच की तरफ़ करते हरियाणवी में : यार तन्नु फ्री म्हं पीणी थी, तो कल्ला अैजंदा, यो जथा क्यों लेकर आया?

सरपंच : देखो तो कितनी बेशर्मी से गैर कानूनी शराब बेच रहा है। अभी पुलिस को फ़ोन कर तुझे अंदर करवाता हूँ।

खोखे वाला आँखे मिचमिचाते हुए अकड़कर सरपंच से : ओये घणी सरपंची मत झाड़, तिरे जैसे सरपंच मन्नै घणे ई देखे सै। मन्ने ठेकेदार की परमिशन ले राक्खी सै, अड़ै तां पिवांगे अर छोरयां नै पिलावांगे भी।

ताई : ओ बेशर्म, सरकार ठेकेदारों को केवल ठेके पर शराब बेचने की परमिशन देती है। वह चाय समोसों के खोखे पर शराब नहीं बिकवाती, यह गैर कानूनी है।

कमली : ये ही गाँव वालों के शरीर में ज़हर भर रहा है, सरपंच साहब इसे पुलिस के हवाले करो।

खोखे वाला स्त्रियों की तरफ़ देख झूमते हुए : ओये, ठेकेदार नेता का खासम खास सै। कानून नै तो वा जेब मैं गाल्यों फिरै सै। मेरे बेटयो, थमने ज्युणसी मेरी पुंजड़ पाड़नी ओ पाड़ ल्यो, लाल परी तै अड़े युंई बिकेगी। *(बेसुरे स्वर में गाकर)* चर्चा तिरे नाम का जिब हुया करै मैखाने म्ह, अर जख्मी कलेजा टूट कै भाई घलजा सै पैमाने म्ह।

ताई चप्पल निकाल खोखे वाले का गिरेबान पकड़ते हुए : यह ऐसे नहीं मानेगा बहनो। इसके थोबड़े पर दो–दो चप्पल रसीद करो।

सरपंच ताई से खोखे वाले को छुड़वाता हुआ : ताई कानून अपने हाथ में मत लो, यह नशे में धुत्त है। मैं अभी पुलिस को बुलाकर इसकी शराब बंद कराता हूँ।

सरपंच जेब से मोबाइल निकाल थाने में फ़ोन करता हुआ : हैलो! मैं गाँव रामगढ़ का सरपंच बोल रहा हूँ। गाँव में एक व्यक्ति अपनी दुकान पर अवैध शराब बेच रहा है, जिसे हमने शराब के साथ पकड़ लिया है। आप थाने ले जाकर इस पर उचित कानूनी कार्रवाई करिये।

मंच पर दो बार अंधेरा, उजाला होता है।
कुछ ही देर में पुलिस आ जाती है।

एक सिपाही खोखे वाले का गिरेबान पकड़कर जीप में बिठाते हुए : चल आज तेरी छित्तर परेड कर सारी शराब उतारते हैं और नेता के खासमखास ठेकेदार से भी पूछताछ करते हैं।

ताई सरपंच से : सरपंच साहब इसे तो पकड़वा दिया पर इन शराबियों का मुकम्मल हल करने के लिए आपको ग्राम पंचायत की बैठक बुलाकर पीने वालों पर जुर्माना लगाने का ऐलान करना चाहिए।

कमली : हम घर के बाहर के सभी कार्य करते हैं, फिर भी हमारे मर्द हमको मामूली बातों पर बहाने बना कर पीटते हैं। सरपंच जी घरेलू हिंसा का भी कुछ सुधार करो।

प्रेमवती : और क्या, मेरा खसम तो मुझे हर रोज़ पीटता है। कभी कहता है सब्ज़ी में नमक अधिक डाल दिया, कभी कमीज़ पर प्रेस सही नहीं होने का बहाना बनाता है। हद तो तब होती है जब वह पीटते हुए कहता है बोल तेरा शादी से पहले कहाँ–कहाँ चक्कर चल रहा था।

एक पुरुष : सरपंच साहब ये महिलाएँ ठीक कह रही हैं। घरेलू हिंसा तो बंद होनी ही चाहिए, साथ ही दहेज प्रथा, बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराइयों पर अंकुश लगाने के लिए भी पंचायत में चर्चा होनी चाहिए।

दूसरा पुरुष : सत्य कहा, लोगों को माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा शुरू किए गए स्वच्छ भारत अभियान को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए और इसके लिए भी बैठक में चर्चा हो।

एक स्त्री : साथ ही लोगों को भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराधों को रोकने के लिए भी सचेत करना चाहिए और बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ अभियान को सार्थक बनाने के लिए अपनी सभी बेटियों को उच्च शिक्षा दिलवाई जानी चाहिए।

सरपंच : जनहित के लिए आप सभी ठीक कह रहे हैं। सच मानो मैं अब वोट की राजनीति से ऊपर उठ दिल से आप के साथ हूँ और कल सुबह ही पंचायत भवन में ग्राम पंचायत की बैठक बुलाता हूँ। इस बैठक में ग्राम के मोजिज लोग और सभी पंच मौजूद होंगे, आप सब भी ज़रूर आना।

सभी स्त्री पुरुष एक साथ : हाँ हम पंचायत में ज़रूर आएँगे।

पर्दा गिरता है।

अंतिम दृश्य

पर्दा उठता है।

पीछे पर्दे पर पंचायत भवन का दृश्य, जिसके आगे नीम का एक पेड़, जिसके चारों तरफ़ पक्का चबूतरा बना हुआ। मंच पर ग्राम सरपंच, कमली, प्रेमवती, ताई, पंचायत सचिव सहित अनेक स्त्री, पुरुष बैठे हुए। पंचायत सचिव के हाथ में कार्रवाई रजिस्टर है।

सरपंच खड़े होकर : सबसे पहले तो मैं आज की महत्त्वपूर्ण बैठक में शामिल होने के लिए आए ग्राम के पंचों और सभी गण्यमान्य लोगों का आभार व्यक्त करता हूँ। जैसा कि आप सभी जानते हैं हर प्रकार का नशा ज़हर है, जो लोगों को शारीरिक और आर्थिक रूप से नष्ट कर रहा है। आज से गाँव में जो व्यक्ति शराब बेचता या पीता देखा गया उस पर पंचायत कर पाँच हज़ार रुपये जुर्माना लगाया जाएगा और उसे पुलिस के हवाले भी किया जाएगा। आज से गाँव में गुटका, खैनी, बीड़ी, सिगरेट पर पूरी तरह से प्रतिबंध होगा। आप में से कितने लोग मेरे इस प्रस्ताव का समर्थन करते हैं?

सभी लोग हाथ उठाकर : इस नेक काम में पूरा गाँव आप के साथ है।

सरपंच : तो फिर ठीक है, सभी पंचों सहित पूरे गाँव की सहमति बन गई। आज से ये लिखित प्रस्ताव पास किया जाता है। सचिव साहब बैठक में उपस्थित पंचों और गाँव वालों के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करवा लो।

सचिव : आप द्वारा पारित प्रस्ताव मैंने लिख लिया है, अभी सबके हस्ताक्षर करवाता हूँ। पंचायत द्वारा पारित आपके इस अच्छे कार्य के बारे में मैं प्रशासन को अवगत करा दूँगा और साथ ही पत्रकारों को भी इसकी जानकारी दे दूँगा।

ताई खड़ी होकर : सरपंच साहब अब घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक बुराइयों का भी कुछ हल निकालो।

सरपंच : भाइयों समाज में कुछ विकृत प्रवृत्ति के लोग होते हैं, जो स्त्रियों का अपमान करते हैं, जबकि सभी पुरुष स्त्री की ही कोख से जन्म लेते हैं। अगर आप लोग सहयोग करें, तो मेरे पास एक ऐसी तरकीब है, जिससे घरेलू हिंसा, भ्रूण हत्या, चोरी–चकारी पर भी अंकुश लग सकेगा।

सभी स्त्री पुरुष एक साथ : हाँ, हाँ.. हमारा पूरा सहयोग मिलेगा।

सरपंच : तो ध्यान से सुनो, हमारे गाँव की जनसंख्या लगभग साढ़े तीन हज़ार है, जिसे प्रशासन द्वारा विकास कार्यों में सहूलियत के लिए सात वार्डों में बांटा गया है। हम सभी जनों की सम्मति से सामाजिक बुराइयों के खात्मे के लिए सातों वार्डों में सात सदस्यों पर आधारित स्वयं सुरक्षा समूह बनाएँगे। और ये ज़िम्मेवारी हर वार्ड के पंच की होगी कि वह अपने वार्ड में अच्छे सात लोगों का चुनाव करेगा, जिसमें युवा वर्ग और स्त्रियाँ भी शामिल होंगी।

कमली : सरपंच साहब हर वार्ड में सात–सात लोगों के समूह तो आसानी से बन जाएँगे पर इनसे सामाजिक बुराइयाँ कैसे खत्म होंगी?

सरपंच : हर पंच अपने पास एक रजिस्टर रखेगा, जिसमें उसके समूह सदस्यों के नाम व उनके कार्यों का पूरा ब्योरा रखा जाएगा। सबसे अच्छा कार्य करने वाले स्वयं सुरक्षा समूह को हर वर्ष आज़ादी के दिन पन्द्रह अगस्त पर पंचायत द्वारा सम्मानित भी किया जाएगा।

प्रेमवती : ये तो बहुत ही अच्छा विचार है, मगर समूह सदस्यों को क्या काम करने होंगे, जिससे सामाजिक बुराइयों से छुटकारा मिले? ये तो बताओ।

सरपंच : किस घर में क्या घटित होता है, ये मोहल्ले पड़ोस को पूरा पता होता है। हर समूह अपने वार्ड का प्रहरी होगा। समूह के सदस्य अपने–अपने मोहल्ले के घरों पर नज़र रखेंगे। जो भी व्यक्ति घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, भ्रूण हत्या

और नशा प्रवृत्ति जैसी बुराइयों में लिप्त पाए जाएँगे वह उनके बारे में मीटिंग बुलाकर अपने समूह सदस्यों को सूचित करेगा। फिर तत्काल यहीं पंचायत भवन में सभी समूहों की बैठक बुलाई जाएगी। सर्वप्रथम तो फैसला बैठक में ही सुलझाया जायेगा। अगर मसला आपसी रज़ामंदी से नहीं निपटता तो फिर कानून की सहायता ली जाएगी। इन समूहों की मदद से कुछ हद तक आतंकवाद, बिजली पानी की सरकारी चोरी व भ्रष्टाचार को भी रोकने में कामयाबी मिल सकती है।

एक युवा आश्चर्य से : सरपंच साहब आतंकवाद तो एक राष्ट्रव्यापी बड़ी समस्या है। एक मोहल्ले का छोटा–सा सात सदस्यों वाला समूह इसमें क्या कर सकता है?

सरपंच : अगर पूरे देश के मोहल्लों में सात या ग्यारह सदस्यों के स्वयं सहायता समूह बना दिये जाएँ तो आतंकवाद, चोरी, डकैतियों और हत्या, बलात्कार जैसे संगीन जुर्मों पर कुछ हद तक अंकुश लगाया जा सकता है, जैसा कि आप सभी जानते हो आतंकवादी वारदात करने से पहले हमारे देश में रहने वाले चंद गद्दारों की मदद लेते हैं। जैसा कि संसद पर हमले से पहले हमलावर आतंकवादी दिल्ली में ही महीनों तक किराये पर कमरा लेकर रहते रहे। देश में गद्दार उन्हें पनाह देते हैं और उनके हथियारों को छिपाते हैं। वार्ड समूहों को हर समय सजग रहकर अपने मोहल्ले पड़ोस के लोगों पर नज़र रखनी होगी। वे लोगों के घरों में ठहरे अजनबियों, किरायेदारों का पूर्ण परिचय प्राप्त करेंगे और शक होने पर पुलिस को इत्तला करेंगे। साथ में जो लोग सार्वजनिक सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाते हैं, तारों में कुण्डी डालकर बिजली, पानी चोरी करते हैं उन पर पंचायत द्वारा जुर्माना लगाया जायेगा और अगर वो नहीं मानते तो प्रशासन में शिकायत कर उन्हें सुधारा जायेगा।

एक पंच : सरपंच साहब इससे तो एक नई क्रांति आ जाएगी, मैं आज ही अपने मोहल्ले में सात सदस्यों पर आधारित स्वयं सुरक्षा समूह बनाता हूँ।

सभी पंच : एक नई क्रांति लाते हैं, हम अपने मोहल्लों में स्वयं सुरक्षा समूह बनाते हैं।

सभी लोग खड़े हो एक साथ – सामाजिक बुराई हटाते हैं, सुरक्षा समूह बनाते हैं, दूध, दही, लस्सी, पियो, नशा छोड़ो, सुख से जीओ।

nkadhian@gmail.com

मैं भगवान हूँ

– श्री धनराज शम्भु
मॉरीशस

पात्र

1. पंडित दुबे (45 साल)
2. कोरस
3. शीतल – श्रोता 1 (35 साल)
4. मीला – श्रोता 2 (37 साल)
5. भिक्षु
6. साधु (70 साल) – स्वामी
7. वृद्ध सज्जन (65 साल) – प्रभु, ईश्वर

स्थान : मंदिर का प्रांगण
समय : लगभग चार बजे शाम का समय
मंच : पर्दा हटने पर मंच पर कुछ चटाइयाँ हैं। एक भजन मंडली ज़ोर–शोर से भजन कीर्तन कर रही है। फिर एक व्यक्ति पंडित का प्रवचन.... हॉल में कई मूर्तियाँ हैं। पुनः आँगन का दृश्य। सुंदर पेड़–पौधे, फूल गमले आदि। सभी लोग भजन करने में लीन हैं। पहले आरती फिर गणेश वन्दना –वक्र तुण्ड महाकायः, पुनः ओम् है जीवन हमारा, ओम् प्राणाधार है, ओम् है कर्ता विधाता, ओम् पालनहार है... ओम् है जीवन हमारा। गाते–गाते खूब शोर मचता है, तभी पंडित जी उठ खड़े होते हैं..

पंडित दुबे: *(कुछ ज़ोर से चिल्लाकर)* शांत.... शांत... शांत... कीर्तन और भजन का समय टल गया। अब मेरे प्रवचन का समय है। इसलिए आप लोग शांत हो जाएँ।

कोरस : जो आज्ञा पंडित जी।

शीतल : चुप्प हो जाइए... बाबा जी प्रवचन करेंगे... पहले स्वागत गान गाते हैं *(कोरस में एक साथ)* स्वागतम बाबा... शरणागतम् बाबा

पंडित दुबे : एक बार बोलिए शिवशंकर भोलेनाथ की, कृष्ण कन्हैया बिहारीलाल की, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र भगवान की, माँ जगदम्बा की, सरस्वती कला निधान की... सब भक्तों की... आचार्य जी की... जय...

देवियो और सज्जनो! *(कान के पास उँगलियाँ लगाकर)* माता–बहनों ज़रा बच्चों को शांत कराएँ...

शोर में खाक प्रवचन होगा – *(थोड़ा शोर)*

शीतल : कहाँ शोर है... सभी लोग तो शांत चित्त हैं।

मीला : आचार्य जी का सिनेमा है... अभी कई बार नाराज़ होने का नाटक करेंगे।

पंडित दुबे : हाँ देवियो और सज्जनो तो मैं कहाँ था... हाँ... आज मैं आप सभी लोगों का हार्दिक स्वागत कर रहा हूँ। आपने अच्छा किया कि अपनी उपस्थिति दी... आप लोग भाग्यवान हैं... *(तभी मोबाइल का रिंगटोन सुनाई देता है। पंडित जी नाराज़ होकर)* मैंने कई बार कहा है कि मोबाइल साइलेंट मोड में डाल दें या बिल्कुल ऑफ़ कर दें... भंग होता है। पता नहीं कब सुधरेंगे। *(मोबाइल बजता ही रहता है... कुछ सोचकर देखते हैं कि फ़ोन उन्हीं का है)* क्षमा चाहता हूँ बहुत आवश्यक कॉल है... हाँ जी.. बोलिए... पूजा... हाँ हाँ... *(फिर सोचकर)* तब तक कीर्तन करें। मैं अभी आया....

कोरस : क्या गायें? *(तभी एक महिला... शीतल शुरू करती है)* राम चले वन के गमन सारी रतिया *(दो तीन बार दोहराते हैं तभी पंडित जी प्रवेश करते हैं।)*

पंडित दुबे : रुकिए... रुकिए... तो मैं कहाँ था *(सभी देवी देवताओं का जयकार कराते हैं)* जी हाँ मैं आप सभी लोगों का स्वागत करता हूँ। मैं आप

लोगों को समझा रहा हूँ कि हमें भगवान का नाम लेना चाहिए, उनकी पूजा करनी चाहिए, लेकिन जब तक पंडित जी को नहीं बुलाएँगे, उनसे नहीं सुनेंगे, उनको दान दक्षिणा देकर आशीर्वाद नहीं लेंगे तो काम कैसे चलेगा। आप लोगों की पूजा सफल नहीं होगी। हर पूजा के लिए पंडित जी की ओर से ही गुज़रना पड़ेगा। उन्हीं के माध्यम से सारा कुछ प्राप्त होगा।

मीला : *(कुछ झुँझलाकर)* तो क्या यदि हम सीधे ईश्वर की पूजा करेंगे, तो उसका फल हमें नहीं मिलेगा...!

पंडित दुबे : कैसे मिलेगा माता जी, कैसे मिलेगा? आपको मिनिस्टर से यानी मंत्री से मिलना हो तो आप स्वयं कैसे मिल सकती हैं? आपको एजेंटों के माध्यम से ही तो जाना पड़ेगा। वैसे ही कार्य होता है।

शीतल : बाबा जी सही बोल रहे हैं। बिना उनकी सहायता से कैसे भगवान को पाया जा सकेगा। बोलिए पंडित जी... आप बोलिए..

पंडित दुबे : देखिए। कोई भी व्यक्ति या श्रोता बीच में प्रश्न नहीं पूछेगा। जानते हैं कितनी कठिनाई होती है हर बार संतुलन बनाने के लिए। श्रीकृष्ण भगवान की... हाँ मैं बता रहा था कि पंडित जी का आदर करना चाहिए। उनकी बातों पर ध्यान देना चाहिए। उनकी कही हुई बातों पर चलना चाहिए।

मीला : सभी बातों पर हम कैसे ध्यान दे सकते हैं... कभी–कभी... तो...

शीतल : ऐ चुप्प! पंडित जी से ज़बान नहीं लड़ाते...। वे हमेशा सही बोलते हैं। कभी गलती नहीं करते।

पंडित दुबे : ये हैं पंडित जी की परम भगतन...। इन्हें अपने बाबा जी पर विश्वास है।

मीला : बाबा जी यह बात तो ठीक है, पर कभी–कभी मन में शंका तो आती है न! फिर वह बात या शंका कैसे दबाकर रखेंगे। आप यही हैं, तो पूछ लेने में क्या हर्ज़ है।

पंडित दुबे : *(अंदर ही अंदर कुछ नाराज़ होते हैं, फिर भी ऊपर चेहरे पर मुस्कान लाते हुए)* क्यों नहीं... बाबा जी यहाँ हैं, तो पूछ ही लेना चाहिए।

मीला : देखा न शीतल! तुम मना कर रही थी। बाबाजी तो उत्तर देना पसंद करते हैं।

शीतल : हाँ... वे बड़े हैं.... इनकार कैसे करेंगे। परन्तु मुझे शिष्टाचार नहीं लगता।

पंडित दुबे : बहस को लम्बा मत करें। पूछिए क्या पूछना है।

मीला : पंडित जी, जिस देश में या गाँव में बाबा जी नहीं होंगे, वे कैसे पूजा करते होंगे। उनकी प्रार्थना तो भगवान के पास न जाती होगी।

पंडित दुबे : *(थोड़ा हिचकिचाकर)* अरी बालिका। लोग तो विदेश से पंडित–पुरोहित मंगवा लेते हैं, तो क्या एक गाँव या शहर अन्य गाँव या शहर से पंडित नहीं मंगा सकते। किसी भी रूप में पंडित तो मँगवाना ही चाहिए बस।

(कुछ रुककर) सभी लोग मेरे पीछे बोलने की कृपा करें, हमें अपने धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए। हमें सभी का आदर करना चाहिए। माता–पिता और आचार्य को विशेष मान आदर देना चाहिए।

(सभी लोगों से रटवाने के बाद फिर से जय–जयकार करवाते हैं और सभी से समाधि लगाने का संकेत करते हैं। सभी लोग आँखें बन्द कर केवल ओम्–ओम् उच्चारण करते हैं।

धीरे–धीरे रोशनी बुझती जाती है और अंत में एकदम ब्लाक आउट हो जाता है। दृश्य बदलकर प्रांगण का हो जाता है। गमलों में सुन्दर फूल–पौधे आदि रखे जाते हैं और एक पेड़ भी होता है।)

भिक्षु : *(आश्चर्य से चारों ओर देखता है और उस पेड़ के पास जाकर खूब टकटकी लगाकर देखता*

है, फिर वह बोलता है) भिक्षा दे दो माय, भिक्षा दे दो बाबा... *(गीता गा–गाकर भीख माँगता साथ में वह पेड़ की ओर देखता है... ।)* लगता है कोई यहाँ है... ऐ कौन है, कौन है वहाँ... मैं पूछता हूँ कि कौन है वहाँ *(वह थोड़ा डरने लगता है। वह मंदिर की ओर देखकर पुकारता है)* आओ भाइयो... आओ बहनो। देखो यहाँ पर एक प्राणी है। *(कोई नहीं आता है। वह अपने आप में बड़बड़ाता है।)* कोई व्यक्ति है या कोई चोर है। मेरी ही तरह कोई गरीब भिक्षु है या किसी अन्य ग्रह से आया हुआ प्राणी है... कौन है... आखिर कौन है वह जो दिखता है और छिप जाता है। कौन हो तुम? सामने आओ... कौन हो तुम?

(वह चिल्ला–चिल्लाकर सभी मंदिर के भक्तों को बुलाना चाहता है पर कोई नहीं आता) फिर लौटकर आता है, कौन हो, कोई भूत तो नहीं... *(वह देखने का प्रयत्न करता है, पर नज़र नहीं आता। तभी बाहर से मंच पर एक स्त्री उपस्थित होती है। उसके उपस्थित होते ही... ज़ोर की आवाज़ आती है। विस्फ़ोट होता है और शोर मचता है।)*

शीतल : *(डरकर एक जगह छिपती हुई)* अरे भागो–भागो, क्या हो गया विस्फ़ोट... आतंकवाद... भागो... बचाओ *(कुछ ही घड़ी में शांत होकर..)* क्या हो गया... *(आगे बढ़कर)*... तुम कौन हो?

भिक्षु : मैं... मैं... *(हकलाता हुआ वह भी डरा हुआ है..)*

शीतल : हाँ... तुम... तुम कोई आतंकवादी तो नहीं...

भिक्षु : वह क्या है... आतंकवादी... मुझे कुछ पता नहीं। यह क्या होता है। मैं तो स्वयं डर गया हूँ... लगता है कहीं बम फटा है... कोई मरा ज़रूर होगा। कहीं मंदिर में तो नहीं..?

शीतल : नहीं... नहीं... मैं अभी वहीं से आ रही हूँ... वहाँ सब ठीक है। पर तुम कौन हो और क्या कर रहे हो...?

भिक्षु : मैं... मैं एक भिक्षु हूँ... भिखमंगा हूँ... माँग–माँग कर खाता हूँ।

शीतल : वह क्यों? सरकार तो भत्ता देती है।

भिक्षु : हाँ देती तो है पर बेटे–बहू सब ले लेते हैं। दस दिनों का खर्चा देते हैं... फिर तो ठन–ठन गोपाल...

शीतल : तुम शराब पीते होगे, जुआ खेलते होगे, मौज–मस्ती करते होगे।

भिक्षु : अभी नहीं... क्या नाम बताया आपने...?

शीतल : शीतल मेरा नाम है। मैं शीतल हूँ। पुजारी जी के साथ सेवा–कार्य में रहती हूँ।

भिक्षु : नहीं शीतल जी! मैं न शराबी, न जुआरी और न ही मौज–मस्ती करता हूँ। मैं तो बस बीमारी का मारा हूँ... समाज और घर से ठुकराया हुआ हूँ.. बेसहारा हूँ.. नौकरी कर नहीं सकता, बच्चे समझते नहीं, उन्होंने मुझे ठुकरा दिया है... मैं क्या करूँ...?

शीतल : पर यहाँ क्या कर रहे हैं... और झाड़ी में क्या ढूँढ रहे हैं..?

भिक्षु : पता नहीं! मैं तो गुज़र रहा था कि मुझे लगा कि यहाँ कोई है। वह मुझ से छिप रहा है। देखने पर कोई नज़र नहीं आ रहा है।

शीतल : कहीं वह आतंकवादी तो नहीं... उसी ने विस्फ़ोट तो नहीं कराया है।

भिक्षु : ये आतंकवादी भी न... नाक में दम कर रहे हैं.. वे किसी को पहचानते तक नहीं। वे तो दिमाग और आँख से अंधे, कानों से बहरे हैं और बिना दिल वाले हैं। मोह–माया सहानुभूति आदि कुछ नहीं है।

शीतल : इसीलिए तो पूजा–पाठ कर रहे हैं... कहाँ है यहाँ कोई... देखें तो... *(दोनों देखते हैं... कोई नज़र नहीं आ रहा है, तभी बाहर से एक महिला मंच पर प्रवेश करती है।)*

मीला : अरी शीतल तुम...

शीतल : मीला तुम... क्या सत्संग समाप्त हो गया...?

मीला : नहीं शीतल... जब विस्फ़ोट हुआ न.. तभी लोग

इधर–उधर भागने लगे और सभी ने अपने घर का रास्ता लिया। मैं अकेले क्या करती.. मैं भी जा रही हूँ...।

भिक्षु : अभी तो विस्फ़ोट हुआ, फिर भी अकेली जा रही हो। डर नहीं लगता?

मीला : अब डर कैसा... जो होना है वह तो होकर ही रहेगा। पर तुम दोनों यहाँ क्या कर रहे हो...?

भिक्षु : अभी–अभी यहाँ कोई था... पर अब दिखाई नहीं दे रहा है। पता नहीं कहाँ छिप गया।

शीतल : मुझसे भी यही बात कह रहे हैं कि कोई यहाँ पर था... पर मुझे तो कुछ दिखाई ही नहीं दे रहा है। शायद वहम हो या शायद भाग गया होगा।

मीला : मैं भी ज़रा देखूँ तो.. *(वह जाकर झाड़ी में झाँकती है। दोनों उनके पास आ जाते हैं..)* कोई भी तो नहीं...।

शीतल : शायद भिक्षु ने सोम रस ज़्यादा पी रखी है, तभी तो अधिक दिखाई दे रहा है।

भिक्षु : आप लोग मेरी बात मानते ही नहीं, तो मैं क्या कहूँ। लेकिन एक बार फिर बता देता हूँ कि मैंने किसी को देखा था।

(तभी बाहर से एक आवाज़ सुनाई देती है। भगवान का नाम लेते हाथ में करताल लिए मंच पर उपस्थित होते हैं)

शीतल : (चौंककर..) मालूम पड़ता है कि आप एक साधु जी हैं।

मीला : साधु ही तो हैं शीतल! इनका पहनावा–ओढ़ावा नहीं देख रही हो.. उनके मुख से निकली हुई ईश्वर स्तुति नहीं सुन रही हो। ये भगवान के भक्त हैं।

भिक्षु : अब कैसे जाने कि कौन है? आजकल तो लोग इतने भेस बदलते हैं कि पता नहीं चलता।

शीतल : *(पास जाकर)* प्रणाम स्वामी जी।

स्वामी : *(कमज़ोर आवाज़ में)* आपने सही समझा मैं एक स्वामी हूँ, एक सच्चा स्वामी, औरों की तरह मैं नहीं हूँ। मेरे पास न धन–दौलत न सम्पत्ति है। मैं तो बस समाज कल्याण के लिए जीता हूँ। उनको सही मार्ग बताता हूँ। जीने की कला सिखाता हूँ।

शीतल : अच्छा... अच्छा... हमें तो थोड़ा शक हो गया है। कुछ बुरे लोगों के कारण ये सारी चीज़ें होती हैं। घटनाएँ घटती हैं।

मीला : हाँ बाबा जी हमें क्षमा कर दें। परिस्थिति ऐसी है कि शंका हर किसी से हो जाती है।

स्वामी : सीता पते...सीता पते.. गीता मते.. गीता मते.. है। भगवान! आप तो समझ गए न... सभी लोग एक जैसे नहीं होते। मैं तो निःस्वार्थ सेवक हूँ। मेरे पास कुछ नहीं, पैसा, रुपया, परिवार आदि कुछ नहीं। सारा देश मेरा घर, सारे लोग मेरा परिवार, सारे बच्चे मेरे बच्चे हैं। मैं ढोंग–ढकोसले नहीं करता।

मीला : अच्छी बात है... पर बाबा आप करते क्या हैं... खाना...आदि का प्रबंध कैसे होता है...?

स्वामी : हरे कृष्ण, हरे राम! मैं कोई बहुत बड़ा काम नहीं करता, मेरा काम साधारण है। जो कुछ भी मैंने अपने गुरु से सीखा है, उसी को दूसरों तक फैलाता हूँ...। उन तक पहुँचाकर, सही मार्ग बताकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता होती है।

शीतल : और खाना....

स्वामी : खाना क्या... जो लोग मेरे भाषण, उपदेश या सीख से प्रसन्न होते हैं, वे कुछ–न–कुछ सात्विक भोजन दे जाते हैं। मिल जाए तो अच्छी बात है न मिले तो बस पानी और भजन से संतुष्ट हो जाता हूँ।

भिक्षु : यदि आप इतने महान हैं... इतने अच्छे साधु हैं... इतने बड़े स्वामी हैं, तब तो आपको सब कुछ दिखाई देता होगा।

स्वामी : सब कुछ तो नहीं, लेकिन दावे के साथ कह सकता हूँ कि जो कुछ आप लोगों को नहीं दिखाई देता – वह मुझे दिखता है।

शीतल : तब तो अच्छी बात है। सभी का कहना है कि

यहाँ कोई था, पर अब दिखाई नहीं दे रहा है। क्या आप हमें बता पाएँगे कि सचमुच में यहाँ कोई है...?

मीला : हाँ स्वामी जी! आप हमें बताइए न कौन है यहाँ... हम तो कई लोगों पर शक कर रहे हैं। कभी आतंकवादी, तो कभी चोर–डाकू, कभी दुष्ट लोग, तो कभी शरारती... वास्तव में कौन है वह...।

स्वामी : *(कुछ घड़ी के लिए शांत हो जाते हैं... कुछ मंत्र उच्चारण करके कहते हैं)* हाँ यहाँ पर कोई है। कोई ऐसा–वैसा नहीं... बहुत बड़ी आत्मा, आत्मा क्या मुझे तो परमात्मा नज़र आ रहा है।

तीनों : क्या... परमात्मा...

स्वामी : हाँ, परमात्मा! जिसने हम सब को जन्म दिया, हम सब को अन्न–दाना–पानी सब कुछ देता है, प्रकृति की सुंदरता, जीने के लिए हवा प्रदान करता है। वही परमात्मा जिनको सौ नामों से पुकारते हैं। अलग–अलग धर्म, अलग नाम से बुलाते हैं...उस परमात्मा को अपने पास देख रहा हूँ..।

भिक्षु : परमात्मा! भगवान... क्या मुझ जैसे पापी के पास आया है। क्या वह मेरे सामने आएगा... दिखाई देगा... *(कुछ रुककर सोचता है)* स्वामी जी उसने तो मुझे दर्शन दिए थे...।

शीतल : क्या आपने उसे पहचाना...?

मीला : क्या उसी के बारे में बोल रहे थे?

भिक्षु : अरे हाँ... हाँ.. हाँ... वहीं.. वह मुझे दिख पड़े थे... पर मैंने तो उसे पहचाना ही नहीं... कितनी बड़ी गलती हो गई।

शीतल : स्वामी जी! क्या आप उसे हमारे सामने नहीं बुला सकते...? क्या उसके दर्शन नहीं कर सकते...?

स्वामी : मैं उस प्रभु के दर्शन कैसे करा सकता। यह तो हर भक्त की अपनी आस्था है, प्यार, अपनापन और भक्ति है। सच्चे मन से पुकारो तो अवश्य आएँगे।

मीला : अभी.. कितने समय से मंदिर में उन्हीं का गुणगान करते थे। कई नामों से पुकारते थे, पर वे तो आए ही नहीं।

स्वामी : क्या जाने कितने लोग किस ढंग से पुकारते थे या किस कारण से बुला रहे थे। कितनों के भीतर कितना लालच–लोभ–अभिमान और भी न जाने कितने दुर्गुण भरे रहते हैं...। वे कैसे आएँगे...।

भिक्षु : मैंने तो नहीं बुलाया, पर वे कैसे आ गए..?

स्वामी : क्या जाने वे आए हैं या कुछ और कारण है। चलो सभी लोग उन्हें पुकारने के लिए तैयार हो जाओ।

(सभी लोग एक चक्कर में बैठ जाते हैं। आँखें बन्द करके गोहार लगाते हैं)

सभी : प्रभु जी हम तेरे दर्शन के अभिलाषी
तुम हो प्रभु जी बड़े समदर्शी
प्रभु....
पुकार रहे हम दिल से तुम को
पाने की बड़ी इच्छा तुम को
बैठे हैं हम इतने प्यार से
प्रभुजी हम तेरे दर्शन के अभिलाषी
तुम हो प्रभुजी बड़े समदर्शी....

(मधुर राग में गाते–गाते एकदम लीन हो जाते हैं, तभी एक वृद्ध सज्जन उनके बीच में बैठ जाते हैं। आँखें खोलने पर सबको आश्चर्य होता है।)

मीला : *(आश्चर्य व्यक्त करती हुई)* अरे ये वृद्ध सज्जन कौन हैं?

शीतल : स्वामी जी! आपने तो कहा था प्रभु मिलेंगे, पर ये क्या..?

भिक्षु : ये तो मुझसे भी देखी लगते हैं बाबा..।

स्वामी : लेकिन मुझे तो ये सब दिखाई नहीं देता, जो आप सभी लोगों को दिखता है। मुझे तो मेरा प्रभु दिखता है।

मीला : प्रभु..! आपको कैसे दिखाई दे रहे हैं। आपकी

भी हमारे समान दो आँखें हैं..।

शीतल : आपके समान ही हमने भी प्रार्थना–आराधना की, पर हमें तो और कुछ दिखाई नहीं देता...।

भिक्षु : स्वामी जी कहीं आप हमें ठग तो नहीं रहे हैं?

स्वामी : ठगने से मुझे क्या मिलेगा। न मुझे और न तुझे भगवान मिल सकता है। जिसका ध्येय साफ़ है उसी को भगवान मिलेगा..।

सभी : हमें दर्शन कराइए न... *(कई बार उनसे आग्रह करते हैं। स्वामी जी तरस खाते हुए उनसे प्रार्थना करते हैं।)*

स्वामी : ओम् कृपाए नमः, दुर्गाए नमः *(सभी देवी देवता के नाम लेकर अंत में ध्यान मग्न हो जाते हैं।)* ओम्...ओम्..।

वृद्ध : *(खड़े होकर मंत्र उच्चारित करने लगते हैं... ।)* आशीर्वाद के शब्द देने लगते हैं। घंट–घड़ियालों की आवाज़ सुनाई पड़ती है। सभी लोग उनके पैरों पर आ गिरते हैं.. प्रसन्नता से सभी की आँखें भीग जाती हैं, तभी मीला पूछ बैठती है।

मीला : प्रभु जी आपका स्थान तो मंदिर में है, आप इधर जंगल में घूमने के लिए क्यों आ गए। क्या कारण है प्रभुजी..?

ईश्वर : कारण है मेरे बच्चे... कई कारण हैं। आज मानव ने मेरी सृष्टि बिगाड़ दी है। मैंने साफ़–सुथरी स्वच्छ प्रकृति दी थी, ताकि सभी प्राणी आराम और शांति से रह सकें। मैंने साफ़ पानी दिया था, शुद्ध हवा दी थी, पवित्र पृथ्वी दी थी, नीला आसमान दिया था, हर रूप में सुरक्षा प्रदान की थी।

भिक्षु : प्रभु जी वह तो आज भी है। आज मनुष्य ने बहुत प्रगति की है। सारी मशीनें बिजली, गैस यहाँ तक कि सूरज की किरणों से चलने लगी है। रिमोट कन्ट्रोल से स्वचालित रूप में चलने लगी है। तरह–तरह के पदार्थों का आविष्कार किया है। सुखी जीवन बना चुका है।

शीतल : हाँ प्रभु जी! बड़ा आराम है यहाँ। हर चीज़ उँगली से बटन दबाने पर प्राप्त हो जाती है। कहीं भी जाना हो यातायात का साधन उपलब्ध है।

स्वामी : ये सब आप लोगों की नज़र से दिखती है। मुझे तो इतनी प्रगति दिखाई नहीं दे रही है। आदमी काफ़ी पिछड़ा हुआ है।

भिक्षु : आप क्या कह रहे हैं। आजकल तो संचार के हर माध्यम में प्रगति बताई जाती है। हम तो अपनी छाती पीट–पीटकर कहते हैं कि हम गुफ़ा–जंगल से निकलकर बड़े बंगले–महल पाँच–छ–सात सितारा होटल में रहने लगे हैं।

मीला : यही तो प्रगति है प्रभु जी! तरक्की है, ऐसा न करें तो हम भी उन्हीं लोगों में गिने जाएँगे जो शुरू से अब तक उसी भेस, उसी रूप, उसी जगह पर स्थित हैं। मानव प्रगति कर रहा है और प्रगति करना ही जीवन माना जाता है। बहता पानी स्वास्थ्य के लिए अच्छा है, रुका हुआ कीचड़ बनकर सूख जाता है।

ईश्वर : जानते हैं, आज जिसे प्रगति कह रहे हैं वह बीमारियों का घर बन गया है। संत्रास, अभाव, क्रोध, चिंता हर किसी में समाए हुए हैं। वे न जी रहे हैं और न मर रहे हैं। मैं मंदिर में था वहाँ आचार्य जी के संदेश, असत्य का प्रयोग, भक्ति के अभाव में भक्तों की चिल्लाहट, बनावटीपन से मैं तंग आ गया। मैं वहाँ से निकल आया अपनी प्रकृति की छाँव में, प्रकृति की गोद में, प्रकृति के आगोश में ताकि आराम मिल सके।

शीतल : प्रभु जी आप तो सब सहन करने वाले हैं.... फिर आप ही क्यों भाग रहे हैं। यदि आप सहन न कर सकें तो फिर हम मामूली इंसान क्या करेंगे...?

ईश्वर : मैं भाग नहीं रहा हूँ.... मैं लोगों को अहसास

दिलाना चाहता हूँ कि अति करना ठीक नहीं, अति खान–पान, अति धन कमाना, अति क्रोध करना, अति अभिमान करना, हर वस्तु में ज़रूरत से ज़्यादा का प्रयोग अच्छा नहीं। मैं शिक्षा देना चाहता हूँ, इनसान को कि आप आराम से जीएँ और औरों को भी जीने दें। स्वस्थ और साधारण जीवन ले चलिए। हर कार्य, हर चीज़ में संतुलन रखें, जीवन को समझें... परखें और जीवन का आनन्द लें।

सभी : आप ठीक कहते हैं प्रभुजी !

शीतल : हम इनसान तो आप से भी आगे बढ़ना चाहते थे।

मीला : इनसान जो ठहरे.... अपनी हैसियत, अपनी औकात भूल जाते हैं।

भिक्षु : यही तो सबको समझना है इस दुनिया में।

स्वामी : आप लोग समझकर औरों को भी समझाएँ।

सभी : *(प्रसन्न होकर भजन गाते हैं।)*

लाज बचाएँ प्रभुजी, शरण आपकी आए हैं
बुरे काम से हमें बचाएँ, शरण आपकी आए हैं
सदबुद्धि देकर हमें बचाएँ सदा नेक काम कराएँ
लाज बचाएँ प्रभुजी, शरण आपकी आए हैं....

(गाते–गाते जय जयकार कर हाथ ऊपर करते हैं, फ़्रीज़ हो जाते हैं, पर्दा गिरता है)

dhunrazsembhoo@gmail.com

सखि, वसंत आया!

– श्री सर्वज्ञ शेखर
आगरा, भारत

वसंत भारत की छह ऋतुओं में से एक ऋतु है, जो फ़रवरी, मार्च और अप्रैल के मध्य अपना सौंदर्य बिखेरता है। माघ महीने के शुक्लपक्ष की पंचमी से वसंत ऋतु का आरंभ होता है। फाल्गुन और चैत्र मास वसंत ऋतु के माने गए हैं। फाल्गुन हिंदू वर्ष का अंतिम मास है और चैत्र पहला। इस प्रकार हिंदू पंचांग के वर्ष का अंत और प्रारंभ वसंत में ही होता है। इस ऋतु के आने पर सर्दी कम हो जाती है। मौसम सुहावना हो जाता है।

पतझड़ के बाद वसंत ऋतु का आगमन होता है। हर तरफ़ रंग–बिरंगे फूल खिले दिखाई देते हैं। खेतों में पीली सरसों लहलहाती बहुत ही मदमस्त लगती है। इस समय गेहूं की बालियाँ भी पककर लहराने लगती हैं, जिन्हें देखकर किसान बहुत हर्षित होते हैं। चारों ओर सुहाना मौसम मन को प्रसन्नता से भर देता है। इसीलिए वसंत ऋतु को सभी ऋतुओं का राजा अर्थात् ऋतुराज कहा गया है। इस दिन भगवान विष्णु, कामदेव तथा रति की पूजा की जाती है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन ब्रह्माण्ड के रचयिता ब्रह्मा जी ने सरस्वती जी की रचना की थी। इसलिए इस दिन देवी सरस्वती की पूजा भी की जाती है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार वसंत को कामदेव का पुत्र कहा गया है। कवि देव ने वसंत ऋतु का वर्णन करते हुए कहा है कि रूप व सौंदर्य के देवता कामदेव के घर पुत्रोत्पत्ति का समाचार पाते ही प्रकृति झूम उठती है, पेड़ उसके लिए नव पल्लव का पालना डालते हैं, फूल वस्त्र पहनाते हैं, पवन झुलाता है और कोयल उसे गीत सुनाकर बहलाती है।

कालिका पुराण में वसंत का व्यक्तिकरण करते हुए इसे सुदर्शन, अति आकर्षक, संतुलित शरीर वाला, आकर्षक नैन–नक्श वाला, अनेक फूलों से सजा, आम मंजरियों को हाथ में पकड़े रहने वाला, मतवाले हाथी जैसी चाल वाला आदि सारे गुणों से भरपूर बताया है।

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है ऋतुओं में मैं वसंत हूँ।

"मैं सामवेद के गीतों में बृहत्साम हूँ और छंदों में गायत्री हूँ, समस्त महीनों में मैं मार्गशीष (अगहन) तथा समस्त ऋतुओं में फूल खिलाने वाली वसंत ऋतु हूँ।"

रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में विभिन्न चौपाइयों के माध्यम से वसंत ऋतु का अति उत्तम वर्णन किया गया है।

"देखहु तात वसंत सुहावा।
प्रिया हीन मोहि भय उपजावा।"

सीता जी की खोज में जब प्रभु श्रीराम वन–वन भटक रहे थे, उस समय वसंत ऋतु अपनी मनोहारी छटा बिखेर रही थी। परंतु पत्नी वियोग के कारण मन को प्रसन्न करनेवाला वसंत राम जी के मन में भय उत्पन्न कर रहा था।

प्राचीन काल में किसी के प्रति अपने प्यार और आकर्षण का इज़हार करने के लिए यह ऋतु अनुकूल मानी जाती थी। राजमहलों में और राजकीय देखरेख में नगरों में मस्ती और प्यार का इज़हार करने के लिए बाकायदा 'मदन महोत्सव' मनाया जाता था। इस बात का विवरण संस्कृत साहित्य में बखूबी किया गया है। आमों की मोहनी खुशबू, कोयल की कूक, शीतल–मंद सुरभित हवा, खिलते फूल, लहलहाते खेत और फागुन के मदमस्त करने वाले गीत सब मिलकर अनुकूल समाँ बाँधते हैं।

वसंत ऋतु ही एक ऋतु है, जिसमें वातावरण का तापमान प्रायः सुखद रहता है। वसंत ऋतु के प्रमुख पर्व वसंत पंचमी का दिन भारतीय मौसम विज्ञान के

अनुसार शीतोष्ण वातावरण के प्रारंभ होने का संकेत है। मकर संक्रांति पर सूर्य नारायण के उत्तरायण प्रस्थान के बाद शरद ऋतु की समाप्ति होती है। हालांकि ग्लोबल वार्मिंग के कारण बदले हुए मौसम ने अनेक प्रकार के गणित बिगाड़ दिये हैं, पर सूर्य के अनुसार होने वाले परिवर्तनों का उस पर कोई प्रभाव नहीं है। हमारी संस्कृति के अनुसार पर्वों का विभाजन मौसम के अनुसार ही होता है। इन पर्वों पर मन में उत्पन्न होने वाला उत्साह स्वप्रेरित होता है। सर्दी के बाद गर्मी और उसके बाद बरसात फिर सर्दी का बदलता क्रम देह में बदलाव के साथ ही प्रसन्नता प्रदान करता है। इस ऋतु की विशेषता है मौसम का गरम होना, फूलों का खिलना, पौधों का हरा भरा होना और बर्फ़ का पिघलना। वसंत पंचमी के अतिरिक्त होली व महाशिवरात्रि पर्व भी वसंत ऋतु में मनाए जाते हैं। यह एक संतुलित मौसम है। इस मौसम में चारों ओर हरियाली होती है।

वसंत को संगीत साहित्य और कला में भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संगीत में एक विशेष राग वसंत के नाम पर बनाया गया है, जिसे राग वसंत कहते हैं। वसंत राग पर चित्र भी बनाए गए हैं।

राग वसंत शास्त्रीय संगीत की हिंदुस्तानी पद्धति का राग है। वसंत का अर्थ वसंत ऋतु से है, अतः इसे विशेष रूप से वसंत ऋतु में गाया–बजाया जाता है। इसके आरोह में पाँच तथा अवरोह में सात स्वर होते हैं। अतः यह औडव–संपूर्ण जाति का राग है। वसंत ऋतु में गाए जाने के कारण इस राग में होलियाँ बहुत मिलती हैं। यह प्रसन्नता तथा उत्फुल्लता का राग है। ऐसा माना जाता है कि इसे गाने व सुनने से मन प्रसन्न हो जाता है।

gupta.ss05@gmail.com

सिंहली संस्कृति

– शामिला कौमुदी
श्रीलंका

ऐसा विश्वास किया जाता है कि राजकुमार विजय और उसके 700 अनुयायी ई. पू. 543 में श्रीलंका में जहाज़ से उतरे थे। ये लोग "सिंहल" कहलाते थे। क्योंकि पहले पहल "सिंहल" की उपाधि धारण करने वाले राजा सिंहबाहु से इनका निकट संबंध था। *(सिंह को मारने के कारण यह राजा "सिंहल" कहलाया)*। विजय ही श्रीलंका का पहला राजा था और उसने जिस राज्य की स्थापना की, वह करीब 2358 वर्ष तक कायम रहा। बीच में एकाध बार चोल या पांड्य के राजा ने इसपर अधिकार कर लिया। किंतु देर–सबेर सिंहलियों ने उन्हें देश से निकाल बाहर किया।

सिंहलियों को धान की खेती और सिंचाई, दोनों का ज्ञान था। उनका मुख्य भोजन चावल था, जिसका उत्पादन ही वहाँ के आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचे का निश्चयकारी सिद्धान्त था। इसके सिवा कुछ अन्य अनाज तथा दालों की भी खेती की जाती थी। इन अनाजों से बना भोजन उनका मुख्य आहार था। राजाओं तथा रईसों का भोजन, उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार, अधिक मूल्य का और उत्तम किस्म का होता था। समय बीतने पर, विशेषकर यूरोपीयों के आने के बाद, भोजन के संबंध में भारी परिवर्तन हो गया। अलसी, सरसों तथा गरी इत्यादि से तेल निकाला जाने लगा तथा ईख, रुई, हल्दी, अदरक, काली मिर्च, मसाले तथा फलों के वृक्ष भी बड़ी संख्या में उगाए जाने लगे। खेती के साथ–साथ पशुपालन भी किया जाने लगा और पाँच दुग्ध पदार्थों का नियमित प्रयोग किया जाने लगा। तालाब बनाने में सिंहली दक्ष थे और उनके बनाए कितने ही तालाब आज भी विद्यमान हैं। वे नहरें भी बनाते थे। उन्होंने एक बड़े भूभाग पर सिंचाई की व्यवस्था कर रखी थी।

अपने पूर्वजों के दाय के रूप में सिंहली लोग

अनेक भारतीय रीति–रिवाज़ों और संस्थाओं की स्मृति अपने साथ लेते आए होंगे। उनके सिवा समाज संबंधी भारतीय विचारधारा तथा वर्गों की ऊँच–नीच भावना भी उनके साथ चली आई होगी। कलिंग, मगध, बंगाल आदि के आर्यों से संपर्क रहने के कारण उन्हीं के समानांतर सिंहली संस्कृति के भी विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया। इस संस्कृति का मूलाधार जातिभेद था। जो समय बीतने पर अत्यंत जटिल हो गया था। बौद्ध भिक्षुओं में जाति संबंधी नियमों तथा बंधनों का प्रचलन नहीं रह गया था। जातिभेद के आधार पर बौद्ध संघ का विभाजन अपेक्षाकृत हाल की घटना है। पिता ही परिवार का अधिपति और स्वामी होता था और माता के प्रति सर्वाधिकार सम्मान प्रदर्शित किया जाता था। महावंश में राजा अग्गबोधि अष्टम (801–812 ई.) की अनन्य मातृभक्ति का उल्लेख है। प्राचीन सिंहलियों में आज की ही तरह एक स्त्री–पुरुष–विवाह की प्रथा थी। हाँ, राजाओं की अवश्य अनेक रानियाँ तथा रखैलें होती थीं। किंतु उनमें से केवल दो को ही राजमहिषी का पद प्राप्त होता था। नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध आदि संस्कार उस समय भी प्रचलित थे, जैसे आज हैं। सिंहलियों में प्रायः बौद्ध भिक्षुओं तथा ऊँचे वर्ग के लोगों के मृत शरीरों को जलाने की प्रथा थी। किंतु अन्य मृतकों के शव ज़मीन में गाड़ दिए जाते थे।

विशिष्ट समारोहों के समय कुछ नरेश कीमती पोशाक के अतिरिक्त 64 अलंकार धारण करते थे। रानियाँ तथा राजा की अन्य पत्नियाँ सोने के कीमती आभूषण पहनती थीं, जिनमें हीरा, मोती आदि जड़े होते थे। गरीब स्त्रियाँ काँच की चूड़ियाँ तथा अँगूठियाँ पहनती थीं। आधुनिक समय में बहुत से सिंहलियों ने यूरोपीय वेशभूषा ग्रहण कर ली है। वहाँ के राजाओं तथा प्रजा वर्गों को जलक्रीड़ा, नृत्य, गायन, शिकार आदि विविध खेलों तथा कलाओं में आनंद आता था। युद्ध में संगीत का महत्त्व बना रहता था। पाँच तरह के वाद्य यंत्रों, ढोलों, भेरियों, शंखों, बीनों, बाँसुरियों आदि का उनमें प्राचीन काल से प्रचलन था। स्त्रियाँ एक तरह की ढोलक बजाती थीं, जिसे "रबान" कहते थे। सिंहलियों में कठपुतलियों का नाच और नाट्यों का अभिनय होता था, जिनके लिए मंच बनाए जाते थे। इनमें से कुछ आज भी विद्यमान हैं। "असाढ़ी" पर्व के समय बहुत लंबा जुलूस निकलता था, जिसमें बड़ी संख्या में हाथी भी सजाए जाते थे। आज भी ऐसा होता है। ग्रहों तथा भूत–प्रेतों की बाधा दूर करने के लिए "बलि पूजा" तथा अन्य कृत्य किए जाते थे, जैसा इस समय भी होता है।

सिंहली कला भारतीय कला से विशेष रूप से प्रभावित थी। वहाँ चित्रकार, मिस्त्री, राज, बढ़ई, लोहार, कुंभकार, दरज़ी, जुलाहे, हाथीदाँत का काम करने वाले तथा अन्य कलाविद् होते थे। अभ्रक आदि की परतदार चट्टानों से लंबे, सुडौल टुकड़े तराश लेने की कला में प्राचीन सिंहली बड़े दक्ष होते थे। लोह प्रासाद के अवशेष जो 1600 प्रस्तर स्तंभों पर बना था, इस तथ्य का उज्ज्वल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। विजय और उसके अनुयायियों को पढ़ने और लिखने की कला का ज्ञान न था। महावंश में उस पत्र की चर्चा है, जो विजय ने पांडु नरेश को भेजा था और उसकी भी, जो उसने अपने भाई मुमित्त को प्रेषित किया था। ब्राह्मी लिपि में लिखे गए बहुत से शिलालेख सिंहल द्वीप में प्राप्त हुए थे, जिनमें सबसे प्राचीन ई. पू. तीसरी शती के थे। इससे स्पष्ट है कि जनता की एक बड़ी संख्या उन्हें पढ़ और समझ सकती थी। शिष्य को गुरु के पास ले जाने की (उपनयन की) प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। बारहवीं शती ई. पू. में देहातों में भ्रमणशील अध्यापक रहते थे, जो बालकों को लिखना–पढ़ना सिखलाते थे। लड़कियों को शिक्षा वृद्ध जनों द्वारा दी जाती थी। राजकुमारों की शिक्षा में विशेष सावधानी बरती जाती थी। इस शिक्षा में खेलकूद की तथा शस्त्रास्त्रों की भी शिक्षा शामिल थी। आम तौर पर ये विषय पढ़ाए जाते थे – सिंहली, पालि, संस्कृत, तमिल तथा अन्य भाषाएँ, चिकित्सा विज्ञान, ज्योतिष, पशु–चिकित्सा इत्यादि। लिखने–पढ़ने की क्रिया का आरंभ "त्रिपिटक" की और सिंहली में प्राप्त उसकी टीकाओं की प्रतिलिपि करने से होता था। सिंहल के दो ऐतिहासिक ग्रंथों – 'दीपवंश' तथा 'महावंश' का निर्माण चौथी तथा पाँचवीं शती ईस्वीं में हुआ था। बाद में त्रिपिटक

की पालि टीकाओं तथा विविध विषयों की अन्य पुस्तकों को लिपिबद्ध किया गया। कुछ बहुमूल्य ग्रंथ अनधिकारिक शासक माघ द्वारा 13वीं शताब्दी में, कुछ नरेश राजसिंघे प्रथम द्वारा 16वीं शती में तथा अन्य कई डचों द्वारा 18वीं शती में नष्ट कर दिए गए।

महावंश के बहुसंख्यक चिकित्सालयों का उल्लेख होने से साबित होता है कि प्राचीन काल में सिंहल में उच्च संस्कृति विद्यमान थी। ईसा के पूर्व की चौथी शताब्दी में भी गर्भिणी स्त्रियों के लिए प्रसवशालाएँ तथा रोगियों की चिकित्सा के लिए अस्पताल मौजूद थे। राजा बुद्ध दास ने (4थी शती ई.) सिंहलवासियों के लिए प्रत्येक गाँव में चिकित्सा भवन स्थापित किए थे और उनमें चिकित्सकों की नियुक्ति की थी। वह स्वयं कुशल चिकित्सक था और उसने चिकित्सा–संबंधी एक पुस्तक भी लिखी थी। अपंगों तथा नेत्रहीनों के लिए उसने आश्रय स्थान बनवाए थे। पुरातन काल में तथा उसके बाद भी सिंहली चिकित्सा विज्ञान का भारतीय चिकित्सा विज्ञान से निकट संबंध रहा है।

सिंहली राजाओं के समय भारत की तरह वहाँ भी अनियंत्रित राजतंत्र प्रचलित था। राजा ही राज्य का सर्वोच्च सत्ताधिकारी था। आध्यात्मिक विषयों में वह बौद्ध भिक्षुओं से सलाह लिया करता था। राज परिवार से संबंधित मामलों पर विचार होते समय ब्राह्मणों को भी मत प्रकट करने का अवसर दिया जाता था। युद्ध के समय चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़े, रथ तथा पदाति) का प्रयोग किया जाता था। लड़ाई में धनुष, बाण, तलवार, भाला, गदा, त्रिशूल, बरछी, तोमर, गुलेल आदि अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। कभी–कभी जासूसों से भी काम लिया जाता था। कराधान द्वारा जो आमदनी होती थी, उसी से राजा का निजी खर्च, दरबार का खर्च और शासन का खर्च चलता था। अपराधियों को अपराध की गुरुता के अनुसार दंड दिया जाता था।

जो सिंहलवासी पहले–पहल श्रीलंका में आकर बसे थे, वे अपने पूर्व निवास उत्तर–पश्चिम भारत से हिंदू धर्म का लोकप्रिय प्रकार लेते आए थे। बाद में कलिंग तथा बंगाल से आने वाले ब्राह्मणों ने वहाँ वैष्णव तथा शैव धर्मों का प्रचार किया। बौद्ध धर्म का प्रचार तीसरी सदी में थेरी महेंद्र ने किया। राजा द्वारा राजधर्म के रूप में स्वीकृत हो जाने पर वह वहाँ का मुख्य धर्म बन गया। बुद्ध का भिक्षा पात्र तथा कुछ अन्य अवशेष उसी शताब्दी में भारत से लाए गए और कुछ स्तूपों का निर्माण किया गया। बुद्ध गया में स्थित महान बोधिवृक्ष की एक शाखा भी उसी वर्ष थेरी संघमित्त द्वारा लाई गई जो आज भी अच्छी दशा में है। कहते हैं, यह संसार का सबसे पुराना ऐतिहासिक वृक्ष है। बुद्ध के दाँत तथा बाल का अवशेष क्रमशः चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी में सिंहल लाए गए। सिंहलियों में इनका बड़ा आदर और सम्मान है। बौद्ध धर्म ने, जो समूचे राष्ट्र में व्याप्त है, वहाँ वालों पर अथाह मानवतापूर्ण प्रभाव डाला है। पुर्तगालियों, डचों तथा अंग्रेज़ों के आगमन ने सिंहली रीति–रिवाज़ों, धर्म, शिक्षा तथा पोशाक में बहुत परिवर्तन कर दिया है।

सिंहली भाषा श्रीलंका में बोली जाने वाली सबसे बड़ी भाषा है। सिंहली के बाद श्रीलंका में सबसे ज़्यादा बोली जानेवाली भाषा तमिल है। प्रायः ऐसा नहीं होता कि किसी देश का जो नाम हो, वही उस देश में बसने वाली जाति का भी हो और वही नाम उस जाति द्वारा व्यवहृत होने वाली भाषा का भी हो। सिंहल द्वीप की यह विशेषता है कि उसमें बसने वाली जाति भी "सिंहल" कहलाती चली आई है और उस जाति द्वारा व्यवहृत होने वाली भाषा भी "सिंहल"।

अनेक भारतीय भाषाओं की लिपियों की तरह सिंहल भाषा की लिपि भी ब्राह्मी लिपि का ही परिवर्तित विकसित रूप है। जिस प्रकार उर्दू की वर्णमाला के अतिरिक्त देवनागरी सभी भारतीय भाषाओं की वर्णमाला है, उसी प्रकार देवनागरी ही सिंहल भाषा की भी वर्णमाला है।

सिंहल भाषा के दो रूप मान्य हैं – (1) शुद्ध सिंहल तथा (2) मिश्रित सिंहल

शुद्ध सिंहल के केवल बत्तीस अक्षर मान्य रहे हैं–

अ, आ, ऍ, ऐ, इ, ई, उ, ऊ, ऑ, ओ, ऍ, ए, क, ग, ज, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व, स, ह, क्ष, अं

सिंहल के प्राचीनतम व्याकरण ग्रन्थ सिदत्संगरा (Sidatsaňgarā) का मत है कि 'ऍ' तथा 'ऐ' – 'अ' तथा 'आ' की ही मात्र वृद्धि वाली मात्राएँ हैं।

वर्तमान मिश्रित सिंहल ने अपनी वर्णमाला को न केवल पालि वर्णमाला के अक्षरों से समृद्ध कर लिया है, बल्कि संस्कृत वर्णमाला में भी जो और जितने अक्षर अधिक थे, उन सब को भी अपना लिया है। इस प्रकार वर्तमान मिश्रित सिंहल में अक्षरों की संख्या चौवन (54) है। अट्ठारह अक्षर 'स्वर' तथा शेष छत्तीस अक्षर 'व्यंजन' माने जाते हैं।

बौद्ध धर्म भारत की श्रमण परम्परा से निकला धर्म और महान दर्शन है। ईसा पूर्व 6ठी शताब्दी में गौतम बुद्ध द्वारा बौद्ध धर्म की स्थापना हुई है। बुद्ध का जन्म 563 ईसा पूर्व में लुंबिनी, नेपाल और महापरिनिर्वाण 483 ईसा पूर्व कुशीनगर, भारत में हुआ था। उनके महापरिनिर्वाण की अगली पाँच शताब्दियों में, बौद्ध धर्म पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैला और अगले दो हज़ार वर्षों में मध्य, पूर्वी और दक्षिण–पूर्वी जम्बू महाद्वीप में भी फैल गया।

बौद्ध धर्म में प्रमुख सम्प्रदाय हैं : हीनयान, थेरवाद, महायान, वज्रयान और नवयान, परंतु बौद्ध धर्म एक ही है एवं सभी बौद्ध सम्प्रदाय बुद्ध के सिद्धान्त ही मानते हैं। ईसाई धर्म के बाद बौद्ध धर्म दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा धर्म है, दुनिया के करीब 2 अरब (29%) लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। किंतु, अमेरिका के प्यु रिसर्च के अनुसार, विश्व में लगभग 54 करोड़ लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। जो दुनिया की आबादी का 7% हिस्सा है। प्यु रिसर्च ने चीन, जापान व वियतनाम देशों के बौद्धों की संख्या बहुत ही कम बताई है। हालांकि यह देश सर्वाधिक बौद्ध आबादी वाले शीर्ष के तीन देश हैं। दुनिया के 200 से अधिक देशों में बौद्ध अनुयायी हैं। किंतु चीन, जापान, वियतनाम, थाईलैण्ड, म्यान्मार, भूटान, श्रीलंका, कम्बोडिया, मंगोलिया, लाओस, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया एवं उत्तर कोरिया समेत कुल 13 देशों में बौद्ध धर्म 'प्रमुख' धर्म है। भारत, नेपाल, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया, रूस, ब्रुनेई, मलेशिया आदि देशों में भी लाखों और करोड़ों बौद्ध अनुयायी हैं।

श्रीलंका के व्यंजनों को कई ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और अन्य कारकों द्वारा आकार दिया गया है। विदेशी व्यापारियों के साथ संपर्क ने नए खाद्य पदार्थों को श्री लंकन भोजन में शामिल किया। पड़ोसी देशों के सांस्कृतिक प्रभावों के साथ–साथ अन्य चीज़ों के बीच देश के जातीय समूहों की स्थानीय परंपराओं ने सभी श्रीलंकाई व्यंजनों को आकार देने में मदद की। भारतीय (विशेष रूप से दक्षिण भारतीय), इंडोनेशियाई और डच व्यंजनों के प्रभाव श्रीलंकाई व्यंजनों के साथ घुल–मिल गए। जो अन्य पड़ोसी दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशियाई व्यंजनों के साथ घनिष्ठ संबंध रखते हैं, आज श्रीलंकाई व्यंजनों के कुछ चावल, नारियल और मसाले हैं।

परंपरागत रूप से मनोरंजन के दौरान सिंहली एक सरोंग (सिंहल में सरमा) पहनते हैं। पुरुष सरोंग के साथ एक लंबी आस्तीन वाली शर्ट पहन सकते हैं। जबकि महिलाएँ टाइट–फ़िटिंग के साथ शॉर्ट–आस्तीन वाली जैकेट पहनती हैं, जिसे ''चित्ताया'' कहा जाता है। अधिक आबादी वाले क्षेत्रों में सिंहली पुरुष भी पश्चिमी शैली के कपड़े पहनते हैं। जबकि महिलाएँ स्कर्ट और ब्लाउज़ पहनती हैं। औपचारिक और अनौपचारिक अवसरों के लिए महिलाएँ पारंपरिक कंडियन (ओसारिया) शैली पहनती हैं। कंडियन शैली को सिंहली महिलाओं का राष्ट्रीय पोशाक माना जाता है। कई अवसरों और कार्यों में, यहाँ तक कि साड़ी महिलाओं के कपड़ों में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके उपयोग का एक उदाहरण श्रीलंकाई एयरलाइंस की एयर होस्टेस की वर्दी है।

महावंश के अनुसार सिंहली निर्वासित राजकुमार विजय और उनके दल के 700 अनुयायी हैं, जो 543 ईसा पूर्व में द्वीप पर पहुँचे थे। कहा जाता है कि विजय और उनके अनुयायी बंगाल के सिंहपुरा शहर से निर्वासित होने के बाद श्रीलंका पहुँचे थे। महावंश में कहा गया कि आधुनिक सिंहली लोगों को उत्तर–पूर्व (बंगाल) के लोगों से सबसे अधिक निकटता में पाया गया। 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व में सिंहली की स्थापना के बाद से

श्रीलंका के इतिहास में यह सोचा जाता है कि उत्तर भारत से भारतीयों का एक प्रवाह द्वीप पर आया था। इसे सिंहली से इंडो–आर्यन भाषा समूह का हिस्सा होने का समर्थन है।

ज़्यादातर उदाहरणों में, श्रीलंकाई कला धार्मिक विश्वासों से उत्पन्न होती है। चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला जैसे कई रूपों में इसका प्रतिनिधित्व किया जाता है। श्रीलंकाई कला के सबसे उल्लेखनीय पहलुओं में से एक गुफ़ाओं और मंदिर के चित्र हैं। जैसे कि सिगिरिया में पाए जाने वाले भित्तिचित्र और दम्बुल्ला में मंदिरों और कैंडी में दाँत अवशेष के मंदिर में पाए जाने वाले धार्मिक चित्र। कला के अन्य लोकप्रिय रूपों को दोनों मूल निवासियों के साथ–साथ बाहरी निवासियों से प्रभावित किया गया है। उदाहरण के लिए, पारंपरिक लकड़ी के हस्तशिल्प और मिट्टी के बर्तन पहाड़ी देश के आसपास पाए जाते हैं। जबकि पुर्तगाली–प्रेरित लेसवर्क और इंडोनेशियन–प्रेरित बाटिक उपयोग करने योग्य हो गए हैं। इसमें कई अलग और सुंदर चित्र हैं।

ड्रामाटिस्ट एदीरिवीरा सरचंद्र ने 1956 में ''मानमे'' के साथ नाटक के रूप को फिर से जीवंत किया। उसी वर्ष फ़िल्म निर्देशक लेस्टर जेम्स पीरिस ने कलात्मक मास्टरवर्क ''रेकावा'' बनाया, जिसने कलात्मक अखंडता के लिए एक विशिष्ट सिंहली सिनेमा बनाने की माँग की। तब से, पीरिस और अन्य निर्देशक जैसे कि वसंत ओबेसेकेरा, धर्मसेना पथिराजा, महागामा सेकेरा, डब्ल्यू.ए.बी.डी. सिल्वा, धर्मसिरी बंदरानायके, सुनील अरियारत्ने, सिरी गुनासिंघे, जी.डी.एल. परेरा, पियासिरी गुनारत्ने, टाइटस तोटावत्ता, अशोक हंदागमा और प्रसन्ना विथानगे ने एक कलात्मक सिंहली सिनेमा विकसित किया है।

सिंहली लोगों की कलाओं को कुछ समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- कांडियन नृत्य में 18 वाननाम (नृत्य दिनचर्या) शामिल हैं। जिसमें हाथी, चील, साँप, बंदर, मोर और खरगोश जैसे विभिन्न जानवरों के व्यवहार शामिल हैं। जो मुख्य रूप से श्री दलादा मालीगंडी कैंडी में वार्षिक जुलूस सहकर्मियों में प्रदर्शन करते हैं।
- पाहताराटा नृत्य में महत्त्वपूर्ण नृत्य शैली है, जो बीमारियों और आध्यात्मिक स्पष्टीकरण के लिए उपयोग कर रही है। इस नृत्य में मुख्य विशेषता विभिन्न देवताओं और दानवों का प्रतिनिधित्व करने वाले मास्क पर नर्तकी है। लोगों को आशीर्वाद देने के लिए आग और पानी जैसे तत्त्वों का उपयोग करती है।
- सबरगमुवा नृत्य में मुख्य रूप से लोगों के मनोरंजन के लिए एक महत्त्वपूर्ण नृत्य शैली है।
- लोक संगीत और नृत्य सिंहली लोगों की जातियों के अनुसार भिन्न होते हैं और क्षेत्रीय बुद्धिमानों में भी कुछ समय – मुख्य रूप से छोटे बच्चों, विशेष रूप से लड़कियों के बीच लोकप्रिय होते हैं। इन कलाओं का व्यापक रूप से सिंहली नव वर्ष की अवधि के दौरान प्रदर्शन किया जाता है।

''अंगमपोरा'' सिंहली लोगों का पारंपरिक मार्शल आर्ट है। यह मुकाबला तकनीकों, आत्म–रक्षा, खेल, व्यायाम और ध्यान को जोड़ता है। अंगमपोरा में देखी जाने वाली प्रमुख तकनीकें हैं : अंगम, जिसमें हाथ से हाथ लड़ना शामिल है। इलंगम, जिसमें स्वदेशी हथियारों जैसे चाकू और तलवार का उपयोग किया जाता है। 1815 में ब्रिटिश शासन के अधीन आने के बाद अंगमपोरा लगभग विलुप्त हो गया।

पारंपरिक सिंहली गाँवों में कम–से–कम एक मुख्य चिकित्सा कर्मी होता था, जिसे ''वेदा महत्ताया'' (डॉक्टर) कहा जाता था। ये लोग विरासत द्वारा अपनी नैदानिक गतिविधियों का अभ्यास करते हैं। सिंहली चिकित्सा कुछ उपचारों के विपरीत आयुर्वेदिक पद्धतियों से मिलती–जुलती है, जिसके प्रभाव को मज़बूत करने के लिए बौद्ध मंत्र (पिरित) का उपयोग किया जाता है।

महावंश के अनुसार प्राचीन काल श्रीलंका के पांडुकभैया (437 ईसा पूर्व – 367 ईसा पूर्व) के पास देश के विभिन्न हिस्सों में बने हुए घर और आयुर्वेदिक अस्पताल थे। मिहिंटेल अस्पताल दुनिया में सबसे पुराना है।

बापू सौ से डेढ़ सौ तक

— चेतना भाटी
इन्दौर, भारत

राष्ट्रीय पर्व मनाने का अति उत्साह रहता था मुझे। बल्कि एक ज़िम्मेदारी महसूस होती थी उनके प्रति, जब से होश संभाला तब से ही।

तो स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस वगैरह पर सुबह जल्दी उठना (हमारे स्कूल उस समय 11 बजे के बाद हुआ करते थे। यानी रोज़–रोज़ जल्दी नहीं उठना पड़ता था, तो यह एक परिवर्तन होता था दिनचर्या में) नहा–धोकर तैयार होना गणवेश पहनकर। यह सब कार्य बड़ी उत्तेजना–उत्साह–उत्सुकता जगाता था और देश के प्रति एक ज़िम्मेदारी भी। स्कूली गणवेश पहनना तो ऐसा लगता था जैसे सेना की वर्दी ही पहनी हो। वैसे भी हमें प्रतिदिन स्कूल यूनिफ़ॉर्म पहनकर आना अनिवार्य नहीं था।

फिर वो तैयार होकर घर से निकलना, गर्व से लबालब भरे हुए, आत्मविश्वासपूर्वक। स्कूल में सब पंक्तिबद्ध खड़े होते और फिर होता झंडा वंदन, प्रधानाध्यापिका का छोटा–सा संबोधन, राष्ट्रगीत और राष्ट्रगान। उस समय पूरा वातावरण किसी तीर्थ–स्थल के वातावरण की तरह पवित्र लगता और हमारा स्कूल तो हो ही जाता तीर्थ–स्थान।

इसके बाद निकलती प्रभात फेरी। तीन–तीन की लाइन में। अपनी सखियों का हाथ पकड़े देशभक्ति के नारे – 'भारत माता की जय, जय हिंद' लगाते कस्बे की गलियों से घूमते हुए नगरपालिका प्रांगण जाते। जो हरी–लाल–पीली तिकोनी पन्नियों को सुतली पर चिपकाकर, उस सुतली को झालर की तरह बांस या बिजली–टेलीफ़ोन के खंभों से बाँधकर सजाया गया होता था और रास्ते के दोनों ओर चूने की सफ़ेद लाइनें बनी होती थीं। बड़े संयम–अनुशासन से चलते उस लाइन के बीच हम वहाँ पहुँचते और मोतीचूर के दो लड्डू लेकर खुशी–खुशी लौटते। एक बड़े ही महत्त्वपूर्ण कार्य को अंजाम देने की खुशी और अपने आप भी कुछ होने के एहसास के आत्मविश्वास के साथ। इस समय हमें अपना कद कुछ बढ़ा हुआ महसूस होता, चौड़े कंधों पर तनी गर्दन और सिर। मन में लड्डू फूटकर बिखर जाते मोतियों की तरह। अब वो स्वाद कहाँ?

ऐसे ही मुझे याद है जब मैं छः वर्ष की थी, अपनी दादी के पास रहती थी उत्तर प्रदेश के एक गाँव में। तो वहीं स्कूल चली जाया करती थी। स्कूल भी क्या था मिट्टी की दीवारों का फूस के छप्पर वाला एक कमरा, जिसमें कुछ लड़के–लड़कियाँ टाट पट्टी पर बैठ जाते थे, दीवारों के किनारे–किनारे बीच में एक अध्यापक महोदय पढ़ाते थे, बिना किसी ब्लैक बोर्ड के। कक्षा एक से पाँच तक के सभी विद्यार्थियों को। काले रंग में रंगी लकड़ी की पट्टी जो कांच के कड़े से घिसकर चिकनी की गई होती थी, परिश्रम पूर्वक और प्रतिस्पर्धा पूर्वक भी। फिर उस पर बड़े जतन से छीलकर बनाई गई सरकंडे की कलम से लिखते खड़िया (जो किसी दवाई आदि की खाली शीशी को साफ़ करके भरी होती थी और ''बुद्धका'' कहलाती थी।) में डुबो–डुबो कर।

वहाँ भी स्वतंत्रता दिवस की प्रभात फेरी में जाना याद है। बरसात के दिन और गाँव की धूल भरी गलियाँ अब कीचड़ भरी दलदल हो जाया करती थी और हम गाते चलते उन्हीं पर ... ''झंडा ऊँचा रहे हमारा...।'' इस समय हमें अपने झंडे को ऊँचा रखने में सचमुच जी–जान लगा देनी पड़ती थी, उस कीचड़ में बचते–संभलते चलते बड़ी मशक्कत से।

बारह वर्ष की थी जब गांधी जी की सौंवीं जयंती मनाई जा रही थी। पिताजी के स्थानान्तरण के कारण नया स्कूल था, शहर भी नया ही था, देवास। ज़्यादा कुछ जाना–पहचाना नहीं था। सहेलियाँ भी कुछ कम थीं, ज़्यादा जान–पहचान नहीं थी। जो सहेलियाँ थीं भी

वे इन अवसरों पर घर में रहकर छुट्टी मनाना चाहती थीं। लेकिन मुझे तो जाना ही था प्रभात फेरी में और मैं चली उसी उत्साह–स्फूर्ति–ज़िम्मेदारी से लबरेज़।

स्कूल गए वहाँ झंडा वंदन वगैरह करके तीन–तीन की अनुशासित पंक्तियों में प्रभात फेरी चली। शहर के इस छोर से उस छोर तक चलते हुए हम एक विशाल मैदान में पहुँचे। बारीक चूरी (पत्थर की) से ढंका मैदान चारों ओर चूने–गेरू की लाइन। यह मेरे लिए आश्चर्यजनक था, इतना बड़ा मैदान और इतने सारे लोग! कई स्कूलों के बच्चे थे, तो पुलिस का बैंड भी और अधिकारी भी कई, आखिर यह ज़िला स्थल जो था। माइक–मंच वगैरह भी था, कुछ कुर्सियाँ भी और मैं विस्मित इन सब में जैसे खो गई। खैर! और जब होश आया तो...

सब कार्यक्रम संपन्न हुआ और भीड़ तितर–बितर हो गई। सब अपने–अपने घर चले गए। अब मैंने उस विशाल मैदान में अपने आप को अकेला खड़ा पाया। अब समझ में न आया कि क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? घर कैसे पहुँचूँ? शहर में कहाँ पर हूँ मैं? कुछ समझ में ही न आया। असमंजस में इधर–उधर देखा तो सामने माता की टेकरी नज़र आई। यह छोटी–सी पहाड़ी थी, जिस पर माता का मंदिर था, जहाँ मैं कई बार आ चुकी थी। तो सोचा कि अरे यह तो मैं माता की टेकरी के पिछवाड़े हूँ और उस ओर से सीढ़ियाँ उतरकर घर जा सकती हूँ, जहाँ से मुझे रास्ता मालूम था।

तो सोचा चलो यहीं से चलते हैं और मैं चढ़ने लगी टेकरी पर। इतने पत्थरों–झाड़–झंखाड़ से बचते–बचाते जमा–जमाकर अपने छोटे–छोटे पैर रखते। सर झुकाए चारों हाथ–पैरों से चढ़ते अचानक पाया कि – ''अरे सामने तो दीवार है!'' और मानो होश उड़ गए। दोपहर चढ़ चुकी थी। सुबह से चल ही रहे थे। चलकर यहाँ आए और ग्राउंड पर भी खड़े ही रहे थे। सुबह से कुछ खाया–पीया भी नहीं था (यहाँ लड्डू भी नहीं मिले थे। वो कहते हैं न ऊँची दुकान, फीके पकवान। यानी बाकी सारी टीम–टाम तो थी ज़िला स्थल में बस...) मैं थक रही थी, पसीने से तरबतर और सामने यह ईंटों की दीवार!!! अब आगे कैसे बढ़ूँ? रोना ही आने लगा पहले तो। फिर सोचा नहीं, रोने से कुछ नहीं होगा। कुछ करना होगा? क्या? क्या पीछे वापस लौट जाऊँ? नहीं लौटने से भी कुछ नहीं होगा, बल्कि इतने किए कराए पर पानी ही फिर जाएगा? तो फिर? फिर क्या सिवाय आगे बढ़ने के कोई चारा नहीं।

और मैंने उस दीवार पर नज़र डाली और उसके आसपास भी नज़र घुमाई। वहाँ एक नाली या नाला था, एक बड़ा–सा पाइप डला था और आसपास दीवार चिन दी गई थी। यह मंदिर से पानी का निकास था।

और मैंने निश्चय किया कि थोड़ा घूमकर आगे बढ़ूँ। वही किया। लेकिन जैसे–जैसे ऊपर बढ़ती जा रही थी चढ़ाई उतनी ही मुश्किल होती जा रही थी और पीछे देखकर तो डर ही लगता था। वैसे डर तो आगे देखने में भी लग रहा था। क्योंकि अब चढ़ाई कुछ खड़ी–खड़ी–सी थी। मैं तो बस सिर झुकाए एक–एक हाथ पैर जमाए हुए धीरे–धीरे बढ़ रही थी आगे। सिर्फ़ ज़मीन पर, अपने रास्ते पर नज़र रखे हुए, जमाए हुए। बिना इधर–उधर देखे।

आखिर ऊपर पहुँच ही गई। सामने माताजी का मंदिर था। बेंच पर बैठ गई थकी हारी। और सोचा कि अरे! अभी तो इतना ही नीचे भी उतरना है, भले ही सीढ़ियों से ही सही! अभी और चलना है? आखिर मैं यहाँ आई ही क्यों? फिर वही कि आ तो गई ही थी। अब क्या हो सकता था सिवाय आगे बढ़ने के?

कुछ देर वहाँ बैठी फिर सीढ़ियाँ उतरने लगी। अंतिम सीढ़ी पर भी कुछ देर बैठी रही। क्योंकि अब यहाँ से घर जाना था, जो कि शहर के उस छोर पर था और मैं इस छोर पर। यानी अभी भी काफ़ी चलना था। पहले नगरों की बसाहट ऐसी ही होती थी आमतौर पर, बस लंबाई में ही। कोई एक सड़क जो शहर से निकलती बस उसी के दोनों ओर बसाहट होती जाती कई–कई किलोमीटर तक। सड़क से दूर यानी कई सुविधाओं से वंचित। विशेषकर नगरीय यातायात।

खैर! फिर चली और घर आ गई। जैसे कुछ हुआ ही नहीं सामान्य बात ही तो थी। प्रभात फेरी में गई थी

और वापस आ गई। बस और क्या? वेरी सिंपल! न किसी को बताया कुछ, न किसी ने पूछा कुछ! (कैसे खुशनुमा–बेफ़िक्री के दिन थे सुहावने!!! अब कोई सोच भी सकता है) क्या स्वाद था ज़िंदगी में!!!

आज जब बापू की डेढ़ सौंवीं जयंती मनाई जा रही है वर्ष भर, तब यह प्रसंग याद आना लाज़मी है। अब तो सोशल मीडिया पर मना लेते हैं सब जयंतियाँ वगैरह, अब काहे का चलना–चलाना!!!

chetanabhati11@gmail.com

स्मृतियों में विजय धनपत

– डॉ. सोमदत्त काशीनाथ
मॉरीशस

हिंदी भाषा की सेवा–यात्रा में मुझे अनेक सहयात्री मिले, जिन्होंने जीवन में आगे बढ़ने के लिए मुझे प्रेरणा दी और जिन्होंने उन कठिन पलों में मेरा समर्थन किया, जहाँ मुझे जीवन के प्रकोष्ठ में फैला हुआ अंधकार दिखा। वास्तव में हमारे देश में शिक्षण एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ शिक्षक को अधिक तनावों से गुज़रना पड़ता है। कभी–कभी ये तनाव परिस्थिति–जन्य होते हैं, तो कभी मानव जन्य। हताशा और निराशा की अवस्था में शिक्षक ही एक–दूसरे का समर्थन करते हैं। प्राथमिक हिंदी शिक्षक के पद पर अपने कार्यकाल में, मेरे जैसे अन्य शिक्षकों ने इसका अनुभव किया होगा। ऐसे में, यदि अनुभवी एवं दूरद्रष्टा मित्र मिल जाए, तो तनावपूर्ण घड़ियाँ केवल जीवन के संघर्षों का चुनौतीपूर्ण पड़ाव बन जाती हैं। शिक्षण की यात्रा के आरम्भ में ही सौभाग्यवश मुझे एक ऐसे मित्र मिले। आयु में वे मुझसे बहुत बड़े थे। उनके अनुभव और प्रौढ़ता से उनमें एक विशेष शालीनता का उद्‌भव हुआ था। मेरे इस शान्त स्वभाव तथा आत्म–संयमी मित्र का नाम विजय धनपत था। विजय धनपत जी मेरे लिए केवल एक मित्र ही नहीं रहे, उन्होंने कठिन परिस्थितियों में मेरा मार्गदर्शन भी किया।

वास्तव में, विजय धनपत वह नाम है, जिन्हें अब तक बहुत से लोग या तो विस्मृत कर चुके होंगे या फिर नई पीढ़ी के लोग नितांत अपरिचित ही होंगे। वे समाज के उस तबके से निकलकर आए, जहाँ कम उम्र की अवस्था से ही व्यक्ति का कठोर परिश्रम से नाता जुड़ जाता है। फिर भी, इस तबके के लोगों को प्रायः जीवन में प्रगति करके निम्न वर्ग से निकलकर मध्य वर्ग की ओर अग्रसर होना एक असाध्य लक्ष्य ही दिखता है। कुछ समय तक किसानी और मज़दूरी करने वाले एक निम्न वर्गीय परिवार के पुत्र के लिए पढ़ाई करना और अध्यापक बनना काफ़ी दुष्कर सफ़र रहा होगा। फिर भी उन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी। कुछ सालों तक उनके सम्पर्क में रहने से उनके जीवन के कई पन्ने मेरे सामने स्वतः खुलते रहे। जब वे मुझे अपने जीवन की घटनाएँ सुनाते थे, तब मेरे लिए वे किसी कहानी के मात्र एक पात्र ही नहीं, बल्कि कुछ हद तक उनकी कहानियों में मैं अपनी छवि भी देखता था। कहानी के सहयोगी पात्र अलग थे, देशकाल–वातावरण पृथक, फिर भी घटनाओं में कुछ समानताएँ थीं और संवेदनाएँ एक जैसी थीं। हम दोनों की कहानियों के मूल में गरीबी थी और उससे अनुप्राणित आजीवन संघर्ष था। किन्तु जीवन के कठिन पलों में भी जिजीविषा अपनी पराकाष्ठा पर रही। आगे बढ़ने की लालसा तो हर व्यक्ति में होती है, किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों को चुनौती मानकर आगे बढ़ते रहना, सबके बस में नहीं होता है। इस बात का एक दूसरा पक्ष यह भी है कि समाज में मेहनत करके आगे बढ़ने की कोशिश करनेवालों को अक्सर निराशा का

ही सामना करना पड़ता है। निश्चित लक्ष्य को केंद्र में रखकर, अनुकूल परिणाम न मिलने पर भी, यत्न करते रहना और व्यर्थ की बातों से अपने–आपको पृथक रखने की वृत्ति के कारण उन्हें कम पसन्द किया जाता है। संसार का यह नियम बना हुआ है कि यदि किसी के समान न बन सको, तो उसे बदनाम करने की या फिर उसे नीचा दिखाने की कोशिश करते रहो! यह समाज की विडम्बना है, किन्तु यही कड़वा सत्य भी है। अक्सर हम बैठकर जीवन के इन गम्भीर पहलुओं पर विचार करते और अपने अनुभव साझा करते।

मॉरीशस के वाक्वा शहर से, बस या गाड़ी की यात्रा करते हुए, तीन–चार किलोमीटर की दूरी पर ही 'आँरियेता' गाँव है। इसी गाँव में विजय जी का घर है। उनका नाम स्थानीय प्रौढ़ हिंदी प्रेमियों के लिए किसी प्रकार के परिचय का मोहताज नहीं! जैसे ही कोई विजय धनपत जी के परिचित के सामने उनका नाम लेता है, तो तुरन्त उस व्यक्ति के मस्तिष्क में एक सुरम्य चित्र बन जाता है – हँसमुख चेहरा, कद से नाटे थे फिर भी गठा बदन, व्यवहार में शालीनता तथा संवेदनशीलता। हमेशा व्यस्त रहने वाले व्यक्ति और जब खाली होते थे, तब वे अपनी पुस्तकों में व्यस्त हो जाते थे। हमेशा शान्त स्वभाव और धीमी आवाज़ में बात करने का उनका अन्दाज़! इतना ही नहीं वे तुरन्त ही दूसरों की मदद के लिए तैयार हो जाते थे। सम्भवतः उनके साधारण चरित्र एवं मर्मज्ञ स्वभाव ने ही उन्हें गाँव में 'भाई विजय' बना दिया था। मैं कुछ अन्य हिंदी अध्यापकों की तरह उन्हें 'गुरुजी धनपत' बुलाता था। उनसे मेरा परिचय वाक्वा के पास स्थित एक दूसरे गाँव 'होलीरुड' की प्राथमिक पाठशाला 'पंडित सहदेव सरकारी पाठशाला' में हुआ था। उन दिनों प्राथमिक हिंदी अध्यापक के रूप में प्रशिक्षित होने के उपरान्त उस पाठशाला में मेरी पहली नियुक्ति हुई थी। वहाँ हम तीन हिंदी अध्यापक थे। किन्तु गुरुजी धनपत से मेरी मित्रता अधिक घनिष्ठ थी, क्योंकि उनमें अपने वरिष्ठ होने का अभिमान कतिपय न था। इतना ही नहीं वे बड़ी सुगमता से बच्चों में भी घुल–मिल जाते थे। वे एक अत्यन्त सुलझे हुए व्यक्तित्व के धनी थे।

विजय धनपत जी के जीवन का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू था – स्थानीय हिंदी नाटक में योगदान। वर्षों तक स्थानीय हिंदी नाट्य–कला, नाटक मंचन, दिग्दर्शन तथा अभिनय से जुड़े रहने के कारण और मॉरीशस के हिंदी साहित्य को अंतरराष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित करनेवाले साहित्यकार अभिमन्यु अनत की कहानियों पर आधारित लघु पटकथा या धारावाहिकों के निर्माण में मुख्य भूमिका निभाने के कारण हिंदी अध्यापकों के साथ–साथ उनकी स्थानीय फ़िल्म–निर्माण की दिशा में भी काफ़ी अच्छी पहचान बनी। अभिमन्यु अनत जी से उनका बहुत अच्छा संबंध था। वे अनत जी को 'पिताजी' कहकर बुलाते थे। अनत जी भी भाई विजय पर पूर्ण विश्वास रखते थे, इसीलिए उन्होंने स्थानीय प्रसारण केंद्र 'एम.बी.सी.' की योजनाओं–परियोजनाओं को लेकर सम्पर्क तथा समय–सारिणी का दायित्व विजय जी को संभालने के लिए दे रखा था। उन्होंने कई बार मुझे भी अनत जी के अभिनेताओं की टोली में शामिल होने के लिए कहा, किन्तु न तो एक्टिंग में मेरी रुचि थी और न ही अनुभव था। इसीलिए मैंने मना कर दिया। फिर भी, अभिमन्यु अनत जी से मिलने की इच्छा तो थी। मैं हिंदी साहित्य का अध्ययन करने वाला और वे इतने बड़े साहित्यकार!

हाँ, एक बार मैं इन्हीं के घर पर बैठा था। साल था 2013। नवम्बर का महीना था। मैं 'केंज़ काँतों सरकारी पाठशाला' में नियुक्त था और वे शायद 'रेन्यों रोड सरकारी स्कूल' में काम कर रहे थे। स्कूल की परीक्षाओं के बाद की छुट्टियाँ चल रही थीं। गरमी की छुट्टियाँ! विजय जी ने एक मित्र से संदेश भिजवाया था कि उनके कम्प्यूटर में हिंदी का टंकण नहीं हो पा रहा है, मैं आकर उनका कम्प्यूटर देख लूँ। कोई गम्भीर समस्या नहीं थी। मैंने हिंदी का फ़ॉन्ट 'डाउनलोड' किया और 'इन्सटॉल' कर दिया। दस–पंद्रह मिनट का काम था। फिर हम प्राथमिक स्तर पर हिंदी–शिक्षण की चुनौतियों को लेकर कुछ विचारों का आदान–प्रदान करने लगे। अनुभवी होने के साथ–साथ अपने अनुभवों को बाँटने के लिए तत्पर रहना, कम लोगों में यह विशेषता होती है। वे तर्क–सम्मत बातें करते थे, मुझे भाई विजय का

यह गुण बहुत पसन्द था। हम अपनी चर्चा–परिचर्चा में व्यस्त थे कि अचानक उनका फ़ोन बजा। फ़ोन पर बातें करने के बाद उन्होंने कहा – ''क्या तुम अभी खाली हो? अभिमन्यु अनत जी 'बोन–तेर' आ रहे हैं। उनकी एक मुँह–बोली बेटी वहाँ रहती है, पद्मिनी! मुझे मिलने के लिए बुलाया है। क्या तुम चलोगे?'' सच में मैं उस समय खाली तो नहीं था, क्योंकि शाम को खेत में सिंचाई जो करनी थी, फिर भी अभिमन्यु अनत जी से मिलने की इच्छा ने मुझे 'फ़्री' कर ही दिया। इससे पहले मैंने केवल अभिमन्यु अनत जी को टी.वी. पर देखा था और उनकी कुछ कहानियाँ पढ़ी थीं, किन्तु मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। दुर्भाग्यवश उनसे अधिक बातें करने का अवसर नहीं मिला। मैं था एक साधारण हिंदी अध्यापक और वे एक वरिष्ठ उपन्यासकार! दूसरी बात यह थी कि वे व्यस्त भी थे और बीमार भी थे। इन बातों के अतिरिक्त वे जिस सिलसिले से यहाँ आए थे वह उनके लिए काफ़ी अहम् मुद्दा था। वास्तव में, उन दिनों अनत जी की जिन कहानियों पर लघु फ़िल्में बन रही थीं, उनके 'कास्टींग' को लेकर वे कुछ स्पष्टीकरण देने आए थे। लगभग आधे घंटे तक धनपत जी और अनत जी की बातें चलती रहीं और फिर हम घर लौट आए।

वास्तव में, विजय जी और मेरे विचारों और हिंदी भाषा के प्रचार संबंधित गतिविधियों में काफ़ी समानताएँ थीं। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन हिंदी की सेवा को समर्पित किया था। सृजनात्मक लेखन के प्रति भी उनका काफ़ी झुकाव था। और सबसे बड़ी समानता यह थी कि वे भी जीवन की उन जटिलताओं से गुज़रे थे, जिनसे मैं गुज़र रहा था। सन्त कबीरदास कहते हैं कि दुख व्यक्ति को सालता है, परिष्कृत–परिमार्जित करता है और अरस्तू भी मानते हैं कि त्रासदी व्यक्ति के नकारात्मक विचारों को नष्ट करके उसमें अच्छे गुणों का विकास करती हैं। किन्तु आज के जीवन में केवल दुख ही नहीं गरीबी भी व्यक्ति में उस आत्मीयता को प्रशस्त करने में समर्थ होती है, जो अपने कृपा–पात्र में शालीनता, शान्ति एवं परदुखकातरता का विकास करता है। और इसी गरीबी से निःस्वार्थ मैत्री भावना का जन्म भी होता है। भाई विजय के सान्निध्य में रहकर मुझे इस बात का भली–भाँति अनुभव हुआ।

2018 के मई महीने में वाक्वा के 'आर्यन वैदिक हिंदू एड्ड पाठशाला' में मैं उनसे मिलने गया। उनका स्वास्थ्य उतना ठीक नहीं था। फिर भी, बच्चों के प्रति उनका अनुराग और वात्सल्य भाव तथा हिंदी प्रेम उन्हें हर रविवार को हिंदी पाठशाला में खींच लाता था। कुछ हद तक उन्हें इस बात से आनंद की अनुभूति होती थी और आश्वासन भी था कि अध्यापक के रूप में वे अभी तक प्रासंगिक हैं, अन्यथा संसार अपने लिए अप्रासंगिक लोगों को भुलाने में अधिक समय नहीं लगाता है। कुछ साल पहले वे सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त हुए, किन्तु सप्ताहान्त हिंदी पाठशाला से उन्होंने अपना संबंध–विच्छेद नहीं किया। वे लगभग 35 सालों से हिंदी के स्वयं–सेवी अध्यापक बनकर बैठकाओं में पढ़ाते रहे। इस सफ़र का एक लम्बा भाग उन्होंने अपने मित्र रामजी के साथ मिलकर तय किया। छह–सात साल पहले जब उनके उस घनिष्ठ मित्र का देहान्त बहुत ही दुखद परिस्थितियों में हुआ, तब विजय जी काफ़ी हद तक टूट गए थे। धीरे–धीरे उन्होंने अपने–आपको सम्भाला और अपनी हल्की–सी मुस्कान के पीछे अपने क्षोभ को छिपा लिया। किसी व्यक्तिगत अपेक्षा के बिना उन्होंने कई संस्थाओं की गतिविधियों में अपना योगदान दिया।

लगभग पाँच–छह महीने तक व्यस्त रहने के कारण मैं विजय जी से नहीं मिल पाया था। एक–दो बार मैं उनसे मिलने के उद्देश्य से उनके घर भी गया, किन्तु घर पर न तो वे मिले न ही भाभी जी। वे मिलते भी कैसे, अब जो वे इस दुनिया में ही नहीं थे! यह बात मुझे बिल्कुल संज्ञात न थी। इस अंतराल में, एक बार उनके अनुज एक दुकान में खरीदारी करते हुए मिले थे, उन्होंने बताया कि घर पर सब ठीक है। उस समय न तो उन्हें जीवन की आपाधापी से फुरसत थी और न ही मुझे। इसीलिए अधिक बातें न हो पाई। दरअसल, उन्हें अपनी दुकान में बैठने जाना था और मुझे अपने बच्चों को स्कूल से लेने

जाना था। इसीलिए मेरे मुँह से निकल गया, ''अच्छा भाई, नमस्ते! फिर किसी रोज़ मिलने आऊँगा! घर पर सभी को मेरा नमस्कार कह देना।''

व्यस्तता के कारण दो–तीन महीने ऐसे ही बीत गए। शनिवार का दिन था। मैंने सोचा कि आज खाली हूँ और कई दिनों से विजय जी से मिलना नहीं हुआ है और वे कई महीनों से फ़ोन भी नहीं उठा रहे हैं, इसीलिए उनसे मिल आता हूँ। लगभग दस बजे मैं उनके घर पर पहुँचा। उनके अनुज से भेंट हुई। वे दुकान खोल रहे थे और कुछ सामान ठीक से सजा रहे थे। मुझे अचानक देखकर उन्हें जैसे आश्चर्य हुआ। जब मैंने पूछा ''गुरुजी धनपत घर पर हैं?'', उनके चेहरे का भाव बिल्कुल बदल गया। मेरे इस साधारण से प्रश्न का वे उत्तर नहीं दे पा रहे थे। उन्होंने मेरी अपेक्षा के विपरीत उत्तर दिया ''भाभी जी घर पर हैं। जाइए मिल लीजिए।''

इस पर मेरे मुँह से स्वतः निकल गया ''कोई बात नहीं! यदि गुरुजी घर पर नहीं तो किसी और दिन आ जाऊँगा।'' किन्तु उनके अनुज निःशब्द और निश्चेष्ट खड़े रहे। मैं वहाँ से चलने के लिए उद्यत हुआ। पास में उनकी पत्नी खड़ी थी। वे थोड़े पास आकर बोलीं ''क्या आपको पता नहीं है?''

''नहीं, मुझे पता नहीं। क्या हुआ? गुरुजी धनपत यहाँ नहीं रहते हैं क्या? पिछले दिनों एक–दो बार मैं उनसे मिलने आया था, किन्तु घर पर कोई नहीं मिला। अगर वे यहाँ नहीं रहते हैं, तो बता दीजिए अब वे कहाँ रहते हैं।'' ये शब्द मेरे लिए जितने स्वाभाविक लग रहे थे, बाद में उन पर विचार करने पर मुझे अत्यंत कर्कश लगे। उस समय मुझे कदापि ऐसा आभास नहीं हो रहा था कि मेरे शब्द विजय जी के अनुज के ऊपर कुठाराघात कर रहे होंगे। वे उदास खड़े थे। कुछ देर तक वे सोचते रहे, फिर बोले ''भैया अब इस दुनिया में नहीं रहे...''। उनके रुद्ध कंठ से आवाज़ ही नहीं निकल पा रही थी। एक लम्बे निःश्वास के बाद उन्होंने कहा ''भाभी घर पर हैं, ऊपर जाकर मिल लीजिए!''

इस बार मैं कुछ नहीं कह पाया और यंत्रवत मेरे कदम सीढ़ियों की ओर बढ़े। उनका घर प्रथम मंज़िले पर था। विजय जी की पत्नी ने बताया कि उनके पति का देहांत 10 जुलाई 2018 को हुआ था। इससे पूर्व वे लगभग बीस दिनों तक अस्पताल के आई.सी.यू. वार्ड में रहे। जून महीने में, एक बार वे मधुमेह के चेक–अप के लिए अस्पताल गए थे। वहाँ उनकी तबीयत अचानक बिगड़ गई। उन्हें एक अस्पताल से दूसरे अस्पताल में ले जाया गया। फिर वहीं आई.सी.यू. वार्ड में उनकी भरती कर दी गई। परिजनों को अस्पताल के अधिकारियों ने फ़ोन द्वारा सूचना दी। जब वे अस्पताल में पहुँचे तब उन्हें विजय जी आई.सी.यू. वार्ड में लेटे हुए मिले। उन्हें मधुमेह की बीमारी थी और वे उच्च–रक्तचाप से भी ग्रस्त थे। दोनों के संतुलन बिगड़ने के कारण वे कोमा में चले गए थे। इसी कारण कई दिनों तक उन्हें होश भी नहीं था। दस दिन बाद उन्हें होश आया। उनके मुँह में ट्यूब लगा था इसीलिए कुछ बोलने की कोशिश करते हुए भी वे कुछ भी नहीं कह पा रहे थे। अचानक 10 जुलाई को अस्पताल से फ़ोन आया कि वे नहीं रहे और उनका पार्थिव शरीर लेने के लिए किसी को भिजवा दें। उनकी पत्नी की आँखें छलक आईं और मेरे गले से आवाज़ ही नहीं निकल पा रही थी। मेरी क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं को भावनाओं ने इस प्रकार जकड़ लिया था कि मैं वहीं स्तब्ध खड़ा रहा। इसे क्या कहना चाहिए जीवन की क्षणभंगुरता, अनिश्चितता या निदर्यता?

मुझे दुःख हो रहा था कि मैं विजय जी की अंतिम यात्रा में उपस्थित नहीं हो सका। वास्तव में, मैं उस समय विदेश में था और मेरे लौटने के बाद भी मुझे उनके देहांत की सूचना नहीं मिली। जब भी मैं उनके बारे में सोचता हूँ, उनकी शांत और गंभीर आकृति मेरे नेत्रों के सामने आ जाती है। मेरे मन में एक प्रश्न बार–बार उठता है ''जो जीवन भर परिस्थितियों से संघर्ष करते हैं, उन्हें अंत में जीवन से भी क्यों संघर्ष करना पड़ता है?'' दुखों के पारावार में अपनी नाव खेने की कोशिश करते–करते अंततः इस प्रकार व्यक्ति कैसे ओझल हो सकता है? विस्मय और विस्मरण एक साथ मिलकर व्यक्ति के अस्तित्व को इस प्रकार निगल लेते हैं कि बाद में उसके होने या न होने का आभास भी नहीं होता है। किसी के न

होने का खालीपन कुछ परिजनों को क्षुब्ध करता रहता है, तो कुछ लोगों के लिए उस खाली जगह पर कब्ज़ा करने का अवसर मिल जाता है। नियति इतना निष्ठुर कैसे बन जाती है कि जो भलाई के मार्ग पर चलने का संकल्प करता है, ईश्वर उसकी परीक्षा लेता रहता है। कुछ भी हो, विजय धनपत जी हिंदी भाषा के लिए संघर्ष करने वाले लाखों सिपाहियों में से एक रहे हैं। वे हमेशा हमारी स्मृतियों में बसे रहेंगे। ऐसे कर्मयोगी व्यक्तियों के लिए महादेवी वर्मा जी की कुछ पंक्तियाँ श्रद्धांजलि के रूप में सटीक दिखती हैं –

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नयनों में दीपक से जलते,
पलकों में निर्झरिणी मचली!
...
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना, इतिहास यही –
उमड़ी कल थी, मिट आ चली!
(मैं नीर भरी दुःख की बदली!)

mskashinath@gmail.com

अफ़ोनिया

– श्री बलवंतसिंह नौबतसिंह
मॉरीशस

25 अक्तूबर 2008 को मेरे दिल की शल्य क्रिया (हार्ट सर्जरी) हुई थी। उसके बाद जब होश आया, तब मैंने अपने आप को एक बड़े हॉल में पाया, जहाँ तमाम दिल के मरीज़ थे। आज मैं खुश था, पर ज़ाहिर करने की मुस्कुराहट कभी मुख पर आई नहीं। पर सारे कुटुम्ब और जान–पहचान के लोग खुश थे, क्योंकि डॉक्टर राधामोहन ईश्वरसिंह के अनुसार मेरी शल्य क्रिया सफल हुई थी। दोनों डॉक्टरों ने – डॉक्टर ए.एच. बोयरू और डॉक्टर ईश्वरसिंह भी संतुष्टि जता रहे थे। अमसा जान्नू, जो मेरे पलंग के बगल में था, उसने भी मेरी सर्जरी के कामयाब होने पर मुझको शाबाशी दी। उसकी सर्जरी उसी दिन हुई थी।

मेरी पत्नी भी राज़ी–खुशी मेरे दामाद जी के घर लौट गई। वैसे तो मैं क्यूर्पिप रहता हूँ, मेरे दामाद जी इलोट रहते हैं। इलोट और एस.एस.आर.एन. अस्पताल की दूरी कम है, इलोट और क्यूर्पिप के मुकाबले। इसीलिए हम लोग, मेरी पत्नी और मैं, इलोट रहने चले आए थे। मेरी पत्नी इस वास्ते खुश थी, क्योंकि रोज़–रोज़ के सिलसिले से छुट्टी अब नसीब हुई। रात का भोजन तैयार करके अस्पताल तक आना–जाना नहीं पड़ेगा। वह इलोट गाँव से बस के ज़रिये सर शिवसागर रामगुलाम नॉर्थ अस्पताल, पाँप्लेमुसज़ आती थी।

तीन–चार दिनों के बाद मेरा डिस्चार्ज होने वाला था। तीसरे दिन सुबह को एकाएक मेरी हालत बिगड़ गई। मेरे मुख मंडल पर लगातार झुनझुनी–सी छाई हुई थी। मुँह टेढ़ा होने लग गया। जीभ में मानो मधु भेद दिया गया था। मुश्किल से उच्चारण कर पा रहा था। हाथ–पाँव तो ठीक थे, मगर चेहरा बिगड़ रहा था। मेरे इर्द–गिर्द जो मरीज़ थे, मुझे अजीब–ओ–गरीब नज़र से देखने लगे थे। मैं समझ नहीं पा रहा था कि वे किस कारण ऐसी नज़र से देख रहे थे। दोपहर, खाने के वक्त मैं अपना मुँह खोल नहीं पा रहा था। बहुत कठिनाई से मैं आधी गेहूँ की डबल रोटी खा पाया। एक अनोखी भावना का आभास हो रहा था कि मेरा चेहरा जकड़ रहा था। शाम को जब मेरे भाई मुझसे मिलने आए, तब मैंने अपने भाइयों को आदेश दिया कि डॉक्टर ईश्वरसिंह को बुलाया जाए। डॉक्टर ईश्वरसिंह मेरा चचेरा भाई है और प्रेज़िडेंसी कॉलिज जहाँ मैं अध्यापक के रूप में काम करता था, वह मेरा शिष्य भी था।

रात को पलंग पर पड़े–पड़े दवा के असर से

मैं सो गया था। पर सुबह होते–होते मेरा मुँह एकदम जकड़ गया था।

दूसरे दिन तड़के सुबह में ड्रेसर–डॉक्टर लोग मेरे इर्द–गिर्द मँडराने लगे। डॉक्टरों के निर्देश पर फिर एक बार कई यंत्र मेरे साथ जुड़ाए गए। अब मैं एहसास कर रहा था कि मैं बोल नहीं सकता था, न मुँह खोल सकता था। बिल्कुल असमर्थ था। पूरे अस्पताल में मेरी दशा का समाचार बिजली की तरह फैल गया था। बस क्या था, तमाम अस्पताल के स्पेशलिस्ट डॉक्टर, नौसिखिये डॉक्टर, नर्सें–ड्रेसर्ज़ आदि मुझे बारी–बारी से देखने आ रहे थे, जैसे मैं एक अजूबा था। मैं उन लोगों को चुपचाप हारी–लाचार आँखों से निहारता रहा, क्योंकि मैं अपनी याद्दाश्त और वाणी से वंचित हो रहा था। मुझको बहुत असुविधा महसूस हो रही थी। मैं लाचार, बेबस था।

दोपहर बाद अपने राउन्ड पूरा करने के पश्चात् डॉक्टर ईश्वरसिंह आए। उन्होंने ही शल्य क्रिया के लिए मेरा अनेस्टेज़िया का इन्जेक्शन किया था। मेरे भाई से मिले। बातें हुईं। तब उन्होंने मेरा निरीक्षण किया। मुझे मुँह खोलने को कहा। पर मेरा मुँह खुल नहीं रहा था। तनिक बल डालने को कहा। फिर भी मेरा मुँह तनिक भी नहीं खुला। बोलने को कहा, परंतु वाणी गायब थी। अजीब–सी झुनझुनाहट ने मुझे जकड़ लिया था। दर्द बिल्कुल नहीं था, सिर्फ़ जबड़े–चेहरे पर एक झुनझुनाहट। डॉक्टर ईश्वरसिंह ने तुरंत भाँप लिया था कि माजरा क्या है, कि मुझे क्या हुआ है। सांत्वना दिया कि मैं धीरे–धीरे ठीक हो जाऊँगा और वे चले गए। कब गए, मुझे होश नहीं था।

बाद में डॉक्टर बोयरू आए। निरीक्षण किए, मेरी हालत देखकर उनके चेहरे पर तनिक–सी परेशानी की झलक आई। फिर आसपास के ड्रेसर लोगों से कुछ निर्देश दिये और चल दिए। बार–बार वे कह रहे थे कि शल्य क्रिया ठीक से पूरी हुई थी, अब क्या हो गया था। वे तनिक उलझन में पड़ गए थे। कुछ परेशान थे। निर्देश देकर वे भी चले गए।

तीसरे दिन सुबह मैं इंतज़ार करता रहा कि कोई मेरी हालत पर मुझे पूछे। कोई नहीं आया। लेकिन ढाई बजे के आसपास मुझे दो ड्रेसर स्ट्रेचर पर लेटाकर दौड़े–दौड़े एक विशेष कक्ष में ले गए। सिर्फ़ मेरे सर को आगे करके एक बहुत बड़े यंत्र–विशेष में डाल दिया। मशीन चलायी गयी। उसके बाद, फिर दो ड्रेसर मुझे स्ट्रेचर में लेकर उसी हॉल में ले गये, जहाँ मैं पहले था। डॉक्टर बोयरू के निर्देश से मुझको गहन परिचर्या (ICU) कक्ष में ले जाया गया, जहाँ हरेक मरीज़ के साथ एक नर्स या ड्रेसर नियुक्त किया हुआ था और जहाँ परिवार के सदस्य को मरीज़ को देखने की इजाज़त नहीं। सिर्फ़ मेरी पत्नी को आज्ञा थी।

फिर दो दिनों के बाद मुझे उसी हॉल में भेजा गया, जहाँ मैं पहले था।

शाम के चार बजे तमाम परिवार के लोग जुट गए थे। हरेक मरीज़ के परिवार लोग एक–एक करके अपने–अपने स्वजन–मरीज़ को देखने आने लगे। मेरा कुटुम्ब भी आया। मेरी पत्नी और पुत्री संयुक्ता भी आई। बातों बातों में मैं धीरे–धीरे अनुभव करने लगा कि मेरी याद्दाश्त खो रही थी। मुझे अपना मोबाइल नम्बर याद नहीं रहा। कौन क्या चीज़ है, होश नहीं रहा। उसका इस्तेमाल कैसे किया जाता है, मालूम नहीं। मेरा नाम कैसे लिखा जाए, उसे भी भूल गया। परिवार के कौन से लोग मुझे देखने आए, क्या बोले, क्या सुने, सब शून्य। एक जीवित लाश था।

चौथे दिन मुझको डिस्चार्ज दे दिया गया, यह कहकर कि मुझे वाणी सुधार के लिए ई.एन.टी. अस्पताल जो वाक्वा में है, वहाँ पर उपचार करना पड़ेगा। पर शल्य क्रिया के टाँके कैसे ठीक हो रहे थे, इसके लिए शल्य चिकित्सा के लिए निश्चित तारीखों के अनुसार सर शिवसागर रामगुलाम नॉर्थ अस्पताल, पाँप्लेमुसज़ को आना पड़ेगा। दवा–दारू जो दे दिया जाएगा, उसे नियमित रूप से लेना पड़ेगा। अपोंइटमेंट पर ज़रूर आना चाहिए।

इलोट वास

डिस्चार्ज होने से पहले डॉक्टर बोयरू ने स्कान किये गये सभी चित्र दिखाए। उन्होंने मुझे बताने की

कोशिश की थी, मगर मेरा दिमाग, जैसे कि एक अंधेरी कोठरी थी, जिसके फाटक बन्द थे। न मैं बोल सकता था, न स्पर्श–ज्ञान हो रहा था, न समझने की शक्ति थी। कुछ समझ नहीं पाया। हाँ, मैं सुन सकता था, खा सकता था, विचरण कर सकता था। खाने के प्लेट और कप वगैरह साफ़ धो सकता था। दवा दारू का सेवन कर सकता था। हाँ, मैं पेट पूजा कर सकता था।

पहली बार मुझे एक सप्ताह की अवधि पर अपोंइटमेंट दी गई। शल्य क्रिया की सिलवन सूख रही थी। दो या तीन बार उपस्थिति देने के बाद मुझे दो सप्ताहों की अवधि पर अपोंइटमेंट दी गयी। और जैसे–जैसे दिन बीतते गये, वैसे–वैसे मेरी अपोंइटमेंट की अवधि बढ़ती गई।

जब मैंने अपनी दिनचर्या लिखने की कोशिश की, तब एकदम से सदमा पहुँचा। मेरी लिखावट की कहीं ओर छोर नहीं थी। मुश्किल से पेन पकड़ पा रहा था। रोमन और देवनागरी अक्षर मैं लिख नहीं पा रहा था। एक–दो–तीन की गिनती मेरे दिमाग से ओझल हो गई थी। पर लिखूँ, तो क्या लिखूँ। न खुद पढ़ सकता था, न कोई और मेरी लिखावट पढ़ सकता था। कीड़े–मकोड़े–सी टेढ़ी–मेढ़ी रेखाएँ, कछुए जैसी रेंगन।

सर शिवसागर रामगुलाम नॉर्थ अस्पताल, पाँप्लेमुसज़ के दौरान मैं इलोट मेरे दामाद के पास रहा। मेरे दामाद जी और मेरी पुत्री संयुक्ता ने मेरी बोलने की शक्ति वापस लाने की बहुत कोशिश की। कई लोगों से मशविरा भी किए। आखिर में उन्होंने एक शरीर मर्दन करने वाले व्यक्ति को तय किया मेरे उपचार के लिए। नियमित रूप से वह व्यक्ति आता था।

मेरी पुत्री संयुक्ता नौकरीशुदा है। रोज़ रात्रि के समय, सप्ताहांत और छुट्टी के दिनों मुझे गिनती तथा रोमन अक्षर लिखने के अभ्यास करवाती थी। मगर दो सप्ताहों की अवधि में कुछ खास प्रगति नहीं कर पाया था।

तीसरे सप्ताह के दौरान मेरी जुबान कुछ–कुछ खुलने लगी। मैं एक शब्द का उच्चारण कर पाया। उस एक शब्द 'माँज़े' अर्थात् खाना, से मेरी पुत्री का हौसला बढ़ गया।

इधर मेरे दामाद ने इलाज के लिए अपोंइटमेंट विक्टोरिया अस्पताल के लिए स्थानान्तरित की माँग की। माँग स्वीकार कर ली गई। अब मैं अपने घर क्यूर्पिप में रहने के लिए उत्साहित हो उठा। वहाँ से वाणी उपचार के लिए ई.एन.टी. वाक्वा अस्पताल बहुत नज़दीक में था। मेरे दामाद की अर्ज़ी को स्वीकृति दी गई, ताकि मेरा इलाज और दवा दारू विक्टोरिया अस्पताल, काँदोस, कात्र बोर्न से हो।

अपने घर क्यूर्पिप में

वाणी उपचार के लिए मुझको मेरे दूसरे दामाद सचिन ले जाया करते थे। पहले मेरी वाणी उपचार के लिए एक फ़ोटो दी गई और जितने शब्द और रंग मैं पहचान सकूँ उससे बोलने का प्रयास करने के लिए कहा गया। मुँह खोलकर ध्वनि निकालना व बोलना सिखाया गया। जीभ किधर जाना–आना चाहिए। डॉक्टरनी गोपाल थी, जो बहुत स्नेह से मरीज़ों को देखती और सलाह देती थी, कैसे–कैसे ध्वनि निकालना चाहिए, ताकि अक्षरों को ठीक से बोला जाए। डेढ़–दो महीने वाणी उपचार के लिए ई.एन.टी. अस्पताल, वाक्वा गया। फिर डॉक्टरनी गोपाल ने विक्टोरिया अस्पताल को रिपोर्ट दी। हर संभव कोशिश कर ली गई है।

मगर एक सुझाव उसने दिया कि बातें करते रहो, शब्द उच्चारण अपने आप आ जाएगा। और रियाज़ करते रहो।

इसी बीच मेरी मुलाकात वरिष्ठ डॉक्टर पर्मानन जगन्नाथ उर्फ़ बोज़ से हुई, जो मेरा परिवार है। उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि बाबा साइब नाम के व्यक्ति से शरीर मर्दन करवाइए, ज़रूर लाभ होगा।

मैंने श्री बाबा साइब जी से मुलाकात की और दो महीनों तक मर्दन का लाभ उठाया। अंतिम दिनों में तीन शब्दांश (Syllables) का शब्द बोलने लगा।

अब डॉक्टरों से छुटकारा मिला।

फिर चार–पाँच महीनों के पश्चात्, क्यूर्पिप के

टाउन हॉल के फव्वारे के पास जब मैं विचरण कर रहा था, तो अकस्मात डॉक्टर ईश्वरसिंह मिले। मैंने पूछ लिया कि मुझे क्या बीमारी हुई है। उन्होंने मुझे बताया ''शल्य क्रिया करने हेतु हम डॉक्टरों को मरीज़ का पूरा रक्त निकालना पड़ता है। सर्जरी के पश्चात् सब रक्त वापस डालने पड़ते हैं। आपके मामले में ऐसा हुआ कि एक बहुत छोटा–सा थक्का (Clot) आपके मस्तिष्क के वाणी केंद्र (Vocal box) के एक अति सूक्ष्म सिरे (Capillary) में अटक गया है। वाणी के केंद्र में अटक जाने से मनुष्य की बोली थोड़े समय के लिए एकदम गुम हो जाती है, फिर बाद में जीभ के व्यायाम से थोड़ा बहुत धीरे–धीरे वापस आ जाती है। इससे भारी नुकसान भी हो सकता और नहीं भी। भारी नुकसान – जैसे लकवा मार जाना, अंधा हो जाना या कोमा में चला जाना। आप खुशनसीब हैं, भारी दुर्गति से बच गए। इसी का नाम 'आफ़ोनिया' है।

नादान पत्रकार, समझदार कैदी

– **श्रीमती सविता तिवारी**
मॉरीशस

बारह लाख की आबादी वाले मॉरीशस में सालाना करीब पचास हज़ार अपराध पुलिस थाने में दर्ज होते हैं। इनमें सड़क यातायात उल्लंघन शामिल नहीं हैं। द्वीप पर पाँच लाख रजिस्टर्ड वाहन हैं और सालाना दो लाख से अधिक यातायात कॉन्ट्रावेन्शन्स होते हैं। हर साल करीब 3000 मुजरिम जेल पहुँचते हैं, जिनपर सरकार द्वारा 775 रुपये दैनिक खर्च होते हैं।

पत्रकारों के साथ एक समस्या यह है कि उनके संस्मरण भी आंकड़ों से भरे होते हैं। बिना आंकड़ों के उन्हें न बात करना आता है, न लिखना। खैर मेरा यह संस्मरण जुर्म की दुनिया से जुड़ा है, इसलिए थोड़ी पृष्ठभूमि तैयार कर रही हूँ। यदि आप सोच रहे हैं कि यह संस्मरण क्राइम थ्रिलर है, तो आपको निराशा होगी। इसलिए आप इसे पढ़ना तुरंत बंद कर सकते हैं। यह संस्मरण एक पत्रकार और एक मुजरिम के बीच हुई बातचीत पर आधारित है। बातचीत दिलचस्प है इस बात का अलिखित आश्वासन आप मुझसे ले सकते हैं।

मैं एक कैदी का इंटरव्यू करने मॉरीशस की जेल गई थी। किसी केस में उसे लम्बी सज़ा हुई थी। तो इधर–उधर फ़ोन लगाकर इंटरव्यू का इंतज़ाम किया गया।

सप्ताह भर बाद का समय मिला, वो भी सिर्फ़ आधा घंटा। आधा घंटा तो जान–पहचान बनाने में ही निकल जाता है। इसलिए पहले ही सवाल तैयार कर लिए।

जेल जाने का यह मेरा पहला मौका था, वह भी बिना जुर्म के, इसलिए थोड़ी घबराहट जैसी कुछ हो रही थी। एक सप्ताह बाद जेल जाना है, इसी घबराहट में सप्ताह बीत गया।

मॉरीशस की जेल भारतीय जेलों जितनी डरावनी नहीं होती, फिर भी जेल तो जेल है। जेल का जितना भी ज्ञान है वह किताबों और टी.वी. के माध्यम से है। वहाँ बतौर पत्रकार जाने में भी सहजता नहीं आ सकती। खैर आज तक फ़िल्मों में जिस बड़े से दरवाज़े से कैदियों को निकलते देखा है, वास्तव में उस बड़े दरवाज़े का इस्तेमाल बाहर आने–जाने के लिए कभी नहीं होता। कहीं बगल में एक सामान्य–सा दरवाज़ा होता है, जो रोज़ के कर्मचारियों और ड्यूटी ऑफ़िसरों के आने–जाने के लिए उपयोग किया जाता है। मज़े की बात यह है कि यह दरवाज़ा सामान्यतः खुला ही रहता है, बस वहाँ एक कमज़ोर–सा गार्ड ज़रूर होता है। मैंने जिन अफ़सरों से बात की थी, वे मुझे गेट पर ही लेने आ गए। मॉरीशस में पुलिस से डरने का रिवाज़ नहीं है। आम तौर पर पुलिस वाले मुजरिमों से दूर रहना पसंद करते हैं। मुझे ऑफ़िस ले जाया गया, जहाँ सारी फ़ॉर्मेलिटी

के बाद मुझे बताया गया कि उस कैदी को मीटींग रूम में बुलाया जा रहा है, पर मैंने ज़ोर दिया कि यदि संभव हो तो मैं सैल में ही इंटरव्यू लेना चाहूँगी। कुछ इंतज़ार के बाद इजाज़त मिल गई और मैं सैल में पहुँची। पहुँचने से पहले ही लगा कि गलती कर दी। मीटिंग रूम में ही मिलना चाहिए था। कोठरी काली नहीं थी, पर जीवन की सारी कालिख लिए हुए होती है ऐसी जगहें। जुर्म, अपराध, पश्चात्ताप, सब कुछ नज़र आता है उन आँखों में जो आपको घूर–घूर कर देख रही होती हैं। शेर की गुफ़ा में बिल्ली जैसा अनुभव हो रहा था। हालांकि मैं निर्दोष और समाज की सम्मानीय पत्रकार और वे सब मुजरिम, फिर भी डर जैसे मुझे ही लग रहा था उन्हें नहीं। तथाकथित सम्मानीय लोगों ने खोने के लिए बहुत कुछ जमा कर रखा होता है, शायद इसलिए डरते हैं। खैर सैल में पहुँची तो वहाँ दो कैदी थे।

अब चूँकि पुलिस का मामला है, तो कैदियों के नाम बदल लेते हैं। मान लेते हैं एक रामप्रसाद, एक श्यामप्रसाद। रामप्रसाद वह कैदी था, जिसका मैं इंटरव्यू करने गई थी, जबकि श्यामप्रसाद अफ़्रीकी मूल का मॉरीशन बंदा था। अफ़्रीकी मूल के व्यक्ति का नाम श्यामप्रसाद कुछ अजीब लग रहा है। चलो इसका नाम बदलकर एंटोनी गोन्साल्विस रख लेते हैं।

तो रामप्रसाद से मैंने मुस्कुराकर हैलो कहा और आगे के शब्द मुँह से निकलने ही वाले थे कि "कैसे हैं आप", तभी मैंने ज़बान पर ब्रेक लगा लिए। जेल में कोई कैसा हो सकता है? ऐसा सवाल पूछकर मैं उसे नाराज़ नहीं करना चाहती थी। मुजरिम तो वो था ही, लम्बी सज़ा भी मिली थी, एक और आदमी को टपका दे तो उसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता, पर मेरा बहुत नुकसान हो जाता।

स्थान परिवर्तन होते ही सामान्य से अभिवादनों का अर्थ कितना बदल सकता है, इसका अहसास मुझे पहली बार हो रहा था।

इसलिए मैंने उसे समय देने के लिए धन्यवाद दिया और सीधे सवालों का रुख किया। हालांकि एक मुजरिम को धन्यवाद देना भी बहुत अजीब लग रहा था। जेल के अलावा मुजरिम से मिलने का भी मेरा यह पहला मौका था, इसलिए समझ नहीं आ रहा था कि कैसे व्यवहार करूँ। मैंने पहला सवाल किया।

एक साल जेल में रहने का अनुभव कैसा रहा? यह प्रश्न मैंने अपने मन में पूछा था। असल में तो मैंने पूछा –

"क्या आपको अपने किए पर अफ़सोस है?"

रामप्रसाद जवाब के लिए मुँह खोलता उससे पहले ही एंटोनी गोन्सालविस बोला। "अगर इसको जुर्म करने का अफ़सोस होता, तो यह पहली बार जेल जाने के बाद ही साधु बन जाता। जो मुजरिम तीसरी बार जेल आया है, उससे यह सवाल पूछना ही बकवास है।" मैंने अपने सवाल को बकवास बताने वाले को घूरकर देखा, हालांकि अफ़्रीकी मूल के आम आदमी से भी लोग डरे रहते हैं और यह तो मुजरिम था, इसलिए घूरते हुए मैं बिल्कुल तैयार थी कि अगर उसने मुझे गुस्से से देखा तो मैं थोड़ा मुस्कुरा दूँगी कि हाँ मेरा सवाल सच में बकवास था। पर एंटोनी खुद ही मुस्कुरा रहा था। मैंने रामप्रसाद की तरफ़ देखा, तो वह शांत था, जैसे एंटोनी की बात का मूक समर्थन कर रहा हो। मेरे आंकड़ों के अनुसार मॉरीशस में रि–ऑफेंड रेट 69 प्रतिशत है। यानी सालाना जेल जाने वाले तीन हज़ार मुजरिमों में से करीब ढाई हज़ार लोग दूसरी बार के लिए जेल यात्रा कर रहे होते हैं। इसलिए मुझे लगा वाकई मेरा सवाल ही बेकार है। सप्ताह भर तैयारी करके पहला सवाल ऐसा पूछा। सारा इम्प्रेशन खराब। जेल आकर मेरा दिमाग खराब हो रहा है, मुजरिमों पर कौन इम्प्रेशन मारने की सोचता है। खैर मैं अगले सवाल की तरफ़ बढ़ी। "आपको पता है आपके इस जुर्म से देश की छवि कितनी खराब हुई है दुनिया में।"

चूँकि यह टूरिस्ट के साथ हुआ हादसा था इसलिए विदेशी अखबारों ने इस खबर को प्रमुखता से प्रकाशित किया था। मैंने सोचा था रामप्रसाद कहेगा कि उसे इस बात का अफ़सोस है, लेकिन रामप्रसाद सवाल पर चिंतन ही कर रहा था कि एंटोनी बोला, "कैसा बकवास सवाल है। मैडम हम मुजरिम है। देश

की छवि की चिंता करने वाले लोग अलग कैटेगरी के होते हैं। हमारी परवरिश में चिंता शब्द नहीं होता। न अपनी, न अपने परिवार की, न देश की। हमें सिर्फ़ खाने और पीने की चिंता है और किसी की नहीं। हम हिंसा में ही पले–बढ़े हैं। आप जैसी ब्राऊन पत्रकार जो यह सवाल पूछ रही है वह ऐसे जीवन से बिल्कुल अंजान है, जहाँ बाप दिन भर शराब के नशे में रहता हो मार–पीट करता हो और माँ सारा दिन चिल्लाती हो। और बच्चा घर से बाहर रहना पसंद करता है। फिर चाहे वो बुरे लोगों की संगत ही क्यों न हो। ऐसे में हमारे जैसे अधिकतर ब्लैक लोगों की आम आदमी की तरह सोचने की प्रक्रिया बचपन में ही खत्म हो जाती है और ऊपर से लोग आकर हमें पढ़ाने की जगह हमें मुफ़्त का खाना, कपड़े और मुफ़्त का मकान देते हैं, तो हम भी मुफ़्त में खाने–रहने वाले बन जाते हैं। हमें दो वक्त की रोटी के आगे किसी बात की चिंता नहीं होती।"

मैंने पहली लाइन पर एंटोनी को टोकने के लिए मुँह खोला था, वो आखरी लाइन तक खुला ही रहा। मैंने जल्दी से अपना मुँह बंद किया और रामप्रसाद की तरफ़ देखा। वह पुनः एंटोनी की बात का मूक समर्थन करता दिखा।

वैसे एंटोनी की बात भी सच थी मुजरिम से देश और समाज जैसी इमोशनल बात नहीं करनी चाहिए थी। ऐसा सोचकर मैंने परिवार से जुड़े तीसरे सवाल को छोड़ चौथे सवाल पर छलांग लगाई और पूछा "मॉरीशस की जेलों के बारे में आपका क्या अनुभव है, यहाँ मुजरिमों को कैसे ट्रीट करते हैं?"

सवाल पूछकर मैं अनजाने में एंटोनी की तरफ़ देखने लगी। जैसे मैं इस सवाल का जवाब उसी से सुनना चाहती थी। और वो बोला भी –

"जो पहली बार जेल आए हैं, उन्हें यहाँ हार्ड कोर क्रिमिनल्स के साथ रख देते हैं। हम जैसे जेल के परमानेंट रेज़िडेंट उन पहली बार वालों को पक्का क्रिमिनल बनाकर बाहर भेजते हैं। पहली बार वालों को हमसे दूर रखना चाहिए।"

इस जवाब पर मैंने सोचा कि एंटोनी को अगर जेल मैनेजमेंट या प्रिज़न पॉलिसी मेकर बना दिया जाए, तो यह जेल को कितना सुधार सकता है, लेकिन इस चोर को पावर देने का विचार ही खतरनाक है। यह सोचकर मैंने उस खयाल को अपने दिमाग से तुरंत झिड़क दिया।

कभी इच्छा नहीं होती कि हमारा भी घर हो, एक इज़्ज़तदार नौकरी हो, बच्चे अच्छे स्कूलों में पढ़ने जाएँ?

बिल्कुल नहीं होती। हम अपना स्वयं का घर नहीं बनाते, क्योंकि उसमें बहुत पैसा खर्च होता है। 3–4 हज़ार महीने में ठीक–ठाक किराए का घर मिल जाता है। इस हिसाब से 30 साल में हमारा खर्च हुआ करीब 11 लाख। घर बनाने में 20–25 लाख से कम खर्चा नहीं आता। फिर आए दिन उसकी देख–रेख पर खर्च करो।

जो लोग हमारे उत्थान में लगे हैं ना, वे भी वास्तव में चाहते नहीं हैं कि हमारा उत्थान हो, क्योंकि पूरे मॉरीशस की ताकत का काम हम ही करते हैं। चाहे वो बिल्डिंग कंस्ट्रक्शन हो, चाहे वो खेतों में काम हो या कोई भी अन्य मेहनत वाला भारी काम। हम ही चला रहे हैं। इसलिए अगर हम समृद्ध हो गए, तो पेंदा बैठ जाएगा इस देश का। इसलिए आपको जो लिखना है लिखो। हमारी दशा में सुधार होने वाला नहीं है। नमस्कार।

आधे घंटे की घंटी बज गई और मैं बिना रामप्रसाद की आवाज़ सुने ही जेल के उस सैल से बुद्ध की यह पंक्तियाँ सोचते हुए बाहर आ गई कि "पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।"

हर अपराधी के मन में कुछ अच्छे विचार सुषुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं, जो अनुकूल वातावरण में विकसित हो सकते हैं। परिवर्तन केवल सामाजिक प्रयास से संभव है।

(साक्षात्कार में पात्रों के नाम बदले गए हैं। चूँकि संवाद स्थानीय भाषा में हुआ था इसलिए हिंदी शब्द चयन लेखक का है और भाषा को साहित्यिक बनाने की भी कोशिश की गई है)

savitapost@gmail.com

यादों की यवनिका

— श्रीमती शिखा वार्ष्णेय
लंदन, यू.के.

सफ़ेद रंग का लम्बा वाला लिफ़ाफ़ा था और मोती से जड़े उस पर अक्षर। देखते ही समझ गई थी कि ख़त पापा ने लिखा है। पर क्या? आमतौर पर पापा ख़त नहीं लिखा करते थे। बहनें ही लिखा करती थीं और उनके लिफ़ाफ़े गुलाबी, नीले और पीले हुआ करते थे। कोई ज़रूरी बात ही रही होगी। झट से खोला था, तो दो बड़े–बड़े पन्ने हाथ आ गए थे, धक से रह गया दिल, क्या हो गया। इतना लम्बा पत्र... बिना सांस लिए पढ़ डाला था, पर वो पत्र कहाँ, भावनाओं की नदी थी। जैसे प्रत्येक पंक्ति एक कविता, वैरी अन्यूज़ुअल टू पापा।

''छः बजने को आए हैं, बाहर चिड़िया की चहचहाहट के साथ तुम्हारी यादों की टीस भी शोर मचाने लगी है। यूँ ही तो तुम्हारी किलकारियाँ गूंजा करती थीं कभी। अब और लिखा तो ये बाकी लिखे शब्द भी धुल न जाएँ, इसलिए बंद करता हूँ... तुम्हारा पापा।''

इन आखिरी पंक्तियों के साथ ख़त मोड़ते हुए सारा दृश्य सामने चलने लगा था। ज़रूर किसी टेंशन की वजह से आधी रात नींद खुल गई होगी उनकी। कोई ऑफ़िस की परेशानी होगी। चहलकदमी करते हुए सोच रहे होंगे कि कैसे किसी दुश्मन को अपना बनाया जाए। अजीब–सा फलसफ़ा था उनका कि अगर कोई तुमसे चिढ़ता है, तो चिढ़ से उसका जवाब मत दो। दुश्मन को प्यार से वश में करो। यदि कोई तुम्हें नीचा दिखाना चाहता है, तो बदले में उसे गालियाँ ना दो, बल्कि अपना कद इतना ऊँचा कर लो कि तुम्हारी ओर नज़र उठाकर देखने में सामने वाले की गर्दन ही अकड़ जाए और बिलकुल यही किया करते थे वे। उनके मातहत उन्हें पूजा करते थे और अधिकारियों को उनकी लत–सी लग जाती। हाँ कभी–कभार कोई साथी ज़रूर जलन वश चिढ़ जाता, तो वे मौका तलाशते रहते कि कब कैसे उसकी मदद की जाए कि उसकी भावनाएँ बदल जाएँ। और उसे अपना बनाकर ही चैन लेते। यही स्वभाव था उनका।

तभी मम्मी की नींद खुल गई होगी पूछा होगा ''क्यों टहल रहे हो रात को दो बजे?'' तो झट से बोले होंगे ''आज डिनर में सब्ज़ी ठीक नहीं बनाई तुमने, गणेश (नौकर) से बनवा दी थी क्या? (जबकि वे जानते थे खाना मम्मी खुद ही बनाती थीं हमेशा), सैंडविच खाने का मन कर रहा है, खीरा टमाटर वाला''। खुनखुनाती मम्मी उठ गई होंगी और ऊनी गाउन लपेट मुस्कुराती आ गई होंगी रसोई में ''सीधे–सीधे नहीं कह सकते कि भूख लग आई है।'' और ब्रेड की साइड करीने से काटकर तरीके से सैंडविच बनाकर दिया होगा। पापा को हर काम सुव्यवस्थित ही चाहिए होता है। ज़रा भी टेढ़ा–मेढ़ा नहीं। यहाँ तक कि दरवाज़े की चिटकनी लगाकर उसे अन्दर मोड़ना ज़रूरी होता था। वरना यह पहचान थी एक लापरवाह और काम अधूरा छोड़ देने वाले व्यक्तित्व की। मम्मी तो फिर सो गई होगी आकर। सैंडविच चबाते हुए अचानक याद आ गई होगी मेरी और भावावेश में यह ख़त लिख डाला होगा, साथ ही लिफ़ाफ़ा तुरंत चिपकाकर रख लिया होगा ऑफ़िस के बैग में। पता था मुझे, घर में किसी को बताया भी नहीं होगा, ऐसे ही हैं वे। अपनी भावनाएँ दिखाना ज़रा भी पसंद नहीं उन्हें। फिर मम्मी को रात को उठाकर सैंडविच बनवाया था, इस अपराध बोध को मिटाने के लिए चाय बनाकर मम्मी को दी होगी और दोनों बहनों का टिफ़िन भी पैक कर दिया होगा...

पता नहीं किस माटी के बने हैं मेरे पापा, अचानक होंठ फैल गए मुस्कुराहट में। एक तरफ़ शौक़ीन, ज़िंदादिल, गुस्सैल और बेहद प्रेक्टिकल और दूसरी ओर गहन फ़िलॉसफ़र, बेहद संवेदनशील, कवि

हृदय। पता ही नहीं चलता था कब किस करवट बैठेंगे। जहाँ एक ओर लोगों से घिरे रहने का, अपनी तारीफ़ें सुनने का शौक था, वहीं दूसरी ओर ज़बरदस्त आलोचना सहने की शक्ति थी और अद्‌भुत क्षम्य–क्षमता... पल भर में मोम–सा दिल पिघल जाता था। मम्मी भुनभुनाती रहती थीं ''कोई एक दिन बेच खायेगा हमें तो।'' और वो हँस दिया करते ठहाके मारकर। ''अरे अब क्या बिकेंगे... मेरठ में पढ़ता था तब रेखा (फ़िल्म अभिनेत्री) का प्रोपोज़ल आया था। पर पढ़ाई की वजह से मना करना पड़ा'' वहाँ खड़े सब उनके इस अंदाज़ पर खी–खी कर हँस दिया करते और मम्मी अपना गुस्सा भूल कर गर्दन झटका दिया करतीं।

वैसे और लोग ही क्या, हम भी आँख बंद करके आश्रित रहा करते थे पापा पर, असंभव तुल्य ही काम क्यों ना हो बस कान में डाल दो पापा के और निश्चिन्त सो जाओ। हो ही जायेगा वो भी पूर्ण व्यवस्थित तरीके से।

वैष्णो देवी की यात्रा पर गए थे एक बार हम, साथ में छोटी–सी पाँच साल की बेटी, वहाँ की व्यवस्था का कोई अंदाज़ा तो था नहीं। वैसे भी अब तक सारे भारत के तीर्थ पापा के साथ किए थे, तो कुछ कभी समझने की ज़रूरत नहीं महसूस हुई थी। परन्तु ऊपर दरबार में पहुँचकर देखा, तो पाया कि वहाँ रहने के लिए इस तरह कमरे नहीं मिला करते, लाइन इतनी लम्बी है। टोकन ले लीजिये और वहीं कहीं लेट जाइये सारी रात, सुबह तक शायद नंबर आ ही जायेगा दर्शनों का। सुनकर सन्न रह गए हम। छोटी–सी बच्ची के साथ इतनी ठण्ड में ये कैसे हो सकता है और सुबह की तो वापसी की ट्रेन भी है जम्मू से। पतिदेव ने कहा तुम यहाँ बैठो मैं पता करता हूँ किसी से। वहाँ पत्थर पर बैठ जाएँ कैसे, ज़हन में आया ''काश पापा होते।'' बस एक फ़ोन करने भर की देरी थी। सब कुछ अरेंज हो जाता। ख़याल अभी गए भी नहीं थे कि जाने कहाँ से एक सज्जन प्रकट हुए, कहने लगे कहाँ से आये हैं आप लोग माँ के दर्शन के लिए? हमने जवाब दिया, तो उन्होंने एक वी.आई.पी. पास हमें पकड़ा दिया कि मैं यहाँ हर दो–तीन महीने में आता हूँ, मेरे पास आज ये एक्स्ट्रा है। आप यह ले लो और हाथ मुँह धोकर दर्शन के लिए चले जाओ। मैं फटी–फटी आँखों से देख रही थी बस। उन्हें धन्यवाद भी पति ने आकर किया और हम दर्शन कर आए आधे घंटे में ही। वापस जम्मू लौटकर एक होटल में शरण ली। बाहर बालकनी से नज़रें अनायास ही आसमान की ओर उठ गईं। एक सितारा टिमटिमाता दिख रहा था। होंठ स्वतः बुदबुदा उठे ''थैंक्स पापा'' जैसे जवाब आया ''पागल है बिलकुल। दुनिया घूम आई पर ज़रा–सी बात पर परेशान हो जाती है।'' मेरे खुले होंठ फैल गए मुस्कराहट से...

shikha.v20@gmail.com

वंडरफुल इंडिया

– श्रीमती पूर्णिमा पाटिल
मेल्बर्न, ऑस्ट्रेलिया

उस दिन मेल्बर्न, ऑस्ट्रेलिया के वांटिना साउथ प्राइमेरी स्कूल में मेरी मुलाकात ओल्गा से हो गई। वह ग्रीक है और अब ऑस्ट्रेलिया में बस गई है। परिचय के दौरान मैंने बताया इंडिया से हूँ। सुनते ही वह कहने लगी –

"Wow Gandhi's India"। यह सुनकर मैं खुश होकर पूछने लगी – आप और क्या जानती हैं गांधीजी के बारे में? वह बताने लगी ''गांधी जी अहिंसा के पुजारी थे। शांति और उपवास में उनका गहरा विश्वास था। ठीक इसी तरह मार्टिन लूथर किंग भी शांति के उपासक थे। मैंने बेन किंग्सले की 'गांधी' फ़िल्म टीवी पर देखी है। मुझे ऐसे साहसी और शांतिप्रिय व्यक्तित्व अच्छे लगते हैं। ईसा मसीह, मोहम्मद पैगम्बर जैसे महापुरुष अब फिर इस धरती पर अवतरित होने चाहिए। आजकल पूरी दुनिया कितनी अशांति और हिंसा के दौर से गुज़र रही है। कहीं कोई सुरक्षित नहीं है। मुझे अपनी इकलौती बेटी के समान दुनिया के अन्य सभी बच्चों के लिए एक शांतिमय सुरक्षित दुनिया चाहिए।''

दुनिया के अन्य देशों के बारे में ओल्गा की संवेदनशीलता को देख मुझे उनसे बातचीत करने में रुचि आने लगी। वह मेल्बर्न जैसे सुरक्षित शहर में थी, परन्तु संसार के अन्य देशों की असुरक्षित स्थिति से वह चिंतित थी।

मैंने ओल्गा से इंडिया को लेकर कुछ और बताने को कहा तो वह बताने लगी – बुद्ध के बारे में भी मुझे थोड़ा मालूम है। आपके भारत देश में उनकी मूर्ति, वह वृक्ष जिसके नीचे बैठकर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था, और उनका नाम सिद्धार्थ था। यह सब मैंने पढ़ा है।

भारतवर्ष की पुरातन कालीन आयुर्वेदिक चिकित्सा के बारे में भी सुना है कि पहले नाड़ी–परीक्षण किया जाता है। तीन प्रकार के शरीर दोष होते हैं। उसी के अनुसार वैद्य औषधि देते हैं। जब से यह मैंने जाना, मुझे आपके देश की यह इलाज पद्धति काफ़ी सही लगी। एलोपैथी पद्धति में तो सबको एक ही तरह की दवाई दे दी जाती है। फिर वह कभी–कभी किसी व्यक्ति पर गलत असर करती है, क्योंकि अम्लीय शरीर वाले को भला वात शरीर की दवा कैसे रास आ सकती है, यह तो समझने योग्य बात है!

ओल्गा ने विश्वविख्यात मोटिवेशनल गुरू दीपक चोपड़ा का साक्षात्कार ओपरा विनफ्रे को लेते टीवी पर सुना है। वह दीपक चोपड़ा के माइंड एंड बॉडी स्पिरिट फ़ंडे से बहुत प्रभावित है। वह बताने लगी कि दीपक चोपड़ा की वैकल्पिक चिकित्सा (alternative medicine) पद्धति पुरातन कालीन आयुर्वेदिक विज्ञान से प्रभावित है।

ओल्गा कहने लगी – ''मैं 'नेशनल जियोग्राफ़ी' कार्यक्रम देखती हूँ। आपके देश में गंगा का प्रदूषण देखकर बुरा लगता है। 'एनिमल्स ऑफ़ इंडिया' टीवी कार्यक्रम बहुत रोचक लगता है। 'स्लमडॉग मिलियोनेर' फ़िल्म देखकर इंडिया की गरीबी ने मन को ज़रा ज़्यादा ही परेशान किया।''

ओल्गा ने जिज्ञासा और आश्चर्य करते हुए पूछा – क्या आपके यहाँ समाज में वर्ग–विभिन्नता बहुत है? भारतवर्ष में अरेंज्ड विवाह कैसे निभते हैं, जब उस साथी को आप पहले से जानते नहीं हो?

ओल्गा को इंडिया का रंग–बिरंगापन बेहद भाता है। कहने लगी – कलरफुल पोशाक में जब भारतीय लोक नृत्य देखती हूँ और रंग–बिरंगी चूड़ियाँ तथा आकर्षक पारम्परिक ज्वेलरी, तो मेरा वह सब पहनने को मन कर जाता है। मेहंदी रचे हाथ भी सुन्दर लगते हैं!

ओल्गा कहने लगी भारतवर्ष में कितनी मस्ती के

साथ कलरफुल डस्ट (रंग) चेहरे पर लगाते हैं, वह सब क्या है? मैंने बताया वह रंगों का त्यौहार होली है। वह उत्सुकता से पूछने लगी – आपके देश में इतने सारे गॉड (भगवान) कौन और किसके हैं? और वह अपने मोबाइल से मुझे देवी लक्ष्मी की सुन्दर रंगीन फ़ोटो दिखाती है। मैं आश्चर्य से पूछती हूँ, यह आपके पास कैसे? वह बताती है बस स्पिरिचुअल लगाव है। कहीं फ़ोटो दिखी, तो फोटो खींच ली। वैसे क्या आप बताएँगी यह क्या है? मैंने बताया यह गॉडेस ऑफ़ वेल्थ हैं (धन की देवी)। ओल्गा हँसते हुए कहने लगी, ''वाह तब तो यह गॉडेस मेरे बहुत काम की है!''

अब ओल्गा अचरज कर रही थी कि इतनी विविधता वाले देश में इतने अधिक प्रान्त, उतनी ही विविध भाषाएँ, सांस्कृतिक विभिन्नताएँ और पहनावा, भोजन, अलग–अलग रीति–रिवाज़! वह विस्मित होकर मुझे देख रही थी।

और खुशी मिश्रित आश्चर्य से चकित होकर वह कहने लगी – मुझे इंडिया का यह मिक्स्ड बैग ऑफ़ रिलीजन एंड कल्चर बहुत फ़ेसिनेटिंग लगता है। भारत की इस विविधता में गज़ब का शानदार आकर्षण है!

आपका देश भारत वंडरफुल है!

एक विदेशी के मुख से अपने देश की इतनी प्रशंसा और भारतवर्ष के बारे में जानने की उत्सुकता देखकर–सुनकर मैं अपने भारतीय होने पर नाज़ कर रही थी!

poornimapatil52@gmail.com

इथियोपिया में हिंदी

श्री आशुतोष द्विवेदी
प्राग, चेक गणराज्य

हिंदी के लिए चार पंक्तियाँ कभी मैंने कही थीं, अपने इथियोपिया प्रवास के दौरान कि :

''अपनी मिट्टी से जुड़े रहने की आशा हिंदी,
हिंद की गंध भरे भाव की भाषा हिंदी;
अनेक बोलियों, भाषाओं की मिठास लिए,
मुँह में घुलती ही चली जाए बताशा 'हिंदी'।''

हिंदी एक भीनी सुगंध की तरह अपने आप फैलते चले जाने का जादू रखती है। मैं विदेश मंत्रालय की ओर से 2012 से 2015 तक इथियोपिया में भारतीय दूतावास में नियुक्त था। वहाँ विदेशी नागरिकों को हिंदी पढ़ाने का काम मुझे सौंपा गया। सप्ताह में एक दिन शनिवार को कक्षा लगती थी। कक्षा निःशुल्क थी। पचास के करीब विद्यार्थी आते थे, जिनमें अधिकांश इथियोपियन ही थे, कुछ अन्य देशों जैसे जापान, युक्रेन, केन्या आदि के भी थे। कुछ विद्यार्थी भारतीय भी थे, जिनको हिंदी और अच्छी करनी थी। शुरू में आसान और मनोरंजनपूर्ण लगने वाला यह काम वास्तव में कठिन था। सीखने वालों में अधिकारी, अध्यापक, कलाकार, व्यापारी, मज़दूर, स्कूल–कॉलिज के छात्र, लगभग समाज के हर वर्ग के लोग थे। आपसी बातचीत के लिए तीन भाषाएँ थीं, एक हिंदी, दूसरी अम्हेरिक (इथियोपिया की राजभाषा) और तीसरी अंग्रेज़ी। हिंदी मुझे आती थी, लेकिन सब छात्रों को नहीं आती थी। अम्हेरिक अधिकांश छात्रों को आती थी पर मुझे न के बराबर आती थी। अब बची अंग्रेज़ी, जो मुझे आती थी और अधिकांश विद्यार्थियों को भी आती थी। तो, अंततः पढ़ाने के लिए अंग्रेज़ी का चयन कर लिया गया। लेकिन, कई ऐसे विद्यार्थी थे जिन्हें अंग्रेज़ी की उतनी ही समझ थी, जितनी मुझे अम्हेरिक की। उनको समझाने के लिए

मैंने अंग्रेज़ी और अम्हेरिक दोनों जानने वाले विद्यार्थियों का सहारा लिया। कक्षा का प्रारंभ, हिंदी भाषा में रुचि जगाने के उद्देश्य से, मैंने कुछ व्यावहारिक वाक्यों के साथ किया। जैसे – ''नमस्ते'', ''आप कैसे हैं?'', ''मैं अच्छा हूँ'' आदि। इन वाक्यों को अंग्रेज़ी में बताया और फिर अंग्रेज़ी व अम्हेरिक दोनों जानने वालों से उनको अम्हेरिक में भी बुलवाया ताकि अंग्रेज़ी न समझने वाले भी कक्षा का आनंद ले सकें। इसके बाद भाषा के व्यावहारिक बोल–चाल के पक्ष पर कई हफ़्तों तक चर्चा होती रही ।

कक्षा मज़े से चल रही थी। बीच–बीच में कुछ हिंदी फ़िल्में, जो कि वहाँ लोकप्रिय थीं, जैसे शोले, डिस्को–डांसर आदि कक्षा को दिखाकर, फिर उनके ऊपर चर्चा हो जाती थी और इस माध्यम से कुछ नए शब्दों और नए वाक्यों का ज्ञान कक्षा को कराया जाता था। कई लोग थे, जो व्यावहारिक हिंदी बोलना सीख गए थे, उन्होंने धीरे–धीरे कक्षा में आना कम कर दिया। कक्षा का समय शनिवार को दोपहर के बाद का होता था और करीब दो घंटे की समय–सीमा थी। प्राइवेट जॉब वालों को कक्षा में आने में दिक्कत भी होती थी। लेकिन जब तक यह मुद्दा सामने आया, कक्षा में ऐसे लोग कम ही बचे थे। बहुत से लोग व्यावहारिक हिंदी सीखकर, संतुष्ट होकर जा चुके थे। अब बचे थे करीब 25 विद्यार्थी। सभी इथियोपियन थे। ये, वे लोग थे जिन्हें और गहरे से हिंदी सीखने की लगन थी, भारत को देखने, जानने और यहाँ पढ़ने की चाह थी; इनमें से कुछ कलाकार, अभिनेता, फ़िल्म–निर्माता, निर्देशक, लेखक भी थे, जिनके मन में बॉलीवुड में आकर अपना भाग्य आज़माने के सपने थे। इनकी लगन देखकर मेरी लगन और दुगनी हो जाती थी। जब शनिवार को मैं सुबह–सुबह हिंदी पढ़ाने निकलता था (अब कक्षा का समय सर्वसम्मति से सुबह का कर दिया गया था और कोई समय सीमा तय नहीं रखी गयी थी) तो मेरी पत्नी अक्सर कहती थी कि इतनी लगन से बाकी दिनों में दफ़्तर जाते तो नहीं दिखते। इस पर मेरा उत्तर होता था कि बाकी दिन दफ़्तर मैं रोज़ी–रोटी के लिए जाता हूँ, लेकिन शनिवार को हिंदी पढ़ाने मैं अपने आत्मिक आनंद के लिए जाता हूँ।

अब बचे हुए 25 विद्यार्थियों को मैंने हिंदी की वर्णमाला पढ़ाना शुरू किया। इसमें जो सबसे दिलचस्प मुश्किल आई वह थी वर्णों के उच्चारण का परिचय, क्योंकि 'क' से कबूतर, 'ख' से खरगोश, 'ग' से गमला अगर बताया जाता, तो पहले कबूतर, खरगोश, गमला का परिचय देने और इनका ठीक–ठीक उच्चारण बताना ही एक बड़ा काम हो जाता। इसलिए वर्णमाला के उच्चारण के लिए मैंने उदाहरणों का नया सेट तैयार किया, जिसमें वे शब्द रखे गए, जिनसे सभी विद्यार्थी परिचित हों। जैसे 'क' से कनाडा, 'ख' से खारतूम, 'ग' से गैब्रोन आदि। विद्यार्थियों को मज़ा आने लगा। वर्णमाला का पूरा परिचय और उसका पर्याप्त अभ्यास हो जाने के बाद शुरू हुआ हिंदी पढ़ने–लिखने का सिलसिला। इसके लिए छोटी–छोटी बालोपयोगी मनोरंजक कहानियों का सहारा लिया गया। मैं इन्टरनेट से छोटी–छोटी कहानियाँ छाँटता था, फिर उनको कक्षा में किसी से पढ़ने के लिए कहता, फिर उसके उच्चारण में बाकी लोगों से सुधार करवाता और अंत में स्वयं उसके सही–सही उच्चारण से सबका परिचय करवाता। इसके बाद लिखने का कार्यक्रम चलता था। जब कक्षा और आगे बढ़ती गयी, तब विद्यार्थियों की संख्या भी कम होती गयी, क्योंकि अब मामला ज़रा ज़्यादा श्रम और समय देने का था। अब लगभग एक दर्जन लोग कक्षा में बचे थे। अब तक कक्षा को एक वर्ष भी पूरे हो गए थे। एक उल्लेखनीय बात और थी कि अब कक्षा में हिंदी के साथ–साथ हिंदुस्तान पर भी चर्चा हुआ करती थी, भारतीय स्थलों, व्यंजनों, महापुरुषों और दर्शन–पद्धतियों और उनके साथ–साथ व्यक्तिगत समस्याओं पर भी वार्ता हो जाती थी ।

फिर, मेरे इथियोपिया से वापस आने का समय पास आने लगा। असल में हिंदी कक्षा की परिकल्पना ने जब मूर्त रूप लिया, तब तक मेरे लगभग डेढ़ वर्ष वहाँ पूरे हो चुके थे और सामान्यतः नियुक्ति तीन वर्ष के लिए की जाती है। जब मेरी भारत–वापसी का समय

निकट आने लगा, तब मेरे विद्यार्थी काफ़ी उदास होने लगे। वे चाहते थे कि मैं कुछ महीनों तक वहाँ और रहूँ, लेकिन ऐसा संभव नहीं था। वैसे भी हिंदी पढ़ाना मेरा अतिरिक्त कार्य था, मेरी नियुक्ति तो वहाँ के कार्यालयी कामों के लिए हुई थी, जो अपने सामान्य नियमों पर ही आधारित थी। एक दिन मेरी कक्षा के एक विद्यार्थी जिनका नाम एर्मियास था, उन्होंने हिंदी में एक नाटक खेलने का प्रस्ताव रखा, एक ऐसा नाटक जो हिंदी कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा भारतीय दूतावास में भारतीय प्रतिनिधियों और अन्य इथियोपियन आगंतुकों के सामने मंचित किया जाए और जो मेरे लिए एक यादगार उपहार बन जाए। नाटक का प्रारूप उन्होंने ही तैयार किया था, जिसमें नायक, जो कि एक इथियोपियन व्यापारी है, हिंदी न समझने के कारण अपनी भारतीय प्रेमिका से हाथ धो बैठता है। नाटक भाषा से सम्बंधित सहज हास्य को लेकर आगे बढ़ता है और इसमें मनोरंजन का काफ़ी मसाला है, इथियोपियन के लिए भी एवं भारतीय के लिए भी। इस नाटक के अंतिम दृश्य में मैंने उपसंहार स्वरूप इतना जोड़ा था कि नायक जब अपनी हिंदी अज्ञानता से निराश हो जाता है, तो वह सोचता है कि हिंदी कैसे सीखूँ, तभी उसे भारतीय दूतावास में चल रही निःशुल्क हिंदी कक्षा का विज्ञापन दिखायी देता है और वह हिंदी सीखने हेतु भारतीय दूतावास जाने का विचार करता है और यहीं पर नाटक समाप्त हो जाता है। सभी विद्यार्थियों ने बड़े मन से इस नाटक की तैयारी की थी, इनमें कुछ प्रमुख नाम थे हायलू, किब्रोम, दावित, एक और विद्यार्थी थे उनका नाम भी एर्मियास था। मेरी भूमिका इसमें निर्देशक जैसी थी या वो भी नहीं क्योंकि नाटक करने वाले सभी लोग पहले से अभ्यस्त थे और बहुत अच्छा कर रहे थे ।

हिंदी दिवस के दिन नाटक का मंचन हुआ और नाटक को अपेक्षा से अधिक सराहा गया। सभी ने, जिनमें इथियोपियन भी थे और भारतीय भी, मुझे और मेरी कक्षा को बहुत साधुवाद दिया। इस नाटक की तैयारी के दौरान इथियोपियन लोगों की हिंदी के प्रति लगन से अभिभूत होकर मैंने एक गीत लिखा था, जो हिंदी और भारत से प्रेम करने वाले एक इथियोपियन के मन के उद्‌गार हैं। इस गीत को भी जब भारतीय दूतावास अद्दिस अबाबा, इथियोपिया में एक इथियोपियन विद्यार्थी ने गाया, तो सभी श्रोता भाव–विभोर हो गए। गीत इस प्रकार है :

मेरी हिंदी इस वजह से अच्छी–खासी है,
माँ मेरी इथियोपिया, इंडिया मासी है।

(1)

मिट्टियाँ दोनों तरफ़ यूँ मेल खाती हैं,
भेद करने की दलीलें हार जाती हैं;
मेरे सपनों को लगे थे पर यहीं लेकिन
अब उड़ानें इनकी सागर पार जाती हैं;
मेरी खातिर इंडियन हर दोस्त की बोली,
गर्मियों में बह चली ठंडी हवा–सी है।

(2)

ओ 'मदर इंडिया', 'कभी अलविदा ना कहना',
मेरे 'दिल' की धड़कनों में 'गीत' बन रहना;
जिन धुनों पर 'डिस्को–डांसर' बन के हम नाचे,
हर तराना बन गया जज़्बात का गहना
इंडियन, बाज़ार में अक्सर यहाँ कहते –
'वाह जी, ये सारी रौनक इंडिया–सी है।'

(3)

कोई भाषा हो, मोहब्बत की ज़ुबानी हो,
खेलता बचपन मचलती नौजवानी हो;
फूल हो हर रंग, हर आकार के लेकिन
बाग में खिलती–महकती ज़िंदगानी हो।
ये रवायत प्यार की चलती रहे यूँ ही,
आप सब से बस गुज़ारिश ये ज़रा–सी है।

ashutoshdwivedi1982@gmail.com

मॉरीशस अर्थात् मिनी भारत की यात्रा

— श्री गोवर्धन यादव
छिन्दवाड़ा, भारत

मेरे जीवन में यह दूसरा अवसर है जब मुझे भारत से बाहर मॉरीशस जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। पहली बार मैं थाईलैण्ड की यात्रा पर सन् 2011 में गया था। थाईलैण्ड की यात्रा पर जाने का अवसर अनायास ही प्राप्त नहीं हुआ था, बल्कि सायास प्राप्त हुआ था। इस यात्रा के बारे में बड़ा दिलचस्प वाकया है। एक दिन मुझे रायपुर के मेरे मित्र श्री जयप्रकाश मानस का फ़ोन आया। फ़ोन पर उन्होंने मुझसे बैंकॉक–यात्रा पर चलने का आग्रह किया और साथ ही उन्होंने मेल के ज़रिए उस कार्यक्रम की रुपरेखा भी उपलब्ध करवा दी। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी और हिंदी–संस्कृति को प्रतिष्ठित करने के लिए बहुआयामी साहित्यिक–सांस्कृतिक संस्था 'सृजन–सम्मान 'एवं साहित्यिक वेब–पत्रिका 'सृजनगाथा डॉट कॉम', रायपुर का यह सात दिवसीय अनूठा प्रयास था। इस साहित्यिक यात्रा में देश के चयनित आधिकारिक विद्वान, अध्यापक, लेखक, भाषाविद्, शोधार्थी, संपादक, पत्रकार, संगीतकार, बुद्धिजीवी एवं हिंदी सेवी संस्थाओं के सदस्य, हिंदी प्रचारक, ब्लॉगर्स तथा टेक्नोक्रेट भाग ले रहे थे। मन में इच्छा बलवती हो उठी कि मुझे इसमें जाना चाहिए, लेकिन उस वक्त तक मेरा पासपोर्ट नहीं बना था, सो चाहते हुए भी मैं इस यात्रा में शामिल नहीं हो सका। उन्होंने आग्रह करते हुए मुझसे कहा कि आने वाले समय में मुझे अन्य देश की यात्रा के लिए तैयार रहना है और अपना पासपोर्ट भी समय रहते बनवा लेना है।

शुरू से ही मेरी प्रकृति घुमक्कड़ किस्म की रही है। डाक विभाग में कार्यरत रहने से चार वर्ष में मिलने वाली एल.टी.सी. का मैंने तीन बार फ़ायदा उठाया। पहली बार मैंने सपरिवार संपूर्ण दक्षिण–भारत की यात्रा की। दूसरी बार जम्मू–कश्मीर और तीसरी बार गोवा की यात्रा की। उसके बाद यह स्कीम सरकार द्वारा बंद करा दी गई। सेवा निवृत्ति के बाद मैंने मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिंदी भवन भोपाल की सदस्यता ग्रहण की। लेखन कर्म अपनी गति से चल ही रहा था। बच्चों के लिए भी मैं लिखने लगा। इस बीच मेरी मुलाकात साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्कार की मासिकी 'बाल वाटिका' के संपादक डॉ. श्री भैरुँलाल गर्गजी से हुई और इस तरह मैं उनकी संस्था से जुड़ गया। यह क्रम अभी रुका नहीं था। दूसरी कड़ी में मैं बाल साहित्य शोध एवं संवर्धन समिति के संचालक श्री उदय किरोला जी, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) से जुड़ा और इस तरह कई संस्थाओं से जुड़ता चला गया और इनमें होने वाले कार्यक्रमों में बराबर जाता रहा और सम्मानित भी होता रहा। नए–नए प्रदेशों में जाना और ख्यातिलब्ध साहित्यकारों से मिलने में मुझे अत्यधिक आनन्द प्राप्त होता है। इस तरह प्रायः सभी प्रदेशों के बहुतेरे मित्रों की टोली जुड़ती चली गई। परमपिता परमेश्वर की विशेष कृपा मुझ पर सदा बनी रही और यह उन्हीं का आशीर्वाद है कि मुझे देश और देश के बाहर जाने के सुअवसर प्राप्त होते रहे।

जैसा कि मैंने स्वीकार किया भी है कि मुझे यात्रा करने में काफ़ी आनन्द प्राप्त होता है। सो मैंने छिन्दवाड़ा स्थित 'वसुन्धरा ट्रैवल' के संचालक श्री बकुल पंड्या जी से संपर्क किया और अपना पासपोर्ट तैयार करने के लिए आवश्यक दस्तावेज़ जुटाना शुरू कर दिए। माननीय वरदमूर्ति मिश्र जी उस समय एस. डी.एम. के पद पर कार्यरत थे। आपने दो बार मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, ज़िला इकाई छिन्दवाड़ा द्वारा आयोजित प्रतिभा प्रोत्साहन प्रतियोगिताओं में मुख्य अतिथि के तौर पर समिति को अपना हार्दिक सहयोग दिया और समय–समय पर वे मार्गदर्शक के रूप में अपनी भागीदारी का निर्वहन करते रहे हैं।

मैंने उनसे अपना तत्काल–पासपोर्ट बनवाने के लिए निर्धारित प्रपत्र में हस्ताक्षर करने के लिए निवेदन किया। उन्होंने बिना समय गँवाए उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिए। लेकिन इस बीच पत्नी की तबीयत बिगड़ जाने और उस पर लगने वाले खर्चों को देखते हुए मैंने इस प्रक्रिया को रोकते हुए श्री बकुल जी से कहा कि वे सामान्य तरीके से इसे बनने दे। लगभग तीन माह बाद पासपोर्ट मेरे हाथ में था और मैं अब देश से बाहर जाने के लिए अधिकृत था।

श्री मानस जी से मेरा संपर्क बराबर बना हुआ था। संयोग से वे वर्ष 2011 में सात दिवसीय (1 से 7 फ़रवरी) कार्यक्रम तय कर चुके थे, जिसकी सूचना उन्होंने ईमेल के ज़रिए तथा फ़ोन पर दे दी थी। इस तरह यह पहला मौका था जब मैं भारत के बाहर किसी अजनबी धरती पर अपना कदम रख रहा था। सारे कार्यक्रम अपने निर्धारित समय के अनुसार सानन्द संपन्न होते रहे। एक लंबा अरसा बीत गया है, लेकिन वे सारी यादें अब भी मन–मस्तिष्क पर जस–की–तस अंकित हैं।

इस आयोजन के बाद आपकी संस्था ने ताशकंद, संयुक्त अरब अमीरात, कंबोडिया–वियतनाम आदि देशों की यात्राएँ कीं और हिंदी के प्रचार–प्रसार और उन्नयन के लिए अनूठे कार्यक्रम किए। हालाँकि मैं इन देशों की यात्रा भले ही नहीं कर पाया, लेकिन मेरे दो अभिन्न मित्र श्री आर.एम. आनदेव जी और डी.पी. चौरसिया जी ने बराबर इसमें भाग लेकर ज़िले की शान बढ़ाई है।

'आधारशिला' के संपादक मित्र श्री दिवाकर भट्ट जी थाईलैण्ड यात्रा में मेरे सहयात्री रहे हैं। आपने भी हिंदी के उन्नयन और संवर्धन में अनेक देशों की यात्राएँ की हैं, मुझसे लगातार साथ चलने का आग्रह करते रहे हैं और समय–समय पर फ़ोन और ईमेल के ज़रिए कार्यक्रम की रूपरेखा भेजते रहे हैं, लेकिन यात्रा में लगने वाली बड़ी राशि को जुटाना एक सेवानिवृत्त कर्मचारी के लिए असंभव–सा प्रतीत होता रहा। इस बीच अभ्युदय बहुउद्देशीय संस्था, वर्धा के संरक्षक श्री वैद्यनाथ अय्यर जी तथा संस्था के महासचिव–संयोजक श्री नरेन्द्र दन्ढारे जी का पत्र प्राप्त हुआ। श्री दन्ढारे जी वर्तमान समय में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा में कार्यरत हैं और समय–समय पर आपसे वर्धा में होने वाले कार्यक्रमों में तथा हिंदी भवन भोपाल में भेंट होती रही है। उन्होंने दूरभाष पर मुझसे चलने बाबत अनुरोध किया। प्रथम आग्रह में ही मैंने उनसे स्पष्ट संकेत दे दिए थे कि खर्च की अधिकता को देखते हुए मेरा जाना संभव नहीं है।

श्री दण्ढारे जी के फ़ोन लगातार आते रहे। एक दिन मैंने उस पत्र की एक फ़ोटो–प्रति हिंदी भवन भोपाल भेजते हुए संस्था के मंत्री–संचालक माननीय श्री कैलाशचन्द्र पंत जी से निवेदन किया कि हम अपने स्तर पर हिंदी का प्रचार–प्रसार कार्य तो कर ही रहे हैं, लेकिन हम इतने सक्षम नहीं हैं कि मॉरीशस जैसे सुदूर देश की यात्रा कर सकें। निवेदन में यह भी मैंने जोड़ा कि यदि हिंदी भवन इसमें हमें कुछ आर्थिक सहायता प्रदान करता है, तो बाकी की रकम का हम इंतज़ाम कर लेंगे। इस समय मॉरीशस यात्रा के लिए छिहत्तर हज़ार रुपयों का खर्च बतलाया गया था।

हिंदी भवन भोपाल का एक पत्र आया, जिसमें प्रदेश के सभी संयोजकों से यह पूछा गया कि क्या वे पासपोर्ट धारक हैं? इसका जवाब मैंने लिख भेजा और अपने साथियों के नाम लिख भेजे, जिनके पास अपने पासपोर्ट उपलब्ध थे। माह मार्च की इक्कीस तारीख को मुझे भोपाल में आयोजित मिटिंग में जाना था। मिटिंग में मैंने अन्य प्रस्तावों के साथ इस प्रस्ताव को भी रखा, जो बाद में इस आशय के साथ स्वीकृत हुआ कि वर्तमान में हिंदी भवन ट्रस्ट प्रदेश के पाँच संयोजकों को पच्चीस–पच्चीस हज़ार रुपया बतौर अनुदान देगी। इतनी बड़ी रकम अनुदान में स्वीकृत हो जाने के बाद मैंने मॉरीशस जाने का मानस बनाया और श्री गोपाल दण्ढारे जी के खाते में तीस हज़ार रुपये जमा करवा दिए, जो बतौर रजिस्ट्रेशन के दिए जाने थे। शेष रकम तीस जनवरी 2014 तक जमा करनी थी। मैं यहाँ स्पष्ट बतला दूँ कि यदि हिंदी भवन ट्रस्ट यह राशि स्वीकृत नहीं करता तो शायद ही मैं वहाँ जा पाता। मैं आभारी हूँ माननीय श्री पंत जी का और हिंदी भवन ट्रस्ट का,

जिनके विशेष सहयोग से मैं यह यात्रा कर पाया।

श्री दण्ढारे जी ने अपने परिपत्र में स्पष्ट कर दिया था कि सभी व्यक्तियों को मुंबई तक अपने स्वयं के खर्च पर आना–जाना होगा। समय पर्याप्त था, सो मैंने दुरंतो से अपनी जाने और आने की सीट आरक्षित करवा ली थी। ज्ञात हो कि दुरंतो नॉनस्टॉप ट्रेन है, जो नागपुर से छत्रपति शिवाजी टर्मिनल तक प्रतिदिन रात्रि के आठ बजे रवाना होती है और मुंबई से नागपुर के लिए रात्रि आठ बजे खुलती है।

संस्था सचिव श्री नर्मदा प्रसाद कोरी जी ने मेरी तैयारी को देखते हुए अपना मानस बनाया कि वे भी इस यात्रा में शामिल हो सकते हैं। इस समय तक आपके पास अपना कोई पासपोर्ट नहीं था। पुनः हम श्री बकुल पण्ड्या जी के पास थे और आवश्यक दस्तावेज़ों के साथ पासपोर्ट बनाने के लिए ऑनलाइन आवेदन प्रस्तुत कर रहे थे। पासपोर्ट कार्यालय भोपाल में श्री कोरी जी को मई की किसी तारीख को उपस्थित होना था, जो हमारी अपनी समय सारिणी से मेल नहीं खाता था। सो उन्होंने एस.डी.एम. से संपर्क साधने की कोशिश की। यह समय लोकसभा के चुनाव का समय था और ऐसे समय में किसी शासकीय अधिकारी से मिल पाना संभव भी नहीं था। संयोग से मैंने इन्टरनेट के ज़रिए नियमों की जानकारी प्राप्त की कि किसी मेजर अथवा कार्यालय प्रमुख के हस्ताक्षर से तत्काल पासपोर्ट बनवाया जा सकता है। संयोग से श्री कोरी जी के दामाद मेजर के पद पर कार्यरत हैं, सो उन्होंने तत्काल आवश्यक दस्तावेज़ हस्ताक्षरित कर भेज दिए और बैंक मैनेजर ने भी हस्ताक्षर कर दिए, ऑनलाइन आवेदन भेज दिया गया। पासपोर्ट कार्यालय ने कोरी जी को आवेदन की तिथि से दो दिन बाद उपस्थित होने एवं आवश्यक दस्तावेज़ लाने का निर्देश दिया। कोरी जी वहाँ उपस्थित हुए और वे घर भी नहीं पहुँच पाए थे कि पासपोर्ट अधिकारी ने पासपोर्ट बनाकर रजिस्ट्री डाक से भेजने बाबत मैसेज उनके मोबाइल पर दे दी। इस तरह श्री कोरी जी इस अभियान में मेरे सहयात्री बने।

इस रोमांचक यात्रा को संपन्न कराने का ज़िम्मा महिन्द्रा ट्रेवल, मुंबई ने लिया था। नागपुर में इस ट्रेवल की एक शाखा काम कर रही है। यात्रा सुचारु रूप से संपन्न हो, इस आशा और विश्वास के साथ नागपुर के श्री स्वप्निल वाल्के जी एवं सुश्री नीतू सिंह भी इस यात्रा के सहभागी बने। मॉरीशस के हवाई जहाज़ की फ़्लाइट एम.के. 747, प्रस्थान तिथि 23.05.2014 की सुबह 6.45 तथा वापसी 29.05.2014 फ़्लाइट एम.के. 748 रात के 21.20 बजे की थी, टिकट भेज दिए गए। ज्ञात हो कि मॉरीशस समय और भारतीय समय में एक घंटा बत्तीस मिनट का फ़र्क रहता है। यदि भारत में दिन के आठ बजे हैं तो मॉरीशस में सुबह के 6.28 बज रहे होते हैं।

दुरंतो हिचकौले खाती हुई अपनी निर्धारित गति से भागी जा रही थी। नींद देर रात तक आँखों से आँख–मिचौली खेलती रही और फिर चुपके से, न जाने कब, आकर समा गई, पता ही नहीं चल पाया। मेरा और कोरी जी के कोच अलग–अलग थे, क्योंकि उन्होंने अपनी बर्थ का आरक्षण किसी अन्य तिथि में किया था। सुबह आकर उन्होंने मुझे जगाया और कहा कि हम मुंबई के करीब पहुँच चुके हैं। कुछ समय बाद हम छत्रपति शिवाजी टर्मिनल स्टेशन पर जा पहुँचे। दुरंतो (नॉनस्टॉप) नागपुर से रवाना होकर सीधे मुंबई सी.एस.टी. पहुँचती है।

यहाँ उतरने के बाद श्री कोरी टिकटघर पहुँचे। वहाँ से उन्होंने दादर का टिकट लिया और अब हम उस ओर बढ़ने लगे। दादर स्टेशन पर पहुँचने के बाद हमें बड़ी बेसब्री से श्री संतोष परिहार का इंतज़ार था, जो किसी अन्य ट्रेन से बुरहानपुर से आ रहे थे। कुछ इंतज़ार के बाद उनसे भेंट हुई। हम सबने चाय पी और दादर में एक कमरा बुक करवाया। नहाने के बाद कोरी जी और मैं 'एलिफ़ैण्टा केव' देखने के लिए निकल पड़े। परिहार जी ने इसमें अपनी असहमति जताते हुए सूचना दी कि वे हमारे साथ नहीं जा पाएँगे, क्योंकि पूरी रात वे ढंग से सो नहीं पाए थे।

दादर स्टेशन से हम पुनः सी.एस.टी. पर थे। कभी यह इमारत विक्टोरिया टर्मिनल के नाम से जानी जाती थी। बाद में सन् 1996 में इसका नाम बदलकर

सी.एस.टी. यानी छत्रपति शिवाजी टर्मिनल कर दिया गया। सन् 1887 में ब्रिटिश वास्तुकार फ्रेडरिक विलियम स्टेवन्स ने इस भव्य इमारत का निर्माण करवाया था।

वहाँ से बाहर निकलते ही हमें राज्य परिवहन की बस मिल गयी, जो गेट–वे–आफ़–इण्डिया जा रही थी। अरब सागर के तट पर इस भव्य इमारत का निर्माण जॉर्ज पंचम तथा क्विन मेरी के प्रथम आगमन मार्च 1911 की याद में बनाया गया था। इसका निर्माण सन् 1914 में शुरू हुआ और यह सन् 1919 में बनकर तैयार हो गयी। यहाँ से करीब दस किलोमीटर की दूरी पर 'एलिफ़ैण्टा केव' स्थित है, बोट की सहायता से जाया जा सकता है। पाँचवी से आठवीं शताब्दी के मध्य पहाड़ को छेनी–हथौड़ी अथवा अन्य उपकरणों की सहायता से इसे अनाम व्यक्तियों ने बनाया, इसे देखकर सहज ही अंदाज़ा हो जाता है कि इसका निर्माणकर्ता निश्चित ही भू–गर्भ वैज्ञानिक रहा होगा, जिसने पहाड़ के मध्य एक ठोस चट्टान को ढूँढ निकाला और अपनी कला को प्रदर्शित कर सका। यहाँ हिन्दू धर्म से संबंधित अनेक शिव मूर्तियों को विभिन्न मुद्राओं में देखा जा सकता है। इन्हें धारापुरी ची लेणी के नाम से भी जाना जाता है। यह कभी कोकणीं मौर्य की द्वीप राजधानी हुआ करती थी। बाद में आक्रमणकारियों ने इन शानदार मूर्तियों को बड़ी बेरहमी से तोड़–फोड़ डाला। अपने समय में ये मूर्तियाँ कितनी सुन्दर और वैभवशाली रही होंगी, इसका अंदाज़ा सहज ही लगाया जा सकता है।

शाम ढलने से पहले हम लौट आए थे। रात्रि का खाना खाकर हम टैक्सी द्वारा छत्रपति शिवाजी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा जा रहे थे।

विश्व का अड़तालीसवाँ एवं ग्यारह हज़ार साठ हेक्टर में फैले इस विशाल एयरपोर्ट का पुराना नाम इंटरनेशनल एयरपोर्ट था, जिसे बदलकर छत्रपति शिवाजी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा कर दिया गया। अपनी भव्यता और सुन्दरता के लिए यह एयरपोर्ट विश्व का तीसरा एयरपोर्ट है। इसकी आधारशिला सन् 2006 में रखी गई थी, 2013 में बनकर तैयार हुआ। किसी नाचते हुए मोर की आकृति में बना यह हवाई–अड्डा सहज ही में आपका ध्यान आकर्षित कर लेता है।

मध्य रात्रि तक अलग–अलग प्रदेशों से आने वाले लोग यहाँ पहुँच चुके थे। विमान में सवार होने से पहले काफ़ी कुछ किया जाना होता है। मसलन आपके सामान का वज़न, यात्रियों के सीट का निर्धारण आदि निपटाते–निपटाते काफ़ी समय लग जाता है। अब सारे यात्री अंदर लाउंज में बैठकर उस घड़ी के इन्तज़ार में रहते हैं, जब उन्हें विमान में सवार होना होता है। सुबह के पाँच बजने वाले होते हैं। रात्रि का गहन अन्धकार अब पिघलने लगता है और बाहर का दिलचस्प नज़ारा दिखाई देने लगता है। इस ओर से उस छोर तक कई विमान पंक्तिबद्ध खड़े दिखाई देने लगते हैं। वह समय भी शीघ्र आ पहुँचा जब हम विमान में सवार होने जा रहे थे। मॉरीशस के विमान एम.के. 748 में मुझे 15–जी वाली सीट मिली। ठीक मेरी बगल में श्री कोरी जी की सीट थी, जहाँ लगी खिड़की से बाहर का नज़ारा देखा जा सकता था। कोरी जी की यह पहली विमान यात्रा थी। अतः वे काफ़ी प्रफुल्लित नज़र आ रहे थे। तभी पायलट की आवाज़ गूंजती है और सभी से कहा जाता है कि वे अपनी–अपनी सीट–बेल्ट बाँध ले। वह समय भी आ पहुँचा, जब विमान चलते हुए अपने रन–वे की ओर बढ़ रहा था। अपने स्थान पर पहुँचने के बाद उसके सारे इंजिन अपनी पूरी रफ़्तार के साथ चलायमान होते हैं। थोड़ी देर तक रन–वे पर दौड़ते रहने के बाद विमान आकाश में उड़ रहा था। शुरू–शुरू में नीचे के दृश्य दिखलाई पड़ते हैं, बाद में केवल और केवल नीला आकाश नज़र आता है। खिड़की से विमान का डैना (पंख) भर दिखाई देता है। हवाई जहाज़ करीब पच्चीस हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर उड़ रहा था। नीचे तैरते काले–कलसीले बादलों की परत दिखलाई देती और दिखलाई देती दूर–दूर तक फैली दो नीली पट्टियों के बीच बनती एक गहरी नीली पट्टी, जो समुद्र और आकाश के बीच के मिलन के प्रगाढ़ संबंध को दर्शाती है।

इस बीच एअर होस्टेस सभी यात्रियों को

बारी–बारी से भोजन, पानी की बोतल आदि सर्व करती हैं। जैसे–जैसे रात्रि का पहर आगे बढ़ता है, कुछ हल्की–सी ठंड भी लगने लगती है। सभी यात्रियों की सीट पर हल्का कंबल होता है, जिसका वे इस्तेमाल कर सकते हैं। हवा के झोंकों पर तैरता विमान छः घंटे की लम्बी उड़ान के बाद मॉरीशस एयरपोर्ट पर उतरता है। मॉरीशस समय के अनुसार दिन के ग्यारह बज रहे होते हैं। विमान से बाहर आने पर यात्रियों को एयरपोर्ट की सारी औपचारिकताएँ पूरी करनी होती है, जो काफ़ी लंबे समय तक चलती रहती है। यात्री अब एयरपोर्ट के लंबे रास्ते को पार करता हुआ बाहर आता है। अब उसे अपने सामान की चिंता सताती है। चक्र के आकार में घूमते बेल्ट पर यात्री का सामान जा पहुँचता है।

बाहर एक यात्री बस हमारे इंतज़ार में खड़ी थी। बस में सवार होकर अब हम अपने निर्धारित होटल कालोजिन स्यूर मेर (Calodyne Sur Mer) की ओर रवाना होते हैं। दिन के करीब तीन बज रहे थे और सभी को जमकर भूख लग आयी थी।

रास्ते में पड़ने वाले 'डेल्ही ताज' होटल में हमने स्वादिष्ट भोजन का आनन्द लिया। मोका और मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई से गुज़रती हुई हमारी बस कालोजिन स्यूर मेर होटल के प्रांगण में आकर रुक जाती है। इस यात्रा में करीब डेढ़ घंटे का समय लग जाता है। सभी यात्रियों के अपने–अपने कमरे निर्धारित कर दिए गए थे।

शरीर में आलस और थकान के लक्षण स्पष्ट देखे जा सकते थे। प्रायोजक ने पहले से ही तय कर रखा था कि इस दिन केवल आराम किया जाना है। अतः उस दिन सभी ने विश्राम किया।

मॉरीशस में गन्ने की खेती बड़े पैमाने पर होती है। चारों तरफ़ छाई हरियाली देखकर मन प्रसन्नता से झूम उठता है।

होटल कालोजिन स्यूर मेर में प्रवेश करते ही तबीयत खुश हो जाती है। चारों तरफ़ ऊँचे–ऊँचे पेड़, सघन हरियाली और इन सब के बीच चौरासी सूइट्स, हर सूइट के सामने बगीचा और इन सबके मध्य में एक तरणताल। पास ही लहराता–बलखाता समुद्र, निरन्तर बहती शीतल हवा के झोंके आपके शरीर से लिपट जाते हैं। सारे कमरे ए.सी. युक्त। प्रत्येक सूइट में तीन शयन–कक्ष, एक हॉल, हॉल से लगा किचन। पाँच लोगों का परिवार एक सूइट में रुक सकता है।

रात को सभी ने लज़ीज़ खाने का आनन्द उठाया और अपने–अपने कमरों में समा गए। सोने से पहले सभी को सूचित कर दिया गया था कि सुबह सभी आठ बजे के पहले तैयार होकर चाय–नाश्ता करने के बाद 'इल ओ सर्फ़' टापू पर जाने वाले हैं।

हम इस टापू पर जाने से पहले मॉरीशस के बारे में संक्षिप्त जानकारियाँ लेते चलें तो अच्छा होगा।

गणराज्य अफ़्रीकी महाद्वीप के तट के दक्षिण–पूर्व में लगभग 900 किलोमीटर की दूरी पर हिंद महासागर में और मडागास्कर के पूर्व में स्थित मॉरीशस एक द्वीप है। मॉरीशस द्वीप के अतिरिक्त इस गणराज्य में सेंट ब्रैंडन, रॉड्रिग्स और अगालेगा द्वीप भी शामिल हैं। दक्षिण–पश्चिम में 200 किलोमीटर पर स्थित फ़्रांसीसी रीयूनियन द्वीप और 570 किलोमीटर उत्तर–पूर्व में स्थित रॉड्रिग्स द्वीप के साथ मॉरीशस मस्कारेन द्वीप समूह का हिस्सा है। मॉरीशस की मिश्रित संस्कृति है, जिसका कारण पहले इसका फ़्रांस के अधीन होना तथा बाद में ब्रिटिश स्वामित्व में आना है। पुर्तगाली नाविक पहले पहल यहाँ 1507 में आए। बसे और छोड़ कर चले गए। 1598 में हॉलैंड के तीन पोत जो मसाला द्वीप की यात्रा पर निकले थे, एक चक्रवात में फँसकर यहाँ पहुँचे। उन्होंने इस द्वीप का नाम नासो के युवराज 'मॉरिस' के नाम पर 'मॉरीशस' रखा। सन् 1668 में डच लोगों ने स्थायी बस्तियाँ बसाईं। और फिर कुछ समय के अन्तराल में इस द्वीप को छोड़ दिया। फ़्रांस, जिसका पहले से ही इसके पड़ोस 'इल ब्राँडों' द्वीप पर नियंत्रण था, ने 1715 में फिर से मॉरीशस पर कब्ज़ा कर लिया। इस तरह यह द्वीप एक समृद्ध अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित हुआ, जो चीनी उत्पाद पर आधारित थी। मॉरीशस ने 1968 में स्वतंत्रता प्राप्त की और सन् 1992 में

एक गणतंत्र देश बना। मॉरीशस एक संसदीय लोकतंत्र है, जिसकी संरचना ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली पर आधारित है। यहाँ स्थिर लोकतंत्र है। चुनाव पाँच साल में नियमित और स्वतंत्र होते हैं। यह नौ ज़िलों में विभाजित है।

सन् 1834 में भारत से 70 यात्रियों का जत्था यहाँ गिरमिटिया मज़दूर के रूप में पहुँचा। 1834–1930 तक यहाँ चार लाख पचास हज़ार भारतीय मूल के लोग पहुँचे, जिसमें 52 प्रतिशत हिन्दू, 15 प्रतिशत मुसलमान तथा 25 प्रतिशत ईसाई तथा अन्य धर्म के लोग आए। सन् 1886 तक इन भारतीयों का लोकतांत्रिक चुनाव में भाग लेना वर्जित था। बाद में सन् 1901 में महात्मा गांधी का यहाँ आगमन होता है। वे नौशेरा जहाज़ पर सपरिवार यहाँ कुछ दिन रुके थे। उसके बाद से भारतीयों का राजनीति में प्रवेश हुआ और इस तरह 1948 में 25 में से 19 भारतीय निर्वाचित हुए। यहाँ की आधिकारिक भाषा अंग्रेज़ी है। मीडिया की भाषा फ़्रांसीसी है। लेकिन स्थानीय बोली 'क्रियोल' में जनसाधारण लोग बात करते हैं। चूँकि यहाँ के लोग मूल रूप से भारतीय हैं, अतः वे आपस में हिंदी भी बोलते हैं। सारे लोगों के नाम भी भारतीय प्रकृति से रखे जाते हैं। यहाँ पर प्रसिद्ध 'गंगा तालाब' और अनेक मंदिर, मस्जिद, पगोडा आदि देखे जा सकते हैं। प्रख्यात लेखक श्री गिरिराज किशोर ने गिरमिटिया मज़दूरों पर एक उपन्यास लिखा, जिसका नाम 'पहला गिरमिटिया' है, जो भारतीय मूल के लोगों पर लिखा गया प्रसिद्ध उपन्यास है। इस उपन्यास के कुछ अंश पढ़ने के बाद मन में एक जिज्ञासा जागती है और मैं इस मौके की तलाश में बना रहा कि देर–सवेर ही सही, मैं इस द्वीप की यात्रा ज़रूर करूँगा।

यह विश्व का सबसे सुंदरतम द्वीप है, जो 'धरती पर स्वर्ग' के नाम से जाना जाता है। मॉरीशस के पूर्वी तट पर 'इल ओ सेर्फ़' द्वीप फ़्लाक ज़िले के पास स्थित है और करीब 100 हेक्टर में फैला हुआ है। 'पन्ने' के सदृश्य दिखाई देने वाले इस द्वीप के छिछले रेतीले किनारे, स्वच्छ–निर्मल जल, जिसमें गहराई तक देखा जा सकता है, किनारों पर मूंगे के सदृश्य चमकीले पत्थर, कहीं–कहीं एकदम काले पत्थरों के बीच लहलहाते सागर का रूप देखते ही बन पड़ता है। इसके तट पर अनेक रेस्तराँ देखे जा सकते हैं। यहाँ गोल्फ़ कोर्स के मैदान देखे जा सकते हैं। इसके किनारे पर अनेक देशों के लोग सैर करने के लिए आते हैं। यहाँ पानी में खेले जाने वाले अनेकों गेम हैं। यहाँ पहुँचने के लिए बोट का सहारा लेना पड़ता है। रास्ते में छोटे–छोटे निर्जन द्वीप, सघन जंगल से आच्छादित दिखलाई देते हैं। आश्चर्य तो उस समय हुआ, जब हम लंबे सैर–सपाटे के बाद समुद्र तट पर पहुँचे, तो छिन्दवाड़ा के ख्यातिलब्ध वकील श्री सिरपुरकर जी से हमारी भेंट हो गई। वे भी अपने पारिवारिक–मित्रों के साथ यहाँ आए हुए थे। एक अजनबी टापू पर जब अपने किसी स्थानीय व्यक्ति को देखते हैं, तब प्रसन्नता का पारावार बढ़ जाता है।

सुबह के वही आठ बज रहे हैं। होटल कालोजिन स्यूर मेर के प्रांगण में तीन बसें लगाई जा चुकी हैं। आज हमें टामारिन्ड वाटर–फ़ॉल, ट्रू ओ सेर्फ़ ज्वालामुखी, शामारेल कलर्ड अर्थ तथा गंगा तालाब देखने के लिए जाना है। हमारी बस गन्ने के खेतों के बीच से गुज़रती हुई, उस ओर बढ़ चली थी।

टामारिन्ड वाटरफ़ॉल ***(Tamarind Water-fall)*** - चारों ओर ऊँचे–ऊँचे पहाड़ों की शृंखला, सघन वन और चारों तरफ़ हरियाली की बिछी चादर, शांत वातावरण में बहुरंगी पक्षियों के कलरव को सुनकर आप प्रसन्नता से भर उठते हैं। शीतल हवा के झोंके आपके बदन से लिपट जाते हैं। इस सुरमयी वातावरण में पहुँचकर ऐसा लगता है कि आप किसी परी लोक में आ पहुँचे हैं। मॉरीशस के दक्षिण–पश्चिम में स्थित 'आँरिएता' (Henrietta) गाँव के पास स्थित यह जलप्रपात काफ़ी ऊँचाइयों से नीचे गिरता है। काफ़ी बड़ी संख्या में पर्यटक यहाँ पहुँचते हैं। जी भर के इस प्रपात को निहारने के बाद हमारी बस ट्रू ओ सेर्फ़ की ओर बढ़ती है।

यहाँ पहुँचने के बाद आप अपने आपको खुली वादियों में पाते हैं। चारों तरफ़ ऊँचे–ऊँचे पहाड़, सघन

वृक्षों से आच्छादित, नीले आकाश की आगोश में समाई अपरिमित खामोशी, शीतल हवा के झोंके जो आपके शरीर से लिपट जाते हैं। मन प्रसन्नता से भर उठता है। करीब दो हज़ार फ़ीट गहराई में झांकने में एक बड़ा गड्ढा दिखलाई पड़ता है, कहते हैं यहीं पर कभी ज्वालामुखी धधका था। एक बड़ा–सा घेरा दिखलाई देता है। बताते हैं कि यह 80 मीटर गहरा और 300–350 फ़ीट चौड़ा है। काफ़ी दिनों तक धधकते रहने के बाद यह ज्वालामुखी शांत हो गया। भूगर्भ शास्त्रियों का कहना है कि भविष्य में फिर सक्रिय हो सकता है। इस अद्‌भुत नज़ारे को देखने के बाद हम उस ओर बढ़ते हैं, जहाँ एक और ज्वालामुखी भड़का था और उसमें से निकलने वाला लावा ठंडा होकर एक बहुत बड़े भूभाग में फ़ैला हुआ है, जिसके सात रंग अलग दिखलाई पड़ते हैं।

शामारेल कलर्ड अर्थ (***chamarel coloured earth)*** – इस अजूबे का नाम चार्ल्स एनत्वान दे शाज़ाल दे शामारेल (Charles Antoine de chazal de Charmarel) के नाम पर रखा गया है। बताते हैं कि यहाँ कभी ज्वालामुखी धधका था, जो अब शांत हो चुका है। इससे लावा बहकर चारों तरफ़ फैल गया, जो अब ठोस चट्‌टान के रूप में सात अलग–अलग रंगों में इसकी परतें देखी जा सकती है। दुनिया का यह एकमात्र स्थान है, जहाँ मिट्‌टी के सात रंग स्पष्ट देखे जा सकते हैं। पास ही में एक विशाल बगीचा है, जिसमें रंग–बिरंगे फूल खिलते हैं, जो एक अनूठा वातावरण निर्मित करता है। इस बगीचे में दो कछुए देखे जा सकते हैं। उनके आकार–प्रकार को देखकर अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि उनकी उम्र लगभग पचास साल की हो सकती है। दुनिया का अजूबा होने के कारण यहाँ विभिन्न देशों के पर्यटक इसकी छटा देखने आते हैं।

गंगा तालाब – समुद्र से लगभग 1900 फ़ीट की उँचाई पर स्थित गंगा तालाब सावान ज़िले में स्थित है। इस तालाब को कभी 'परी तालाब' के नाम से जाना जाता था, जिसे बदलकर 'गंगा तालाब' कर दिया गया। इसके पीछे एक दिलचस्प वाकया है। सन् 1897 की महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर झम्मनगिरि गोसाग्ने पाल मोहनप्रसाद ने एक सपना देखा कि 'जाह्नवी' का अवतरण इस तालाब में हो गया है। उन्होंने अपने सपने के बारे में यहाँ के पंडित गिरि गोसाई को बताया। इसके ठीक पश्चात् शिवरात्रि के पावन पर्व पर (1898) परी तालाब का नाम बदलकर 'गंगा–तालाब' कर दिया गया। कहते हैं कि इस तालाब की अपरिमित गहराई है, जिसे अब तक कोई नाप नहीं पाया है।

गंगा तालाब की ओर जाने से पूर्व एक बगीचे में 33 मीटर अर्थात् 108 फ़ीट की शिव–प्रतिमा स्थापित की गई है। वडोदरा (गुजरात–भारत) के सूरसागर झील में 108 फ़ीट ऊँची शिव प्रतिमा सन् 2007 में स्थापित की गई थी, उसी के तर्ज पर यहाँ भी 108 फ़ीट ऊँची शिव–प्रतिमा की स्थापना की कल्पना को साकार किया गया है। इसी शिव प्रतिमा के समीप ही माँ दुर्गा भवानी की 108 फ़ीट ऊँची मूर्ति बनाई गई है।

गंगा तालाब के किनारे एक भव्य मंदिर की स्थापना की गई है, जिसमें विराजित शिवलिंग की गिनती भारत से बाहर तेरहवाँ ज्योतिर्लिंग के रूप में की जाती है। एक पट्‌ट पर इस आशय का उल्लेख किया गया है। मंदिर के प्रांगण में शेषनाग मंदिर, श्री विष्णु–लक्ष्मी मंदिर, राधा–कृष्ण मंदिर, सूर्यदेव की विशाल प्रतिमा (रथ पर आरूढ़ प्रतिमा, जिसमें सात घोड़े जुते हुए हैं), श्री साईं प्रतिमा, श्री हनुमान जी की मूर्ति स्थापित है। इस मंदिर के अहाते से लगकर गंगा तालाब है, जो इस मंदिर की शोभा में चार चाँद लगाता है। तालाब का पानी निर्मल–साफ़ देखा जा सकता है।

मॉरीशस में तीन सौ सनातन मन्दिर हैं। हर त्योहार यहाँ बड़ी धूम–धाम से मनाया जाता है। शिवरात्रि के पावन पर्व पर तो भारत के अनेक लोग मॉरीशस पहुँचते हैं और तेरहवें ज्योतिर्लिंग की पूजा–अर्चना कर अपने को धन्य मानते हैं। रामायण यहाँ बहुत लोकप्रिय है। हिंदी के साथ–साथ अन्य भाषाओं में भी स्नातकोत्तर स्तर पर यहाँ शिक्षण होता है। अब तक हज़ारों विद्यार्थी हिंदी एवं संस्कृत की पढ़ाई कर चुके हैं। सन् 1834 में

लगभग 70 हिन्दुओं का एक जत्था ठेके पर मज़दूरी करने के लिए मॉरीशस पहुँचा था। 1930 में भारतीयों का अंतिम जत्था यहाँ पहुँचा। 1834–1930 के मध्य चार लाख पचास हज़ार भारतीय मूल के लोग मॉरीशस पहुँचे, जिनमें से एक लाख सत्तर हज़ार वापस भारत लौट गए। जो यहाँ रच–बस गए थे, उनके पास केवल तन पर कपड़े और मन–मस्तिष्क में भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान का भण्डार था। उन्होंने अपनी इस विरासत का फैलाव किया और इस तरह हम देखते हैं कि मॉरीशस की धरती पर बसने वाला हर आदमी अपने आपको भारतवंशी कहलाने से पीछे नहीं रहता। हालाँकि मॉरीशस की आधिकारिक भाषा अंग्रेज़ी है, इसलिए यहाँ का सारा प्रशासनिक कामकाज अंग्रेज़ी में होता है। शिक्षा प्रणाली में अंग्रेज़ी के साथ फ़्रांसीसी का भी इस्तेमाल किया जाता है। फ़्रांसीसी भाषा हालाँकि मीडिया की मुख्य भाषा है, चाहे वह प्रसारण की हो या मुद्रण की। इसके अलावा व्यापार और उद्योग के मामलों में भी मुख्यतः फ़्रांसीसी ही प्रयोग में आती है। सबसे व्यापक रूप में देश में मॉरीशियन 'क्रियोल' भाषा बोली जाती है। जब कोई हिन्दुस्तानी यहाँ के निवासियों से हिंदी में बात करता है तो वे भी हिंदी में बोलते–बतियाते हैं। प्रायः सभी के नाम भारतीय परम्परा के अनुसार रखे जाते हैं। प्रकृति के अद्‌भुत नज़ारों और भारतीयों की यश–गाथा को देख–सुनकर हम अत्यंत प्रफुल्लित मन से वापिस लौटते हैं, फिर अगले पड़ाव की ओर अग्रसित होने के लिए।

26 मई 2014 को हमने टामारिन्ड जलप्रपात, ट्रू ओ सेर्फ़ (Trou aux cerfs) तथा शामारेल कलर्ड अर्थ (chamarel coloured earth) का भ्रमण किया था, जिसके मोहक सम्मोहन से अभी हम उभर भी नहीं पाए थे कि रात्रि के लगभग आठ बजे श्री राजनारायण गति (कला एवं सांस्कृतिक मंत्रालय में सलाहकार) डॉ. अलका धनपत (वरिष्ठ प्राध्यापिका, महात्मा गांधी संस्थान) का आगमन होता है। राष्ट्रपति भवन के सूत्रों से प्राप्त जानकारी देते हुए आपने बतलाया कि मॉरीशस के राष्ट्रपति महामहिम माननीय श्री कैलाश प्रयाग जी ने मुलाकात के लिए दोपहर एक बजे का समय निर्धारित किया है। निश्चित ही यह खबर पाकर हम प्रफुल्लित थे और अपने आपको गौरवान्वित महसूस कर रहे थे कि हमें देश के प्रथम पुरुष से मुलाकात करने का सुअवसर प्राप्त होने जा रहा है।

कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई जाने लगी। इसमें यह तय किया गया कि हम सुबह शीघ्र तैयार होकर पहले महात्मा गांधी संस्थान, मोका जाएँगे और संस्था की निदेशिका डॉ. श्रीमती विद्योत्मा कुंजल जी से तथा वहाँ कार्यरत सभी प्राध्यापकों से मुलाकात करेंगे। इस कार्यक्रम की रूपरेखा श्रीमती अलका धनपत जी ने पहले से बना रखी थी। सुबह आठ बजे हम सबने चाय और नाश्ते का लुफ़्त उठाया। होटल के प्रांगण में बसें लगाई जा चुकी थीं। हम ठीक नौ बजे मोका के लिए प्रस्थान करते हैं। हरी–भरी वादियों के बीच से सरपट दौड़ती हमारी बस महात्मा गांधी संस्थान के प्रांगण में प्रवेश करती है। महात्मा गांधी संस्थान की आधारशिला भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी जी तथा मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम जी ने 3 जून 1970 में रखी थी। इसी के साथ ही विश्व कवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर संस्थान की भी स्थापना की गई थी, जिसमें भारतीय कला, संस्कृति, संगीत, नृत्य कला आदि का समावेश किया गया था। इस संस्था में सभी भारतीय भाषाओं के पाठ्यक्रम शुरू किए गए हैं, जो हम सभी के लिए गौरव का विषय है।

कुछ चुनिंदा मित्रों को साथ लेकर डॉ. अलका धनपत जी ने संस्था की निदेशिका डॉ. श्रीमती कुंजल जी से मुलाकात करवाई। इस मुलाकत के दौरान मैंने अपना कहानी–संग्रह 'महुआ के वृक्ष' तथा 'तीस बरस घाटी', श्री कैलाश पंत जी (मंत्री–संचालक हिंदी भवन भोपाल) की किताब 'संस्कार, संस्कृति और समाज', श्रीयुत कृष्ण कुमार यादव जी (निदेशक 'डाक' इलाहाबाद) की पुस्तकें 'सोलह आने सोलह लोग',

'अभिलाषा' (काव्य–संग्रह), 'जंगल में क्रिकेट' तथा श्रीमती आकांक्षा यादव की 'चांद पर पानी' (बाल गीत) इस निवेदन के साथ दी कि वे कृपया इन किताबों को अपने संस्थान के वाचनालय में स्थान देंगी। श्री संतोष परिहार जी ने भी अपना उपन्यास 'रंगरेजवा' की एक प्रति दी। उन्होंने आश्वासन दिया कि सारी किताबें वाचनालय में रखी जाएँगी, जो मॉरीशस के लोगों को आपसे जोड़े रखने के लिए 'सेतु' का कार्य करेंगी।

एक बड़े हॉल में मोका के सभी प्राध्यापक गणों से हमारी मुलाकात करवाई गई। एक के बाद एक प्राध्यापक सामने आता और अपना परिचय देता। सभी के मन में एक अजीब–सा उत्साह था। उत्साह इस बात को लेकर कि उनके पूर्वज भारत से ही यहाँ आए थे। इसी क्रम में भ्रमण–दल का एक–एक व्यक्ति सामने आता और अपना परिचय देता। अपना परिचय देते हुए अन्त में मैंने राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिंदी भवन भोपाल के मंत्री–संचालक श्री कैलाशचन्द्र पंत जी तथा वर्धा समिति से इस यात्रा के संयोजक श्री नरेन्द्र दण्ढारे जी के प्रति आभार व्यक्त किया और कहा कि आपके अथक प्रयासों से यह यात्रा संभव हो पाई है। मैं आभारी हूँ डॉ. अलका धनपत का, जिन्होंने इस मुलाकात के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई। मुझे अत्यधिक प्रसन्नता इस बात को लेकर भी हो रही है कि मैं अपने हिन्दुस्तानी भाईयों और बहनों से मिल रहा हूँ, जो हिंदी के उन्नयन और प्रचार–प्रसार में अपना योगदान दे रहे हैं। आप लोगों की मिलनसारिता, सहृदयता, सहजता और सरलता देखकर मुझे यह कभी महसूस नहीं हुआ कि मैं भारत से बाहर मॉरीशस में रह रहा हूँ।

कार्यक्रम के समापन के पश्चात् वहाँ अल्पाहार तथा चाय की व्यवस्था की गई थी। सभी ने साथ मिलकर चाय और नाश्ते का आनन्द लिया। समय अपने पंख फैलाए द्रुत गति से उड़ा चला जा रहा था। दिन के साढ़े बारह कैसे बज गए, पता ही नहीं चल पाया। अब हमें राष्ट्रपति भवन की ओर रवाना होना था।

वहाँ पहुँचने के बाद हमसे कहा गया कि अन्दर जाने से पहले अपने–अपने मोबाइल तथा कैमरे बाहर रख दें। ऐसा करने के बाद हमने एक आलीशान–सुसज्जित हॉल में प्रवेश किया। दोनों ओर करीने से कुर्सियाँ लगी हुई थीं। सभी के मन में अपार प्रसन्नता के साथ उत्सुकता भी थी कि उनकी मुलाकात मॉरीशस के राष्ट्रपति महामहिम श्री कैलाश प्रयाग जी से होने जा रही है। माननीय महोदय के आने से पूर्व हॉल में उपस्थित प्रख्यात साहित्यकार एवं राष्ट्रपति जी के सलाहकार श्री राज हीरामन जी दिशा निर्देश दे रहे थे। आपके अलावा हॉल में पुलिस के दो उच्च अधिकारी तथा एक गनमैन उपस्थित था। मुझे ही नहीं, प्रायः सभी के मन में यह प्रश्न ज़रूर तैर रहा होगा कि काश वे भारत के राष्ट्रपति जी से मिलने जाते, तो वहाँ का नज़ारा कुछ और ही होता। बड़े–बड़े आला–अफ़सर, संगीनो से लैस पुलिस के अधिकारी वहाँ तैनात होते और बारी–बारी से सभी की गहन तलाशी ली जाती। तब कहीं जाकर वे हॉल में प्रवेश कर पाते। लेकिन यहाँ का नज़ारा कुछ और ही था। प्रवेश–द्वार पर न तो किसी की तलाशी ली गई और न ही उन्हें संदेह भरी दृष्टि से देखा गया। बस इतना ज़रूर कहा गया कि वे अपने कैमरे और मोबाइल एक टेबल पर रख दें और हॉल में शांति के साथ बैठ जाएँ। सभी की निगाहें उस विशाल दरवाज़े पर टिकी हुई थीं, जहाँ से माननीय महोदय जी का आगमन होना था।

ठीक एक बजे वह दरवाज़ा खुलता है। महामहिम उससे निकलकर अपने निर्धारित स्थान की ओर बढ़ते हैं। आपके आगमन के साथ ही हॉल में उपस्थित सभी अभिवादन की मुद्रा में हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। वे मुस्कुराते हुए आगे बढ़ जाते हैं और सभी का अभिवादन कर अपनी कुर्सी पर विराजित हो जाते हैं। उनका सौम्य व्यक्तित्व और चेहरे पर छाई प्रसन्नता का उद्वेग देखकर मन गदगद हो उठता है।

श्री राज हीरामन जी, महामहिम जी को संबोधित करते हुए, हम लोगों के आगमन और प्रयोजन के बारे में बतलाते हैं और अत्यंत ही विनम्रता के साथ निवेदन करते हुए कहते हैं कि भारतीय शिष्ट मंडल आपका स्वागत करना चाहता है। आपकी स्वीकृति पाकर

अभ्युदय बहुउद्देशीय संस्था, वर्धा के अध्यक्ष श्री वैद्यनाथ अय्यर जी महामहिम को शॉल ओढ़ाकर श्रीफल भेंट में देते हैं। उसके बाद संस्था के महासचिव–संयोजक श्री नरेन्द्र दण्ढारे जी महामहिम को पुष्प–माला पहनाकर अभिनन्दन करते हैं। इसी क्रम में श्री संतोष परिहार जी अपनी एक कृति महामहिम को समर्पित करते हैं।

इस अभिनन्दन समारोह के पश्चात् श्री हीरामन जी महामहिम जी से निवेदन करते हुए अनुनय करते हैं कि वे शिष्टमंडल को संबोधित करें। महामहिम जी ने शिष्ट मंडल का स्वागत करते हुए भोजपुरी में अपना संक्षिप्त उद्‌बोधन देते हुए हिंदी के उन्नयन और प्रचार–प्रसार के लिए निरन्तर प्रयास करते रहने के लिए आग्रह किया। आपके ओजस्वी उद्‌बोधन के पश्चात् श्री हीरामन जी ने आपसे अनुरोध करते हुए कहा कि शिष्टमंडल आपके साथ ग्रुप फ़ोटो लेना चाहता है। आपने कितनी सहजता के साथ स्वीकृति प्रदान कर दी, यह बात हमारे सबके मन को प्रफुल्लित कर गई।

आज मंगलवार है। निश्चित ही आज का दिन हम सबके लिए मंगलकारी सिद्ध हुआ कि हमारी मुलाकात मॉरीशस के राष्ट्रपति महामहिम श्री कैलाश प्रयाग जी के साथ हुई। इससे पूर्व हमारी मुलाकात उन हिंदी सेवियों से हुई जो महात्मा गांधी संस्थान से जुड़कर गौरव गाथा लिख रहे हैं।

मॉरीशस यात्रा पर आए हुए 120 घंटे, 7200 मिनट, 432000 सेकंड कैसे बीत गए, पता ही नहीं चल पाया। हर दिन एक नया दिन और एक नयी रात होती। आँखों में मीठे हसीन सपने पल रहे होते। रोज़ प्रकृति के नित–नूतन शृंगार को खुली आँखों से देख प्रफुल्लित हो उठता। मन में कई विचार अंगड़ाइयाँ लेने लगते। साथ यात्रा कर रहे लोग, पहले तो अजनबी से मिले, फिर इतने घुल मिल गए, मानो बरसों की पहचान रही हो। यह बात अलग है कि यात्रा की समाप्ति के बाद लोग एक–दूसरे को कितना याद रख पाते हैं, कितना नहीं। लेकिन कुल मिलाकर एक पूरा परिवार–सा बन चुका था। लोग अपनी सुनाते, दूसरों की सुनते और इस तरह दिन–पर–दिन कैसे पंख लगाकर उड़ते चले गए, पता ही नहीं चल पाया।

आज यात्रा का यह छठा दिन है। यह खास दिन था हम सबके लिए। आज का दिन भाषणों का दिन था, कविता–पाठ करने का दिन था। सब अपनी–अपनी तैयारी के साथ आए थे। सभी ने कुछ–न–कुछ लिख रखा था सुनाने के लिए। इसके साथ ही एक खास बात यह भी जुड़ गई थी कि मॉरीशस के नामी/गिरामी साहित्यकारों से मुलाकात जो होने जा रही थी। यात्रा संयोजक श्री नरेन्द्र दंढारे जी ने काफ़ी समय पूर्व उन्हें ईमेल/पत्र/फ़ोन द्वारा इस कार्यक्रम में शरीक होने के लिए आमंत्रण दे रखा था। डॉ. अलका धनपत जी (वरिष्ठ प्राध्यापिका), श्री रामदेव धुरंधर जी (ख्यातिलब्ध साहित्यकार), श्री राज हीरामन जी (वसंत तथा रिमझिम पत्रिका के वरिष्ठ सह–संपादक तथा पत्रकार) तथा श्री राजनारायण गति (कला एवं संस्कृति मंत्रालय में सलाहकार) से जब–तब मुलाकातें हो जाया करती थी। वे अपनी उपस्थिति से कार्यक्रम की रूपरेखा बनाते और उसमें अथक सहयोग प्रदान करते।

दिन के ग्यारह बज रहे हैं। अब हमें इन्तज़ार था अतिथियों के आगमन का। एक के बाद एक आते रहे, नरेन्द्र भाई उनका भाव–भीना स्वागत करते। फिर अन्य लोगों से मिलते–बतियाते और अपने निर्धारित स्थान पर जा बैठते। ठीक ग्यारह बजे श्री वैद्यनाथ अय्यर की अध्यक्षता में कार्यक्रम आरंभ हुआ। श्री राज हीरामन मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। डॉ. श्रीमती वंदना दीक्षित ने मंच का कुशलतापूर्वक संचालन किया। वे बारी–बारी से वक्ताओं को बुलाती, वे अपना वक्तव्य देते हैं। चूँकि वक्ताओं की सूची काफ़ी लंबी थी और दोपहर के दो बजने वाले थे, भोजन का भी समय हो चला था। अतः श्री हीरामन जी के उद्‌बोधन के पश्चात् इस सत्र का समापन करना पड़ा।

श्री हीरामन जी ने अपने वक्तव्य में हिंदी की महत्ता को रेखांकित करते हुए कहा कि वे हिंदी में बोलते हैं, हिंदी में अपना साहित्य रचते हैं, हिंदी का सम्मान करते हैं और हिंदी से ही सम्मानित होते हैं। हिंदी उनकी शान है, संस्कृति का आधार है, हमारी पहचान है। महात्मा

गांधी पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि बापू हमारे देश में केवल एक बार सन् 1901 में कुछ दिन के लिए आए थे। उनके आगमन के साथ ही हमारी सोच में व्यापक परिवर्तन आया। हमने अपना स्वरूप पहचाना। हमने गांधी को अपने हृदय में स्थान दिया, जबकि वे भारत से थे, उन्हें वहाँ केवल सरकारी नोट में स्थान दिया गया। अपनी घनीभूत होती पीड़ाओं को शब्दों का जामा पहनाते हुए उन्होंने एक लंबा वक्तव्य दिया।

श्री नरेन्द्र दण्ढारे जी ने विषयों का चयन बड़ी सूझ–बूझ से किया था, वे इस प्रकार थे : विदेश में भारत, हिंदी के विकास में विदेशी/प्रवासी लेखकों की भूमिका, वैश्वीकरण की हिंदी प्रसार में भूमिका, मॉरीशस में हिंदी शिक्षा में युवाओं का योगदान, युवा पीढ़ी में हिंदी बोध, जनभाषा और हिंदी।

भोजन के पश्चात् दूसरे सत्र का आगाज़ हुआ। मॉरीशस के तत्कालीन कला एवं संस्कृति मंत्री माननीय श्री मुकेश्वर चुनी जी के विशिष्ट आतिथ्य में डॉ. श्रीमती कुंजल (निदेशिका महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस) के मुख्य आतिथ्य एवं श्री वैद्यनाथ अय्यर की अध्यक्षता में कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। श्रीमती काले एवं डॉ. सुश्री भैरवी काले ने भारतीय परम्परा का निर्वहन करते हुए स्वागत गीत गाया।

कुछ प्रतिभागी अपना वक्तव्य देने में शेष रह गए थे, उन्होंने अपने आलेखों का वाचन किया। इस क्रम में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के संयोजक श्री गोवर्धन यादव ने अपना आलेख 'हिंदी–देश से परदेश तक', संस्था सचिव श्री नर्मदा प्रसाद कोरी, बुरहानपुर के श्री संतोष परिहार, खण्डवा के श्री शरदचन्द्र जैन ने अपने–अपने आलेखों का वाचन किया।

मंचासीन सभी विद्वतजनों के संभाषण के पश्चात् विशिष्ट अतिथि माननीय श्री मुकेश्वर चुनी के हाथों सभी विद्वतजनों, पत्रकारों, साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों को सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम के समापन के बाद गोवर्धन यादव की अध्यक्षता में श्री संतोष परिहार ने काव्य–मंच का संचालन किया, जो देर रात तक चलता रहा। कवि–गोष्ठी के समापन पर श्री नर्मदा प्रसाद कोरी ने सभी उपस्थित विद्वतजनों के प्रति आभार व्यक्त किया।

दूसरे सत्र की शुरुआत के समय डॉ. अलका धनपत जी, आकाशवाणी मॉरीशस के कार्यक्रम अधिकारी को साथ लेकर आईं। उन्होंने मुझे सभागृह से बुलाकर इस बात की सूचना दी कि आपका साक्षात्कार रिकॉर्ड किया जाना है। मेरे अलावा रिकॉर्डिंग श्री दण्ढारे जी एवं संतोष परिहार जी की होनी थी, लेकिन परिहार जी का नाम उसी क्षण मंच पर आलेख वाचन के लिए पुकारा गया। शायद इसी वजह से उनका साक्षात्कार रिकॉर्ड नहीं हो सका। पास ही के एक हॉल का चुनाव किया गया, जहाँ शोरगुल बिल्कुल भी न था। मेरे साक्षात्कार के बाद उन्होंने मुझे बधाइयाँ देते हुए कहा कि आपका साक्षात्कार बहुत ही जानदार रहा है और इसका प्रसारण 7 जून 2014 को होगा। चूँकि हमें 29 मई को मॉरीशस से रवाना हो जाना था। अतः मैंने उनसे निवेदन किया था कि यदि कार्यक्रम अधिकारी इसकी रिकॉर्डिंग की एक प्रति मुझे भेज देंगे, तो उत्तम रहेगा। जैसा कि उन्होंने बतलाया भी था कि इसे आप अपने कंप्यूटर पर भी सुन सकते हैं, लेकिन मेरी इसमें इतनी दक्षता नहीं थी कि उसे सुन सकूँ। आप सभी जानते ही हैं कि सरकारी नियमों के अधीन ऐसा किया जाना संभव नहीं है। बाद में ईमेल के ज़रिए डॉ. धनपत ने मुझे उसके प्रसारित हो जाने के बाद सूचना प्रेषित की। मैंने उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हुए आभार माना कि उन्होंने कम समय में मेरे लिए इतना परिश्रम किया।

मन की स्थिति बड़ी विचित्र होती है। वह कब प्रफुल्लित होकर तितली बनकर आसमान में जा उड़ेगा और कब उदासी की चादर ओढ़कर गुमसुम–सा रहने लगेगा, कोई नहीं जान पाता। समझ में नहीं आता कि अक्सर ऐसा क्यों होता है हम सबके साथ? इस पर यदि गंभीरता से विचार करें तो काफ़ी हद तक समझ में आने लगता है। यह स्थिति मेरे लिए ही नहीं बन पड़ी थी, बल्कि हम सबके साथ कुछ ऐसा ही हो रहा था।

मैंने अपने मित्र से इसका कारण जानना चाहा, तो सिर्फ़ इतना कहा कि आज मन कुछ उदास–उदास–सा है। बस। ऐसा क्यों है, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।

दरअसल इस उदासी का मुख्य कारण यह था कि हम विगत छः दिनों से मॉरीशस में रहते हुए मौज–मस्ती कर रहे थे। सुबह जल्दी उठ जाते। सारे नित्य क्रियाकलाप से निजात पाकर नाश्ते की टेबल पर जा पहुँचते। और नाश्ते के बाद कैंटिन में बनी 'रामप्यारी' का घूँट हलक के नीचे उतारते और बीच–बीच में बतियाते जाते। चाय तो आखिर चाय ही होती है, लेकिन 'रामप्यारी चाय' का अपना स्वाद है और पीने पर मिलने वाला आनन्द ही कुछ और है। चाय हलक के नीचे उतर भी नहीं पाती है कि श्वेता जी (गाइड) की आवाज़ गूंजने लगती है। वे सभी से निवेदन करती हैं कि जल्दी से बस में जाकर बैठ जाइए। आज हमें फ़लाँ–फ़लाँ स्थान पर जाना है और हम सब शीघ्रता से वहाँ से रवाना हो जाते। और फिर पहुँच जाते किसी सुरम्य वादियों की गोद में। आज इन सब पर विराम लगने वाला है। आज दोपहर बाद हमें होटल कालोजिन स्यूर मेर को अलविदा कह देना है। अलविदा कह देना है इम्तियाज़ को, मनोज को, विनय को, नीलेश को, आनन्द को और राजेन्द्र को, जो बड़े मनुहार से नाश्ता करवाते और रामप्यारी पिलवाते। अलविदा कहना होगा श्वेता जी को, जो हमारे साथ विगत छः दिनों से बनी रहती थीं। जब वे किसी दूसरी बस में जा बैठती तो लोग उनसे मनुहार करते कि वे कृपया हमारी बस में आकर बैठें। श्वेता जी एक है और हर व्यक्ति चाहता है कि वे उनकी बस में बैठें। कैसे संभव है कि एक व्यक्ति हर जगह उपस्थित रह सके। इतने कम दिनों में इतना अनुराग। अब आप ही बतलाएँ कि कैसे हम अपने मुँह से उन्हें अलविदा कहेंगे? शायद अब समझ में आया होगा आपको कि मन की स्थिति आज क्यों डावाँडोल है? इतने कम समय में वे हमारे अपने से हो गए थे। उनका शिष्टाचार के साथ मिलना, बतियाना, उनका सेवाभाव देखकर मन ने सहज रूप से उन्हें परिवार का एक सदस्य बना लिया था। आज उन सबसे दूर चले जाना है। यह तो सभी जानते थे कि वीज़ा की अवधि समाप्त हो जाने के बाद, उन्हें जाना ही होगा, लेकिन कम समय में किसी को अपना बना लेना या बन जाना, कितना सहज होता है और जब बिछुड़ने की बात आती है, तो स्वाभाविक है कि मन उदासी से घिरने लगता है। यह भी उतना ही सच है कि एक लंबे अंतराल के बाद अपना परिवार याद आने लगता है। याद आने लगते हैं अपने परिजन, भाई–बहन, पत्नी, बच्चे, नाती–पोते। वे भी तो हमें याद कर रहे होते हैं। आखिर उनके पास भी तो लौटना होगा हमें। सारे क्रियाकलापों के लिए पहले से समय का निर्धारण कर लिया गया था कि कब और कितने बजे हमें होटल छोड़ना है, दोपहर का खाना कहाँ खाना है और कितने बजे हमें सर शिवसागर रामगुलाम एयरपोर्ट पर पहुँच जाना है। कब हमारा विमान उड़ान भरेगा और कब हमें छत्रपति शिवाजी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुँचना है। मुंबई के किस स्टेशन से हमारी ट्रेन रवाना होगी।

मैं इस यात्रा का समापन इस प्रकार करने के पक्ष में बिल्कुल भी नहीं था, बल्कि यह कहें बिल्कुल भी नहीं हूँ, क्योंकि मैंने सोच रखा था कि मैं आपको इस अध्याय को बंद कर देने से पहले उन स्थान पर ले जाना चाहूँगा, जहाँ जाकर मैंने अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति प्राप्त की थी। इन जगहों का उल्लेख पहले भी किया जा सकता था, लेकिन आलेख के साथ वहाँ के छायाचित्रों को लगा देने से आलेख ज़्यादा विस्तार लेने लगा था। अतः मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि इनका उल्लेख बाद में भी किया जा सकता है। यदि इसका उल्लेख अभी नहीं हुआ, तो फिर बाद में होना संभव भी नहीं लग रहा था।

फ़ोर्ट आदेलाइड ऑफ़ सिटाडेल (***Fort Adelaide Of Citadelle***) – सन् 1814 में नेपोलियन की हार के बाद फ़्रांस और ब्रिटिश सरकारों के बीच हुई संधि के अनुसार सीमा का निर्धारण किया गया। उस समय के तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर सर विलियम एम. निकोले ने इंग्लैण्ड के राजा विलियम IV की पत्नी 'आदेलाइड' के नाम पर मॉरीशस में स्थित पर्वत जिसे पेचित मोंटाइन (Petite Montagne) के नाम से जाना

जाता है, बनाया, जिसे बाद में मॉरीशस को सौंप दिया गया था। इसकी आधारशिला 1830 में रखी गई थी, जो दस वर्षों में बनकर तैयार हुआ। इस किले के निर्माण में भारतीय वास्तुकारों के अलावा कई मज़दूर काम पर लगाए गए थे। यह किला समुद्र सतह से 240 फ़ीट की उँचाई पर स्थित है। कहा जाता है कि इस किले से बंदरगाह तक जाने के लिए सुरंग बनाई गई थी, ताकि किले में रसद तथा हथियारों की आपूर्ति की जा सके। इस किले की बुर्ज पर जाकर आप शहर का विहंगम दृश्य देख सकते हैं।

बेल मा बीच (***Belle Mare beach***) – मॉरीशस के पूर्व में स्थित यह समुद्री तट अपने में नीलापन लिए हुए दूर–दूर तक फैला हुआ है। इसके तट पर वृक्षों का फैलाव आप देख सकते हैं। किसी ने मुझे बतलाया कि इसके तटों पर मॉरीशसवासी अपने पूर्वजों के नाम पर या फिर किसी बच्चे के जन्मदिन पर, या फिर शादी की वर्षगाँठ पर वृक्षारोपण करते हैं। यह परम्परा काफ़ी समय से चली आ रही है। हवा के झोंकों पर नाचते वृक्ष तथा यहाँ छाई हरियाली आपका मन मोह लेती है। सफ़ेद रेत दूर–दूर तक फैली नज़र आती है। अक्सर यहाँ भीड़ कम नज़र आती है, लेकिन छुट्टियों के दिन बड़ी संख्या में लोग यहाँ पहुँचते हैं। बोट की सवारी करते हैं और बलून के ज़रिए (Parasailing) आकाश में जा उड़ते हैं।

यदि आप आकाश में उड़ना ही चाहते हैं, तो आपको उड़ने के पंख किराए पर मिल जाएँगे। जैसे ही आप इस बीच में प्रवेश करते हैं, एक काउण्टर बना हुआ है। यहाँ दो प्रकार की व्यवस्था की गई है। पहला बलून के माध्यम से हवा में सैर करने के लिए आपको नौ सौ मॉरीशियन रुपये का टिकट कटवाना होता है। आप दो लोग एक साथ उड़ना चाहते हैं, तो इसके लिए आपको पन्द्रह सौ रुपयों का टिकट लेना होता है। दूसरा – आप समुद्र में उतरकर कोरल, मछलियाँ या अन्य समुद्री जीव देखना चाहते हैं, तो आपको बारह सौ रुपयों का टिकट खरीदना होता है और आप यदि समुद्री–जीवों के साथ फ़ोटो खिंचवाना चाहते हैं, तो आपको दो हज़ार मॉरीशियन रुपये चुकाना होता है। इसमें आपको इसके प्रायोजक सी.डी. बनाकर देते हैं, जिसे आप बाद में भी देख सकते हैं।

इस रोमांचक यात्रा में यदि वर्धा निवासी श्री के.बी. पडौडे जी की चर्चा न की जाए, तो शायद बात अधूरी रहेगी। वे प्राचार्य होकर सेवामुक्त हुए हैं। एकदम स्वस्थ हैं, लेकिन उन्हें पैरों की तकलीफ़ हैं, अतः छड़ी के सहारे चलना होता है। उनकी उम्र लगभग 72–75 के करीब है, लेकिन उनका जोश देखने लायक होता था। जब कोई उन्हें सहारा देने के लिए हाथ बढ़ाता तो मुस्कुराकर कहते – भैया कब तक साथ दोगे मेरा? और वे आगे बढ़ जाते। बलून के सहारे आकाश में उड़ने की ज़िद, तो कभी समुद्र की गहराइयों में उतरने की ज़िद करते। कहते क्या मैं बूढ़ा हो गया हूँ? मैं क्यों नहीं उतर सकता समुद्र में और क्यों नहीं उड़ सकता बलून के साथ? शायद वे यह नहीं जानते थे कि उम्र के इस पड़ाव पर मनचाहा करना उनके लिए उचित नहीं होगा। काफ़ी समझाने–बुझाने के बाद आखिर वे मान जाते हैं। उन्होंने तो अपनी टिकट भी कटवा ली थी। बाद में उन्हें रकम वापिस दे दी गई।

28 जून शाम को खाना खाने के साथ ही हमें सूचित कर दिया गया था कि कल सुबह दस बजे हमें होटल छोड़ देना है। बसें हमारा इंतज़ार कर रही थीं। अब हम 'डेल्ही ताज' होटल की तरफ़ बढ़ रहे थे, जहाँ हमने पहली बार खाना खाया था। खाना खाने के बाद हमारे पास काफ़ी समय बच रहा था। उसका हमने भरपूर फ़ायदा उठाया। हमारी बस अब ब्लू बे मरीन (Blue Bay Marine) की तरफ़ रवाना हो रही थी।

ब्लू बे मरीन पार्क में ग्लास बॉटम बोट ट्रिप – यह समुद्री पार्क मेबर्ग के समीप दक्षिण–पूर्व में प्वेंत ज़ेरोम (Pointe Jerome) के करीब 353 मीटर में फ़ैला हुआ है। सुन्दर और आकर्षक समुद्र के तट देखते ही बनते हैं। दूर–दूर तक सफ़ेद रेत की चादर बिछी हुई है। इस मुलायम रेत की चादर पर चलते हुए आप बोट तक पहुँचते हैं। चार–पाँच बोट हमने ले ली थीं। इन बोटों के तल काँच के बने हुए थे। बोट जब समुद्र की

सतह पर आगे बढ़ती है, तो नाविक उसे उन स्थानों पर रोकते हुए धीरे–धीरे आगे बढ़ता है, जहाँ से आप समुद्र तल में समाए कोरल और किस्म–किस्म की वनस्पतियों को देखकर दंग रह जाते हैं। इन वनस्पतियों के बीच रंग–बिरंगी मछलियों तथा कछुओं को तैरते हुए देखा जा सकता है। बोट एक स्थान से चलकर दूसरे स्थान पर आकर थम–सी जाती है। हर बार नज़ारा कुछ और होता है। इससे पहले हमने–आपने कई समुद्र देखे होंगे, लेकिन कभी उसके गर्भ में छिपे अनमोल खज़ाने को नहीं देख पाए होंगे, इन्हें देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। (बोट के तल में लगे कांच से आप समुद्र के गर्भ में छिपी विभिन्न वनस्पतियाँ–कोरल देख सकते हैं)

समुद्र के इस रोमांचक तट पर सैर करते हुए कब पाँच बज गए, पता ही नहीं चल पाया। अब हम सर शिवसागर रामगुलाम अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे की तरफ़ बढ़ चले थे। सुश्री श्वेता जी अब भी हमारे साथ ही चल रही थी। एयरपोर्ट पहुँचने के बाद वे सब से मिल रही थीं, वे सभी से फिर कभी आने का निमंत्रण देती हैं, लेकिन उनकी आँखों से अविरल आँसू बह रहे होते हैं। उनकी रुलाई देखकर सभी के मन भारी हो चले थे। मात्र एक सप्ताह की मुलाकात थी हमारी उनसे, लेकिन कब वह अपनत्व में ढल जाती है, आपको पता ही नहीं चल पाता। शायद यही कारण था कि उनकी आँखें भर आयी थीं।

अपना सामान तुलवाने तथा अन्य औपचारिकताओं को पूरा करने में लगभग दो घंटे से अधिक समय लग जाता है। सारी प्रक्रिया पूरी होने के बाद हमें प्रतीक्षालय में बैठना होता है। रात के ग्यारह बजे हमारी फ़्लाइट है। समय धीरे–धीरे रेंगता रहता है। रौशनी में जगमगाता हुआ हवाई अड्डा, सभी का मन मोह लेता है। तरह–तरह की सजी हुई दुकानें पर्यटक को अपने सम्मोहन में बाँध लेती हैं, लेकिन दाम इतना अधिक होता है कि आप चाहकर भी वस्तुओं को खरीद नहीं पाते। इसके पीछे केवल एक तर्क यह होता है कि जितनी भी चीज़ें आप वहाँ देख रहे होते हैं सारी की सारी चीज़ें भारत से निर्यात की गई होती हैं। अतः यात्री खरीद करने में तनिक भी दिलचस्पी नहीं दिखलाता।

रात्रि के ग्यारह बजने वाले हैं। सारे लोग अब विमान पर सवार होने के लिए चल पड़ते हैं। अपनी निर्धारित सीट पर आकर बैठ जाते हैं। ठीक ग्यारह बजे हमारा विमान रन–वे पर दौड़ने लगता है और पल भर में आकाश से बातें करने लगता है। पूरे छः घंटे की उड़ान के बाद वह छत्रपति शिवाजी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर जा उतरता है। इस तरह इस यात्रा का समापन होता है।

इस अद्‌भुत और रोमांचकारी यात्रा को संपन्न करवाने के लिए मैं पुनः आभार प्रकट करता हूँ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भोपाल के मंत्री–संचालक माननीय श्री कैलाशचन्द्र पंत जी के प्रति, जिन्होंने न सिर्फ़ हमें आर्थिक संबल प्रदान करवाया, बल्कि हमारा हौसला बढ़ाया और हिंदी के उन्नयन और प्रचार–प्रसार के लिए एक शुभावसर प्रदान करवाया। मैं आभारी हूँ श्री नरेन्द्र दण्ढारे जी के प्रति, जिन्होंने इस यात्रा के कार्यक्रम की कसी हुई रूपरेखा बनाई, उन्होंने न सिर्फ़ अपने ज़िले को जोड़ा, बल्कि अन्य प्रांतों के लोगों को भी अपने साथ जोड़ा और इस तरह एक सफल आयोजन वे देश के बाहर कर सके। मैं आभारी हूँ मॉरीशस की डॉ. श्रीमती अलका धनपत जी का, जिन्होंने आकाशवाणी मॉरीशस के लिए मेरा साक्षात्कार लिया। मैं आभारी हूँ प्रख्यात साहित्यकार श्री राज हीरामन जी का, जिन्होंने महामहिम राष्ट्रपति जी से भेंट करवाने में अहम भूमिका का निर्वहन किया तथा अपना साक्षात्कार रिकॉर्ड करवाने में आपने सहज ही अनुमति प्रदान की। मैं आभारी हूँ माननीय श्री रामदेव धुरंधर जी का (जिनको मैं पढ़ रहा था) साथ ही उन तमाम साहित्यकारों का जिनका परिचय मंच के द्वारा मुझे प्राप्त हुआ। मैं आभारी हूँ श्री स्वप्निल तथा नीतू सिंह का जो हमारे साथ छाया की तरह बने रहे।

निःसंदेह जब मैं यहाँ से रवाना हुआ था, उस समय तक मेरे हाथ रीते थे, लेकिन वहाँ से लौटा तो मैं मालदार हो चुका था। मुझे न सिर्फ़ अपरिमित संतोष की

प्राप्ति हुई है, बल्कि उन तमाम लोगों से मिलकर एक पारिवारिक इकाई का सदस्य बन जाने का भी गौरव प्राप्त हुआ है। उन तमाम लोगों की स्मृतियाँ सदा मेरा पथ आलोकित करती रहेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

goverdhanyadav44@gmail.com

स्मृति में कोरिया

– डॉ. विजया सती
दिल्ली, भारत

जब हम अपने ही देश में या फिर सुदूर विदेशों में पर्यटक की तरह जाते हैं, तो जैसे रंगीन विज्ञापनी पैमफ़लेट्स के भुलावे में जी आते हैं। किसी भी स्थान या देश के जीवन को देखने–जानने–समझने के लिए थोड़ा लंबा अरसा तो चाहिए ही। केवल देहरी छू आना ठीक से जानना नहीं होता, शेष चाहे कुछ भी होता हो।

सच है कि पैकेज टूर के ज़माने में चाहत भी सीमित होकर रह गई है, किन्तु सुखद है कि हमें दक्षिण कोरिया को पैकेज टूर की सरसरी नज़र के स्थान पर भरपूर देखने और जानने का अवसर मिला! यह तब संभव हुआ जब मैं राजधानी सिओल में विदेशी भाषाओं की प्रसिद्ध हान्कुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ के हिंदी विभाग में एक वर्ष पढ़ाने के लिए गई।

फ़रवरी की खुशनुमा–सी दोपहर थी, जब इंचन हवाई अड्डे से हान्कुक विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के सहायक के साथ, लंबा रास्ता तय कर हम दक्षिण कोरिया की राजधानी सिओल शहर के लगभग केंद्र में स्थित विश्वविद्यालय परिसर पहुँचे। उन्मुक्त प्रवेश द्वार से भीतर आकर प्रोफ़ेसर्स बिल्डिंग के पास आ उतरे। इस आठ मंज़िला इमारत में कॉन्फ्रेंस हॉल, डाइनिंग हॉल, बैंक के अतिरिक्त प्रोफ़ेसर्स के अध्ययन कक्ष भी हैं तथा सातवीं और आठवीं मंजिल पर प्रोफ़ेसर्स आवास हैं, छात्र ने जानकारी दी। अगले एक वर्ष यही हमारा ठिकाना रहा। तमाम देशों के प्रोफ़ेसर पड़ोसी बने – वियतनाम, ताईवान, थाईलैंड, ब्राज़ील, अमेरिका, जापान, कनाडा, चीन आदि–आदि।

दोपहर में हम आवास में पहुँचे थे, कुछ व्यवस्थित हुए, फिर पहले दिन की शाम के लिए निमंत्रण था, ठंडी हवाओं के साथ सड़क–पार भर की दूरी पर स्थित भारतीय रेस्तराँ गंगा में। विभागाध्यक्ष प्रोफ़ेसर हावन कू ने पिछले भारतीय प्रोफ़ेसर डॉ. शर्मा की विदाई और हमारा स्वागत यहीं आयोजित किया था। रेस्तराँ लद्दाख के रिनचेन जेम्स चलाते हैं , कोरियन पत्नी है उनकी।

ठेठ भारतीय भोजन के स्वाद का सुख – समोसा, चाय, छोले, पुलाव, परांठा और गुलाब जामुन! विभागीय सहयोगियों से परिचय के क्षण सिओल में पहला दिन रोचक तरीके से अंत की ओर पहुँचा।

दो कमरों का हमारा सुव्यवस्थित आवास इस मायने में ख़ास था कि शयन कक्ष की बड़ी खिड़की घनी आबादी को पार कर, पर्वत शृंखलाओं के पीछे से उदित होते सूर्य के दर्शन कराती थी। बैठक की एक ओर बड़ी खिड़की पूरे बाज़ार का दृश्य सम्मुख रखती थी और बैठक के दूसरे सिरे पर बहुत ही संक्षिप्त किन्तु समग्र रसोईघर बना था, खाने की मेज़ भी साथ ही जमी थी।

लिफ़्ट से नीचे उतरकर परिसर में स्थित कुछ पुरानी और कुछ नई इमारतों में हम कक्षा लेने जाते, बस पांच–सात मिनट की चहलकदमी करते हुए। पहली ही बात जो परिसर में मुझे बहुत भाई वह यह थी कि कोई भारी भरकम लौह द्वार विश्वविद्यालय की चौकसी नहीं करता था। गार्ड ज़रूर थे, किन्तु हम कई ओनों–कोनों से विश्वविद्यालय में भीतर–बाहर आ–जा सकते थे।

सिओल में हमारी पहली घुमक्कड़ी एक पैकेज के कारण ही संभव हुई, किन्तु वह केवल भाग–दौड़ वाली उड़ती–उड़ती यात्रा से कितनी अलग थी! मेल पर

अचानक सन्देश मिला कि हम एक ख़ास यात्रा में आमंत्रित हैं, जो विदेशियों को कोरिया से परिचित कराने के उद्देश्य से आयोजित की जा रही है। इस नए देश–परिवेश में अभी बहुत जानकार नहीं थे, ऊपर से प्रश्नाकुल भारतीय मन, इस निमंत्रण का क्या अर्थ है? क्यों? कहाँ? कैसे जाना है – प्रश्नों की झड़ी के बीच आयोजकों ने बताया कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट और भारतीय दूतावास के सौजन्य से वे हम तक पहुँचे हैं, यह 'हेलो इंचन' कार्यक्रम है, जिसमें दो दिन हमें कोरिया के 'इंचन' क्षेत्र से मिलवाया जाएगा। अंततः बहुत किन्तु–परन्तु के बाद हम इस यात्रा में शामिल हुए, जो हमारे कोरिया प्रवास की मधुरतम स्मृतियों में से एक है!

एक छोटे समूह के रूप में यह यात्रा जिस ऑफ़िस से शुरू हुई, वहाँ एक रोचक खेल के तहत सभी विदेशी यात्रियों को एक कोरियाई साथी से मिलवाया गया, जिसने पूरी यात्रा में प्रतिपल पथ–प्रदर्शक की भूमिका बखूबी निभाई। कोरिया में अंग्रेज़ी सहज भाषा नहीं है, विशेष रूप से इस यात्रा में हम जिस द्वीप पर गए, वहाँ के जीवन में अंग्रेज़ी का कोई प्रवेश न था, हमने नदी किनारे बने जिस पुराने किले का इतिहास जाना, उसे बताने वाली गाइड की भाषा कोरियन ही थी। हमें जिन दो पारंपरिक कोरियाई विशेषताओं से रू–ब–रू कराया गया, उनके प्रस्तुतकर्ता अंग्रेज़ी जानते ही नहीं थे। ऐसे में हमारे कोरियाई साथी कितने महत्त्वपूर्ण हो उठे थे, अंदाज़ा लगाया जा सकता है। यात्रा की शुरुआत में ही कोरियाई भाषा और अपनी भाषा के प्रचलित शब्दों का आदान–प्रदान रोचक था। हमने अपने साथी को सिखाया धन्यवाद और नमस्कार जिनके कोरियाई रूपांतर थे 'खाम्सा हम्निदा' और 'अन्यंग हासेयो'।

बस में ही ठेठ कोरियाई नाश्ते के बाद (हमसे पूछ लिया गया था शाकाहारी हैं या मांसाहारी) इस यात्रा में हमें सबसे पहले प्रसिद्ध कोरियाई 'राईस केक' और सुन्दर नमूनों से सज्जित रंग–बिरंगी घास की चटाई बनाना सिखाया गया। सब काम एकदम व्यावहारिक तौर पर हमारे हाथ में सामग्री देकर हमसे ही करवाए गए। और जो हम सबने बनाया, वह हमें सस्नेह भेंट भी किया गया। दोपहर बाद यात्रा का महत्त्वपूर्ण हिस्सा शुरू हुआ। यह था इंचन द्वीप के प्रसिद्ध बौद्ध मंदिर में सबका संक्षिप्त प्रवास। यहाँ सबने भिक्षु गुरु से संवाद किया। उन्हें कोरियाई भाषा में 'सिनिम' कहते हैं। वे कोरियाई भाषा में बौद्ध मंदिर के रहन–सहन और विशेष दृष्टि को बताते रहे , जिसका अनुवाद किया जाता रहा। बौद्ध मंदिर की विशेष 'टी सेरेमनी' हुई। रात का अत्यंत सादा भोजन, कुछ संवाद और लकड़ी के फ़र्श पर लगे गद्दों पर जल्दी ही सोने का आग्रह! बहुत सवेरे मंदिर में परिक्रमा, व्यायाम और ध्यान के बाद सिनिम के साथ निकटवर्ती पगडंडियों से होकर उच्च पर्वतीय अंचल की सैर, इस समय सिनिम ने सभी की जिज्ञासाओं का समाधान दिया।

कोरिया प्रवास में मुझे अक्सर यह बोध होता रहा कि इस देश के लिए विदेशी कुछ ख़ास महत्त्व ज़रूर रखते हैं। उनके लिए यहाँ ख़ास शटल बसें चलाई गई हैं, जो लोकप्रिय पर्यटन स्थलों पर बहुत ही कम कोरियन वॉन (कोरियाई मुद्रा) के टिकट पर विदेशियों को घुमाती हैं। परम्परागत कोरियाई गाँव की सैर तो निःशुल्क ही कराती हैं, केवल अपना पासपोर्ट दिखाना है, नियत समय पर बस में सवार हो जाइए, गंतव्य पर उतरिए, नियत समय पर बस वापस घर की ओर! पूरा देश जैसे अपने प्राकृतिक, सांस्कृतिक वैभव से प्रवासी विदेशियों को अवगत कराने को उत्सुक बना रहता है। कोई त्यौहार हो, कोई मेला, कोई सार्वजनिक अवकाश, सिओल के विदेशी खूब सूचनाएँ पाते हैं कि वे आएँ और उसका हिस्सा बनें! सिओल में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की भरमार रहती है और राजधानी अपनी नृत्य–संगीत कला से विदेशियों के जीवन को भर देने को जैसे आतुर रहती है। आज के समय में जिसे 'हैंड्स ऑन' अनुभव कहते हैं, वही दिया जाता है, उनका परिधान पहनकर देखो, उनका नृत्य सीखो, उनके वाद्य बजाओ! चांदनी रात में राजमहल देखने का अवसर हो या नववर्ष की पूर्व संध्या, विदेशियों को निमंत्रण दिया जाता है कि वे पारम्परिक

कोरियन वेशभूषा पहन कर आएँ और निःशुल्क प्रवेश पाएँ!

सिओल से बाहर 'सुवान' नाम का स्थान सैमसंग कम्पनी में विदेशी नागरिकों का मुख्य आवास है। इनमें भारतीयों की संख्या अधिक है। कोरिया में भारतीय छात्र और अध्यापक भी पर्याप्त मात्रा में हैं। भारतीय छात्र जब किसी भी छात्रवृत्ति पर कोरिया आते हैं, तो सबसे पहले कोरियाई भाषा का अध्ययन करना उनके लिए अनिवार्य होता है। पढ़ाई और जीवन दोनों को सरल बनाने के लिए यह ज़रूरी भी है। कोरिया में अध्ययन का माध्यम कोरियन है। कोरियाई छात्र भी जब किसी विदेशी भाषा का अध्ययन करते हैं, तो उस देश में जाकर भाषिक अभ्यास को दुरुस्त करना उनके पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा होता है।

कोरिया में एक और बात ने मेरा ध्यान खींचा, जब कोई कोरियाई कंपनी अपने कर्मचारी को भारत भेजना चाहती है, तो वह उसे सही तरीके से तैयार करती है। ऐसी दो विशेष हिंदी कक्षाएँ लेने का मौका मुझे मिला। ह्यूंदई कंपनी के लिए काम करने भारत जाने वाले दो छात्र और कोरियन बैंक की भारत में खुलने वाली शाखा में काम करने जाने को तैयार पांच महिलाएँ जिन्होंने कॉलिज स्तर पर कभी हिंदी का अध्ययन किया था, विशेष हिंदी कक्षाओं में आए। भारतीय भाषा, परिवेश, जीवन, रहन–सहन, खान–पान, सभी कुछ तो जान लेना चाहते हैं, कोरियाई भारत जाने से पहले! कंपनी भी आरंभिक तैयारी की पतवार हाथ में देकर उनकी जीवन नौका को भारतीय जनजीवन के सागर में उतार देती है। उनकी हिम्मत तथा 'गट्स' की पहचान करती है। यह सुविचारित योजना का ही हिस्सा होता है कि वे भारत पहुँचें और अपनी राह स्वयं तलाशें – घर, भोजन, भ्रमण सभी की।

भारत जितनी तो नहीं, पर कोरिया की आबादी भी सघन है। एक सुव्यवस्था और उसे बनाए रखने का भाव यहाँ भरपूर है। कोरिया एक छोटा देश है, चार से पांच घंटे में देश के ठण्डे पहाड़ी उत्तरी भाग से दक्षिणी समुद्र तट जा पहुँचते हैं। पूरे देश को समान रूप से सुन्दर बनाए रखने की कोशिश पग–पग पर ज़ाहिर होती है।

भव्य इमारतों के बावजूद प्रकृति का संरक्षण हर कोरियाई के लिए मूल्यवान है। वाहनों की संख्या देश भर में बहुत है, किन्तु नदी किनारे सुन्दर साइकल ट्रैक और पैदल पथ बनाए गए हैं। तमाम कोरियाई स्वास्थ्य के प्रति बहुत सजग हैं। मोटापा बहुत कम है। अधिकांश लोग चुस्त–दुरुस्त दिखाई देते हैं। रेल में साइकल ले जाई जा सकती हैं, यहाँ तक कि भूमिगत स्टेशनों में सीढ़ियों के साथ–साथ साइकल चढ़ाने–उतारने की खास पट्टी भी बनी है। अपनी साइकल न भी ले जाना चाहें, तो स्थल विशेष पर किराए की साइकल उपलब्ध होती हैं, समयानुसार चलाएँ और वापस लौटा दें! छोटे–छोटे पहाड़ों पर चढ़ने वाले लोग, जहाँ तक हो सके, साइकलों पर ही जाते हैं। पानी के सुंदर बहाव, नहर–फव्वारे–झरने मनमोहक रूप में जगह–जगह विराजमान हैं। रात को झिलमिलाती रोशनी का सौन्दर्य भी कुछ निराला रहता है। सबके ऊपर सुन्दर है, पतझड़ के बाद रंग बदलते पत्ते! सुनहरी–रक्तिम–पीत आभा देखने के लिए तमाम लोग पहुँचते हैं 'सान' यानी पर्वतों की ओर, जिनमें प्रसिद्ध हैं नाम्सान, सोराक्सान और 'सा' यानी बौद्ध मंदिरों के प्रांगण में, जो एकांत पर्वतीय अंचलों की गोद में बसे हैं, जिनमें विख्यात हैं बुल्गुक्सा, जोग्येसा।

मस्त और प्रसन्न दिखाई देने वाले, खेलकूद में लगे रहने वाले कोरियाई छात्रों से बातचीत के क्रम में यह अनुभव हुआ कि आज कोरियाई युवा कुछ हतोत्साहित भी हैं, कारण रोज़गार के अवसर कम हो रहे हैं। पढ़ाई का खर्च बढ़ रहा है। उनका जीवन परम्परा से कुछ टूटता–सा भी दिखाई देता है। इसका बड़ा प्रमाण 'फ़ास्ट फूड' के लिए युवा वर्ग की बढ़ती रुचि में दिखाई पड़ता है। जबकि विश्वविद्यालयों के सभी भोजनालय पारंपरिक कोरियाई भोजन ही परोसते हैं, जिसे सभी छात्र शौक से खाते नज़र आते हैं। किन्तु तब भी अपने ही विश्वविद्यालय के पास यह भी देखा कि शुक्रवार शाम को, सप्ताहांत की खुशी में लगभग

भारतीय–सा जो स्ट्रीट फूड कोरियाई युवा एन्जॉय करते हैं, उसके कूड़े का ढेर शनिवार–इतवार को यूँ ही पड़ा रहता, सफ़ाई कर्मी अवकाश पर रहते हैं! यह पिछली पीढ़ी की उस दृष्टि से बिलकुल भिन्न था, जो इतनी सफ़ाई पसंद करती है कि राह चलते चिमटी से कूड़ा उठाने तक का काम करती रहती है!

भोजन में तीनों समय चावल, कोरियाई जीवन का अभिन्न अंग है। अभी सभी कोरियाई परिवार एकल नहीं हुए हैं। विवाह से पहले अधिकतर बच्चे माता–पिता के साथ रहते हैं। आम कोरियाई शांत और मौन बने रहते हैं, बहुत गपशप करने का रिवाज़ कम है। भाषा की बाधा भी यहाँ सम्वादमयता को कम करती है। इसलिए जो कोरिया आए, थोड़ी तैयारी के साथ आए!

vijayasatijuly1@gmail.com

अंडमान का पानी : काला, हरा या नीला

– श्री जीतेन्द्र 'जीत'
राजस्थान, भारत

मैं जीवन भर यात्रा करना चाहता हूँ, मगर कहीं पहुँचना नहीं चाहता। मसला मंज़िलों का नहीं, रास्तों का होना चाहिए। मंज़िलें तो क्षणिक हैं, यात्राएँ राहों की होती हैं। यात्राएँ, जो हमें ज़िन्दगी के फ़लसफ़ों का तजुर्बा देती हैं, जीना सिखाती हैं, जीवंत करती हैं।

विभिन्न परिवेशों की यात्रा करना जैसे अपने अंतर्मन की यात्रा करना। इन यात्राओं में विभिन्न स्थानों की जानकारियाँ, लोगों से बातचीत, वेशभूषा, खानपान, रहन–सहन और आब–ओ–हवा को समझने के साथ–साथ हम स्वयं से भी मुख़ातिब होते हैं। हमारा मन भी यदा–कदा 'क्रिस्तोफ़र कोलंबस' हो जाता है और दुनिया भर की तमाम जानकारियों के लिए इधर–उधर भटकने लगता है। कुछ यात्राओं के बाद ही जान लिया कि हम जैसे कुछ लोग तन और मन दोनों से यायावर होते हैं। इन यात्राओं का प्रयोजन कुछ जानकारियाँ उपलब्ध करना भर ही नहीं है, बल्कि इन यात्राओं के दौरान मन में उठे कुछ अनसुलझे–अनकहे विचारों से भी खुद को अवगत करवाना है।

'काले पानी की सज़ा...' ये शब्द आपने कभी–ना–कभी ज़रूर सुना होगा। वर्षों पहले अंडमान में दी जाने वाली कष्टमय सज़ाओं के कारण उसे काला पानी नाम दिया गया था। अंडमान और निकोबार भारत का दक्षिणतम हिस्सा है, जो बंगाल की खाड़ी में कई द्वीप समूहों के रूप में स्थित है।

राजस्थान में गर्मियों के दिन थे। एक बार फिर नई यात्रा शुरू करनी थी। तय हुआ कि इस बार अंडमान जाएँगे और वो भी पानी के जहाज़ से, मगर मौसम की अनिश्चितता के कारण ये यात्रा हमें हवाई जहाज़ से ही करनी पड़ी। दिल्ली से कोलकाता और फिर वहाँ से पोर्ट ब्लेयर। कोलकाता से निकलने के कुछ समय बाद ही गंगा के सुंदर वन डेल्टा को नज़दीक से देखा। कई अँगुलियों वाले पंजे की तरह नदी भी छोटी–छोटी जल धाराओं में बंटकर बंगाल की खाड़ी में समाहित हो जाती है। ये विशाल नज़ारा हवाई जहाज़ से भी कुछ वैसा ही दिखाई दिया जैसा अक्सर नक़्शे और गूगल मैप पर दिखता है।

हवाई जहाज़ से क़रीब दो घंटे तक दूर–दूर तक विशाल समुद्र और सिर्फ़ समुद्र नज़र आता है और कुछ भी नहीं दिखता। कभी–कभी बीच में कोई विशाल जहाज़ या सफ़ेद लहरें नज़र आ जाती हैं। आगे, कुछ समय बाद समुद्र का पानी सलेटी से कुछ हरा होने लगा। आस–पास कई छोटे–बड़े द्वीप नज़र आए। सभी द्वीप समूह घने वनों से आच्छादित थे, उन्हीं के कारण पानी हरा नज़र आ रहा था। बेहद खूबसूरत नज़ारा, सोचता हूँ, इन द्वीपों पर कितने ही ऐसे स्थान और जीव–जंतु होंगे जो अभी तक मानव जगत से अछूते रहे

हैं। अंडमान–निकोबार केंद्र शासित प्रदेश में तकरीबन छोटे–बड़े 575 द्वीप समूह हैं, उनमें से लगभग 40 पर ही स्थायी मानव निवास है। अंडमान क्षेत्र के ज़्यादातर द्वीपों पर आना–जाना सार्वजनिक है, मगर निकोबार जाने के लिए प्रशासन से खास अनुमति की ज़रूरत होती है, क्योंकि यह क्षेत्र पर्यटन के लिए प्रतिबंधित है। थोड़ा आगे बढ़ने पर कुछ द्वीप समूहों पर मानव बस्तियाँ दिखाई देने लगीं और जंगल समाप्त होने लगे। राजधानी पोर्ट ब्लेयर और आसपास के द्वीपों पर जनसंख्या का घनत्व अधिक है। यहाँ ज़्यादातर लोग बंगाल, बिहार, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु से हैं। कुछ राजस्थान, गुजरात और पूर्वोत्तर राज्यों से भी हैं। यहाँ की मुख्य भाषा बांग्ला, हिंदी और तमिल है। पोर्ट ब्लेयर हवाई अड्डा भारतीय नेवी का है, अतः यहाँ कुछ यात्री जहाज़ दिन के समय ही आते–जाते हैं।

पोर्ट ब्लेयर शहर में हम एक छोटे मगर साफ़–सुथरे गेस्ट हाउस में रुके जो वहाँ के एक पर्यटन अधिकारी ने अपने घर में ही बनवाया था। उनकी पढ़ाई भी जयपुर से हुई थी अतः वो मेरे अच्छे दोस्त बन गए। यहाँ स्थित प्रसिद्ध सेलुलर जेल में हमें 15 अगस्त के कार्यक्रम में प्रतिभाग करने का अवसर मिला। भारतीय स्वंत्रता आन्दोलन के कई योद्धाओं ने यहाँ कड़ी यंत्रणाएँ झेली थीं। उन्हीं की याद में हर वर्ष 15 अगस्त को यहाँ एक कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है, जिसमें यहाँ रहे सभी कैदियों के परिजन को दुनियाभर से आमंत्रित करके बुलाया जाता है। जब हम केन्द्रीय हॉल में लगे कैदियों के फ़ोटो देख रहे थे, तब वहाँ मौजूद कई वृद्ध महिलाओं की भरी आँखें भी देखीं। इन नम आँखों में कमज़ोरी या मजबूरी नहीं, बल्कि गर्व का एहसास था। जवान ज्योति, फाँसी घर, यंत्रणा स्थल, कैदियों की कोठरियाँ और कैदियों द्वारा कोल्हू चलाने वाला स्थान आदि सभी स्थलों पर आज भी एक अजीब–सी ख़ामोशी महसूस होती है। यहाँ शाम को लाइट और साउंड शो के माध्यम से उस समय के इतिहास को फिर से जीवंत किया जाता है। फैज़ल हक खैराबादी, योगेन्द्र शुक्ल, बटुकेश्वर दत्त, बाबुराव, विनायक सावरकर, लियाकत अली, सचिन्द्रनाथ सान्याल और ऐसे अनेक स्वतंत्रता सेनानी यहाँ लम्बे समय तक कैदी रहे थे। उनकी कोठरियों में आज भी आज़ादी की कविताएँ लिखी मिलती हैं। यहाँ रहते हुए, लाख यंत्रणा सहते हुए भी उन्होंने अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ़ अपना ज़बरदस्त विरोध कायम रखा था। इन जगहों का मात्र इतिहास याद करने से ही दिल–दिमाग काँपने लगते हैं।

अगले दिन हमने बाराटांग की यात्रा प्रारम्भ की... हम अंडमान के उत्तरी क्षेत्र को दक्षिणी क्षेत्र से जोड़ने वाले सबसे बड़े मार्ग पर चल रहे थे। ये मार्ग ज़्यादातर भूमि पर है... बाक़ी दो द्वीपों को मिलाने के लिए जैटी (बड़े आकार का जहाज़ जिस पर बस, गाड़ी आदि को यात्रियों सहित एक द्वीप से दूसरे पर पहुँचाया जाता है) का उपयोग किया जाता है। यह रोड एक घने जंगल से भी गुज़रती है, जहाँ भारत की चंद आदिम जनजातियों में से एक 'जारवा' (जरवा) का निवास स्थान भी है। जहाँ से जंगल का मुख्य भाग शुरू होता है, वहाँ वाहनों की जाँच की जाती है। वाहन सुबह 6 और 9 बजे की शिफ़्ट में ही यहाँ से जंगल में प्रवेश कर सकते हैं। इसके बाद ये रास्ता दिनभर के लिए बंद कर दिया जाता है। कुछ गाड़ियाँ तो रात से ही गेट पर खड़ी हो जाती हैं। हम 9 बजे वाले बैच में जंगल की तरफ़ चले। माइक की सहायता से सभी को सूचित किया जा रहा था कि रास्ते में गाड़ी नहीं रोकें, शीशे बंद रखें, ओवरटेक नहीं करें, जारवा मिलें तो उन्हें कुछ भी खाने के लिए नहीं दें आदि। खैर, लगभग 10 बजे 50–60 गाड़ियाँ एक लम्बी क़तार में आगे बढ़ने लगीं। रोड के दोनों सिरों पर बेहद घना जंगल था। जंगल में पाँच कदम की दूरी तक भी कुछ नज़र नहीं आ रहा था। ड्राइवर ने बताया कि जारवा जंगल में यहीं एक–दो कदम की दूरी पर ही छिपे रहते हैं और गाड़ियों से फेंके गए सामान को ढूँढ़ते रहते हैं। मैं गौर से आँखें लगाए ऐसे ही किसी जारवा को देखने की कोशिश कर रहा था। रास्ते में रोड की मरम्मत का कुछ काम चल रहा था। हमने देखा कि कुछ कारीगर और मज़दूर काम में तेज़ी से लगे हैं और उनके

चारों तरफ़ बड़ी–बड़ी बंदूकें और लकड़ियाँ लिए कुछ पुलिस वाले भी घूम रहे हैं। ये जारवा से इन मज़दूरों की सुरक्षा के लिए खड़े थे। सोच रहा था कि क्या वाकई ये जाति इतनी नुकसानदेह हो सकती है।

ड्राइवर ने हमारा ध्यान आगे एक मोड़ की तरफ़ दिलाया जहाँ दो 'जारवा' सामने से आ रहे थे। गहरा रंग, घुंघराले बाल और कुछ पत्तों की मालाओं को छोड़कर पूरी तरह नग्न शरीर। हाथ में तीर–कमान और दांतली जैसा हथियार था। वहाँ कुछ जाम–सा लग गया। सभी गाड़ी वाले लोग उन्हें करीब से देखना चाहते थे। आपस में बातचीत करने पर उनके दांत नज़र आए, जो बेहद ही सफ़ेद थे। यह तो स्पष्ट था कि इस जंगल से यह व्यस्ततम रोड बनाने से इनके जनजीवन और संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। हमारे भ्रमण के कुछ समय बाद ही सर्वोच्च न्यायलय ने इस मुख्य मार्ग के उपयोग को लेकर कड़े दिशा–निर्देश जारी किए थे। अंडमान–निकोबार द्वीपों पर छह जनजातियाँ रहती हैं – जारव, अन्डमानिज, निकोबारी, ओंगे, शोम्पेन और सेंतिनेलेस। इनमें अन्डमानिज और कुछ क्षेत्रों के निकोबारियों को छोड़कर सभी आज भी बाह्य समाज से अपरिचित और भौगोलिक अलगाव के साथ रहते हैं। कार निकोबार में रहने वाली ओंगे जनजाति विलुप्ति की कगार पर है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या मात्र 101 ही बची है। एक सिद्धांत के अनुसार ये जनजातियाँ आज से 60 हज़ार वर्ष पहले अफ्रीका महाद्वीप से यहाँ आई थी और तभी से इनकी मूल संस्कृति में बदलाव नहीं आया है। हालांकि, एंथ्रोपोलोजिकल विभाग लगातार इनके स्वास्थ्य और अन्य आवश्यक सुविधाओं के लिए कार्य कर रहा है।

एक जगह जैटी से गाड़ी सहित हमने समुद्र की धारा को पार किया। कुछ समय बाद हम एक बड़े द्वीप पर पहुँचे। यहाँ से छोटी–छोटी बोट लेकर द्वीप के साथ–साथ समुद्र में चलते गए। हर एक बोट में 10–12 लोग थे और सभी ने सेफ़्टी उपकरण पहने थे। बीच–बीच में कुछ छोटे द्वीप भी दिख रहे थे, जिनमें से कुछ पर मगरमच्छ धूप सेंक रहे थे। नदियों के विपरीत यह खारे पानी के मगरमच्छ थे, पानी में बोट के आस–पास भी बहुत से मगरमच्छ तैर रहे थे। कुछ लोग डरने लगे और बोट में अन्दर सिमट कर बैठ गए, मैं भी सोच रहा था कि ये लाइफ़ जैकेट हमें डूबने से तो बचा सकता है, मगर क्या मगरमच्छों से भी बचा पाएगा।

खैर, दोहपर दो बजे तक हम एक और द्वीप पर पहुँचे। आस–पास मंग्रोव का घना जंगल था। द्वीप पर उतरने के बाद भी काफ़ी दूर तक हम चार–पांच फ़ीट ऊँचे लकड़ी के पुलनुमा रास्ते पर ही चलते रहे। बोट के चालक ने बताया कि यदि वो बोट को कुछ और अन्दर ले जाता है, तो ज्वार–भाटे के कारण कुछ समय के बाद बोट कीचड़ में फँस जाएगी।

लगभग 4–5 किलोमीटर की पैदल यात्रा मंग्रोव के ऊपर–ऊपर ही करनी पड़ी, आगे हम द्वीप के बीच एक खुले मैदान में पहुँच गए। कुछ बस्तियाँ और खेत नज़र आ रहे थे, खेतों में धान की बुआई की जा रही थी। सोचता हूँ... आखिर कैसे ये लोग यहाँ रहते हैं पूरी दुनिया से कटकर? फिर दोबारा सोचता हूँ... पूरी दुनिया भी तो रहती है इस प्रकृति से कटकर। बाराटांग, यहाँ स्थित चूना पत्थरों की गुफ़ाओं के कारण विश्व प्रसिद्ध है। गुफ़ा में चूना पत्थरों के कारण विभिन्न तरह की आकृतियाँ बन गई हैं। तकनीकी भाषा में इन्हें *Stalactites* और *Stalagmites* कहते हैं। इन्हीं घटनाओं के कारण ये गुफ़ाएँ धीरे–धीरे अपनी आकृति बदलती रहती हैं। ऐसा इनमें आसपास के क्षेत्रों से आने वाले चूना के पानी के कारण होता है। पानी यहाँ ऊपर से टपकता है और सूखने पर उसमें विद्यमान चूने से विभिन्न आकृतियाँ बनने लगती हैं।

देश के अन्य हिस्सों यथा उत्तराखंड के पाताल भुवनेश्वर में भी यही प्रक्रिया होती है, मगर स्थितियाँ थोड़ी अलग हैं, साथ ही जहाँ उत्तराखंड में स्थित ऐसी गुफ़ाओं को अलौकिक कहानियों के साथ जोड़ दिया जाता है, उसके विपरीत यहाँ ऐसी गुफ़ाएँ सिर्फ़ प्राकृतिक आश्चर्य भर है।

अगले दिन हमने पोर्ट ब्लेयर के एक हिस्से पर स्थित राजीव गांधी विज्ञान संग्रहालय, स्थानीय बाज़ार

और आसपास के कुछ समुद्रीय तट देखे। कुछ तटों पर मगरमच्छ से खतरे की स्पष्ट चेतावनियाँ लिखी गई थीं। मैं समझ पाने में असमर्थ था कि आखिर शहर के बीचों–बीच भी मगरमच्छ यूँ बेख़ौफ़ कैसे आ सकते हैं?

रात को होटल से पैदल ही घूमने निकला। निकलते वक़्त होटल मालिक ने ज़्यादा दूर नहीं जाने की चेतावनी दी थी। मैंने सोचा जंगली जानवरों के डर के कारण कह रहे हैं, मगर उनका इशारा इस वक़्त अचानक तेज़ी से होने वाली बारिश से था। टहलते–टहलते दो घंटे बीत गए, सड़कें शांत थीं, समुद्र की ठंडी हवा ज़हन को रुहानी बना रही थी। मुझे मुख्य स्थानों के विपरीत यूँ बाज़ार और गलियों में घूमना ज़्यादा भाता है। जैसा सोचा वैसा ही हुआ और अचानक बारिश होने लगी। भीगने से बचने के लिए एक चाय की दुकान में खड़ा हो गया। यहाँ चाय बनाने का तरीका अनूठा था। एक सूती कपड़े के बड़े से बैग में लगभग आधा किलो चाय डालकर उसे टी–बैग की तरह बड़े से बर्तन में इस्तेमाल किया जा रहा था। जब भी कोई ग्राहक आता उसी में से कुछ पानी लेकर चाय बनाई जाती। बनी हुई चाय कुछ लाल रंग की दिखाई देती है।

यहाँ मुझे एक नेवी अधिकारी मिले, बताया कि यहाँ विश्राम के लिए उनका जहाज़ रुका हुआ है। वो भी मेरी तरह टहलने को निकले थे और फँस गए। जब मैंने उन्हें नेवी में अपने अल्पकालीन कैरियर के बारे में बताया तो वह खुलकर बातचीत करने लगे। किस्से–कहानियों का दौर शुरू हो गया, कोई घंटा भर बातचीत हुई। उस रात देर तक होटल जाना हुआ।

तीसरा दिन भी बाज़ार–गलियों में गुज़रा, भारत के अन्य जगहों की ही तरह यहाँ शहर में शराब की भी कई दुकानें और उनके आगे लम्बी–लम्बी क़तारें देखने को मिलीं। मछली और समुद्री जीव–जंतुओं से बने व्यंजनों की भी कई दुकानें यहाँ देर रात तक खुली रहती हैं। बाहरी व्यक्ति देखने पर व्यंजनों के दाम दोगुने कर दिए जाते हैं। मुझे जानकर आश्चर्य हुआ कि यहाँ उत्तर भारत के लोगों की अच्छी जनसंख्या होने पर भी मुख्य भोजन में सिर्फ़ चावल सम्मिलित है और रात के लिए हल्के भोजन के रूप में रोटियाँ बनाई जाती हैं। हमें दिन के समय रोटियाँ मिलना मुश्किल हो रहा था और उससे भी मुश्किल होता था शुद्ध शाकाहारी भोजन की व्यवस्था। खैर विभिन्न यात्राओं के बाद मैंने शाकाहारी भोजन से 'शुद्ध' शब्द हटा भी दिया था, अब मैं अल्प मांसाहारी हो गया था।

चौथे दिन हमने विभिन्न द्वीपों की यात्राओं की योजना बनाई। सबसे पहले एक बड़ी सार्वजानिक बोट से हम 'रोस द्वीप' पहुँचे। यह द्वीप किसी अंग्रेज़ नेवी अधिकारी के नाम पर रखा गया है और आज भी नेवी के अधीन ही है। यह एक छोटे से अभयारण्य की तरह है। किनारे पर नेवी के जवान आपकी और आपके सामान की पूरी तरह से जाँच करते हैं। प्लास्टिक या पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले किसी भी सामान को द्वीप पर ले जाना सख्त मना है। यदि कुछ ऐसा है भी, तो लौटते हुए आपको फिर से जवानों को वो सामान दिखाना होगा और अपने साथ वापस बोट पर ले जाना होगा। शायद इसी कारण ये द्वीप बेहद खूबसूरत और साफ़–सुथरा नज़र आता है। बहुत से हिरण यहाँ बेख़ौफ़ घूमते नज़र आ रहे थे। द्वीप के पूर्वी छोर पर सुनामी के निशान देखने को मिले। द्वीप का एक बड़ा हिस्सा टूट चुका था तथा पुरानी कुछ इमारतें भी जलमग्न नज़र आ रही थीं। द्वीप का पश्चिमी और दक्षिणी हिस्सा बहुत खूबसूरत था। यहाँ के समुद्र का पानी हल्का हरा नज़र आता है। पेड़–पौधों की परछाई और द्वीप से बहकर आए पानी और पत्तियों के कारण यहाँ का पानी हरा दिखता है। मैंने महसूस किया कि यहाँ का पानी अभी तक देखे गए मुम्बई, गोवा और चेन्नई के तटों के पानी से कहीं ज़्यादा साफ़ है। दूर समुद्र में जाने पर भी आप उसके तल तक आसानी से देख सकते हैं। दक्षिण तट पर खुले समुद्र के कारण लहरें बहुत तेज़ उठती हैं। यह द्वीप नारियल और विभिन्न प्रकार के पेड़ों से आच्छादित है। पेड़ों के साथ बेलें और बड़ी–बड़ी घास भी यहाँ बहुतायत में नज़र आती है। नेवी के कुछ दफ़्तर और उच्च अधिकारियों के

सरकारी आवास भी यहाँ स्थित हैं।

अगला द्वीप था वाइपर द्वीप। बताया गया कि किसी अंग्रेज़ अधिकारी के नाम पर है। कुछ ने कहा कि पहले यहाँ वाइपर सांप बहुतायत में मिलते थे, इसलिए ऐसा नाम रखा गया है। अन्य द्वीपों की तुलना में यहाँ घास और झाड़ियाँ तो थीं मगर पेड़ बहुत कम संख्या में थे। पूछने पर पता चला कि ये सब सुनामी के बाद उजड़ गए हैं। द्वीप के एक तरफ़ छोटी–सी पहाड़ी थी जिस पर एक घर बना था। खयाल आया, इस वीरान जगह पर ये इमारत कैसी? वहाँ जाने पर पता चला कि यह सेलुलर जेल का ही हिस्सा है। जिन कैदियों को गुपचुप फाँसी दी जानी होती थी, उन्हें यहाँ लाया जाता था। नीचे एक बड़ा–सा कुआँ था, जो समुद्र से मिलता है। कहते हैं फाँसी के बाद इसी कुएँ में लाश डाल दी जाती थी जो समुद्र में पहुँच जाती थी। यहाँ एक व्यक्ति (पता नहीं वो यहाँ पहले से था या हमारे ही साथ आया था) बड़ी ही गर्मजोशी से हमें स्वतंत्रता सेनानियों की फाँसी की कुछ कहानियाँ सुना रहा था। कहानियाँ सुनकर वहाँ मौजूद सभी लोगों की आँखें भर आईं। जैसे पूरा दृश्य जीवंत हो गया हो। सभी के मन भारी हो गए। वाकई वो द्वीप बेहद ही खामोश और दिल को कचोटने वाला था। यहाँ से निकले ही थे कि रास्ते में ज़ोरों की बारिश होने लगी। नीचे पानी, ऊपर पानी, चारों–तरफ़ पानी ही पानी। बोट वाला बारिश के पानी को एक प्लास्टिक शीट पर जमा कर रहा था। उसने बताया कि यह पानी मछलियाँ पकड़ने में बहुत काम आता है ।

दिन के अंत में हम 'नार्थ बे' द्वीप पहुँचे। यहाँ हमारे जहाज़ को द्वीप से कुछ दूरी पर ही रोक दिया गया। द्वीप पर मौजूद छोटी–छोटी नौकाओं द्वारा हमें द्वीप तक लाया गया। समझ आया कि यहाँ बहुतायत में कोरल रीफ़ (प्रवाल भित्ति) हैं। बड़ी बोट से उन्हें नुकसान हो सकता है। द्वीप पर जाने के लिए शुल्क लगता है। यह वही द्वीप है, जो भारतीय मुद्रा के 20 रुपए के नोट पर देखा जा सकता है। यहाँ एक बेहद पुराना लाइट हाउस है और जंगल के अन्दर जाने के लिए ट्रैकिंग के कई रूट हैं। दूसरे छोर पर पानी के कई खेल करवाने के लिए साजो–सामान हैं। ट्रैकिंग करना चाहते थे मगर समय नहीं था। कोरल को नज़दीक से देखने के लिए गोताखोरों के साथ गोता लगाने पर सहमति बनी।

अभी तक मैंने भूगोल की पढ़ाई के दौरान कोरल रीफ़ के सम्बन्ध में काफ़ी कुछ पढ़ रखा था। अब पहली बार नज़दीक से देखने वाला भी था। मास्क और ख़ास तरह के इंतज़ाम के बाद हम पाँच–पाँच के समूहों में बंट गए और तट से दूर समुद्र में आ गए। यहाँ समुद्र का पानी कुछ नीला नज़र आ रहा था। कुशल गोताखोर ने हमें कुछ दिशा–निर्देश दिए और सभी को आपस में रस्सियों से बाँध दिया। गोता लगाकर हम कुछ 10–12 फ़ीट नीचे गए। साफ़ पानी में सब ऐसे दिख रहा था जैसे हम किसी एक्वेरियम में हों। बहुत ही अनुपम दृश्य और जीवन के खास पलों में से एक सुनहरा पल। रंग–बिरंगी मछलियाँ, समुद्री पेड़–पौधे और दूर से ही आकर्षित करती कोरल शृंखला। कोरल के इस संसार में बहुत ही विविधता देखने को मिली। फ़िंगर, ब्रेन, हानीमून, मसरूम और प्लेट आदि कई तरह की कोरल यहाँ आसानी से देखने को मिल रही थीं। गोताखोर ने हाथ के इशारे से हमें वो स्थान भी दिखाया जहाँ कोरल ब्लीचिंग (प्रवाल का धीरे धीरे मरना) हो रही थी। वहाँ की सभी कोरल सफ़ेद पड़ चुकी थी और धीरे–धीरे कमज़ोर होकर नष्ट हो रही थी (बाहर आने पर हमें बताया गया कि ऐसा पानी में बढ़ते प्रदूषण के कारण हो रहा है)।

कुछ समय बाद, एक छोटी लाल–सफ़ेद रंग की मछली मेरे चहरे के पास दोनों आँखों के बीच आई और मुझे गौर से देखने लगी। मैं भी कुछ देर तक उसे निहारता रहा जैसे वो कह रही हो, हमारे इस संसार में आपका स्वागत है। विभिन्न तरह की कोरल को नज़दीक से निहारने के बाद हम काफ़ी देर तक किनारे ही बैठे रहे। अगले घंटे भर हमने वैश्विक तपन, जलवायु परिवर्तन, कोरल ब्लीचिंग, ग्रीन हाउस इफ़ेक्ट आदि अनेक मुद्दों पर 'चाय पे चर्चा' कर डाली। चलते वक्त मैंने विश्लेषण के लिए कुछ कोरल अवशेष अपने साथ

ले लिए।

यात्रा के अंतिम दिन हम लकड़ियों की एक बड़ी मिल, नेवी मरीन म्यूज़ियम (समुन्द्रिका) और एंथ्रोपोलोजिकल सर्वेक्षण विभाग का संग्रहालय देखने गए। लकड़ी की मिल में आज भी पुराने तरीकों से हाथी द्वारा सामान इधर–उधर किया जाता है, क्योंकि ये ट्रकों और क्रेन के मुकाबले सस्ता साधन है। यहाँ से बड़ी मात्रा में लकड़ी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भेजी जाती है। नेवी म्यूज़ियम में समुद्र विज्ञान और समुद्री जीव–जंतुओं से जुड़ी तकनीकी जानकारियाँ प्रदर्शित की गई हैं। एंथ्रोपोलोजिकल संग्रहालय में अंडमान की जनजातियों के दैनिक जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं को संवेदनाओं के साथ रखा गया है। उनका खान–पान, रहन–सहन और त्योहार–संस्कृति से जुड़ी अनेक जानकारियाँ वहाँ विस्तार से प्रदर्शित की गई हैं। उनके द्वारा बनाई गई नावें आज की हमारी बोट से किसी मायने में पीछे नहीं हैं। अवलोकन से यह भी पता चला कि जैसे ये जनजातियाँ बाह्य समाज से अनजान हैं, ठीक इसी तरह ये आपस में भी एक–दूसरे से अपरिचित ही हैं। दो जनजातियों के मध्य आज भी सुअर और नारियल को लेकर बार्टर सिस्टम (मूक व्यापार) चलता है।

लौटते वक़्त, रास्तों में कुछ जगह द्वितीय विश्व युद्ध के निशान भी देखने को मिले। जापानी टैंकर और जापानी मंदिर इस बात के सबूत हैं कि उस दौरान यहाँ जापानियों का राज भी रहा है। कहते है यहाँ की जनजातियों ने मिलकर उनके साथ संघर्ष किया और उन्हें इस द्वीप समूह से वापस भेज दिया। सुभाष चन्द्र बोस और गांधी आगमन के भी निशान यहाँ देखने को मिलते हैं। भारत के एकमात्र सक्रिय ज्वालामुखी बैरन द्वीप को भी हमने दूर से देखा। एक बार फिर अंडमान पानी के जहाज़ से आने की योजना बनाकर हम वापसी की तैयारियाँ करने लगे।

अगली सुबह हवाई जहाज़ से अंडमान को अलविदा कहते हुए मैं यही सोच रहा था कि यहाँ के पानी का वास्तविक रंग कौन–सा है – काला, हरा या नीला।

jeet.mfc@gmail.com

लंदन में केदारनाथ परिक्रमा

– डॉ. रणजीत साहा
नई दिल्ली, भारत

कविवर केदारनाथ जी को बहुत निकट से पाने और जानने का अवसर मुझे 1999 में लंदन में आयोजित छठे विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान हुआ था। इसमें भारत सरकार के विदेश विभाग और इसके राजभाषा अनुभाग द्वारा साहित्य अकादमी का प्रतिनिधित्व करने का मुझे अवसर मिला था। सम्मेलन में आरंभ से ही कई अनियमितताएँ देखी गईं। संख्या से अधिक लोगों के पहुँच जाने पर हीथ्रो हवाई अड्डे पर ही हमें देरी और परेशानी का सामना करना पड़ा। चूँकि मैं विदेश विभाग के अधिकारियों के साथ गया था, इसलिए हमारे लिए गाड़ी और रहने की अलग व्यवस्था की गई थी। स्कूल ऑव ऑरियंटल एंड अफ़्रीकन स्टडीज़ (एस.ओ.ए.एस.) यानी सोआस युनिवर्सिटी ऑव लंदन के परिसर में 14 से 18 सितंबर, 1999 तक तमाम आयोजन होने थे और वहीं के हॉस्टलों में अधिकांश लोगों के खाने–ठहरने की व्यवस्था थी। केदारनाथ जी, जो वहाँ विशेष अतिथि के तौर पर आमंत्रित थे, वे मुझे दूर खड़े दिखे। इधर हॉस्टलों में कमरे में आबंटन करने वालों के पास प्राथमिकता संबंधी कोई सूची नहीं थी। वहाँ कई लेखक बंधु भी खड़े थे, जो पहले आ चुके थे और जिन्हें कमरे मिल चुके थे। हम सब निरुपाय और चुपचाप इस

बंदरबाँट का तमाशा देख रहे थे। मैं केदारनाथ जी के लिए अधिक चिंतित था। दो घंटे बाद भी कोई कमरा नहीं मिल रहा था। इस बीच दिन (भारतीय समय के अनुसार दिन के एक बजे) का खाना बँटने लगा। कतार में खड़े होकर मैंने खाने का पैकेट केदार जी को दिया। तभी घोषणा हुई कि हमें उद्घाटन स्थल, वेम्बले कॉन्फ़्रेंस सेंटर जाना है। सामान वग़ैरह एक कोने में रखकर, हम वहाँ पहुँचे। केदार जी भारी तनाव में थे, आखिर कर भी क्या सकते थे? वहाँ क्या कुछ हुआ... अटल बिहारी वाजपेयी जी और ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेअर के टेलि–कॉन्फ़्रेंसिंग द्वारा संदेश, जगजीत सिंह का गायन, शोवना नारायण का नृत्य, कबीरवाणी और वंदे मातरम्... इन सबका कोई प्रभाव हम पर नहीं पड़ा। दिन–रात्रि के जागरण और सफ़र की थकान और आते ही मुसीबतों का दौर हम पर इस कदर हावी थी कि कोई राह नहीं निकल रही थी।

कोई तीन घंटे तक चले कार्यक्रम के बाद जब हम एस.ओ.ए.एस लौट रहे थे तो केदार जी और भी उद्विग्न दिखे। थोड़ी देर बाद मेरा नाम पुकारा गया और कमरे की चाबी लेने को कहा गया, लेकिन वहाँ के प्रभारी डॉ. धर्मपाल मैनी से मैंने अतिरिक्त दबाव बनाने के लिए कहा कि जब तक केदार जी को कमरा नहीं मिल जाता मैं कहीं नहीं जाऊँगा। मैं विदेश मंत्रालय के उस अधिकारी की भी तलाश करता रहा, जो कहीं दिख नहीं रहे थे। थोड़ी देर पहले मुझे हिमांशु जोशी और हरीश नारंग भी दिखे, लेकिन वे पहले ही आकर अपने–अपने कमरे में जम गए थे। वहाँ मुझे शिवानी जी भी दिखीं, जो अपने सामान (एक भारी सूटकेस) के साथ खड़ी थीं और चाहती थी कि उन्हें मिले कमरे तक उन्हें कोई छोड़ आए। वहाँ ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। ख़ैर, मैं ही उन्हें उनके कमरे तक छोड़ आया। इसी दरम्यान मुझे मिला कमरा किसी और को सौंप दिया गया। मैंने जब इस संबंध में ज़रा ऊँचे स्वर में मेज़ पर बैठी एक महिला से चाबी वापस करने को कहा, तो उसने कहा – "आप तो मुझे ऐसे डाँट रहे हैं, जैसे कि मैं आपकी बीवी हूँ।" उसके जवाब से वहाँ का तनाव भरा माहौल तो थोड़ा शिथिल हुआ, लेकिन आठ घंटे बाद भी हमें कमरा नहीं मिला।... तभी विदेश मंत्रालय के अधिकारी (यादव) हमें मिल गए और उन्होंने मुझसे कहा, "आपकी व्यवस्था पास ही एक होटल में हुई है, आइए गाड़ी खड़ी है।" मैंने कहा "मेरे साथ केदार जी भी रहेंगे" सो वे सहर्ष राज़ी हो गए।

अंततः हम छह–सात लोगों के ठहरने का इंतज़ाम रसेल स्ट्रीट स्थित इम्पीरियल होटल में हो गया। हालाँकि वहाँ भी विलंब का सामना करना पड़ा। इस बीच रिसेप्शन के टॉयलेट में ही केदार जी और मैं शौचकार्य आदि से निवृत्त हुए, क्योंकि हमारे खाने की व्यवस्था होटल की पहली मंज़िल वाली रेस्तराँ में थी और रात के नौ बजे तक ही वहाँ खाना मिलने वाला था। मितभोजी केदार जी को विदेशी भोजन अरुचिकर लगता था। ख़ैर, चावल और फ़िश करी के साथ पुडिंग पेट में डालकर हम बारहवें तल के 112वें नंबर कमरे में आ गए। वहाँ के दरवाज़ों पर 'इलेक्ट्रॉनिक की' लगी थी, जिससे हम अपरिचित थे। दो–तीन बार के अभ्यास के बाद दरवाज़ा खुला। तभी नीचे रिसेप्शन से फ़ोन आया कि हमें अपना पासपोर्ट नं. और परिचय–पत्र जमा करना है, साथ ही हस्ताक्षर भी। केदार जी झुंझलाहट में कुछ बोल नहीं पा रहे थे। हम दोनों फिर लिफ़्ट से रिसेप्शन पर आए, तो रिसेप्शनिस्ट महोदय गायब थे। ख़ैर, थोड़ी देर बाद सारी औपचारिकता पूरी हुई। केदार जी को लिफ़्ट तक छोड़कर मैं रेस्तराँ से पानी की बोतल लाने चला गया, जो हमें फ़्री में दिया जाना था। थोड़ी देर बाद, जब मैं बारहवीं मंज़िल पर आया, तो केदार जी कमरे के सामने घुटने पकड़कर बैठे थे और बड़े कातर भाव से कह रहे थे – "साहा, मुझे यहाँ नहीं रहना, मुझे भारत लौटना है।" दरअसल कई बार कोशिश के बावजूद उनसे दरवाज़ा नहीं खुला था और दिन भर की भागदौड़ और परेशानी से वे एकदम तंग आ गए थे। यही हालत मेरी भी थी, लेकिन एक तो लंदन और फिर इतने बड़े आयोजन का आकर्षण मुझे बाँधे हुए था। बावजूद दुर्व्यवस्था और आपाधापी के चौदह सितंबर की

यह बोझिल रात बिछावन पर पड़ते ही पंद्रह सितंबर की सुबह में तब्दील हो गई।

हमें पहले से बताया गया था कि सोआस में विभिन्न सत्रों में आयोजित होने वाली विभिन्न विचार गोष्ठियाँ – रसखान, सूर, मीरा, तुलसी और कबीर कक्षों में होने वाली हैं। इस आयोजन के पहले आमंत्रित सदस्यों को अपना पंजीकरण भी कराना था। सोआस पहुँचने पर हमने देखा कि परिसर में सदस्यों, आमंत्रितों, अतिथियों और अधिकारियों की भीड़ लगी है। चूँकि अधिकांश लोग कबीर कक्ष (सभागार) की ओर जा रहे थे, तो हम भी वहाँ पहुँच गए, इस बात की चिंता किए बिना कि पंजीयन वग़ैरह होता रहेगा। कार्यक्रम संबंधी सूचना और विवरण पत्रिका का कहीं अता–पता नहीं था। बाद में यह सब हाथ लगा।

कबीर कक्ष में स्टुअर्ट मैक्ग्रेगर की अध्यक्षता में अज्ञेय स्मृति व्याख्यान रखा गया था, जिसमें लक्ष्मीमल्ल सिंघवी और विद्यानिवास मिश्र प्रमुख वक्ता थे। हम सबके श्रद्धेय अज्ञेय जी के बारे में सुनना तो प्रिय था ही बगल में बैठे केदार जी भी उनके बारे में व्यक्तिगत जानकारियाँ देते रहे। यह सत्र समय से अधिक खिंच गया, तो भी आसपास के अन्य कक्षों में चल रही समानांतर विचार गोष्ठियों में कमोबेश श्रोताओं की उपस्थिति बनी हुई थी।

भोजन के लिए हुए अंतराल के दौरान फिर वैसी ही चिल्लपों मची, जैसी कल मची थी। लोगों की संख्या इतनी अधिक होगी, इसका अनुमान आयोजकों को संभवतः नहीं था। 'क्यू' लगाए विद्वानों और लेखकों के धैर्य की प्रतीक्षा ली जा रही थी। अंततः हमारे हाथ खाने का पैकेट लगा। अगला सत्र नागार्जुन जी की स्मृति को समर्पित था, जिसकी अध्यक्षता विष्णुकांत शास्त्री करने वाले थे और प्रमुख प्रवक्ता नामवर सिंह थे। कुछ नामचीन विद्वान तो सीधे सभागार में ही मिले – स्पष्ट है, हमारी तरह वे अलग–अलग स्थानों पर ठहराए गए थे। नामवर जी ने बनारस, जे.एन.यू और दिल्ली में नागार्जुन जी के साथ बिताए गए प्रसंगों के साथ उनकी जनोन्मुखी काव्य चेतना पर अपनी चिर–परिचित शैली में प्रकाश डाला। आलोचकों द्वारा उनकी अनदेखी किए जाने पर क्षोभ भी जताया। साथ ही इस बात के लिए प्रसन्नता भी जताई कि भारत से सात समुंदर पार, लंदन की सुप्रतिष्ठित संस्था में उन्हें आज याद किया जा रहा है।

संगोष्ठी समाप्त होने के बाद, जैसा कि पहले से तय था, हमें नेसडेन, ब्रेंटफ़ील्ड रोड स्थित श्री स्वामीनारायण मंदिर जाना था, क्योंकि वहीं भोजन की व्यवस्था थी। हम सब बस पर सवार हो वहाँ पहुँचे। वहाँ ऐसे कई विदेशी विद्वानों से भी मिलने का अवसर मिला, जो हिंदी में अध्ययन–अध्यापन कर रहे थे। उनमें से कई भारत भी आ चुके थे और जे.एन.यू., साहित्य अकादमी और विभिन्न शिक्षा संस्थानों से परिचित थे। केदार जी से मिलकर वे प्रसन्नता व्यक्त करते रहे। मंदिर की परिक्रमा और वहाँ के सभागार में प्रमुखाचार्य के संबोधन के बाद 'प्रसाद' वितरण आरंभ हुआ। यह भोजन का लघु संस्करण था – थर्मोकोल प्लेट में थोड़ा–सा चावल, कढ़ी, दो पूरी, सब्ज़ी, हलवा... बस। यह 'प्रसाद' के नाम पर जयशंकर प्रसाद के लघु काव्य 'आँसू' का बृहत संस्करण था। मुझे लगा, दोबारा भी कुछ ले–ला पाऊँगा, लेकिन नहीं। समयानुसार, शायद रात के आठ बजे मंदिर का द्वार बंद होना था। हम सब जब तक बाहर निकले तब तक बारिश शुरू हो गई। हमें मंदिर छोड़कर बस भी चली गई थी। हमें लगा, बारिश को ध्यान में रखकर मंदिर का द्वार खोल दिया जाएगा और आतिथेय हमें अंदर आने देंगे। लेकिन देवता और पुरोहित दोनों नाराज़ थे। अचानक बारिश के साथ तेज़ आँधी आ गई। हम मंदिर की बाहरी दीवार से लगे मेहराबों और छज्जों की ओट किए खड़े थे और स्थानीय आयोजकों को कोस रहे थे। ठंड अचानक बहुत बढ़ गई और एकाध सिक्युरिटी अधिकारी अपनी 'वॉकी टॉकी' पर कार या टैक्सी की व्यवस्था करने में जुटे थे। गनीमत है, केदार जी बंडी धारे हुए थे और मैं कोट पहने हुए था। तभी मेरी दृष्टि एक शेड की आड़ में खड़ी कबीर वाङ्मय की अन्यतम विदुषी प्रो. लिंडा हेस पर पड़ी, जो फ़्रॉक पहने थी और ठंड से काँप रही थी।

मैंने उनके पास जाकर अपना कोट उतारा और उन्हें पहनाया। उन्होंने कृतज्ञतावश पूछा, "आर यू ओ.के.", मैंने मज़ाक में उत्तर दिया, "इन यू.के. ... भीजै दास कबीर।" (बाद में प्रो. लिंडा हेस से मेरी भेंट दिल्ली और बनारस में भी हुई, तो वे मुझे 'भीजै दास कबीर' कहकर ही बुलाती थीं।) वैसे उस रात हम सब भीगे हुए तो थे ही, सहमे हुए भी थे।

कोई चालीस मिनट बाद वहाँ कारों में एक–एक कर हम अतिथियों और प्रतिभागियों को ठूँस–ठूँस अलग–अलग निर्धारित जगहों पर पहुँचाया गया। होटल पहुँचते–पहुँचते साढ़े दस तो बज ही गए थे। इच्छा हुई रेस्तराँ से कुछ मँगाऊँ। लेकिन वह भी बंद मिला। केदार जी थोड़े उद्विग्न दिखे, तो मैंने संकोचवश पूछा, "सर, थोड़ी–सी लेंगे? मेरे पास ह्विस्की है।" वे मानो उछल पड़े – "अरे भाई, तो देर किस बात की... आज तो इसकी सख़्त ज़रूरत है" और उन्होंने आयोजकों को दो–तीन ठेठ देशज गालियाँ दीं। मेरे पास दालमोठ का पैकेट भी था, जो मैं दिल्ली से साथ ले आया था। उस रात केदार जी ने मेरा उनके सामने शराब न पीने का संकोच भी भंग किया, "अरे भाई, यह भी देवताओं का 'प्रसाद' ही है, तंत्र शास्त्र में इसे कहते हैं... 'कारणवारि...' लो शुरू करो...।"

भारतीय घड़ी के अनुसार लंदन के समय को आगे–पीछे से पकड़ने से अच्छा था, अपने आपको छोड़ देना। भारत से साढ़े पाँच घंटे पीछे चलने वाले समय के अनुसार केदार जी रात के बारह बजे (शाम के साढ़े पाँच बजे) होटल लौटे और काफ़ी खुश थे। वजह साफ़ थी कि उन्हें उपयुक्त सामग्री यथासमय मिल गई थी और अब उनसे कुछ कहा भी नहीं जा रहा था। पीना समाप्त कर बिछावन पर पड़ गए। कल सुबह उन्हें सम्मेलन में व्याख्यान भी देना था। सुबह वे देर से उठे और व्यवस्थित होकर मैं भी रेस्तराँ में नाश्ता कर उनके साथ सम्मेलन स्थल, जो होटल से अधिक दूर नहीं था, टहलते हुए सोआस (एस.ओ.ए.एस) पहुँचा। ज़ाहिर है, उन्हें वहाँ जानने और सराहने वालों की संख्या भी कुछ कम नहीं थीं – उनमें श्री श्रीलाल शुक्ल, विद्यानिवास मिश्र, विष्णुकांत शास्त्री, इंद्रनाथ चौधरी (तब नेहरू सेंटर, लंदन के निदेशक) के साथ उनके कई पूर्व परिचित और प्रशंसक भी उपस्थित थे। लेकिन अधिकांश ऐसे थे, जो संबंधित साहित्यिक आयोजनों और गोष्ठियों में भाग लेने से अधिक वहाँ के सैर–सपाटे का आनंद लेने आए थे। सोआस के सभागार कबीर कक्ष और अन्य व्यवस्था कक्षों (तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, रसखान के नाम) में बहुविध विषयों पर चर्चा आयोजित की गई थी। जहाँ कुछ बड़े–बड़े नाम थे, वहाँ ठीक–ठाक उपस्थिति हो जाती, बाकी कुछ छुटभैये पहले से ही आसपास खड़े लोगों को अपने पर्चे की दुहाई देकर बुलाते रहते। उन्हें टाल–टूलकर मैं केदार जी को साथ लेकर कबीर कक्ष मुख्य सभागार पहुँचा। वहाँ इंद्रनाथ चौधरी की अध्यक्षता में पंत स्मृति व्याख्यान के अंतर्गत 'हिंदी का विस्तार : लोक साहित्य आधार' के प्रमुख प्रवक्ता केदार जी थे। अपने लेखन में लोक की अनिवार्य भूमिका और उसकी रचनात्मक व्याप्ति को रेखांकित करते हुए केदार जी ने पंत के अलावा, अपनी स्मृति से दूसरे कवियों की कृतियों से कुछ उद्धरण प्रस्तुत किए। सभागार में फ़ोटो खींचने की सख़्त मनाही थी, क्योंकि कैमरे के फ़्लैश होते ही वहाँ लगा सेंसर हरकत में आ जाता और वहाँ आग लगने का खतरा हो सकता था। पहले भी इस ओर ध्यान दिलाया गया था। अब मंच पर केदार जी के साथ इंद्रनाथ चौधरी, दूसरे वक्ता श्याम मनोहर पांडे और अन्य विद्वान उपस्थित हों, तो श्रोताओं की दूसरी पंक्ति में बैठा मैं अपने कैमरे से चित्र न खींचूँ, ऐसा कैसे हो सकता था? और मैंने दो चित्र खींचे... और किसी की नज़र न पड़े इसलिए कैमरा फ़र्श पर रख दिया। तभी घंटी टनटनाई और सिक्यूरिटि अफ़सर भी आ धमका। उसने चारों तरफ़ देखा और माइक पर फ़ोटो न खींचने की हिदायत देकर चला गया। केदार जी और चौधरी जी ने मुझे देखा ही होगा पर उन्होंने इसको अनदेखा कर दिया। आखिर वे भी अपनी तस्वीर तो खिंचवाना चाहते ही होंगे।

इस विचार सत्र के बाद, संभवतः प्रो. इंद्रनाथ चौधरी के व्यक्तिगत आमंत्रण पर नेहरू सेंटर से कुछ

लेखक सम्मिलित होने वाले थे। इधर डॉ. हरीश नारंग ने अपने दो मित्रों के साथ मुझे भी लंदन की सैर कराने का प्रस्ताव दिया, तो मैं उनके साथ सहर्ष शामिल हो गया। लेकिन चूँकि होटल के कमरे की चाबी मेरे पास रह गई थी, इसलिए नारंग के मित्र की कार से मैं सबसे पहले नेहरू सेंटर पहुँचा। वहाँ एक आधी–अधूरी पुस्तक प्रदर्शनी भी लगाई गई थी, क्योंकि सीढ़ियों के इर्द–गिर्द बोरों और पेटियों में हज़ारों पुस्तकें पड़ी हुई थी। हमने साहित्य अकादमी से भी चुनी हुई पुस्तकें प्रदर्शनी में भिजवाई थीं। पता नहीं, वे कहाँ लगी थीं। खैर, मैंने नीचे से घंटी बजाई, तो स्वयं प्रो. चौधरी सीढ़ियों से नीचे उतरे और केदार जी के लिए चाबी ले गए। उनका रवैया मुझे बेहद ठंडा लगा, शायद उन्हें अपने मित्रों की महफ़िल से उठकर आना पड़ा था।

मैं डॉ. नारंग के मित्रों के साथ लंदन की प्रमुख सड़कों, रोशनी से जगमगाते बाज़ारों और प्रमुख मनोरंजन केन्द्रों को कार से निहारता हुआ आश्चर्यचकित था – लंदन के ऐश्वर्य, वैभव और शानो शौकत पर। सबसे रोचक प्रसंग तो मेरे लिए यह था कि ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट पर घूमते हुए कुछ खरीदने के लिए जब हम एक दुकान में घुसे, तो वहाँ प्रसाधन वाले शो केस में 'अनन्या' ब्रांड की कुछ चीज़ें बिक रही थीं। अनन्या मेरी बेटी का नाम है, तो मैंने उस ब्राण्ड की छः सात सामग्री (साबुन, शैंपू, बॉडी लोशन, क्रीम वग़ैरह) का एक 'गिफ़्ट हैंपर' बना दिया। वहीं मैंने पहली बार डेबिट कार्ड से रकम चुकाई और यह कोई चौदह सौ रुपये की थी।

इस रोचक और उत्तेजक सैर का अंत साउथ हॉल स्थित एक भारतीय रेस्तराँ में पंजाबी डिशों के साथ हुआ। तंदूरी, शाही पनीर, छोले, कुल्फ़ी और लौटते हुए एक और ढाबे में रुककर गरमागरम जलेबी का आनंद। इससे शानदार और बात क्या हो सकती थी? साउथ हॉल का हमने बड़ा नाम सुना था, लेकिन वह तो भारतीय दुकानों, पकवानों और सामानों से भरा हुआ था। सिख सरदार भी बड़ी संख्या में वहाँ नज़र आए और लंबा–चौड़ा गुरुद्वारा भी।

पता नहीं, रात के कितने बजे होंगे, शायद दो... मुझे होटल तक कार ने छोड़ दिया। मैं बारहवीं मंज़िल स्थित अपने कमरे में पहुँचा और हल्के से दरवाज़ें पर हाथ रखा तो वह अंदर से खुल गया। केदार जी अपने बेड पर पूरा लंदन बेचकर सोए थे। मैंने धीरे से बाथरूम का दरवाज़ा खोला और रोशनी जलाई, तो देखा कमरे के एक कोने में रखी तीन प्लेटों में कुछ चम्मचों और तीन गिलासों के साथ हड्डी का अंबार लगा था। तो सारा तमाशा समझ में आ गया। लेकिन सुबह जब मेरी नींद खुली तो केदार जी बड़े खुश नज़र आ रहे थे और कुछ पूछने के पहले बताया कि यहाँ कल रात श्रीलाल शुक्ल, नामवर सिंह और उनके एक मित्र आए थे। आपके सूटकेस में पड़ी बोतल ने मेरी इज्ज़त रख ली। वैसे आपकी कमी बड़ी खली।

दरअसल नामवर जी और केदार जी के साथ यात्रा करने के पहले 'संध्यार्चन' का विशेष ध्यान रखना पड़ता है, यह सुखद संयोग ही था कि यहाँ लंदन में केदार जी का अंतरंग साथ मुझे प्राप्त हुआ। यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि उम्र में उनसे काफ़ी छोटा होते हुए भी केदार जी (और नामवर जी भी) मुझे 'साहा साहब' कहकर ही कोई बात कहते या आदेश देते रहे हैं। ऐसा अकादमी का एक अधिकारी होने के नाते ही हुआ होगा। नाश्ता करने के बाद हम दोनों सितंबर की गुनगुनी सर्दी में टहलते हुए एक ओर 'किंग्स क्रॉस' में व्यस्त चौराहे पर स्थित भव्य चर्च और दूसरी ओर ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट तक निकल गए। हमारा इरादा ब्रिटिश म्यूज़ियम तक जाने का था लेकिन केदार जी ने इस बीच एक बार और टॉयलेट जाने की इच्छा व्यक्त की, तो मैं भी उनके साथ होटल लौटने लगा। लेकिन उन्होंने कहा, "आप म्यूज़ियम जाइये। हम लंच के समय सोआस में ही मिलते हैं।" मैंने उनसे विदा ली और कोई ढाई–तीन घंटे ब्रिटिश म्यूज़ियम का परिदर्शन करता रहा, साथ ही घड़ी भी देखता रहा। ऐसा लगा, यहाँ तो आठ–दस दिनों तक रोज़ आना चाहिए तभी सब कुछ देखना संभव हो पाएगा। दोपहर में मैं जब सोआस पहुँचा तो केदार जी वहाँ नहीं मिले। उनके दो–तीन मित्र उन्हें होटल से, कुछ अन्य मित्रों और लेखकों से मिलाने ले

गए। मैं सोआस में ही, भोजन के बाद दो गोष्ठियों में समय बिताकर नारंग साहब के मित्रों के साथ एक बार फिर ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट और न्यू ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट पर काफ़ी देर चलते हुए, पिकाडिली सर्कस, ट्रेफ़लगर स्क्वेर, मोनुमेंट (जॉर्ज चतुर्थ), ब्रिटिश पार्लियामेंट और बकिंघम पैलेस तक की सैर करता रहा। थोड़ा–बहुत रुकते हुए और पब में बियर पीते हुए, ये सात घंटे कैसे बीत गए, पता ही नहीं चला। अपने आप में यह एक अद्‌भुत अनुभव था – ऐश्वर्य और वैभव की इस सदाबहार गाथा में अपनी उपस्थिति बनाए रखने वाला एकमात्र अनोखा महानगर लंदन, इतिहास की आहों और आहटों को कुचलकर आगे भागते समय को अपनी कुटिल मुस्कानों और कठोर बंधनों में जकड़कर रखने वाला एक सम्मोहक और उत्तेजक परी–देश। चूँकि पहले से कुछ तय नहीं था और होटल के रिसेप्शन में चाबी छोड़ आया था, इसलिए मैं निश्चिंत था कि केदार जी जब भी लौटेंगे उन्हें कोई परेशानी नहीं होगी। मैं हरीश नारंग के साथ पहले सोआस ही पहुँचा और कार्यालय से आवश्यक सूचना सामग्री पत्र–पत्रिकाओं से भरी भारी–भरकम बैग लेकर होटल लौटा। कमरे में जाने के पहले मैं पहले रेस्तराँ में ही गया। बाथरूम में हाथ–मुँह धोकर खाने की मेज़ पर बैठा, तो थोड़ी देर में मेरे सामने एक सुदर्शन युवक खड़ा हो गया। उसने जब हिंदी में पूछा 'आप की खाएगा' तो मैं समझ गया यह बंगाली है। दरअसल वह एक बांग्लादेशी था। मैंने जब उससे बंग्ला में बातें शुरू कीं, तो वह बहुत खुश हुआ। मैंने उसी पर खाने की सामग्री लाने का भार सौंप दिया। वह खुशी से जैसे पागल हो गया। थोड़ी देर बाद मेरी मेज़ पर स्पेशल फ़िश करी, चावल, बन्स, सलाद और आलू की भुजिया परोस दी गई। मैंने देर तक, यहाँ कि रेस्तराँ के बंद होने तक वहाँ बैठकर खाना खाया। उस युवक को धन्यवाद देने के लिए मेरे पास शब्द नहीं थे। मैंने उससे इतना ही कहा – 'आबार देखा होबे' – दोबारा मुलाकात होगी। उसके चेहरे पर भी प्रसन्नता दिखी। केदार जी आने वाले होंगे – यही सोचकर मैं पानी की बोतल के साथ ऊपर गया। केदार जी अब तक नहीं आए थे। सोआस होस्टल और होटल में ठहरे कुछ विद्वान कल यॉर्क जा रहे थे। मैं अपने कमरे में आकर पत्र–पत्रिकाएँ उलटता–पलटता रहा। थोड़ी देर बाद ही केदार जी आ गए। उन्होंने पूछा – "आपने खाना खा लिया न!" मैंने सिर हिलाकर हामी भरी। केदार जी कपड़े बदलकर एक बार फिर देर तक बाथरूम (टॉयलेट) में बैठे रहे। उनके आने तक मैं आखों में नींद लिए इंतज़ार करता रहा और बत्ती बुझाकर सो गया।

सत्रह सितंबर आज की सुबह की शुरूआत कुछ इतनी लचीली थी कि देर शाम तक खिंचती चली गई। दरअसल सम्मेलन में आए कुछ लेखकों और कवियों को बी.बी.सी. ने अपने विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया था और जो वैसे भी वहाँ पहुँच गए थे, उन्हें भी किसी–न–किसी कार्यक्रम में शामिल कर लिया गया था। आयोजकों के साथ बी.बी.सी. ने अपने तयशुदा कार्यक्रम के अंतर्गत होटल से बी.बी.सी. के मुख्यालय, बुश हाउस तक जाने के लिए कार भिजवाने की बात की। हमने रेस्तराँ में नाश्ता शुरू ही किया था कि केदार जी घड़ी देखने लगे। बांग्लादेशी युवक ने 'नमस्कार' के बाद कहा, "फ़िश करी रेडी आछे...चलबे!" मैंने खुश होकर कहा – "हाँ, ले आओ!" थोड़ी देर हुई तो केदार जी ने कहा "मैं ज़रा ऊपर से आता हूँ..." मैं समझ गया उनका पेट अपसेट है! मैंने इत्मीनान से मसालेदार करी में पड़ी, बल्कि सोई मत्स्यकन्या को उसे मिटा देने की हद तक कदाचार किया और इसमें थोड़ी देर हो गई। सिर उठाया, तो केदार जी खड़े थे, तनिक नाराज़। बोले, "अरे भाई, गाड़ी आ गई होगी।" "सर...चाय...कॉफ़ी...?" बांग्लादेशी युवक ने पूछा। "कल पिलाना..." केदार जी ने छूटते ही कहा।

गाड़ी कोई पंद्रह मिनट बाद आई। बाहर बारिश शुरू हो गई थी। ड्राइवर के साथ कोई सज्जन अगली सीट पर बैठे थे। मैं केदार जी के साथ पिछली सीट पर बैठा। लंदन की चहल–पहल भरी सड़कें, इमारतें और बारिश में छतरी थामे और रेनकोट पहने तेज़ी से भागते लोगों को देख रहा था। बीस मिनट बाद गाड़ी की

रफ़्तार एकाएक कम हो गई, बल्कि थम ही गई। आगे ट्रैफ़िक की वजह से रास्ता जाम था।

शुक्र है, इतनी देर बाद सामने बैठे सज्जन की ज़ुबान खुली। उन्होंने कहा, "सर, आप लोगों को देर हो रही होगी। पता नहीं, ट्रैफ़िक कब खुले। ऐसा है, बुश हाउस एकदम पास है। बाईं तरफ़, कोई दो फ़र्लांग... आपको चलकर जाना होगा। रिसेप्शन पर आपका इंतज़ार हो रहा होगा... सॉरी सर!"

केदार जी घड़ी पर इस तरह आँख गड़ाए बैठे थे, मानो वह बंद हो गई हो। मैंने कार का दरवाज़ा खोला। केदार जी भी उतरे। पाँच मिनट में हम बुश हाउस में थे। गेट पर हमें हाथ में छतरी लिए ओमकारनाथ श्रीवास्तव मिल गए, जिन्हें मैं जानता था और जो केदार जी से कई बार मिल चुके थे। लेकिन केदार जी की प्रतीक्षा में श्रीलाल शुक्ल और उनकी मित्र मंडली एक हॉल में मेज़ घेरकर बैठी थी। यही नहीं, वहाँ सब के सामने स्नैक्स की प्लेटें और ह्विस्की के ग्लास थे। सिगरेट के धुएँ से हॉल अटा पड़ा था। लग रहा था, बादलों के कुछ नशीले टुकड़े आसमान से उतर कर हॉल में दाख़िल हो गए हों।

वहाँ अजीब–सा नशीला लेकिन खुशनुमा माहौल। सभी मस्त और मुदित थे। कुछ न्यूज़ रिपोर्टर किसी–किसी लेखक को अलग से बुलाते, उनके फोटो खींचते और बातचीत करते। ज़्यादातर सवाल–जवाब सम्मेलन को लेकर ही हो रहे थे। उधर बी.बी.सी. एक साथ कई कार्यक्रमों की रिकॉर्डिंग कर रहा था। किसी ख़ास लेखक से बातचीत, किसी कवि का कविता–पाठ, किसी विशेष विषय पर विमर्श, जिसमें मुझे भी शामिल कर लिया गया। विषय था, हिंदी पत्र–पत्रिकाओं की स्थिति। इसके लिए मुझे तीस पाउंड भी मिले। केदार जी का उनकी रचना–यात्रा पर अलग से साक्षात्कार लिया गया। तो भी चुपके से मैं भीगते–भागते पास ही, इण्डिया ऑफ़िस बिल्डिंग की सैर करने चला गया। वहाँ भी तीन–चार लेखक मिल गए। उसका मुख्य हॉल प्रसिद्ध भारतीय राजनेताओं और महापुरुषों के तैलचित्रों और दुर्लभ दस्तावेज़ों से भरा था। इन तमाम गतिविधियों के साथ इधर मुख्य हॉल में एक उत्सवी माहौल था। बाहर वर्षा हो रही थी, अंदर ड्रिंक और स्नैक्स की कोई कमी नहीं थी – ज़्यादातर चीज़ें नॉनवेज ही थीं। केदार जी की रुचि पीने में थी, तो मेरी खाने में। क्योंकि आज सम्मेलन में जाना असंभव था और यहाँ बैठे उन तमाम लेखकों की मंचीय भागीदारी लगभग समाप्त हो चुकी थी। अगर थी भी तो यहाँ का जो खिला माहौल और मौसम था, वह अतुलनीय था। हम जिससे चाहे मिल सकते थे, बोल–बतिया सकते थे। यह शानदार और यादगार कार्यक्रम शाम सात बजे तक चलता रहा। सभी कमोबेश हिल–डुल कर थक चुके थे। एक दूसरे से 'फिर कहीं मिलेंगे' कहकर हम विदा हुए। जब कार ने हमें होटल छोड़ा तो केदार जी ने घड़ी देखी और कहा, "मुझे तो नींद आ रही है... आप तो शायद खाना खाएँगे?" मैंने हामी भरी। वे रिसेप्शन से चाबी लेकर ऊपर चले गए।

मैं रेस्तराँ पहुँचा और मेज़ पर बैठे–बैठे उस बांग्लादेशी युवक को ढूँढ़ता रहा, लेकिन वह नहीं दिखा। एक दूसरे अंग्रेज़ बैरे ने मिले–जुले मेन्यू के अनुसार खाना परोसा। मैंने उससे अंग्रेज़ी में उस युवक के बारे में पूछा, तो उसने कंधा उचकाकर इतना ही कहा – "उसकी माँ की हालत ठीक नहीं है। संभव है वह 'अपने कंट्री' जाने की तैयारी में हो।" मैं थोड़ा निराश हुआ। कल सम्मेलन का समापन भी होना था। ख़ैर, खाने के बाद मैं पानी की दो बोतलें लेकर ऊपर आया। जैसा कि तय था, कमरे का दरवाज़ा उढ़का हुआ था और केदार जी गाढ़ी नींद में सोए थे। मैंने अपनी यात्रा डायरी में पिछले दो दिनों के छिट–पुट नोट्स लिए और 'बिग बेन' के समयानुसार सोने की कोशिश में जुट गया।

सुबह नींद खुली, तो देखा केदार जी अपनी जेबी डायरी में कुछ लिख रहे थे। कहने लगे, बच्चों के लिए कुछ सामान लेना है। इसी बीच उसी होटल के दूसरे विंग में रहने वाले दो अधिकारी हमारे कमरे में आए और रात की उड़ान से भारत लौटने की सूचना दी। रात्रि भोजन के बाद होटल से कार हीथ्रो हवाई अड्डे के लिए चलेगी और हमें ग्यारह बजे लंदन छोड़ देना

होगा। सम्मेलन का अंतिम कार्यक्रम वेस्ट मिंस्टर थिएटर के प्रांगण में आयोजित था। आयोजक उन सज्जनों के नाम बार–बार पुकार रहे थे, जिन्हें प्रमाण–पत्र और प्रतीक चिह्न देकर सम्मानित किया जाना था। इनमें एक नाम डॉ. रामविलास शर्मा भी था, जो लंदन आए ही नहीं थे। चूँकि उनके विकासपुरी स्थित घर के पास ही, मेरा आवास था और वे पहले ही लंदन आने के बारे में अपनी असमर्थता जता चुके थे। मुझे हैरानी हुई कि आज इस आयोजन का छठा दिन है और आयोजकों को इतने बड़े विद्वान के न आने की ख़बर तक नहीं। आयोजन की विभिन्न गतिविधियों के विवरण और प्रस्तावादि के बाद कोई चालीस हिंदी सेवी विद्वानों को सम्मानित किया गया। मंच पर महेंद्र वर्मा, कृष्ण कुमार और अंतिम वक्ता के नाते इंद्रनाथ चौधरी भी उपस्थित थे। सम्मान समारोह के अंत में एक बार फिर रामविलास शर्मा जी का नाम पुकारा गया कि अगर वे इस बीच आ गए हों तो मंच पर आ जाएँ। केदार जी भी सकते में थे कि ऐसा भला कौन हिंदी वाला होगा जो रामविलास जी को नहीं जानता होगा। बाद में, जब मैंने रामविलास जी को इस हास्यास्पद घटना के बारे में बताया था, तो तबीयत बिगड़ने के बावजूद वे हँसते रहे और कहा "हिंदी की दुर्गति के कारण ऐसे सम्मान समारोह ही हैं, जिनसे मैं बचता रहा हूँ।"

समापन समारोह के बाद हम होटल लौटे। भोजन करने के बाद केदार जी के साथ मैं आसपास के बाज़ारों में घूमता रहा। केदार जी कुछ कपड़े और खिलौने खरीदना चाहते थे, लेकिन उनके दाम हमारे होश उड़ाने के लिए काफ़ी थे। मैं अपनी ख़रीदारी पहले ही कर चुका था। "बच्चों के लिए खरीदे जाने वाले खिलौने दो दिन बाद ही पुराने हो जाते हैं और कपड़े दो महीने बाद छोटे।" हमारे भीतर बैठे कंजूस अभिभावक ने हमें तसल्ली दी कि 'बाज़ार से (गया) गुज़रा हूँ ख़रीदार नहीं हूँ।'

लेकिन ग्रेट रसेल स्ट्रीट में एक इलेक्ट्रॉनिक शॉप में हजामत बनाने वाली मशीन और वॉय्स रिकॉर्डर देखने के चक्कर में पहले मैं और फिर केदार जी फँस ही गए। पहले की कीमत बीस पाउंड थी। और दूसरे की तीस पाउंड। मुझे उन दिनों अकादमी के उपसचिव के नाते विभिन्न स्थानों की यात्रा करना और विभिन्न संस्थाओं में आयोजित कार्यक्रमों का संचालन–संयोजन भी करना पड़ता था। मेरे पास कुल साठ–पैंसठ पाउंड अब भी पड़े थे। चूँकि दुकानदार कड़क ब्रिटिश था, इसलिए मोल–भाव की कोई गुंजाइश नहीं थी। मेरी देखा–देखी केदार जी ने भी 'ओलम्पस' माइक्रो रिकॉर्डर तीस पाउंड (बी.बी.सी. से मिले) में खरीद लिया। हालाँकि बाद में दोनों ने इसे इस्तेमाल दो–चार बार ही किया। मेरे पास आज भी वह पड़ा और अब भी मरियल ढंग से काम करने की स्थिति में है।

लंदन से भारत की हवाई यात्रा बहुत सुखद रही। वापसी में अनावश्यक अफ़रा–तफ़री नहीं थी। आमिष–निरामिष भोजन के साथ पेय की समुचित व्यवस्था थी। इसलिए जब भी हमारी नींद खुलती, हम 'तेज़ाब' की शरण में चले जाते। स्मारिका (सुवेनियर) के नाते बँटने वाली तर्जनी आकार की अलग–अलग ब्रांड की 'तेज़ाब' की शीशियाँ भी हमने रख लीं। केदार जी की झिझक के बावजूद मैंने उनकी जेब में दो–तीन शीशियाँ डाल दी थीं।

19 सितंबर की सुबह जब हम दिल्ली के पालम हवाई अड्डे पर उतरे, तो सामने सूरज चमक बिखेर रहा था। टैक्सी पर सामान रखकर केदार जी जे.एन.यू. स्थित अपने आवास 'दक्षिणापुरम्' रवाना हुए, तो मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर कहा – "साहा, आप नहीं होते तो यह यात्रा मेरे लिए एक दुःस्वप्न की तरह होती।... जल्द ही मिलते हैं..." और हाथ हिलाकर विदा हुए।
मैं रास्ते में बार–बार उनकी बहुश्रुत पंक्तियाँ दोहराता रहा... "दुनिया को हाथ की तरह गर्म और सुंदर होना चाहिए।"

saharanjit@gmail.com

लंदन : एक अविस्मरणीय यात्रा

– डॉ. सुरीति रघुनंदन
मॉरीशस

प्रारब्ध में जो लिखा होता है, परिस्थितियाँ हमें उन्हीं रास्तों पर चलाने लगती हैं। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मेरा चयन लंदन जाने वाले प्रतिनिधिमंडल में हुआ, जिसका उद्देश्य यू.के. में प्रवासी साहित्य के विभिन्न बिंदुओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रकाश में लाना था।

डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय के के.एम. आई. संस्थान के निदेशक प्रो. प्रदीप श्रीधर के एक ईमेल ने मेरे अनुभव संसार में एक ऐसा अध्याय जोड़ दिया, जो जीवन भर साथ चलेगा। इस ईमेल के माध्यम से प्रो. श्रीधर ने मुझे आमंत्रित किया कि मैं उनके दल का हिस्सा बन एक त्रिदिवसीय साहित्यिक सम्मेलन में शामिल होने के लिए लंदन और ऑक्सफ़ोर्ड चलूँ। कलम कागज़ से मेरा रिश्ता पुराना रहा है। यह ईमेल शायद उसी रिश्ते का एक सम्मान था। गोष्ठी में शामिल होने के खर्चे का हिसाब–किताब लगाने लगी। यह तो सच है कि मैंने मन–ही–मन यह तय कर लिया था मैं इस अवसर को हाथ से जाने नहीं दूँगी। ईमेल में इस तीन दिवसीय संगोष्ठी की तारीख दी हुई थी और मैंने सर्वप्रथम उस दिन की अपनी लंदन की टिकट का आरक्षण करवा लिया। अब मेरा सपना पूरा होना तय हो चुका था।

लंदन तक की सीधी उड़ान 8–9 घंटे की थी, परंतु मैं सस्ती और रोचक यात्रा चाहती थी, जिसकी शर्त बस यही थी कि समय अधिक लग रहा था। मुझे मॉरीशस से सेशेल्स फिर सेशेल्स से आबू धाबी और फिर आबू धाबी से लंदन जाना था। श्रीधर सर से विचार–विमर्श कर यह निर्णय लिया कि मैं आबू धाबी में भारत से आने वाले समूह में सम्मिलित हो जाऊँगी, जिससे लंदन तक की यात्रा आसान लगेगी। आशावादी प्रवृत्ति ने बहुत सहायता की।

दिमाग को जैसा प्रशिक्षित करते हैं, वह उसी दिशा में अपनी शक्ति लगा देता है और सटीक रास्ते खोज लेता है। मेरा पूरा ध्यान वित्तीय समस्या के समाधान के हल और लंदन में प्रस्तुत करने वाले पत्रों की तैयारी पर था। दबाव बहुत अधिक था, परंतु योजनाबद्ध तरीके से कार्य करती रही। मेरे सामने सबसे बड़ी चुनौती पारिवारिक कर्त्तव्यों के निर्वाह और हिंदी कक्षा की तैयारी में संतुलन बनाए रखना था।

मेरा एक पत्र 'विक्रम सेठ और तेजेन्द्र शर्मा के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' पर था, जिसके लिए दोनों कवियों की पुस्तकों को पढ़ना आवश्यक था, तभी तुलना संभव थी। मैं 20 मिनट की बस यात्रा का भी सदुपयोग कर रही थी। समय भाग रहा था और समय–सीमा के अंतर्गत ही पत्र लिखकर भेजना था। वास्तव में दोनों कवियों की एक–एक कविता की गहराइयों तक उतरी। तब तुलना संभव हो पाई। प्रवासी साहित्य के विषय में सुना अवश्य था, परंतु अध्ययन का अवसर पहली बार मिला था। बहुत स्थान पर कविताओं में अपने मनोभाव पाए। प्रवासी भारतीय के अन्तर्द्वंद्व और संघर्ष को समझना मेरे लिए बहुत आसान था, क्योंकि मैं पिछले कई वर्षों से मातृभूमि भारत से दूर मॉरीशस में बसी हूँ। यादों के सहारे जीवन नहीं चलता है। यथार्थवादी हो परिस्थितियों के अनुसार जीवन जीना ही वास्तविक सफलता है।

विश्व के अन्य विचारकों के प्रवासी साहित्य के विषय में क्या विचार हैं? शोध कार्य करने से जानकारी में दिन–प्रतिदिन ज्ञानवर्धन हो रहा था। हिंदी में सभी अंग्रेज़ी परिभाषाओं का अनुवाद करना आनंदित कर रहा था। डिप्लोमा इन ट्रांसलेशन का सदुपयोग पूर्णतः कर पा रही थी।

तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ भी मैंने पढ़ी थीं।

जितनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पात्रों के संवाद कसे हुए थे, उनका चरित्र कहीं भी दिखावटी नहीं लगता। हमारे आस–पास के चरित्र होते हैं। ब्रिटेन की पृष्ठभूमि है, तो समाज का वास्तविक चित्रण किया है। कविताओं में कहीं भारत की समस्याएँ उन्हें आहत करती हैं, तो कहीं मातृभूमि की यादें पीछा करती हैं, तो वहीं दूसरी ओर अपनाई हुई भूमि को अपना मानकर कह उठते हैं –

"नदी की धार बहे आगे मुड़े न देखे,
न समझो इसे भँवर, अब यही किनारा है।"

तेजेन्द्र शर्मा जी ने अपने काव्य संग्रह 'मैं कवि हूँ इस देश का' में दोनों देशों के मध्य एक सांस्कृतिक पुल बनाने का कार्य किया है। वह यथार्थवादी कवि और कथाकार हैं। 17 जून 2017 को ब्रिटिश सरकार द्वारा उनकी हिंदी साहित्य की सेवा और सामुदायिक एकजुटता की गतिविधियों के लिए उन्हें "मेम्बर ऑफ़ द ऑर्डर ऑफ़ द ब्रिटिश एम्पायर" से सम्मानित किया गया। हिंदी साहित्य की सेवा के लिए प्राप्त यह सम्मान समग्र हिंदी जगत के लिए गर्व की बात है, क्योंकि किसी भारतीय मूल के ब्रिटिश नागरिक को हिंदी साहित्य व संस्कृति की सेवा के लिए दिया जाने वाला पहला सम्मान है।

प्रवासी साहित्य का प्रचार–प्रसार विश्व में हो रहा है। यह हर्ष की बात है। साहित्य में भी स्थान मिल रहा है, कई विश्वविद्यालयों में शोध–कार्य भी हो रहे हैं। विभिन्न कारणों से अपना देश छोड़कर विदेशों में बसने वाले लोग ही प्रवासी कहलाते हैं। पुरानी पीढ़ी को मज़दूर के रूप में जबरन लाया गया था नए देश के विकास के लिए, तो वहीं दूसरी ओर नई पीढ़ी शिक्षा प्राप्ति हेतु, तो कभी–कभी निजी आर्थिक प्रगति की आशा में स्वेच्छा से विदेशों की ओर आकर्षित हो रही है।

प्रवासी लेखक नए देश में स्थापित होने के दौरान जिन आंतरिक और बाहरी संघर्षों के विभिन्न पड़ावों से जूझते हुए स्वयं को प्रवासी देश के अनुकूल स्थापित करने में सफल होते हैं, उनके मनोभावों को विभिन्न विधाओं कथा, उपन्यास, ग़ज़ल और कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करने का सराहनीय कार्य प्रवासी लेखकों ने किया है, जैसे झुम्पा लहरी, सलमान रश्दी, अमिताभ घोष तथा तेजेन्द्र शर्मा जी इत्यादि।

प्रो. प्रदीप श्रीधर सर ने ऑक्सफ़ोर्ड जाने वाले सदस्यों का एक वाट्सएप ग्रुप बनाया था, जिसके माध्यम से लगभग 8–9 महीनों तक सभी सदस्य उनके साथ निरंतर संपर्क में रहे।

प्रत्येक सदस्य ने अपनी रुचि के अनुसार शोध के विषय का चयन किया जो कि यू.के. का प्रवासी साहित्य विशेष सन्दर्भ तेजेन्द्र शर्मा जी का काव्य या कहानियाँ थीं। कड़ी मेहनत और अनुशासन से कार्य सुचारु रूप से चल रहा था। कुल तीन पत्रों पर तैयारी करनी थी। एक शोध जो हमने पुस्तक में प्रकाशित करवाने के लिए लिखा था और दूसरा पत्र हाउस ऑफ़ कॉमन्स के लिए जो कि ब्रिटेन और भारत के संबंधों पर आधारित था। तीसरा पत्र ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, लंदन में प्रस्तुति के लिए लिखा जा रहा था। उसी विश्वविद्यालय के प्रो. इमरे बंघा जी हमारे शोध–पत्रों पर सूक्ष्म दृष्टि रखे हुए थे और तब तक प्रस्तुति की अनुमति नहीं मिली, जब तक वे शोध–पत्रों से संतुष्ट नहीं हुए। मुझे इस बात की अत्यंत प्रसन्नता है कि हम कुछ ही प्रयासों के पश्चात् उनकी अपेक्षाओं पर खरे उतरे। प्रो. श्रीधर सर का बहुत सहयोग और प्रोत्साहन मिलता रहा। उनके सकारात्मक वाक्यों ने हम सभी का उत्साह बढ़ाए रखा। उन्होंने कहा "आप सभी सदस्य विश्व के सर्वोच्च विश्वविद्यालय में अपने पत्रों की प्रस्तुति करने जा रहे हैं। आप से बहुत अपेक्षा भी रखी जा रही है। कार्य कठिन अवश्य होगा, परन्तु सफलता भी उतनी ही उत्कृष्ट मिलने वाली है।" 7 नवंबर को दीपावली थी और मैंने पहली बार कागज़ कलम के साथ दीपावली मनाई थी। मेरे लिए कर्म ही त्योहार है। नव्या बेटी के लिए बस आसान रंगोली बनाई।

परिवार के सभी सदस्यों का भरपूर योगदान मिलना सौभाग्य की बात है। आखिर 11 नवंबर का शुभ दिन आ गया था। हवाई अड्डे पर तीन घंटे पूर्व पहुँचना था, 4.30 बजे की उड़ान थी। एक सप्ताह के

लिए जा रही थी, परन्तु घर भी व्यवस्थित करना चाहती थी। बेटी नव्या 8 बरस की है, परन्तु बहुत सहयोग देती है। संयुक्त परिवार के लाभ होते हैं। मैं निश्चिंत थी कि पति और बेटी अकेले नहीं हैं। परिवार के साथ में हैं। सुबह सारा सामान अटैची और बस्ते में व्यवस्थित किया। मॉरीशस से भारत और भारत से मॉरीशस की ही यात्रा पंद्रह वर्षों से कर रही थी। कुछ सामान छूट भी जाए तो दोनों जगह घर था, इसलिए अधिक चिंता नहीं होती थी। परन्तु लंदन यात्रा जितनी रोमांचकारी साहित्यिक यात्रा लग रही थी, उतना ही नए देश में जाने का अंजान–सा भय भी। मौसम भी सर्दी का था, बर्फ़ न पड़ जाए। सारी तैयारी अच्छी तरह कर ली थी। लंदन के लिए भरपूर गर्म कपड़ों की पूरी व्यवस्था कर ली थी। वाट्सएप समूह पर हमें मौसम सम्बन्धी जानकारी प्राप्त हो गई थी।

श्रीधर सर समय–समय पर नई–नई जानकारियों से अवगत करवाते जा रहे थे, जिससे सभी तैयारियाँ सुव्यवस्थित रूप से हो गई थीं। सूखे नाश्ते का सामान भी रखा था। बिस्कुट, नमकीन, केक, फलों के रस के डिब्बे तथा दवाइयाँ भी रख ली थीं, जो आपातकालीन स्थिति में प्रयोग में लाई जा सकें, जैसे कि सर्दी, खाँसी, ज़ुकाम, सर दर्द इत्यादि। सास–ननद सभी का आशीर्वाद ले घर से हवाई अड्डे की ओर निकल पड़ी। मेरे पति, बेटी और देवर साथ आए। सही समय पर पहुँच गई थी। 'एयर सेशेल्स' का विमान छोटा था। औपचारिकताएँ पूरी कर आखिर हवाई जहाज़ में बैठ गई। प्रभु को धन्यवाद दिया नई उड़ान के लिए। ढाई घंटे में सेशेल्स पहुँच गई। 1–2 घंटे विश्राम के पश्चात् लगभग 8.20 पर आबू धाबी के लिए अगली उड़ान भरी। तैयारियों की बहुत थकान थी। रात्रि भोजन के पश्चात् गहरी नींद आ गई। लगभग रात्रि के 1 बजे आबू धाबी हवाई अड्डे पर पहुँचे। ऊपर से हवाई अड्डे का दृश्य बहुत सुंदर लग रहा था। हवाई जहाज़ से उतरते ही सामने एक वाहन खड़ा था, जिसने हमें उस स्थान तक पहुँचा दिया जहाँ से लंदन की उड़ान भरनी थी। सुबह 8 बजे लंदन की उड़ान भरनी थी। नींद पूरी हो जाने के कारण तरोताज़ा अनुभव कर रही थी।

वहाँ कुछ भारतीय परिवार मिल गए। बातचीत में समय का पता ही नहीं चला। हवाई अड्डे पर कई भोजनालय थे, जहाँ से चाय की इच्छा की पूर्ति आसानी से हो गई। कई भारतीय और नेपाली वहाँ काम करते हुए नज़र आए। रोज़ी–रोटी की तलाश में व्यक्ति देश छोड़ने को भी सहज तैयार हो जाता है ।

एक दो घंटे बाद वह परिवार चला गया। अकेली बैठी थी कि एक भारतीय समूह आकर बैठ गया, जो दुबई से भारत लौट रहा था, जिसमें वे लोग थे जो दुबई में काम करते थे। बातचीत के दौरान ज्ञात हुआ कि वे परिवार को गरीबी से उबारने के लिए काम कर रहे हैं, कड़ी मेहनत ही उनकी आमदनी की शर्त है। बहुत नए–नए अनुभव हो रहे थे। मेरा ध्यान भारत से आने वाली उड़ानों पर था, क्योंकि आगरा से आने वाले लोगों में प्रो. श्रीधर के अतिरिक्त किसी से परिचित नहीं थी, बाकी सदस्य भारत के विभिन्न प्रान्तों से थे।

घबराहट बढ़ रही थी, भीड़ का रेला तो आता जा रहा था, परंतु नज़रें किसी परिचित को ढूँढ रही थीं। अचानक आगरा की हिंदी सुनाई दी, जो कि ब्रजभाषा मिश्रित होती है। मैं तुरंत उनके पास पहुँची और पूछा, "आप लोग श्रीधर सर के साथ हैं", उनका जवाब 'हाँ' में जानकर राहत मिली तभी सर भी मिल गए। उन्होंने प्रो. शिखा श्रीधर मैम से भी परिचय करवाया। मैडम ने बहुत प्यार से गले लगाया। हवाई जहाज़ में जाने की औपचारिकताएँ पूरी होने लगीं। हम सभी ने लंदन यात्रा के लिए उड़ान भर ली थी। मेरी सीट दरवाज़े के बिलकुल साथ थी। बहुत विशाल जहाज़ था, जिसमें चार श्रेणियाँ थीं और पहली मंज़िल पर बिज़नेस क्लास के लिए स्थान था।

जहाज़ के स्थिर होने पर मैंने अपना स्थान छोड़ा और अपने प्रतिनिधिमंडल के लोगों से मुलाकात के लिए चल पड़ी। सबसे पहली मुलाकात डॉ. कविता रायज़ादा और डॉ. निशीध गौर से हुई। संक्षिप्त मुलाकात हवाई अड्डे पर हुई थी। मुझे भय इस बात का था कि यदि बिछड़ गई, तो कठिनाई होगी। सभी

होटल की व्यवस्था, यातायात की जानकारी श्रीधर सर के पास थी। डॉ. कविता जी ने कहा, "डॉ सुरीति आप द्वार के पास ही रहें।" मैं सबसे पहले उतरी। उड़ान के दौरान बहुत आरामदायक कुर्सियाँ थीं, किनारे पर मुलायम कुशन लगा था, जिस पर सिर रखकर सोया जा सकता था। विमान परिचालिकाएँ और परिचालक बहुत सहयोगात्मक व्यवहार के थे। मेरा सामान रखने में स्वयं आकर मदद की। मेरा कद उस ऊँचाई से काफ़ी कम था। शाकाहारी स्वादिष्ट भोजन ग्रहण कर गहरी नींद के आगोश में चली गई। 'हीथ्रो' हवाई अड्डा ऊपर से आकर्षक लग रहा था। जहाज़ से उतरते ही एक नए तनाव ने जन्म लिया। मेरा वीज़ा हवाई अड्डे पर ही मिलना था। कर्मचारी को मेरे जवाब संतोषजनक लगने पर ही मेरा वीज़ा प्राप्त होना था।

मेरे पास मॉरीशसीय पासपोर्ट है और फ़ोटो में चश्मा नहीं लगाया था। पहला सवाल, आपने फ़ोटो में चश्मा नहीं लगाया। मैंने बताया कि जब पासपोर्ट मिला तब चश्मा नहीं लगाती थी। उन्होंने पूछा आप यहाँ क्यों आई हैं? मैंने संगोष्ठी का निमंत्रण पत्र दिखा दिया। वह महिला संतुष्ट नज़र आ रही थी और छः माह के वीज़ा की मोहर लगा दी और मुस्कुरा कर कहा 'लंदन प्रवास शुभ हो।'

चैन की साँस ली। धीरे–धीरे आगे बढ़ी, मेरा समूह दिखाई दे गया। सभी ने हवाई अड्डे पर एक दुकान पर लंदन का सिमकार्ड मोबाइल में डलवाया। जिसका दुकानदार भारतीय ही था। तब तक डॉ. श्रीधर सर मेरा सामान ले चुके थे, मेरे सामान पर मेरा नाम और पीले रंग के रिबन बंधे हुए थे, क्योंकि कभी–कभी एक जैसे रंग और डिज़ाइन के ब्रीफ़केस कई लोगों के पास होते हैं।

हवाई अड्डे के बाहर ही हमारा वाहन खड़ा मिल गया। श्री रणजीत सिंह जी वाहन चालक थे। पंजाबी थे और लंदन में कई वर्षों से रह रहे थे। हमने 'होली–डे–इन' होटल की ओर प्रस्थान किया। रास्ते भर सुंदर व अत्याधुनिक इमारतें, स्वच्छता देखकर मन प्रसन्न हो गया। होटल पहुँचकर डॉ. सुनीता सिंह जो मथुरा की थीं, हम दोनों एक ही कमरे में रहने वाले थे। हम दोनों एक दूसरे की कल्पनाओं के विपरीत थे। उनको लगा कि मॉरीशस से कोई बुज़ुर्ग मैडम होंगी और मुझे लगा कि कोई श्रीधर सर की छात्रा होंगी, परन्तु हमउम्र निकले। कमरे में सभी सुविधाएँ थीं।

सबसे खुशी की बात हमें चाय मिल गई थी, जिसके हम दोनों ही दीवाने थे। नहा धोकर हमने चाय बनाई, मैंने कई वर्षों बाद मथुरा के पेड़े खाए और खूब गपशप की। सर ने समय बता दिया था कि रात्रि भोजन हेतु होटल के द्वार पर आ जाएँ। वहाँ से हमें भारतीय भोजनालय में जाना था। हम सभी को भारतीय भोजन प्राप्त हुआ, जो बहुत स्वादिष्ट था। मैंने भारत के विभिन्न भागों से आए मित्रों को मॉरीशस की यादगार वस्तुएँ भेंट स्वरूप दीं। दक्षिण भारत से डॉ. के.वी. इंदु जी, कलकत्ता से डॉ. मधु ओझा, महाराष्ट्र से राजेंद्र पोवार, डॉ. सुशील कोटनाला जी उत्तरांचल से, आगरा से डॉ. कविता रायज़ादा तथा डॉ. निशीध गौर जी, मॉरीशस से विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव प्रो. विनोद कुमार मिश्र जी तथा डॉ. तनुजा पदारथ बिहारी और स्वयं मैं थी।

दूसरे दिन हम 'टावर ऑफ़ लंदन' देखने गए। 'कोहिनूर' देखने की उत्सुकता बहुत अधिक थी। राजसी इतिहास, किले, ठाट–बाट और हथियारों की प्रदर्शनी सभी देशों में लगभग समान ही नज़र आई। 'कोहिनूर' को भारत से मिली भेंट के रूप में प्रदर्शित किया गया। दिल भर के देखने का भी समय नहीं मिला, क्योंकि अत्याधुनिक स्वचालित मार्ग था। 'कोहिनूर' के 'क्षणिक' दर्शन हुए। हृदय में प्रश्नों के बवंडर थे परंतु कई प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते।

रात्रि भोज का आयोजन जानी–मानी साहित्यकार ज़किया ज़ुबेरी जी और श्री तेजेन्द्र शर्मा जी की ओर से एक गुजराती भोजनालय में हुआ। विविध स्वादिष्ट व्यंजन उपलब्ध थे, समझ में नहीं आ रहा था कि कहाँ से शुरू करें। ढोकला जो मेरा मनपसंद था, वहीं से शुरुआत की।

हमें कई जानकारियाँ वाहन चालक श्रीमान

रणजीत जी से भी मिलती रहीं। उन्होंने बताया कि लंदन में 325 भाषाएँ बोली जाती हैं, परंतु अंग्रेज़ी मुख्य भाषा के रूप में प्रचलित है। लंदन में भूमिगत रेलगाड़ी है, जिसे बिजली से नियंत्रित किया जाता है और इसमें कोई चालक नहीं होता।

लंदन की खूबसूरती देख हम मंत्रमुग्ध हुए जा रहे थे। सड़कों पर चलने वाली बसें और कारें देख ऐसा लग रहा था कि शोरूम से अभी लायी गयी हों। चमकदार और साफ़–सुथरी थीं।

लंदन वास्तव में सपनों का शहर था। लंदन में 6 प्रतिशत भारतीय लोग रहते हैं। भारत से जो लोग स्थायी रूप से लंदन में बस गए, उन्होंने लंदन को लघु भारत का रूप देने की भी सफल चेष्टा की है। काफ़ी हद तक 'नॉस्टेल्जिया' की भावना को राहत भी मिल जाती है। जैसे साउथहॉल से गुज़रने पर चाँदनी चौक पर होने का आभास होता है, तो ईलिंग रोड मुम्बई के दर्शन देता है। वहाँ साड़ी की दुकानें, मसाले, दालें तथा आयुर्वेदिक वस्तुओं को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

हमारे शोध–पत्रों का विषय प्रवासी लेखक श्री तेजेन्द्र शर्मा जी के काव्य और कहानियों पर आधारित था। तेजेन्द्र सर से फ़ोन द्वारा बातचीत तो हुई थी, परंतु साक्षात दर्शन पहली बार हो रहे थे। उनका कृतित्व जितना प्रभावशाली है, उतना ही उनका व्यक्तित्व भी। सर का हँसमुख व्यवहार और आत्मीयता के कारण सभी ने सहजता का अनुभव किया। दिखावा या घमंड उनके आस–पास भी नहीं मंडराता है। उन्होंने लंदन को पूर्णतः अपना लिया है। ब्रिटेन की हर समस्या उनकी अपनी लगती है। प्रवासी देश लंदन के विषय में सार्थक टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा "मैं ब्रिटेन की कुछ बातों का कायल हूँ। यहाँ आम आदमी की बहुत कदर है, यहाँ इंसान को इंसान समझा जाता है, यहाँ टुच्चा भ्रष्टाचार नहीं है।" मैडम से बहुत नवीन जानकारियाँ मिलीं। वह ब्रिटेन में समाज सेविका से लेकर राजनीति में भी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं।

सुंदर यादें लेकर हम होटल पहुँच गए। दूसरे दिन हमने कई दर्शनीय स्थानों का भ्रमण किया। हम बकिंघम पैलेस गए, जो कि महारानी का बहुत ही सुंदर महल है। पर्यटकों की भीड़ चारों ओर थी।

सुबह नाश्ता करके निकलते थे और रास्ते में भूख लगती भी थी तो मिठाइयाँ, घर के बने सूखे नाश्ते सभी के पास होते थे, सभी मिल–जुलकर खाते और गाते थे। दोपहर को भोजनालय श्री रणजीत जी लेकर जाते थे। भारतीय शाकाहारी भोजन हमें आसानी से प्राप्त हो गया था। भारत से बाहर अरहर की दाल, पालक पनीर, छोले, गाजर का हलवा और कुल्फ़ी तक का मज़ा हमने उठाया। मनपसंद भोजन से आत्मा तृप्त हो जाती है और हमारा लंदन प्रवास साहित्यिक यात्रा के साथ–साथ सांस्कृतिक आदान–प्रदान की दृष्टि से भी रोमांचकारी सिद्ध हुआ है। रात्रि का भोजन ग्रहण कर हम होटल लौट आए।

हम सभी सदस्यों का शारीरिक चक्र असंतुलित हो रहा था, क्योंकि समय का अंतर था। भारत और लंदन में साढ़े चार घंटे का तथा मॉरीशस और लंदन में तीन घंटे का। सुबह तीन बजे ही नींद खुल जाती थी। डॉ. सुनीता और मैं सुबह उठकर अपने परिवार से बातचीत कर लेते थे। सारा दिन व्यस्त रहते थे और जब हम खाली होते थे, तो वहाँ समय बहुत अधिक हो जाता था। हमारी अधिकतर साहित्य संगोष्ठियाँ सायंकाल 5 बजे के बाद प्रारंभ होती थीं। नींद पर बहुत नियंत्रण करना पड़ता था। होटल के कमरे में ही चाय बनाने की व्यवस्था थी, जिससे बहुत राहत मिल जाती थी।

तीसरे दिन हमने अधिकतर स्थानों का भ्रमण कर लिया था। लंदन आय, मैडम तूसो, तथा टावर ब्रिज इत्यादि। 'मैडम तूसो' मोम संग्रहालय चित्र को बाँधे रखने के लिए पर्याप्त है। कई लोकप्रिय नेताओं और अभिनेताओं के पुतलों के अतिरिक्त राजनीतिज्ञों के पुतलों के भी दर्शन हुए। असली और नकली का अंतर करना असंभव–सा प्रतीत होता है। सच में मन इतना रम गया था कि वहाँ से प्रस्थान करना कठिन प्रतीत हो रहा था। 'टावर ब्रिज' लंदन का प्रतीक चिह्न बन गया है, जो कि थेम्स नदी को पार करने के लिए बनाया गया है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यातायात के साधन,

जहाज़ों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई थीं जैसे बड़े जहाज़ों के गुज़रने के लिए पुल दोनों तरफ़ से खुल जाता था और जहाज़ आसानी से पार हो जाता था।

लंदन में जहाँ स्वच्छता, अनुशासनप्रियता और मानवीयता के दर्शन हुए, वहीं सभी सभ्यताओं और धर्मों का भी समान रूप से सम्मान किया जाता है। मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे भी गिरजाघरों की तरह देखने को मिल जाते हैं।

गुरुद्वारे के दर्शन भी श्रीमान रणजीत सिंह के सहयोग से हमें हो गए थे। वहाँ भूगर्भ में धरती को गर्म रखने के लिए 'हीटर' की व्यवस्था की गई है, ताकि लोग नंगे पांव भी सर्दी के मौसम में चल सकते हैं। प्रसाद ग्रहण किया। व्यवस्था बहुत उत्तम थी। श्रीमान रणजीत जी भी वहाँ की इमारतों के विषय में बताते जा रहे थे। उन्होंने बताया कि वर्षों पूर्व मकान के नम्बर नहीं होते थे, परंतु लोहे की खिड़कियों के नमूने प्रत्येक घर के अलग–अलग होते थे, जिससे मेहमानों को घर पहुँचने में आसानी होती थी। ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट पर हम सभी ने खरीदारी की। परिवार के सदस्यों के लिए यहाँ की यादगार चीज़ें ले जाना आवश्यक था। वस्तुओं की गुणवत्ता बहुत उच्च स्तरीय थी। श्रीधर सर ने होटल से निकलते ही सभी को होटल के कार्ड रखने को दिए तथा कहा कि चार–चार के समूह में रहना ताकि अकेले होने पर किसी समस्या का सामना न करना पड़े। सभी के पासपोर्ट सदा साथ रहते थे। कानून बहुत सख्त थे। खरीदारी करते समय कभी–कभी सामान देखते हुए इधर–उधर हो जाते थे, परंतु शीघ्र ही एक दूसरे को ढूंढकर तुरंत साथ हो लेते थे। लोगों के बैठने की व्यवस्था होती है। लोग आसानी से घूम सकते हैं। गति बहुत धीमी होती है। एक चक्कर पूरा करने में 30 मिनट का समय लगता है। मित्रों ने वीडियो बनाई थी जिसे मैंने देख लिया था। ऊपर से चारों ओर का दृश्य मनभावक होता है।

श्रीधर सर और उनकी पत्नी मैडम शिखा श्रीधर ने परिवार के मुखिया की तरह हम सबका ध्यान रखा। होटल से निकलते ही एक–एक लौंग हमें मुँह में रखने को देती थीं, जिससे सर्दी के प्रकोप से सभी बचे रहें।

परिवार से दूर होकर भी परिवार के साथ रहने की अनुभूति हो रही थी। आगरा से तो आत्मिक रिश्ता है। मेरा जन्म स्थान है। आगरा के परिचित लोगों के विषय में जानकारी मिली। मायके में रहने जैसा अनुभव हो रहा था। साहित्यिक यात्रा का प्रारम्भ और शिक्षा वहीं से प्राप्त हुई थी।

'मैडम तूसो' मोम संग्रहालय में घंटो बिताए, तब भी मन नहीं भरता है। असली व्यक्ति और पुतले में अंतर करना बहुत कठिन है। सभी ने अपनी–अपनी रुचि के अनुसार तस्वीरें खिंचवाईं। एक ऐसा भी स्थान था, जहाँ संकरे रास्तों से छोटी खुली हुई रेलगाड़ी थी, किनारे पर दृश्य उकेरे गए पुतले और वस्तुओं के माध्यम ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी भी अंग्रेज़ी में ही आ रही थी, ध्वनि, दृश्य और रंगीन बिजली की त्रिवेणी बता रही थी कि हम स्वयं को एक रहस्यमय दुनिया में होने का अनुभव कर रहे थे। यह अनुभव का विषय है शब्दों की सीमा से परे।

हमारी संगोष्ठी का पहला सत्र हाउस ऑफ़ कॉमन्स में था, जो ब्रिटेन की संसद है। ग्यारह सौ वर्ष के इतिहास में पहली बार हिंदी साहित्य पर मंथन किया गया। हम सभी ने अपने–अपने पन्नों का वाचन किया तथा सबसे अधिक हर्ष का विषय यह था कि हमारा समूह इतिहास का हिस्सा बनने जा रहा था।

कड़ी सुरक्षा जाँच के पश्चात् अंदर प्रवेश किया। वहाँ श्री तेजेन्द्र शर्मा सर तथा प्रो. इमरे बंघा सर से मुलाकात हुई जो ऑक्सफ़ोर्ड में ही कार्यरत हैं।

वे धाराप्रवाह हिंदी बोल रहे थे। मैंने प्रणाम किया और बस मन की बात कह दी, "सर आप बहुत शुद्ध हिंदी बोलते हैं, हम प्रसन्न हुए। एक अहिंदी भाषी को हिंदी बोलते देख अद्भुत अनुभूति हो रही है।"

प्रतिक्रिया स्वरूप सर ने कहा कि डॉ. सुरीति मैं हिंदी वैसे ही बोलता हूँ जैसे आप अंग्रेज़ी बोलती हैं। मातृभाषा का प्रभाव अन्य भाषाओं के उच्चारण पर पड़ना स्वाभाविक ही है। वहाँ की कलात्मकता देखते ही बनती थी। दीवारों से लेकर छतों तक।

जहाँ तक नज़र जाती थी, सौंदर्य के अद्‌भुत संसार में थे। बी.बी.सी. रेडियो की हस्तियों से भी मुलाकात का अवसर मिला। हिंदी सीखने वाले छात्रों की टोलियाँ भी आई थीं। अनेक साहित्यकार, हिंदी प्रेमियों का जुटाव हुआ था। संसद में ब्रिटेन और भारत के संबंधों पर चर्चा की गई। व्यापारिक संबंध तो दोनों देशों के उत्तम हैं। अब सामाजिक और सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ता प्रदान करने का पावन कार्य साहित्यिक संगोष्ठियों के माध्यम से हो रहा है। साहित्यकार इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहे हैं। एक सेतु का कार्य कर रहे हैं। दोनों देशों की सभ्यता और सांस्कृतिक विरासत का अपनी लेखनी के माध्यम से विश्व स्तर पर प्रचार–प्रसार का कार्य कर रहे हैं ।

कथा यू.के. की तरफ़ से हम सभी सदस्यों को प्रतीक चिह्न भेंट किए गए तथा महिलाओं को विदुषी सम्मान तथा पुरुषों को विद्वान सम्मान देकर गौरवान्वित किया गया। विश्व स्तर पर भारतीय संस्कृति और हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए यह सम्मान प्राप्त हुआ। आकस्मिक रूप से प्राप्त सम्मान से मन–मयूर नाच उठा। लग रहा था कि 8–9 महीने की मेहनत का फल है। कथा यू.के. के संस्थापक कथा शिल्पी तेजेन्द्र शर्मा जी के प्रति अपार सम्मान प्रेषित करती हूँ। लंदन यात्रा में बहुत कुछ सीखा, जो कि भविष्य में प्रेरित करता रहेगा नवीन कृतियों के सृजन के लिए।

16 नवंबर का दिन पाँचवा और अंतिम दिन था लंदन में। सुबह होटल से नाश्ता कर ऑक्सफ़ोर्ड की ओर प्रस्थान किया। यात्रा लंबी पर रोचक लगी। रणजीत जी ने कहा आप अपने साथ धूप भी लाए हैं, सर्दी थी परंतु कभी सूरज भी दिखाई दे देता था।

दोपहर का भोजन साहित्यकार डॉ. पद्‌मेश गुप्त जी की ओर से था। वाहन से उतरते ही हमारे स्वागत के लिए मैडम ज़किया ज़ुबैरी जी और तेजेन्द्र शर्मा सर खड़े थे। डॉ. पद्‌मेश जी यूँ ही देखते ही बोले, दीदी हम विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस में आपसे मिले थे। तेजेन्द्र सर ने मुस्कुरा कर कहा था "डॉ. सुरीति आपसे पहले आपकी पहचान यहाँ पहुँची हुई थी।"

डॉ. पद्‌मेश गुप्त के कॉलिज में हमारा भव्य स्वागत हुआ। सुंदर कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। हम सभी को अत्यन्त खुशी हुई कि भारत के बाहर भी भारतीयों ने अपना विशेष स्थान बनाया हुआ है। हम सभी को उपहार प्रदान किये गए तथा प्रमाण–पत्रों से हमारा उत्साह बढ़ाया गया। सायंकाल पाँच बजे ऑक्सफ़ोर्ड में हमारा दूसरा सत्र प्रारम्भ हुआ। अनुशासन का कड़ाई से पालन होता है। वहाँ के निदेशक ने वीडियो कॉन्फ्रेंस के माध्यम से हम सभी का स्वागत किया तथा संक्षिप्त भाषण दिया। तेजेन्द्र शर्मा जी के कृतित्व पर लिखे शोध पत्रों की तीन पुस्तकों का विमोचन हुआ। हम सभी ने उत्साह पूर्वक अपने–अपने पत्रों का वाचन किया। सभी को प्रमाण–पत्र प्रदान किए गए। हमने विश्वविद्यालय का भ्रमण किया। समय सीमा के भीतर ही कार्यक्रम समाप्त कर दिया गया था।

वहाँ अनेक हिंदी प्रेमियों से मुलाकात हुई जो भारतीय हैं और साहित्य में गहरी रुचि लेते हैं। यह देखकर आश्चर्य हुआ कि साड़ी जो कि भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, बरसों बाद भी वहाँ के लोग अपनी पहचान और अपना पहनावा भूले नहीं है।

कार्यक्रम के पश्चात् हमने ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय का दौरा किया। भारी मन से सभी से विदा ली, क्योंकि वह लंदन में हमारा अंतिम दिन था। दूसरे दिन सुबह सभी को अपने–अपने बसेरों में लौटना था। हमारा समूह तीन भागों में बंट गया था। प्रो. श्रीधर सर और डॉ. शिखा मैडम, डॉ. इंदू उनके पति, डॉ. कोटनाला जी, डॉ. सुनीता सिंह, डॉ. कविता जी, डॉ. निशीध और महाराष्ट्र के डॉ. पंवार भारत लौट रहे थे और मैं मॉरीशस लौट रही थी। भारत के लिए उड़ान दोपहर में थी और मॉरीशस के लिए 9 बजे सुबह। हम सुबह 5 बजे तैयार होकर होटल के द्वार पर आ गए। विदा लेते समय सभी का मन बहुत भारी हो रहा था। पाँच दिन साथ रहे। अविस्मरणीय यादें साथ लेकर लौट रही थी। हवाई अड्डे पर पहुँचे। सर ने कहा, "सुरीति अपना गेट नंबर देख लो।" गेट नंबर देखकर तो मेरे

होश फ़ाख्ता हो गए।

सर और मेरा गेट आज दूरी पर था। हमारे वाहन भी जा चुके थे। पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि भूतल पर लिफ़्ट में जाना होगा और वहाँ से एक रेलगाड़ी लेकर उस गेट तक पहुँचा जा सकता है। दो मिनट के लिए साँस ही रुक गई थी, क्योंकि एक तो मैं अकेली रह गई थी, दूसरी घबराहट लिफ़्ट में जाना होगा।

मेरे पास कोई विकल्प नहीं था। मैं अपनी ट्रॉली से सामान लाकर आगे बढ़ने लगी। लिफ़्ट में सौभाग्य से अन्य लोग मिल गए। रेल कर्मचारियों ने भी सही दिशा निर्देश दिए। मेरा सामान गाड़ी में चढ़ा दिया।

मेरे साथ जो सज्जन थे, उन्हें सामान उतारने में मदद के लिए निवेदन किया क्योंकि मैं अकेले नहीं उतार सकती थी। मैं अपने गंतव्य तक पहुँच गई। वहाँ भारतीय कर्मचारी मिल गए जो हिंदी में बात कर रहे थे। उन्होंने कहा, "आप परेशान नहीं हों, आप समय से बहुत पहले आ गई हैं।" सामान जमा करने जिस काउन्टर पर गई वहाँ एक भारतीय लड़की मिली। उसने कहा, "मैडम आपको तीन जहाज़ बदलने हैं, मैंने तीन बोर्डिंग पास पर एक दो तीन लिख दिया।" लंदन से आबू धाबी का सफ़र नींद में बीता, आबू धाबी पहुँचते–पहुँचते रात हो गई थी फिर समय का भी अंतर था। 4–5 घंटे बिताने थे फिर सुबह के तीन बजे सेशेल्स के लिए उड़ान भरनी थी।

भारतीय भोजनालय की ओर रुख किया। मसाला चाय और सैंडविच लेकर समय बिता रही थी कि याद आया कि यहाँ हवाई अड्डे का पासवर्ड डाल लूँ तो 'इंटरनेट' मिल जाएगा। अचानक मेरी मेज़ की कुछ ही दूरी पर मैंने एक सज्जन को इंटरनेट का प्रयोग करते देखा। मैंने क्षमा माँगते हुए कहा कि, आप बता सकते हैं कि यहाँ का पासवर्ड क्या है? मुझे इंटरनेट का प्रयोग करना है। उन्होंने मेरा फ़ोन लेकर उसमें इंटरनेट की सुविधा चालू कर दी। मैंने धन्यवाद दिया।

यात्रा के दौरान एक बात स्पष्ट हो गई कि विपत्ति में सहायता माँगने में संकोच नहीं करना चाहिए। 99% सहायता मिल जाती है। आपके कठिन रास्ते आसान हो जाते हैं। हमें भी जीवन में सभी की मदद के लिए यथासंभव तैयार रहना चाहिए। आबू धाबी से बेटी के लिए विभिन्न प्रकार की चॉकलेट खरीदी। हवाई अड्डा बहुत बड़ा है। घूमते–घूमते समय का पता ही नहीं चला।

सुबह सात बजे सेशेल्स पहुँच गई। बहुत छोटा–सा हवाई अड्डा है। ऐसा लगता है कि घर में घूम रहे हैं। हस्तकलाओं की सुंदर वस्तुएँ बिक्री के लिए दुकानों में सजी थीं। मेरे साथ ही गुजरात से एक समूह मॉरीशस जा रहा था। वृद्धजनों का समूह था। मुझसे बातचीत करने लगीं बोली 'बेटी आप थेपले खाकर देखो।' मैं उनके प्यार भरे अनुरोध को अस्वीकृत न कर सकी। जहाज़ में भी वह महिला मेरे साथ वाली कुर्सी पर बैठी थी। गुजराती संस्कृति के विषय में बात करती रहीं। समय कब बीत गया, पता ही नहीं चला। मैं मॉरीशस की धरती पर उतरने वाली थी। ऊपर से टापू बहुत सुंदर दिखाई देता है। औपचारिकताएँ पूरी कर हवाई अड्डे के बाहर आई तो पति और बेटी प्रतीक्षा कर रहे थे। थकान घर माँग रही थी। हृदय फिर से एक नई उड़ान।

suritikavita@gmail.com

पेरिस : स्वाद का अनोखा शहर

– डॉ. कुमारदत्त गुदारी
मॉरीशस

यात्राएँ हमें बहुत कुछ सिखाती हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में अपने बी.ए. की पढ़ाई के अंतर्गत निर्मल वर्मा के 'चीड़ों की चाँदनी' पढ़कर अधिक प्रभावित रहा। एक पंक्ति जो अब तक ज़ेहन में है कि यायावर को बिना किसी अपेक्षा से अपनी यात्रा पर निकलना चाहिए, तब निराशा नहीं होती है। निर्मल वर्मा को पढ़ने के बाद, अपने दोनों मित्रों के साथ हम निर्मल वर्मा से उनके घर मिलने गए। अभी तक उनकी आँखों की गहराई से लेकर, उनकी उंगलियों की निर्मलता तक, उनकी धीमी आवाज़, सब स्मरण आते हैं। और उनकी कही गई इस बात को संभवतः विस्मृत नहीं कर पाऊँगा कि मनुष्य की सबसे बड़ी यात्रा उसके अंतर्मन की यात्रा होती है, जहाँ वह स्वयं का अन्वेषण कर सके। कहीं न कहीं हर रचनाकार के साहित्य–सृजन का यही आरंभिक बिंदु होता होगा...

निर्मल वर्मा की इन्हीं पंक्तियों को ध्यान में रखते हुए, सितम्बर 2016 की मेरी पेरिस यात्रा आरम्भ हुई थी। वास्तव में, ईनालको *(INALCO)* में दो दिवसीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए पहली बार यूरोप की ओर जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। भारत में अनेक बार कुछेक जगहों में अपने शोध–पत्र पढ़ने का अवसर तो मिला था, परंतु, पेरिस और लंदन के लिए हवाई–टिकट बनते ही, अद्‌भुत उमंगों के पंखों पर उड़ने लग गया था....

एयर मॉरीशस विमान में मेरे बगल में एक वृद्ध फ्रेंच व्यक्ति बैठा था। स्वभाव से मेरा बातूनी व्यवहार उसकी खामोशी से अव्यक्त रूप में संघर्ष करता रहा। लम्बे अंतराल तक अपनी खामोशी से जूझने के बाद, अंततः हार मानकर उससे बातें करने लगा, तब उसके रूखे–सूखे जवाबों से मुझे आभास हो चुका कि मैं उसे डिस्टर्ब कर रहा हूँ। अपने अनेक सवालों को मन–ही–मन दबाकर मैं फ़िल्में देखने लगा। फ्रांस के हवाई घेरे में प्रवेश करते हुए, शायद मेरे सह–यात्री को मेरी आँखों का उत्साह समझ आ गया था। उसने तब मुझे एक हवाई–गाइड की तरह, देशों और जगहों की दिशा दी। निःसंदेह मैं और उत्सुक होता गया। बातों–ही–बातों में मुझे पता चला कि वह स्विटज़रलैंड का निवासी है और उसके फ्रांसीसी शब्दों में भी ज़रा–सा अंतर था। उस व्यक्ति से मुझे मानव–व्यवहार की एक बड़ी सीख मिली कि कुछ लोग दूसरों के व्यवहारों की ईमानदारी पर गहरे अध्ययन करने के बाद ही, वे आप से घुल–मिल सकते हैं।

पेरिस के शार्ल दे गोल एयरपोर्ट पर उतरते ही, हिंदी में स्वागत देखकर मन खुश हो गया। मुझे अंग्रेज़ी, हिंदी, भोजपुरी, मोरिशियन क्रियोल के अतिरिक्त फ्रेंच भी आती है। एस्कलेटर पर इमिग्रेशन की ओर जाते हुए मैं सोच रहा था कि फ्रेंच लोगों को हिंदी के अक्षरों के उच्चारण की कितनी कठिनाई होती होगी। परंतु जिन लोगों से मेरा परिचय बाद में होने वाला था, उन्होंने मेरे इस संदेह को मिटा दिया। किसी भी भाषा को सीखने के लिए, उसकी संस्कृति को हृदय में गहनतम स्थान दे दीजिए, तो सीखने में आसानी होती है। मुझे तब 2005 के अपने विदेशी सहपाठियों की याद आई, जो केंद्रीय हिंदी संस्थान में पूरे समर्पण से हिंदी सीखने गए थे। कभी–कभी, भारतीयों से संवाद करते हुए, वे 'शौचालय', 'आरक्षण', 'पंजीकरण' जैसे संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग से सभी को चौंका देते थे। कुछ इस प्रकार का अनुभव मुझे पेरिस में भी हुआ।

मॉरीशस के इतिहास को गहराई से समझें, तो हमारे देश में भारतीय आप्रवासियों पर किए गए अनेक प्रकार के शोषणों का ज़िम्मेदार ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी उपनिवेशवाद रहा, जिनपर अभिमन्यु अनत से लेकर

अनेक रचनाकारों ने अपनी कलम चलाई। परंतु तटस्थ व पूर्वाग्रह–रहित दृष्टि से देखें, तो लगेगा कि भाग्य के निर्माण की पृष्ठभूमि नित्य दुखदायी और कष्टप्रद होती है। पेरिस की भूमि पर उतरते हुए, मैंने अपने सारे पूर्वाग्रहों को महासागर में ही डुबा दिया था...

एयरपोर्ट से बाहर निकलकर टैक्सी ली। ड्राइवर ने बड़ी नम्रता से पेरिस में मेरा स्वागत किया, फिर मेरे सूटकेस को गाड़ी की डिक्की में डाला। बातों–ही–बातों में पता चला कि वह हैची छोड़कर पेरिस काम करने गया था। मिलनसार मिज़ाज वाले मेरे इस दोस्त ने अपने परिवार के बारे में बताया। मुझे उसके अनुभवों में कई कहानियाँ जन्म लेती दिख रही थीं। मैंने उसे बताया कि हैची के भूकंप पर मेरी एक कविता मॉरीशस के फ्रेंच समाचार–पत्र 'ले मोरिसियें' में प्रकाशित हुई थी, तो भावुक होकर वह मुझसे और अधिक खुलकर बात करने लगा। उसे पेरिस में टैक्सी चलाते हुए 20 साल हो गए हैं। बातें, शहर से निकलकर, उसके देश के गाँवों तक पहुँचीं। फिर वापस पेरिस के उसके आरंभिक दिनों के संघर्षों पर काफ़ी लम्बे समय तक ठहरीं। मुझे अपनी बुआ के यहाँ क्रेतेय नामक जगह जाना था, जो एयरपोर्ट से लगभग तीस मिनट की दूरी पर है। वहाँ तक पहुँचते–पहुँचते वह मॉरीशस की मूल जानकारियों से अपने को धनी पाने लगा। मुझे लगा कि सामान्य ज्ञान की जानकारियाँ वही व्यक्ति सबसे अधिक रखता है, जिसका संपर्क जनता के हर स्तर के लोगों से होता है और जिसकी जिज्ञासा असीमित होती है। फ्रांस के अपने पहले ज़मीनी साथी से मिलकर मुझे अपार आनंद की प्राप्ति हुई। आज भी उसका हट्टा–कट्टा, अश्वेत रंग वाला शरीर और नित्य मुस्कान के वाहक के इस दोस्त का स्मरण है, जिससे हम दोनों के लगातार के संवादों में हमारे नामों का परिचय भी नहीं आ पाया।

12 सितम्बर 2016, दिन के लगभग 11 बजे का समय था। शकीला बुआ नौकरी पर थी, फूफा भी काम पर निकले थे, परंतु छोटी बुआ (आरती) घर पर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मॉरीशस के भोजन के साथ मेरा स्वागत हुआ। जब तक कि भोजन समाप्त हुआ, प्रकाश फूफा वापस आ चुके थे। हम दोनों उनके अपार्टमेंट के पीछे वाले दुकान में गए। मुझे कुछ सामानों के साथ–साथ एक सिम कार्ड लेना था। राजेन, लगभग मेरी ही उम्र के श्रीलंका निवासी का स्टोर था। उसकी फ्रेंच भी अजीब थी। पता नहीं कैसे मूल फ्रांसीसी निवासी उसको समझ पाते हैं! लेकिन बन्दा था बड़ा रोचक। चार–पाँच ग्राहकों को एक साथ, एक ही समय पर संभाल पाना, कोई आसान काम थोड़े ही है!

फूफा से कहा कि मुझे उसी समय पेरिस देखना है। मेरी थकान को पढ़कर भी, मेरी उत्सुकता को उन्होंने प्राथमिकता दी। करीब 1 किलोमीटर पैदल चलकर, हमने पुरानी मेट्रो पकड़ी। पहला गंतव्य, मोंमात्र चर्च था। वहाँ तक पहुँचने के लिए हम कुछ पथरीली गलियों से गुज़रे। मुझे अचानक दिल्ली 6 के चाँदनी चौक की गलियाँ याद आ गईं। परंतु दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ाई करते समय, अपने पाँच वर्षों के दौरान मॉरीशस के अतिथियों को जितनी बार शॉपिंग के लिए उन गलियों में ले जाता था, हम हर बार कहीं न कहीं उनमें खो जाते थे। एक गली पकड़ने के बाद, जब भी दिमागी तौर पर उस क्षेत्र की परिकल्पना करता था और सोचता था कि इसके अंत में दूसरी वाली जानी–पहचानी गली निकलेगी, तो हमेशा धोखा खा जाता था। यहाँ स्थिति उलटी थी। पहली बार में ही जगह की पहचान में मेरा आत्मविश्वास इतना बढ़ गया था कि फूफा से कहने का मन हुआ कि 'आप निकलिए, मैं स्वयं घूमने जाऊँगा' परंतु आतिथ्य–सेवा से उनको वंचित नहीं कर पाया। फूफा की आँखों से मुझे आभास हुआ जैसे कि वे भी पहली बार के लिए वहाँ जा रहे थे।

थोड़ी ऊँचाई में स्थित मोंमात्र तक पहुँचने के लिए केबल कार लेना पड़ा। टिकट खरीद ली थी और हम अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। तब तक मेरी निगाहें उस जगह को अन्वेषित करने के लिए किसी गिलहरी की तरह इधर–उधर झपका रही थी। ऊपर पहुँचते ही, मैंने एक गहरी सांस ली। सभी लोग तीव्र गति से मोंमात्र की उस भव्य भवन में प्रवेश करने लगे। मैंने उलटा किया। मोंमात्र से जितनी दूर जा सका, मैं उस

ओर बढ़ा। उस गिरजाघर के शांत–शून्य परंतु गांभीर्य को दूर से ही अनुभव करने लग गया था, परंतु बाहर से पार्थिव रूप में वह कैसा दिख रहा था, उसे मेरे कैमरे के लेंस ने कैद करना शुरू कर दिया। आँखें चमकने लगीं। अजीब सुकून! उसका आर्किटेक्चर निहारता रहा देर तक... उन कारीगरों को सलाम करने के बाद भीतर गया। अजी क्या बताएँ! अद्‌भुत! संतुष्टि! उस स्वच्छ और सौंदर्यपूर्ण वातावरण ने मुझे आध्यात्मिक होने पर विवश कर दिया। कुछ–कुछ जैसे स्वर्ग में होने का आभास! बाबू गुलाबराय का निबंध 'प्रभुजी मेरे अवगुण चित्त न धरो' के शब्द मेरे मन में गूँजने लगे; मैंने सोचा, यार यदि यहाँ कोई पादरी मिल जाए, तो अपने गुनाहों के लिए माफ़ी माँगकर निकलना चाहता हूँ ... परंतु यह हो नहीं पाया ... और मैं वहाँ से निकला, खुश, आनंदित और इस आस्था के साथ कि ईसा मसीह की तरह मुझे अपने जीवन को सार्थक बनाने हेतु दूसरों की अब से अधिक सहायता करनी होगी, उनके चेहरे पर और अधिक मुस्कान लानी होगी...

इसके बाद, उसी दिन हम दोनों अनेक जगह गए। ला देफ़ाँस, जो पेरिस का मुख्य व्यापार केंद्र है और जिसकी इमारतें आकाश से बातें करती हुई नज़र आती हैं, वहाँ से हमने अपनी पैदल–यात्रा आरम्भ की। उस समय पेरिस का व्यापार–ज़िला कहलाने वाली उस जगह ने बिल्कुल प्रभावित नहीं किया था और यह इसलिए कि शायद उसे देखने की टाइमिंग सही नहीं थी (चूँकि मोंमात्र की आध्यात्मिकता वाले उस पात्र से मैं पूरी तरह से बाहर निकल नहीं पाया था) परंतु शाम को जब हम बुआ के घर पहुँचे और ला देफ़ाँस पर अधिक जानकारी के लिए गूगल पर गया, तो अवाक रह गया।

ला देफ़ाँस का नामकरण लुई–अर्नेस्ट बैरीस द्वारा बनाई गई मूर्ति ला देफ़ाँस दे पेरिस के नाम पर रखा गया है, जो 1883 में उन असंख्य सैनिकों की स्मृति में बनाई गई थी, जिन्होंने फ्रैंको–प्रशियन युद्ध के दौरान पेरिस को बचाने के लिए और उसे सुरक्षित रखने का दायित्व उठाया था। फूफा ने उस जगह का परिचय देते हुए बताया था कि वह मॉरीशस के एबेन जैसी है, जहाँ बड़े–बड़े व्यापार होते हैं। ईमानदारी से इसमें मेरी कोई रुचि नहीं बनी। मात्र यह दृश्य अभी भी याद है कि मॉरीशस के प्रसिद्ध कवि–रचनाकार राज हीरामन की बेटी निधि मुझसे अपने शिशु के साथ मिलने आई थी। निधि मुझे अपना बड़ा भाई मानती है और इस छोटी बहन की आत्मनिर्भरता देखकर मुझे गर्व हुआ।

हाँ! बात कर रहा था, ला देफ़ाँस की जिसकी जानकारी ने मुझे चकित कर दी थी। लगभग 1400 एकड़ की फलक में, 72 ऐसी ग्लास और स्टील की इमारतें पाई जाती हैं, जिनमें 1,18000 कामगार अपनी आजीविका पाते हैं। इन कुछेक आंकड़ों से ही अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि इमारतों की ऊँचाई कितनी होगी। फिर भी, उस समय मैं इमारतों को भूलकर हृदय की ऊँचाई, या यूँ कहें, गहराई में खोया हुआ था...

ऊँचाई और गहराई से दूर, हम लंबाई नापते गए और वहाँ से निकलकर हम विश्व के विख्यात स्मारकों में से आर्क दे त्रिओंफ़ की ओर पैदल बढ़ने लगे। बीच रास्ते में शकीला बुआ से मुलाकात हुई। पेरिस की सड़कों की चौड़ाई और हर जगह साइकिल चलाने वालों के लिए अलग से स्पेस, अनुशासन का पालन करते हुए चालक, शिष्टाचार से पेश होने वाले व्यापारी, चाव से ग्राहकों का सत्कार करने वाले लोग, इन सभी दृश्यों ने मुझे अत्यंत प्रभावित किया। इन सभी जगहों पर विस्तार से चर्चा शाम को ठंडी बियर के साथ हुई जब बुआ का बेटा अश्विन घर लौटा।

अगले दिन एक अद्‌भुत स्थान के पर्यटन पर हम सभी लोग निकले। काताकोम्ब... (या कत्कुम्भ?)। डरावना–सा नाम! शायद। पर जो अनुभव करने वाला था, वह उससे कहीं अधिक था। कल्पना कीजिए एक ऐसी सुरंग, भूल–भुलैया जैसी, पेरिस के हृदय के ठीक भीतर जो कि 20 मीटर की गहराई पर स्थित और पंद्रह सौ मीटर की लंबाई... क्या है? मनुष्य की खोपड़ियाँ और हड्डियाँ! इसी उत्सुकता के साथ मैं उस सुरंग की यात्रा पर निकला कि आखिर विश्व की मानव–हड्डियों के इस सबसे बड़े संग्रहालय के पीछे क्या इतिहास है? करोड़ों की संख्याओं में पेरिस निवासियों की खोपड़ियाँ

जो 18वीं शताब्दी से संग्रहीत हैं, एक ही जगह पर ठोस मिट्टी की दीवारों पर इकट्ठा करने का अर्थ क्या है? कहीं इतिहास को सम्मानपूर्वक जीवित रखने के इस प्रयास में फ्रांस की मूल संस्कृति वास तो नहीं करती? गर्व से, उन मृतकों को सम्मान देते हुए, कारीगरता और डिज़ाइन के अतुलनीय मिश्रण से अतीत और भविष्य के बीच पुल बाँधने का प्रयोजन तो नहीं था? जो भूमि के नीचे देखने को मिला और पेरिस की इमारतीय संरचना को दृष्टि से टटोलने को मिला, उसमें मुझे कोई अंतर दिखाई नहीं दिया... अंतर, दृष्टिकोण का मिला। अन्यथा, शून्य... समर्पण... आत्मसात...

मात्र स्थूल में नहीं, सूक्ष्म में भी, जीवन में और जीवन शैली को पल–पल परिभाषित करती हुई पेरिस की वह संस्कृति जिसमें लंदन की हड़बड़ी नहीं थी और थी तो एक ठहराव, एक चाव, जीवन्तता, जो पेरिस निवासी अपनी कॉफ़ी पर बैठने का मतलब वक्त बिताना मानते हैं... दोस्तों को पूरा समय देना... न कोई जल्दबाज़ी, न भागा–दौड़ी... पेरिस की स्वाद–भरी, सादगी वाली संस्कृति मुझे रोमांटिक आध्यात्मिकता सिखा गई जहाँ प्रेम और श्रद्धा के योग से भक्ति साक्षात उभरती है और मेरी यात्रा तत्त्व से निकलकर सूक्ष्म की ओर बढ़ती गई और आज भी स्मृतियों से रोमांचित होकर, आत्म–पहचान की दिशा में सूक्ष्मतम होती जा रही है...

vinaye08@gmail.com

प्रथम श्रेणी में प्रथम बार

– श्री रमेश जोशी
ओहायो, अमेरिका

यदि तन–मन से मूल्यांकन हो तो बात और है, लेकिन आजकल तो हर मूल्यांकन धन से ही होता है और हर श्रेणी की प्राप्ति भी धन से ही होती है। इसीलिए प्रथम श्रेणी में अधिकतर धन से संपन्न, लेकिन मन से विपन्न लोग पाए जाते हैं। इसीलिए हम हमेशा तृतीय श्रेणी में यात्रा करते रहे हैं। लेकिन आप हमारी श्रेष्ठता पर शंका नहीं कर सकते, क्योंकि गांधी जी भी इसी श्रेणी में यात्रा किया करते थे। यह सब हम पढ़ा हुआ बता रहे हैं, क्योंकि हमें गांधी जी के साथ कभी यात्रा करने का अवसर नहीं मिला, हालाँकि हम उनकी हत्या होने के समय पहली कक्षा में पढ़ रहे थे। इसके बाद भी जब हम माता–पिता के साथ रेल यात्रा करते थे, तो तृतीय श्रेणी समाप्त कर दी, तो हमें मजबूरन द्वितीय श्रेणी में यात्रा करना पड़ रहा है। सातवें दशक के आरंभ में हम नौकरी करने लग गए थे। घर आने के लिए हमें अपने कार्यस्थल से दो गाड़ियाँ लेनी पड़ती थीं। पहली अपने कार्यस्थल से सवाई माधोपुर के लिए, जो कोई बीस किलोमीटर था। फिर सवाई माधोपुर से घर के लिए, जो कोई तीन सौ किलोमीटर की यात्रा थी। जब नौकरी–पेशा बनकर गरमी की छुट्टियों में पहली बार घर आने लगे, तो पत्नी पर रोब जमाने के लिए हिम्मत करके बीस किलोमीटर की यात्रा वाला टिकट प्रथम श्रेणी का ले ही लिया।

प्रथम श्रेणी के यात्रियों को कभी–कभी हमने उन्हें अपने डिब्बे में बैठे ही देखा था। एक बार जयपुर में एक मंत्री जी को भी प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठे देखा। कोमल और एकदम गौर वर्ण, लगता यदि ज़्यादा ज़ोर से छू लिया जाए, तो शायद त्वचा से खून निकल आएगा। तृतीय श्रेणी में तो ऐसे लगता जैसे बोरे में सब्ज़ी भेज दी गई हो, लेकिन प्रथम श्रेणी में तो जैसे कोई अपने घर के सजे–सजाए बैठक में बैठा हो। एकदम तरोताज़ा। हालाँकि अब तक हम भी 'केटल क्लास' अर्थात् तृतीय श्रेणी में ही यात्रा करते रहे थे और उसकी समस्त संस्कृ. ति से वाकिफ़ थे, लेकिन आज प्रथम श्रेणी का टिकट

लेने मात्र से ही हमें प्लेटफ़ोर्म पर खड़े सभी यात्री एकदम दरिद्र और असभ्य लगने लगे। जैसे ही गाड़ी प्लेटफ़ोर्म पर आने को हुई, हमें लगा अभी टी.टी. या गार्ड में से कोई–न–कोई आएगा और हमें नमस्कार करेगा और कहेगा चलिए श्रीमान ट्रेन में पधारिए। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। हम अपना लोहे का ट्रंक और थैला लिए हुए प्लेटफ़ोर्म के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ते रहे, लेकिन प्रथम श्रेणी का डिब्बा कहीं दिखाई नहीं दिया। प्रथम श्रेणी का टिकट होते हुए तृतीय श्रेणी के डिब्बे में बैठने में शर्म महसूस हो रही थी। इसी चक्कर में ट्रेन छूट गई। हमने स्टेशन मास्टर से शिकायत की, तो पता चला कि यह लोकल ट्रेन है, इसमें प्रथम श्रेणी का कोई डिब्बा नहीं लगता।

इतने दिन हिंदी पढ़ाते रहे, लेकिन गुनाह बेलज़्ज़त मुहावरे का सही अर्थ आज पहली बार समझ में आया। इसके बाद शायद हम प्रथम श्रेणी में यात्रा करने की हसरत लिए ही इस संसार से कूच कर जाते, लेकिन 1979 में जब हमारा ट्रांसफ़र जयपुर से पोर्ट ब्लेयर (अंडमान निकोबार) हुआ, तो वास्तव में ही प्रथम श्रेणी में यात्रा करने का अवसर आया, क्योंकि इस बार खर्चा सरकार का लगने वाला था।

वैसे भी अपने खर्चे से कौन प्रथम श्रेणी में या हवाई यात्रा करता है। सब सरकारी पैसे पर ही दंड पेलते हैं। मुफ़्त के माल पर ही दिल बेरहम होता है, अन्यथा अपने खर्च पर तो सभी सादा जीवन उच्च विचार के आदर्श पर विश्वास करते हैं। पोर्ट ब्लेयर जाने के लिए जयपुर से, कोलकाता से पानी का जहाज़ लेना था। उस समय कोलकाता से एम.वी. हर्षवर्धन और एम.वी. अंडमान नामक दो जहाज़ क्रमशः चला करते थे। यदि एक जहाज़ छूट गया, तो अगला जहाज़ कोई दस–बारह दिन बाद ही मिला करता था। जाने को तो सप्ताह में दो दिन मंगलवार और शुक्रवार दो दिन हवाई जहाज़ भी जाता था, लेकिन एक तो महंगा और दूसरे उसमें घर गृहस्थी का सामान ले जाना संभव नहीं था।

कोलकाता जाने के लिए पहले जयपुर से दिल्ली और फिर वहाँ से कोलकाता के लिए ट्रेन लेना होता था। उन दिनों जयपुर से दिल्ली के लिए अपने समय की सबसे तेज़ और प्रसिद्ध ट्रेन चला करती थी – पिंक सिटी एक्सप्रेस। 31 अगस्त 1979 को शाम पाँच बजे जयपुर से चलकर साढ़े नौ बजे दिल्ली पहुँचे। इसलिए इसमें बर्थ का कोई प्रावधान नहीं है। बैठे–बैठे ही चेयर कार से यात्रा की। चूँकि किराए में खाना भी शामिल था, इसलिए खाना घर से नहीं ले गए। भले ही ट्रेन में खाना घर जैसा नहीं मिला करता था, लेकिन आज की तरह भी नहीं था कि पैसे लो पूरे और खाने में निकल आए छिपकली। वास्तव में राजस्थान का बालू मिट्टी में बना ट्रेक इस ट्रेन की गति के अनुसार नहीं था, सो ट्रेन बहुत हिलती थी, जैसे कि तूफ़ान में पानी का जहाज़। दिल्ली पहुँचकर वेटिंग रूम में रात बिताई। सरकारी सलाह है – 'यात्री अपने माल की सँभाल खुद करें' इसलिए बेटा, पत्नी और हम बारी–बारी सामान की सँभाल करते रहे। कोलकाता के लिए अगले दिन सुबह आठ बजे ट्रेन थी। वह भी पिंक सिटी की तरह अपने समय की प्रसिद्ध ट्रेन–कालका मेल। इसका कोलकाता की काली से कोई संबंध नहीं है। चूँकि यह हिमाचल में कालका से चलकर कोलकाता जाती है, इसलिए इसका नाम कालका मेल है। वैसे यह भी मज़ेदार बात है कि कोलकाता नाम का कोई रेलवे स्टेशन नहीं है। स्टेशन का नाम है हावड़ा, जहाँ का हावड़ा ब्रिज जगत प्रसिद्ध है।

कालका मेल वास्तव में शानदार ट्रेन है। सातवें दशक की लोकल ट्रेन जैसी नहीं कि प्रथम श्रेणी का कोई डिब्बा ही नहीं। बाकायदा डिब्बा और सीट नंबर हमारे पास था। ठाट से जाकर बैठे। दो बर्थ नीचे की और एक ऊपर की। बड़ी–बड़ी सीटें पूरी तरह से घेर पाना प्रथम श्रेणी के धनवान लोगों के विशाल शरीर द्वारा ही संभव है। डिब्बे के बाहर केले वाले ने अंग्रेज़ी में आवाज़ लगाई – 'बनाना'। फ़र्स्ट क्लास वाले हिंदी थोड़े ही समझते हैं। और थर्ड क्लास वाले घर से बाहर कुछ सामान खरीदते भी कम ही हैं। चार दिन की यात्रा होगी, तो भी घर से लाया सत्तू और चबेना खाकर ही टाइम निकाल देंगे, लेकिन खरीदेंगे कुछ नहीं। एक दर्जन केले लिए। तीन

खराब निकले। लेकिन अब उस ठेले वाले को कहाँ ढूँढे। वैसे भी प्रथम श्रेणी के यात्री इन छोटी–मोटी बातों के लिए टेंशन नहीं लेते। रास्ते में खाने का ऑर्डर दिया। कानपुर निकलते–निकलते खाना आ गया और खाना खाकर मुगलसराय आते–आते उलटी भी हो गई। सो सुरक्षा की दृष्टि से अगले दिन सुबह हावड़ा पहुँचने तक उपवास करना ही उचित समझा। रात को पता नहीं कौन–सा स्टेशन था। टी.टी. ने दरवाज़ा खटखटाया। उनके साथ एक और सज्जन थे। टी.टी. ने बताया कि ये धनबाद तक जाएँगे। वे सज्जन ऊपर की बर्थ पर लेट गए। हमारी हालत 'नशा' कहानी के प्रेमचंद जैसी हो गई। हमें हर आदमी प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठने के अयोग्य और संदेहास्पद लगने लगा। प्रथम श्रेणी में पूरी बर्थ आरक्षित होते हुए भी हम सो नहीं सके, क्योंकि पता नहीं जिस व्यक्ति को टी.टी. बैठाकर गया था, रात को हमारा सामान लेकर ही चम्पत न हो जाए। फिर भी नींद तो नींद ही है। अंततः आ ही गई। पता नहीं, कब उन सज्जन ने हमें जगाया और कहा – धनबाद आ गया है मेरा गंतव्य। अब आप केबिन अंदर से बंद कर लें। और इतने में सब समझ लीजिए कि कोई भी खटखटाए, खोलिएगा नहीं। हमें खुद पर ग्लानि हुई कि हमने उनके सामान्य कपड़ों को देखकर नाहक ही शक किया।

अगले दिन सुबह कोई नौ बजे हावड़ा पहुँचे और वहाँ से टेक्सी से फ़ोर्ट विलियम; जहाँ हमारे रुकने की व्यवस्था थी। लगेज में बुक करवाया हुआ सामान लेने के लिए 2 सितंबर को स्टेशन गए। लाइन लम्बी थी, लेकिन एक बहुत अच्छी व्यवस्था थी कि लाइन में ही आपको मिट्टी के छोटे–से कुल्हड़ में थोड़ी–सी चाय मिल जाती थी। उस समय उस थोड़ी–सी चाय की कुल्हड़ समेत कीमत दस पैसे थी। कोई दो घंटे बाद नंबर आया, तो बिल्टी दिखाकर माल गोदाम में सामान ढूँढ़ने लगे। एक ट्रंक को छोड़कर सब सामान मिल गया। कई देर तक जब लोहे का एक बड़ा ट्रंक नहीं मिला, तो संबंधित बाबू से पूछा। अपने पास रखे एक ट्रंक की ओर इशारा करते हुए पूछा – "कहीं, यह तो नहीं है आपका ट्रंक?"

देखा तो ट्रंक हमारा ही था, लेकिन उसका ताला किसी सज्जन ने इस निर्दयता से मरोड़ा था कि ताले के साथ ही कुंडा भी उसके हाथ में आ गया, जिसे उसने बड़ी ईमानदारी से ट्रंक के पास रख दिया था। बाबू ने कहा – आप चेक कर लीजिए और फिर जो–जो सामान कम हो उसकी रिपोर्ट लिखवा दीजिए। हमने कहा – "बाबूजी, हम बिना चेक किए ही बता सकते हैं कि इसमें से कोई सामान कम नहीं हैं। इसमें किताबों के अलावा कुछ नहीं है। और यह दुनिया कितनी ही कमीनी और नीच हो गई हो, लेकिन अभी तक यहाँ किताबों के चोर पैदा नहीं हुए हैं। जूते चुरा लेंगे, चड्डी–बनियान चुरा लेंगे, लेकिन किताबें नहीं। कुकर्म करने वाले किताबें नहीं पढ़ते। ठीक भी है, किताबें पढ़कर कहीं सद्बुद्धि आ गई, तो फिर गए धंधे–पानी से।"

प्रथम श्रेणी की यह प्रथम यात्रा सुखद कम और स्मरणीय अधिक रही।

joshikavirai@gmail.com

अफ़्रीकन सफ़ारी

— डॉ. भावना कुँअर
सिडनी, ऑस्ट्रेलिया

अफ़्रीकन सफ़ारी दुनिया भर में प्रसिद्ध है। काफ़ी समय से हम लोग परिवार सहित पूर्वी अफ़्रीका के प्राकृतिक खूबसूरती से समृद्ध 'युगांडा' नामक देश की राजधानी 'कम्पाला' में रह रहे हैं। इसे 'सिटी ऑफ़ सेवन हिल्स' भी कहते हैं। मगर सफ़ारी जाने का अवसर एक लम्बे अरसे बाद ही मिल सका। क्योंकि कभी छुट्टी नहीं मिलती, कभी छुट्टी मिलती है तो वहाँ के होटल और कॉटेज फुल होते हैं। यूँ तो तन्ज़ानिया और केनिया भी बहुत प्रसिद्ध हैं, किन्तु 'मरचीज़न फ़ॉल नेशनल पार्क' युगांडा की सबसे प्रसिद्ध सफ़ारी है।

आखिरकार 7 अप्रैल 2007 को वह दिन आ ही गया जब हम लोगों को अफ़्रीकन सफ़ारी जाने का अवसर मिला। मैं और मेरे जीवन साथी प्रगीत कुँअर, मेरी दोनों बेटियाँ कनुप्रिया और ऐश्वर्या तथा प्रगीत के मित्र 5 बजकर 50 मिनट पर कम्पाला से वैन में निकल पड़े, क्योंकि वहाँ अपनी गाड़ियों से जाना खतरे से खेलना होता है।

सफ़र शुरू हुआ तो मेरी छोटी बेटी, जो मात्र 6 साल की है, उसने अपनी प्यारी–प्यारी बातों से सबका मन मोह लिया। उसका पहला सवाल मुझसे था –

"मम्मा हम रात में ही जा रहे हैं ना?"

मैंने कहा – "नहीं ये तो सुबह हो गयी है। अब सुबह के 6 बजे हैं।"

"तो इतना अँधेरा क्यों है? और न ही आसमान में कोई कलर भी दिखाई दे रहा।"

मैंने कहा – "थोड़ी देर में कलर भी आ जायेंगे।"

मेरी बात अभी खत्म भी नहीं हुई थी कि वह खुद ही बोल पड़ी – "अच्छा अभी हमारी तरफ़ कलर इसलिए नहीं है, क्योंकि फेयरी इधर नहीं आई हैं, क्योंकि वो तो एक ही होती है न। वो दूसरी तरफ़ कलर कर रही होंगी। जब वो उधर के आसमान में कलर कर लेंगी तब हमारी साईड आकर हमारी साईड वाले आसमान में कलर करेंगी। तब हमें ऑरेंज और ब्लू कलर दिखाई देगा और वो साथ में सन भी लेकर आयेंगी। है ना मम्मा?"

हम उसकी इन काल्पनिक बातों को सुनकर अपने बचपन में खो गए। जब हमारी दादी माँ और नानी माँ हमें परियों के किस्से और कहानियाँ सुनाया करती थीं और हमेशा हमारे सपनों में परियाँ आया करती थीं अपनी छड़ी लेकर। कभी वे हमें अपने साथ सुन्दर बाग–बगीचे में सैर के लिए ले जातीं, जहाँ पर सारे पेड़ टॉफ़ी और चॉकलेट से लदे होते थे, कभी हमें बादलों के पार ले जातीं, जहाँ की दुनिया तो बिल्कुल ही निराली लगती जैसे – बौनों की दुनिया, दूध की बहती नदियाँ और चाँद सितारों से सजे छोटे–छोटे घर, सोने–चाँदी से खेलते छोटे बच्चे और उन्हीं बच्चों में जाकर हमारी परियाँ हमको छोड़ देती और जब हम खेलते–खेलते थक जाते, तो हम चाँद सितारों से सजे घरों में सो जाते, तब परियाँ हमें लेकर वापस हमारी दुनिया हमारे बैड पर हमें छोड़ जातीं। जब हम सुबह उठते तो खुद को परियों के साथ न पाकर बहुत दुखी होते, पर रात भर परियों की दुनिया में बिताई रात नहीं भूल पाते और इसी तरह हर रात का बेसब्री से इन्तज़ार करते।

हम अपनी सोच से बाहर आए, तो आसमान ने ऑरेंज कलर से खुद का शृंगार किया और उसके कुछ क्षण बाद ही सूरज भी अपने रथ पर सवार होकर हमसे मुखातिब होने लगा, जिसकी सुन्दरता देखते ही बनती थी। अभी सुबह के 7 बजे थे। कम्पाला से "मरचीज़न फ़ॉल" 400 किलोमीटर दूर है। इस दूरी को लगभग 4 घण्टे में तय किया जा सकता है। 5 घण्टे की दूरी तय करके हमें पहले "मरचीज़न फ़ॉल" जाना था। रास्ते में एक शहर आया जिसका नाम "मसीन्डी" था। यहाँ हम ठीक 9 बजे पहुँच गये। युगांडा की एक बड़ी 'शुगर मिल'

'मसीन्डी' में है, जिससे यह शहर दूर–दूर तक प्रसिद्ध है। यहाँ हमने एक छोटा–सा ब्रेक लिया, क्योंकि गाड़ी में डीज़ल के साथ–साथ हमें भी खुद को आगे चलाने के लिए कुछ जूस और कुछ खाने की आवश्यकता महसूस हुई, तब हमने भी कुछ खा–पीकर अपनी भूख को शान्त किया।

ठीक 20 मिनट बाद हम लोग अपने गन्तव्य की ओर बढ़ चले। पूरा रास्ता खूबसूरत गुलमोहर और अमलतास के वृक्षों से सजा था। हम मन्त्रमुग्ध से आगे बढ़े जा रहे थे। आम के वृक्ष आमों से लदे हुए थे। बड़े–बड़े अनानास, केले, पपीते, कटहल से लदे पेड़ बरबस ही अपनी ओर खींच रहे थे। जब तक हम पक्की सड़क पर चलते गए खूबसूरत फूलों और फलों का आनन्द लेते रहे, कुछ समय बाद ही कच्चा रास्ता शुरू हो गया, जो बहुत ही रोमांचकारी था। जंगल में बड़े–बड़े सींगों वाली गाय और भैंसें बेखौफ़ भ्रमण कर रही थीं, क्योंकि भय उनको नहीं हमको उनसे था। रास्ता लाल रंग की मिट्टी से भरा था, तो हमें किसी मेकअप की तो आवश्यकता ही नहीं थी। वैसे 'युगांडा' की मिट्टी की एक खासियत है कि ये बहुत उपजाऊ होती है, इसीलिए यहाँ पर दुनिया भर के सभी फल और सब्ज़ियाँ अत्यधिक मात्रा में मिलती हैं और जिनका साईज़ भी बहुत बड़ा होता है, जो हमने भारत में कभी नहीं देखा। एक फल जो 'युगांडा' में पाया जाता है, जिसे हम 'पेशन फ्रूट' के नाम से जानते हैं। यहाँ के लोग तो इसको काटकर भी खाते हैं, किन्तु ज़्यादातर इस्तेमाल ये जूस में किया जाता है। इस जूस की खास बात ये है कि ये मलेरिया की रोकथाम करता है। क्योंकि मलेरिया के मरीज़ को यह जूस पिलाया जाता है, जिससे मलेरिया का असर कम हो जाता है और व्यक्ति के शरीर को ताकत मिलती है। यहाँ 'युगांडा' में 'मलेरिया' का प्रकोप कुछ ज़्यादा ही है।

अब हम लोग जंगल में प्रवेश कर चुके थे। ऐसे जंगल में जहाँ पर खतरनाक जानवर रहते हैं। यहाँ पर एन्ट्री फ़ीस देनी होती है 'शीलिंग' में, जो यहाँ की करेंसी होती है।

यहाँ पर हम लोग गाड़ी से नीचे उतरे कुछ फ़ोटो आदि लेने के लिए। प्रारम्भ में ही एक 'बन्दर स्टैचू' ने हमारा स्वागत किया। यहाँ एक बड़ी हास्यास्पद घटना हुई, जी हाँ अब तो हास्यास्पद ही कहूँगी मगर उस वक्त तो सबके छक्के छूट गये थे। हुआ यूँ कि जब हम फ़ोटो लेने और वीडियो फ़िल्म बनाने नीचे उतरे, तो मैंने अपना बैग, जिसमें सभी के डिजिटल कैमरे और सभी कीमती सामान जैसे लगभग 5 हज़ार डॉलर, 3 मिलीयन शीलिंग, हमारे आई.डी. काड्र्स, ड्राईविंग लाईसेंस आदि कीमती सामान थे, जो वज़न के कारण वीडियो फ़िल्म बनाने में असुविधा कर रहा था, मैंने वहीं ज़मीन पर घास में रख दिया। सब अपनी–अपनी धुन में थे हमने सिर्फ़ एक वीडियो कैमरा और दो डिजिटल कैमरे ही निकाल रखे थे। फ़ोटो आदि लेने के बाद सब गाड़ी में बैठने लगे, मैं सबसे पीछे रह गयी कुछ नयी सामग्री खोजती हुई। मुझे गाड़ी का हॉर्न बजा–बजाकर परेशान कर डाला। मैं दौड़कर गाड़ी पर पहुँची, अब तक मेरे हाथ में डिजिटल कैमरा और प्रगीत के हाथ में वीडियो कैमरा आ चुका था, मेरी निगाह पड़ी तो मैंने पूछा "इसका कवर कहाँ है?" वे बोले "नहीं मालूम"। बस मेरे तो होशो–हवास ही उड़ गये, क्योंकि मुझे याद आ चुका था कि मैंने अपना बैग घास में रखा था। मैं दौड़कर वहाँ गयी ये सोचकर कि वो तो अब गया, पर जैसे ही वहाँ पहुँची उसको यथा स्थान पाकर मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मन में एक विश्वास ने स्थान बना लिया कि चाहे यहाँ 'युगांडा' में कितनी ही गरीबी है, पर अभी भी कहीं ईमानदारी बची है, वहीं पास में कुछ अफ्रीकन व्यक्ति और बच्चे भी खड़े थे, किन्तु उन्होंने उस बैग को छुआ तक नहीं था। मैं गाड़ी की ओर खुशी–खुशी बढ़ रही थी और प्रगीत के मित्र कनु और ऐश्वर्या मेरी ओर देख रहे थे जिनके चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, जैसे ही मैंने बैग दिखाया सभी में खुशी की लहर दौड़ गयी। तभी सबने वादा किया कि सब इस बैग का खयाल रखेंगे, कहीं उतरने से पहले भी और कहीं आने–जाने पर भी। अब हम लोग गाड़ी में बैठ गए।

अब हम लोग आगे बढ़े जा रहे थे। रास्ते में एक

अलग तरह का वृक्ष देखा, जो 'सॉसेज ट्री' के नाम से जाना जाता है। हम 10 बजकर 40 मिनट पर 'मरचीज़न फ़ॉल' के 'टॉप ऑफ़ द हिल' पर पहुँचे। यहाँ का नज़ारा देखते ही बनता है। यहाँ पर पानी का इतना ज़बरदस्त फ़ॉल है कि अगर व्यक्ति गिर जाये, तो एक सेकेन्ड भी न लगे उसकी जान जाने में। पानी का तेज़ बहाव और बड़े–बड़े पत्थर जिन पर पैर रखने पर पैर फिसलने लगते, ये सब बड़ा खतरनाक मंज़र लगा। कुछ चीज़ें बहुत खूबसूरत भी थीं, जो मुझे बहुत पसन्द आई, जैसे – जिस जगह पर पानी बहुत ज़ोरों से उछल रहा था वहाँ पर एक बहुत ही खूबसूरत इन्द्रधनुष बन रहा था, जिसकी सुन्दरता देखते ही बनती थी। वहीं पानी के इतने तेज़ बहाव में लग रहा था कि एक चिड़िया बैठी है, जो आश्चर्यजनक था, किन्तु वास्तव में वह चिड़िया न होकर एक छोटा–सा सूखा हुआ पेड़ था, जो चिड़िया जैसा दिखता था। यहाँ के नज़ारों और खतरों को कैमरों में कैद करके हम लोग वहाँ से निकल पड़े 'सांबिया रिवर लॉज' की तरफ़। 'सांबिया रिवर लॉज' पहुँचने पर सभी बुरी तरह थक चुके थे। गर्मी अपने पूरे चढ़ाव की तरफ़ थी और दूसरी तरफ़ भूख से भी बुरा हाल था। यहाँ आकर हमने कुछ लोकल लोगों को बुलाया और उनको टेन्ट लगाने के लिये कहा। जब वे लोग टेन्ट लगाने लगे हम लोग स्नान के लिए चले गये। स्नान के बाद हम लोग लंच के लिए रेस्तराँ पहुँचे। रेस्तराँ बहुत ही खूबसूरती से सजाया हुआ था। अन्दर जाकर हम भूल ही गये कि हम जंगल में हैं।

यह लॉज 'मरचीज़न फॉल्स नेशनल पार्क' के बीच स्थित है। इसमें बन्दास एंड कॉटेजज़ (Bandas and cottages) भी हैं। हीटर, शावर, एमरजेंसी लाइट और अन्य सुविधाएँ भी हैं। 'सांबिया रिवर लॉज' के ऑनर एक एशियन मूल के केनियन व्यक्ति श्री परवेज़ मलिक का है, जो 1995 में स्थापित किया गया था। परवेज़ मलिक की पत्नी अमेरिकन मूल की महिला है, जो कि 30 साल से केनिया में स्थानांतरित है। वह महीने में तीन–चार बार यहाँ आती है और यहाँ की व्यवस्था बखूबी संभालती है। यह एक खूबसूरत पाँच सितारा लॉज है। यह लॉज लकड़ी से बना है। बायें हाथ पर प्रारम्भ में रिसेप्शन है। दायें हाथ पर बैठने की व्यवस्था है। आगे चलकर एल गैलरी है, जिसके साईड में लकड़ी से ही मकड़ी की आकृति बनाई गयी है। आगे चलकर गैलरी में ही दो छोटे कमरे हैं, जिनको खूबसूरती से अफ़्रीकन पेंटिग और स्टैचू आदि से सजाया गया है। आगे जाकर बड़ा–सा हॉल है, जिसमें कुर्सी और मेज़ की व्यवस्था है, जिन पर खाने–पीने की व्यवस्था की जाती है। जब आप एक बार अपने खाने की बुकिंग करा देते हैं, तभी से आपकी एक मेज़ फ़िक्स कर दी जाती है। सभी मेज़ों पर कॉटेज नम्बर, टेन्ट का नाम आदि लिख दिया जाता है। आगे चलकर एक तरफ़ बड़ा रसोईघर है और दूसरी तरफ़ एक बार है। चार सीढ़ियाँ उतरने के बाद आधुनिक सोफ़ों से सजाया गया है। छोटा–सा दरवाज़ा पार करके कुछ लॉन जैसा बनाने का प्रयास किया गया है, वहाँ पर भी खाने–पीने के लिए कुर्सी–मेज़ की व्यवस्था की गयी है। आप बाहर बैठकर भी खाने का आनन्द ले सकते हैं। हम लोग ड्राईवर सहित 7 लोग थे, हमारी मेज़ प्रारम्भ में ही गेट के पास लगाई गई थी। हम लोग उन महिला से परिचय लेने के बाद अपनी मेज़ पर जा बैठे, जो हमने यहाँ आते ही बुक करा दी थी।

लंच का मेन्यू बड़े से बोर्ड पर लगा था। हम लोग जूस, पानी, स्नैक्स बहुत बड़ी मात्रा में अपने साथ ले गए थे कि हमारी पसन्द का खाना जंगल में तो नहीं मिलेगा। जब मैन्यू पढ़ा, तो आश्चर्य हुआ कि भारतीय खाना कैसे मिल सकता है, पर जब लिखा है तो मिलेगा तो ज़रूर, किन्तु स्वाद से परे ही होगा, यही सोचकर मरे मन से इन्तज़ार करने लगे। खाना लग चुका था। बुझे मन से पहला चम्मच खाया, तो सब एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे। खाना इतना स्वादिष्ट था कि हमें लगा हम दिल्ली में ही किसी रेस्तराँ में खाना खा रहे हों। चावल, आलू मटर की सब्ज़ी, मिक्स सब्ज़ी, रायता, सलाद आदि और वो भी जंगल में, हमारे आश्चर्य का ठिकाना न था। थोड़ी देर बाद ही ताज़ा कटे फल, आम, तरबूज़, केले आदि। बच्चों के लिए खाना पैक कराया, क्योंकि अब हमें गाड़ी लेकर 'बोटिंग' को जाना था, जहाँ

अगर पहुँचने में देर हो जाये, तो बोट छूट जाती है और फिर 5 घण्टे बाद ही बोट उपलब्ध होती है, वहाँ दिन में दो बार ही बोट जाती है ।

हम लोग 1 बजकर 15 मिनट पर लॉज से निकले और 1 बजकर 45 मिनट पर 'नाईल रिवर' पर बोटिंग के लिए पहुँचे। यहाँ पर डॉलर में टिकट खरीदना होता है। हम सबने टिकट लिया और अन्दर जाकर अपनी–अपनी सीट पर कैमरा संभालकर बैठ गये।

5 मिनट बाद ही बोट चल पड़ी और हमारे इस सफ़र की शुरुआत हुई। ये सफ़र भी बहुत रोमांचकारी लगा। हम लोग बोट की छत पर चले गए, जहाँ से नज़ारा ज़्यादा खूबसूरत लग रहा था। दूर किनारों पर हिरण परिवार अपनी दुनिया में व्यस्त थे, तो वहीं हिपोपोटामस पानी में गोते लगाते, तो कभी बाहर निकल आते। यहाँ बड़े–बड़े क्रोकोडाईल भी थे।

युगांडा के 'नाईल क्रोकोडाईल' दुनिया में सबसे बड़े क्रोकोडाईल होते हैं, जो 100 वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। यहाँ पर 'नाईल पर्च' नामक मछली भी पाई जाती है। इसका वज़न 200 किलो और इसकी लम्बाई 2 मीटर तक हो सकती है। लोग इसको खाने में बहुत उत्सुक होते हैं, क्योंकि इसका मांस सफ़ेद रंग का और कम काँटों वाला होता है। 'नाईल पर्च' मछली यहाँ सबसे पहले 1950 में देखी गई। यहाँ पर भी एक दुखद घटना जुड़ी है। सालों पहले यहाँ हमारी ही तरह कुछ एशियन टूर पर आये थे। उनमें एक गुजराती परिवार अपने बच्चों के साथ इस यात्रा का आनन्द लेने यहाँ आया। यहाँ आने पर पहले ही हिदायत दे दी जाती है कि कोई भी पानी के अन्दर हाथ न डालें, क्योंकि यहाँ बड़ी मात्रा में खतरनाक मगरमच्छ हैं, पर शरारती तत्त्व हिदायतों को दरकिनार कर देते हैं।

तो हुआ यूँ कि जब बोट बड़े मगरमच्छ के पास दर्शकों को दिखाने के लिए ले जायी जा रही थी, तो गुजराती परिवार की एक बच्ची ने अपना हाथ पानी के अन्दर डाल दिया। मगरमच्छ दूर किनारे पर लेटे दिखाई दे रहे थे, पर न जाने बोट के नीचे से कहाँ से एक मगरमच्छ आया, जो बहुत बड़ा नहीं था, उसने बच्ची का हाथ पकड़ लिया। बच्ची के माता–पिता ने बच्ची को अपनी ओर खींचना चाहा और मगरमच्छ बच्ची को अपनी ओर खींच रहा था। बोट बुरी तरह हिलने लगी और सभी यात्री चीखने– चिल्लाने लगे। कोई भी उस बच्ची को छोड़ने को तैयार न था, किन्तु मगरमच्छ भी उसको नहीं छोड़ रहा था। तभी ड्राईवर ने कहा हमारी बोट पलटने वाली है और हम सब इन मगरमच्छों का शिकार बनने वाले हैं, ये मगरमच्छ अब इस बच्ची को नहीं छोड़ने वाला, अगर किसी के पास चाकू है तो बच्ची का हाथ काटकर उसको बचाया जा सकता है, किन्तु किसी के पास कोई भी हथियार नहीं था। तब सबकी जान की चिन्ता करते हुए बच्ची के माता–पिता को बच्ची को छोड़ना पड़ा, जिसको एक ही झटके में मगरमच्छ खींचकर ले गया।

यह दुःखद घटना हर व्यक्ति की ज़बान पर होती है, जो कोई भी इस टूर पर आता है। उसके माँ–बाप के मन की पीड़ा को हम अच्छी तरह समझ सकते हैं, जिन पर यह बीती और उनके जिगर के टुकड़े को मगरमच्छ ने अपना ग्रास बना लिया। जब हम बड़े मगरमच्छ को देखने के लिए बोट को उनके पास लेकर गए, तो सब सतर्क हो गए और जिस किनारे पर मगरमच्छ होते सभी बोट के उस तरफ़ ही पहुँच जाते उनको देखने के लिए, जिससे बोट का झुकाव उधर ही हो जाता। नीचे से ड्राईवर सबको कहता "हम सब बोट सहित पानी में जाने वाले हैं, अगर आप बचना चाहते हैं, तो कुछ लोग दूसरी तरफ़ आ जाएँ।" उन सब में मैं सबसे पहले दूसरी तरफ़ जाती, फ़ोटो या फ़िल्म बनाने का विचार त्याग कर। मैं सोचती कि रोमांचक यात्रा पर लेख कैसे लिख पाऊँगी अगर मगरमच्छ का शिकार बन गई, तो बेहतर है कि लेख लिखना है तो दूसरी तरफ़ ही खड़ा हुआ जाये।

हम लोग 3 घण्टे तक बोटिंग करते रहे और तरह–तरह के खतरनाक मगरमच्छ, हिपोपोटामस, जंगली अफ़्रीकन सूअर, भैंसें आदि की प्रतिक्रियाएँ देखते रहे। एक स्थान पर बहुत बड़ा 'वॉटर फ़ॉल' देखा जो 'डाऊन ऑफ़ द मरचीज़न फ़ॉल' के नाम से जाना जाता है। उसकी खूबसूरती देखते ही बनती थी। वहाँ

नीचे पानी में इस तरह से झाग बने थे, मानो सारे पानी में नमक फैला दिया हो। बोटिंग के बाद हम लोग वापस लॉज आ गये। जब हम वहाँ पहुँचे, तो हमारा टेन्ट तैयार हो चुका था। हम लोग अपने कॉटेज में गये, शावर लिया और मुझे छोड़कर सब स्विमिंग पूल में उतर गये।

चिलचिलाती गर्मी में पूल में जाकर उनको राहत मिली। मैं हमेशा की तरह अपना कैमरा संभाले रही। थककर टूट चुकी थी, तो पास ही पड़ी कुर्सी पर लेट गयी। अभी 5 मिनट ही हुए थे कि एक ज़हरीले मच्छर महाशय ने मुझे काटकर मेरा कुर्सी पर स्वागत किया। ये तो अच्छा था कि मेरे 'फ़र्स्ट एड बॉक्स' में उन महाशय से लड़ने की दवाइयाँ मौजूद थीं। तभी तो मैंने उस लड़ाई में उन महाशय को हरा दिया, वो अपना ज़हर फैलाने में नाकामयाब रहा। सब लोग घण्टों पूल में स्विम करते रहे, किन्तु मेरी थकान बढ़ती गयी और अब तो दिन भी ढलने लगा था। मैंने शावर लेना उचित समझा। थके कदमों से शावर तक पहुँची और तैयार होकर डिनर के लिए डाईनिंग रूम में पहुँची। आज के डिनर में बूफ़े सिस्टम था, जिसमें बार्बेक्यू स्वादपूर्ण था, जो इंडियन, अफ़्रीकन, कॉन्टीनेन्टल का मिला–जुला रूप था। इंडियन खाने में एक खास बात लगी, जब डिज़र्ट का टर्न आया, तो 'फ्रूट चाट' के साथ–साथ सूजी का हलवा, जो बादाम, पिस्ते और काजू से सजाया गया था, देखकर हम आश्चर्य चकित रह गये। यहाँ सभी अफ़्रीकन ही खाना बनाते हैं और देख–रेख उन्हीं अमेरिकन मूल की महिला की रहती है, तब भी इतना स्वादिष्ट कि बयान नहीं कर सकते। यही तो एक बात है, जो आकर्षित करती है कि भिन्न–भिन्न देशों के व्यक्ति एक साथ होते हैं और अपनी–अपनी सभ्यता, संस्कृति को एक स्थान पर उपलब्ध कराते हैं और साथ–साथ दूसरे देशों की सभ्यता व संस्कृति को ध्यान में रखकर खान–पान, रहन–सहन की व्यवस्था करते हैं।

आप कहीं भी, किसी भी स्थान पर जायें, वहाँ कुछ अच्छी और कुछ बुरी यादें जुड़ी होती हैं, किन्तु बुरी यादें दिल को झकझोर देती हैं, यहाँ तक कि रुला भी देती हैं, क्योंकि सुख–दुख जीवन के दो पहलू जो ठहरे, किन्तु हममें से कोई भी इन्सान उन यादों से घबराकर उन स्थानों पर जाना तो नहीं छोड़ देता ना।

डिनर के बाद हम लोग कॉटेज में पहुँचे। कुछ देर तम्बोला, अन्ताक्षरी आदि खेला फिर बाहर घूमने का मन किया, तो बाहर निकल आये और घूमते रहे। मैंने लैटर पैड उठाया और अपने साथ बिताये पलों को कैद करती चली गयी। ठीक 10 बजे सिक्योरिटी गार्ड आ गया। हमने उससे वहाँ के बारे में जानकारी ली कि यहाँ कितना खतरा है। उसने बताते हुए शुरू किया कि – "रात में यहाँ पर अक्सर लेपर्ड आया करते हैं और कभी–कभी जंगली सूअर भी।" हमने पूछा – "तो तुम्हारे पास क्या है उनसे रक्षा के लिए।" उसने कहा – "ट्रिक"। हमने पूछा "वो कैसे?" उसके पास एक रस्सी थी और एक टॉर्च, कोई गन आदि नहीं थी। वो बोला – "जब शेर आता है, तो हम इस रस्सी को ज़मीन पर फेंककर अपनी तरफ़ एक खास तरीके से खींचते हैं, जिससे शेर रस्सी को सांप समझकर भाग जाता है और सभी जानवरों पर एक खास स्टाईल से टॉर्च मारते हैं, तो वे भी भाग जाते हैं। ठीक बारह बजे सभी लाईटें बन्द कर दी जाती हैं।"

अब ये सुनकर भागने का मन तो हमारा हो रहा था, पर कहाँ भागते। अब तो भागने में भी ज़िन्दगी खत्म होती नज़र आ रही थी और रुकने में भी, अब मरते क्या न करते वाली स्थिति हमारी हो चुकी थी। डर अलग बात है और उत्सुकता अलग, हमारे मन में भी उत्सुकता कुछ ज़्यादा गहरा गई और उसके मुकाबले में डर थोड़ा कम, ये सोचकर कि अजीब–सी ही सही पर सिक्योरिटी तो है। ये कैसे भगाता होगा ये सब देखने की लालसा मन में बुरी तरह जाग गयी। तो हम लोगों ने फ़ैसला किया कि हम कॉटेज में नहीं टेन्ट में ही सोयेंगे।

हमने उससे पूछा कि "हम टेन्ट में रहकर ये एडवेन्चर देखना चाहते हैं, क्या तुम हमारे टेन्ट के पास रहोगे", उसने कहा "हाँ मैं रात भर जागता हूँ पहरा देने के लिए और यहीं आपके टेन्ट के पीछे ही बैठता हूँ। यहीं मेरी बैठने की जगह है।" हमने कहा "ठीक है तो

हम टेन्ट में रहकर ही देखेंगे।" वह बोला "ठीक है पर एक बात का ध्यान रखना कि जब भी कोई जानवर इधर आये, तो आप लोग आवाज़ मत करना और न टॉर्च ही जलाना।" हमारी टॉर्च की ओर देखकर बोला "और हाँ बिना किसी आहट के बस चुपचाप लेटे रहना।" हमने पूछा "लेटे रहेंगे तो देखेंगे कैसे", वह बोला "देखने से आहट हुई तो समस्या हो जाएगी।" हमने कहा "ठीक है जैसा तुम कहो।"

हमने उसको कुछ शीलिंग दिए और अपने टेन्ट में चले गए। टेन्ट को ठीक से बन्द किया यहाँ तक कि खिड़कियाँ तक भी बन्द कर डाली। लगा कोई शेर आदि आ गया, तो हमें निवाला बनाये बिना नहीं छोड़ेगा। अब गर्मी के मारे बुरा हाल होने लगा। कहाँ तो हम सभी गर्म कपड़े आदि लेकर गये थे, क्योंकि सबने बोला था कि वहाँ बहुत सर्दी होती है, किन्तु यहाँ तो झुलस रहे थे। क्योंकि बारिश नहीं हुई थी। बारिश होती तो सर्दी होती। खैर अब हमारी बातों का सिलसिला चला कि कैसी होगी हमारी ये रोमांचक रात जानवरों के बीच में। सामने के कॉटेज में कुछ इंडियन रुके थे, वे बाहर कुर्सी डालकर अपने नन्हे बच्चे को साथ लेकर बाहर ही बैठ गये जो कि उचित नहीं था।

यही नहीं सामने वाले कॉटेज में बाहर एक अंग्रेज़ महिला कुर्सी पर बैठी नॉवेल पढ़ने में व्यस्त थी। हम अन्दर बैठे इन लोगों को देख रहे थे और हिम्मत जुटा रहे थे कि जब वे लोग बाहर बैठे हैं तो हम तो अन्दर ही हैं कम–से–कम खिड़कियाँ तो खोल सकते हैं, हमने सारी खिड़कियाँ खोल दीं, तब जाकर जान में जान आई। अब दौर शुरू हुआ कहानी किस्सों का, कुछ झूठे कुछ सच्चों का, जिनमें से एक सच्चा किस्सा जो उन अंग्रेज़ महिला को देखकर याद आया वो इस प्रकार था –

कुछ साल पहले एक अंग्रेज़ दम्पत्ति यहाँ आये थे। डिनर के बाद अंग्रेज़ दम्पत्ति कॉटेज में पहुँचे, तो महिला तो थकान के कारण कॉटेज में आराम करने लगी, किन्तु पति महाशय को नींद नहीं आ रही थी, तो बाहर ही कुर्सी डालकर नॉवेल पढ़ने बैठ गये। थोड़ी देर तक तो वे दरवाज़े के पास ही बैठे रहे पर कुछ समय बाद न जाने क्या सूझी कि अपनी कुर्सी उठाकर कॉटेज से कुछ दूर खुले में बैठकर नॉवेल पढ़ने लगे। अभी कुछ समय ही बीता था कि वहाँ पर न जाने कहाँ से एक लेपर्ड आया और उस व्यक्ति के ऊपर कूदा और उसको गर्दन से पकड़कर ले गया। सिक्योरिटी गार्ड उसके पीछे दौड़े पर कुछ हासिल न हुआ। लेपर्ड तेज़ी से भागकर कहीं झाड़ियों में गुम हो गया।

बाद तक भी उस व्यक्ति की लाश तक नहीं मिली। इसीलिए अब ठीक बारह बजे सभी लाईट बन्द कर दी जाती हैं, क्योंकि बारह बजे के बाद खतरा बढ़ जाता है। यहाँ जिस स्वीमिंग पूल में सब लोग दिन में आनन्द ले रहे थे उसी स्वीमिंग पूल में जानवर पानी जो पीने आते हैं। जंगल है तो यहाँ तो उनका ही राज होगा ना, जब चाहे आयें जब चाहे जायें। हम इस वृत्तान्त को कह सुन रहे थे कि न जाने कब बारह बज गये और सभी लाइटें बन्द कर दी गयीं, घुप्प अंधेरा छा गया। हमने इधर–उधर नज़र दौड़ाई, टॉर्च से देखा तो वहाँ कोई नहीं था, न वह इंडियन परिवार और न वह अंग्रेज़ महिला ही, न जाने वे कब के जा चुके थे, हमें अपने किस्सों में खोये रहने से पता ही नहीं चला। अब हमने टॉर्च बन्द किया और चुपचाप लेट जाने में ही भलाई समझी, क्योंकि अब हम बाहर नहीं निकल सकते थे, न जाने अंधेरे में कौन–सा जानवर हमारी घात लगाये बैठा हो।

अब ये सब बातें सुनकर बच्चे बुरी तरह डरने लगे, हमने बड़ी मुश्किल से उनको समझाया बुझाया और अपने सीने से लगाकर सुलाया, क्योंकि बच्चों के कारण हम भी डरे हुए थे और पछता रहे थे कि हम कॉटेज में क्यों न रहे, किन्तु अब क्या हो सकता था। अब तो रात आँखों में ही काटनी थी सो हम धीरे–धीरे बहुत मध्यम स्वर में बात करने लगे, सब तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था, जो बहुत भयावह लग रहा था और सच बात तो ये कि हम भी बुरी तरह डर रहे थे, पर हम एडवेन्चर रात जो देखना चाहते थे, तो हमें अब डरना नहीं चाहिए था, पर ऐसा नहीं हुआ। एक तो घुप्प अंधेरा उस पर सन्नाटा और उस सन्नाटे में झींगुरों, मच्छरों की अजीब–अजीब आवाज़ें रात को भयावह बना रही थी। प्रगीत के मित्र तो

सपनों की दुनिया में खो गये, भले ही उन सपनों में वे शेर और लेपर्ड के साथ थे।

जागने वालों में मैं, प्रगीत और उनके दूसरे मित्र ही बचे थे। तीनों बातें करके रात बीतने का इन्तज़ार करने लगे, कुछ देर बाद वे भी नींद से विजय न पा सके। अब मैं और प्रगीत अपने बच्चों को खुद से चिपकाये बस घड़ी में समय ही देखते रहे। अब तो बात करने की ताकत भी नहीं बची थी। कहाँ तो दिनभर के थके कहाँ यह "एडवेन्चरस रात"।

समय देखा तो रात के 2 बज चुके थे। तभी सामने से भयावह आवाज़ें आने लगीं। आवाज़ें इतनी डरावनी थी कि शरीर से पसीना छूटने लगा। ये आवाज़ें जंगली सूअरों और लेपर्ड की थीं। अब आवाज़ें धीरे–धीरे पास आने लगीं, तो उनकी तीव्रता और बढ़ने लगी। तभी प्रगीत के मित्र भी चौंककर उठ गये। हम बुरी तरह डर भी रहे थे और उनको पास से देखना भी चाहते थे, तो सब उठकर खिड़कियों के पास आ गये। वे हमारे टेन्ट की तरफ़ बढ़ रहे थे। अब हमारी साँसे रुकने लगीं, क्योंकि वे हमारी तरफ़ जो आ रहे थे और हम पर चाँद की रोशनी तो पड़ ही रही थी। तो हमने तुरन्त अपना स्थान बदला और चुपचाप लेटकर भगवान से आज की रात जान बख्शने की दुआ माँगने लगे।

अब तो आवाज़ें बिल्कुल ही पास आ गयी थीं, बिल्कुल हमारे टेन्ट के पास, यहाँ तक कि उनके कदमों की आहटें भी, अब तो कोई हमें नहीं बचा सकता। यही सोचकर हम सिक्योरिटी गार्ड को भी कोसने लगे कि कितनी बड़ी–बड़ी बातें कर रहा था। मैं यहीं रहूँगा टेन्ट के पीछे ही, ये करूँगा वो करूँगा। लगता है वह तो पैसा लेकर गायब हो गया और किसी कॉटेज में पड़ा सो रहा होगा। हम सब यही सोच रहे थे कि आज तो हम इन भूखे जानवरों की भूख शान्त करने को ही यहाँ आये हैं। बच्चे बेखबर सो रहे थे। जब हम टेन्ट में जा रहे थे तो उस गार्ड ने बोला था कि हम सब अपने जूते अन्दर रख लें वरना जानवर सूँघकर टेन्ट पर हमला करेगा, अच्छा हुआ हमने उसकी बात मान ली पर अब हमला करने में देर ही कहाँ थी। वे बस अब टेन्ट को हिलाने वाले हैं अब गिराने वाले हैं और सोचते–सोचते टेन्ट को एक तीव्र झटका लगा, बस अब तो सब खत्म, लगा मेरा तो हार्ट फ़ेल हो गया, साँसें उखड़ने लगीं, सारा रोमांच धरा का धरा रह गया, बस मन में एक ही बात थी कि मुझे चाहे ले जाये पर मेरे बच्चों को और किसी को कुछ न हो, अब तो बॉबी फ़िल्म का वो गाना भी याद आ रहा था "हम तुम एक टेन्ट में बन्द हों और लेपर्ड आ जाये, लेपर्ड से मैं कहूँ मुझे ले जाये सबको छोड़ जाये, हम तुम"। लेकिन ये क्या अचानक भगवान कहाँ से आ गये, अपने सोने चाँदी के रथ पर सवार होकर। उनकी सोने चाँदी की चमक से बाहर भगदड़ मच गयी, आवाज़ें भी दूर जाने लगीं, धूल उड़ाते जानवर भागने लगे झाड़ियों की तरफ़। हम उस रथ को देखने के लिए बैठ गये, तो सामने अपना रथ लिए भगवान हमारे टेन्ट के सामने खड़े थे। मन हुआ कि चलकर उनके पैरों में गिर जायें पर हिम्मत नहीं हुई। बस उनको दूर खड़े निहारते रहे, आँखों में आँसू भरकर, दया के आँसू। अगर आज हमारे भगवान न आते तो हम तो बस ऊपर ही होते। हमने मन–ही–मन अपने भगवान का शुक्रिया अदा किया कि हमने बेकार में ही उन पर शक किया। जी हाँ, हमारे गार्ड महाशय ही तो हमारे भगवान बनकर हमें बचाने आये थे। कहते हैं न कि भगवान किसी–न–किसी रूप में आपके पास ही रहते हैं, अब इस बात में कोई संदेह नहीं रह गया था।

अब रात के 3 बज चुके थे, ये घण्टे ज़िंदगी और मौत के बीच कैसे बीते, अब खतरा टला देखकर आँखें बोझिल होने लगीं और सोने की तीव्र इच्छा भी और हम सब न जाने कब सो गये। ठीक 5 बजे आँख खुली, क्योंकि अलार्म चीख–चीखकर हमें जगा रहा था। हम डरते–डरते उठे और अपनी टॉर्च गार्ड की तरफ़ डाली। वह हमारा इशारा समझकर हमारी तरफ़ आ गया और वह हमें हमारे कॉटेज तक ले गया। अभी तक लाईटें भी ऑन नहीं की गयी थीं, अभी अंधेरा भी नहीं छटा था। हम अपने कॉटेज में गये, राहत की साँस ली और स्नान करके तैयार हो गये अगली यात्रा के लिए।

ठीक 6 बजे हमारा ड्राईवर आ गया, हम गाड़ी में बैठकर और रेंजर को भी साथ लेकर, जिसको

हमने रात में ही बुक कर दिया था, निकल पड़े अगले एडवेन्चर यानी "पारा नेशनल पार्क" के लिए।

कुछ दूर रास्ता तय करके हम नाईल रिवर पहुँचे। वहाँ पर हम लोग गाड़ी से उतर गये और गाड़ी को फ़ेरी पर चढ़ाया गया। वहाँ बहुत सारी गाड़ियाँ थीं। हम लोग भी फ़ेरी पर साइड में जाकर खड़े हो गये, ये सफ़र भी अपने आप में अलग ही था। 15 से 20 मिनट के बाद हम नाईल रिवर के पार थे। सभी गाड़ियाँ फ़ेरी से उतारी गयीं और हम सब अपनी-अपनी गाड़ियों में बैठकर "पारा नेशनल पार्क" की तरफ़ चल पड़े। "पारा नेशनल पार्क" युगांडा का सबसे बड़ा नेशनल पार्क है। हम सबने गाड़ी में ही ब्रेकफ़ास्ट किया। लगभग 20 मिनट की यात्रा के बाद ही हमें जानवर दिखाई देने लगे। जो खतरनाक न होकर मित्रता रखने वाले होते हैं, अगर आप उनको कुछ खाने को भी दो तो वे आप पर हमला नहीं करते। पर कुछ खतरनाक भी होते हैं। गाड़ी के ऊपर का हिस्सा खोलकर हम खड़े हो गये और झुंड के झुंड जानवरों को अपने कैमरे में कैद करते चले गये। वहाँ पर हिरण परिवार किलोल कर रहे थे। छोटे–छोटे हिरण के बच्चे जहाँ के तहाँ खड़े रहते, किन्तु बड़े–बड़े हिरण गाड़ी को देखकर भाग खड़े होते। जिराफ़ तो बहुत ही खूबसूरत लग रहे थे। वे बहुत शान्त स्वभाव के दिखे। कहीं तो वे अपने जीवन साथी के साथ खड़े थे और कहीं अपने नन्हे–नन्हे बच्चों के साथ। हम उनको निहारते रहते और वहाँ से हटने का मन न करता, बस उनको देखते रहने में ही सुकून मिलता था। किन्तु हर जगह आने–जाने का समय निश्चित था, क्योंकि अगर देर होती तो आगे का प्रोग्राम चौपट हो जाता। तभी तो हम लोगों को सुबह 6 बजे निकलना पड़ा, क्योंकि सुबह–सुबह सब जानवर दिख जाते हैं, देर करने पर नहीं। अब हम अपनी भयानक रात को भूल चुके थे।

आगे बढ़े तो अफ़्रीकन भैंसें देखे, जो देखने में बहुत खतरनाक लग रहे थे और वास्तव में थे भी, तभी तो किसी भी गाड़ी के आने पर भाग खड़े नहीं होते थे, बल्कि उनसे आँखें मिलाते थे और इस ताक में रहते थे कि दौड़कर गाड़ी को पलट दें। उनमें इतनी सामर्थ्य जो थी। वहाँ हम रुक नहीं सकते थे, सो चलते–चलते ही उनको देखा, जो लगातार ही अपनी भयानक आँखों से हमें देखे जा रहे थे। बबून भी इधर–उधर दौड़ रहे थे, जो देखने में खूबसूरत तो नहीं, किन्तु खतरनाक ज़रूर दिखते थे। आगे चलकर एक दोराहा आता है, वहाँ से एक रास्ता पड़ता है। हम लोग उस रास्ते पर बढ़ चले क्योंकि वह रास्ता हमें हाथियों के झुंड के पास ले जाता था। वहाँ हमने देखा बड़े–बड़े अफ़्रीकन हाथी अपनी मस्त चाल से लोगों में आकर्षण का केन्द्र बने थे। अफ़्रीकन हाथी तो दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं। एक हाथी ने पेड़ से फल तोड़ा और एक ही झटके में उसको छील लिया और फिर बड़े मज़े से उसका स्वाद लेने लगा। वास्तव में देखने में बहुत ही आश्चर्यजनक था। कितनी सफ़ाई से फल तोड़ा पेड़ को हिलाकर, छीला और खा लिया।

अब यहाँ आये तो यहाँ से जुड़ी बातें भी याद आनी ही हैं, तो सुनिये अफ़्रीकन जंगल में कुछ साल पहले एक बहुत दिल दहला देने वाला हादसा हुआ था। जैसे कि मैंने पहले भी बताया कि यहाँ आप गाड़ी से नीचे नहीं उतर सकते, बैठे–बैठे ही आप जानवरों को देख सकते हैं। यहाँ शिकार करने की भी इजाज़त नहीं है, यहाँ तक कि अगर आप गाड़ी को सड़क से उतार कर इधर–उधर चलाते हैं तो भी आपको जुर्माना देना होगा। कुछ जानवर मित्रता का व्यवहार इसलिए रखते हैं कि यहाँ शिकारी तो आते नहीं हैं, इसलिए वे बेखौफ़ घूमते हैं। किन्तु कुछ खतरनाक भी हैं जैसे शेर, हाथी, जंगली सूअर, भैसें आदि किन्तु जिराफ़, हिरण जैसे जानवर कोई नुकसान नहीं पहुँचाते। यहाँ जानवरों के छोटे–छोटे बच्चे आकर्षण का केन्द्र हैं। उनको देखकर छूने का यहाँ तक कि घर लाने का भी मन करता है, किन्तु मन पर काबू रखना पड़ता है, क्योंकि माँ–बाप से बच्चे को अलग करने में हमें तो खुशी नहीं मिल सकती। औरों का पता नहीं, बस इसी आकर्षण के वशीभूत होकर एक व्यक्ति ने जो एशियन था, उम्र यही कोई 20 या 22 साल रही होगी, ड्राईवर और रेंजर के मना करने पर भी गाड़ी से उतरने की जुर्रत तो की ही, साथ ही हाथी के छोटे से

बच्चे के साथ खिलवाड़ भी शुरू कर दिया, बच्चे की माँ ने ये सोचकर कि उसके बच्चे को तंग कर रहे हैं या साथ ले जा रहे हैं, उस व्यक्ति पर हमला कर दिया। हाथिनी ने व्यक्ति को पकड़ा और पटक कर दो बार ज़मीन पर मारा और फिर उठाकर उसको चीर डाला। उसके साथी गाड़ी में बैठे चीख–चिल्ला रहे थे, उनसे अपने साथी की हालत देखी नहीं जा रही थी, वह खून से लथपथ हो चुका था, देखते–ही–देखते जीता–जागता व्यक्ति टुकड़ों में बदल गया, किन्तु हाथिनी का गुस्सा शांत नहीं हो रहा था, समय की नज़ाकत को देखते हुए सभी साथी दुखी मन से उसको छोड़कर आगे बढ़ गये, उसमें ले जाने को कुछ बचा भी नहीं था और लेते भी कैसे हाथिनी अभी भी पागल हुई उसको कुचले जा रही थी। अब हम इसको क्या कहें उस व्यक्ति की बदकिस्मती या उसकी लापरवाही।

हम लोग यहाँ जंगल में 7 बजकर 30 मिनट पर पहुँच गये थे और 11 बजकर 30 मिनट तक जंगल में ही घूमते रहे, उसके बाद वापस प्रस्थान किया फ़ेरी पर, फिर वापस अपनी लॉज में। यहाँ स्नान से निवृत्त होकर लंच करने के लिए अपनी टेबल पर जा बैठे खाने के इन्तज़ार में।

बस इस जंगल की खट्टी–मिट्ठी यादों को समेटे हम लोग वापस कम्पाला के लिए रवाना हुए। अब दिन के 1 बजकर 30 मिनट हुए थे। रास्ते में देखा तो जंगल में भयंकर आग लगी हुई थी, जो कल तक सही सलामत था, आज वही बुरी तरह झुलस रहा था। शायद गर्मी के कारण ही ऐसा हुआ था। गर्मी चाहे कितनी भी ज़्यादा थी, फिर भी लोग जंगल में मंगल मना रहे थे। ईस्टर के कारण चारों तरफ़ धूम मची थी। अफ़्रीकन परिवार जंगल में खाना आदि बना रहे थे और संगीत की धुन पर थिरक रहे थे। कम्पाला तक आते हुए यही मंज़र देखने को मिला। हम लोग भी वैन में हिंदी गानों, तमिल गानों को गाते सुनते हुए, ऊबड़–खाबड़ रास्ता तय करते हुए, 3 बजकर 35 मिनट पर समतल रास्ते पर आ गये। कमाल था गाने भी क्या–क्या याद आ रहे थे, जैसे – "आते–जाते खूबसूरत आवारा सड़कों पे कभी–कभी इत्तेफ़ाक से" प्रगीत ने और मित्रों ने समा बाँध रखी थी तो कभी – "ये शाम मस्तानी मदहोश किये जाये, मुझे डोर कोई खींचे" तो शाम भी घिर कर आने लगी। बस यूँ ही गाते गुनगुनाते हम लोग कम्पाला पहुँच ही रहे थे कि जाते–जाते एक निशानी जंगल की मिल ही गयी, मेरी बड़ी बेटी को एक मक्खी ने काटकर हमें विदाई दी। हम ठीक 6 बजे अपने–अपने घर पहुँच गए।

bhawnak2002@gmail.com

तिवारी जी

— डॉ. संध्या सिंह
सिंगापुर

जब–जब सिंगापुर में हिंदी–शिक्षण की बात उठती है या यहाँ के स्थानीय विद्यालयों में हिंदी से सम्बंधित कोई भी चर्चा होती है तब–तब 'तिवारी जी' के शांत मुख की रेखाएँ, हिंदी के प्रति उनके स्वप्निल आँखों की चमक, उनकी बातों सहित उभर आती हैं।

'सिवाकांत तिवारी जी' कुछ लोग याद नहीं किए जाते, बल्कि इस क़दर स्मृति में बस जाते हैं कि याद किए बिना ही ज़बान पर अनायास ही आ जाते हैं। सन् 1999 अगस्त महीने की वह देर शाम, फ़ोन की घंटी का बजना जो मेरे जीवन में एक नया अध्याय लेकर आई थी। फ़ोन पर की हुई बातें तो औपचारिक ही थीं पर पूछने पर 'आप कौन बोल रहे हैं' क्योंकि वह दफ़्तर के काम का समय तो था नहीं, तो आखिर कौन अब तक काम कर रहा है, जानने की उत्सुकता थी; का जवाब आता है 'तिवारी'। फ़ोन रखने के बाद कुछ देर तक तो यही सोचती रह गई ये कैसा नाम है 'तिवारी'? आज लगता है वह नाम नहीं बल्कि पर्याय है; एक नहीं, बहुत–सी बातों का।

आमने–सामने उनसे हुई पहली मुलाक़ात में 'तिवारी' वह शब्द जानने की जिज्ञासा अवश्य कुछ शांत हुई। पहली ही मुलाक़ात में उनकी छवि स्मृति में ऐसे अंकित हो गई जैसे बरसों से जाना–समझा व्यक्तित्व हो, बस सम्मुख आने की देर थी। हिंदी सोसाइटी (सिंगापुर) के संस्थापक व मुखिया 'तिवारी जी' वैसे तो वे पेशे से नामी वकील थे; सिंगापुर सरकार में 'अंतरराष्ट्रीय संबंधों' के प्रमुख थे, पर यह जानकारी मुझे बहुत बाद में समझ आई। उनकी किसी भी बात से कभी यह महसूस ही नहीं हो सकता था कि सिंगापुर में उनकी इतनी साख और राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इतना नाम होगा। विदेशी शिक्षा प्रणाली में हिंदी को मान्यता दिलाना इतना सहज नहीं था। इसके पीछे एक अथक प्रयास है। 'तिवारी जी' की दूरदर्शी दृष्टि और मेहनत का ही फल था कि 6 अक्तूबर 1989 का दिन सिंगापुर में हिंदी भाषियों के लिए अत्यंत खास बन गया, क्योंकि इसी दिन संसद में शिक्षा मंत्री श्री टोनी तान जी ने घोषणा की कि गैर तमिल भाषी भारतीय छात्र माध्यमिक विद्यालय में पाँचों (हिंदी, गुजराती, पंजाबी, बंगाली, उर्दू) में से एक भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में सन् 1990 से पढ़ सकते हैं। तिवारी जी द्वारा हिंदी सोसाइटी (सिंगापुर) का पंजीकरण 4 अगस्त 1990 को करवाया गया। उन्होंने हिंदी को मान्यता दिलाने से लेकर उँगलियों पर गिनने लायक संख्या से शुरू हुई संस्था को हज़ारों छात्रों तक पहुँचाने तक हर कदम पर जी–जान से सेवा की।

लगभग 12–13 वर्षों में मैंने उनको जितना जाना और जितना समझा उससे यही निष्कर्ष निकाल पाती हूँ कि उनमें एक नहीं कई व्यक्तित्वों की समग्रता थी। 'तिवारी जी' की दृष्टि और सोच ऐसी थी जिससे आकर्षित हुए बिना रह पाना संभव नहीं था।

हिंदी कक्षाओं के दिन उनकी वेशभूषा तो देखने वाले को उनके पेशे का कहीं से भी भान न होने देती। उनके पहनावे में खादी का खुरदुरा कुर्ता, पायजामे के बजाय कभी किसी भी पतलून पर मोटी चप्पल पहने विदेश में भी हर जगह देश की याद दिलाने के लिए सहज प्रयत्न था। उनकी सहज हँसी की सरलता किसी को भी मंत्रमुग्ध कर दे। कान अवश्य ही ईश्वर ने अनुपात में कुछ बड़े बनाए थे ताकि अदालत में तो सबकी बातें सुनें ही, हिंदी स्कूल से सम्बंधित कुछ भी अनसुना न रह जाए। प्रतिभा और बुद्धिमता की सौगात तो ईश्वर ने स्वयं उन्हें प्रदान की थी, पर साथ ही समुदाय के प्रति संवेदना और छात्रों के भविष्य को लेकर जो गहरी सोच महसूस होती थी, वह सामान्य से अलग थी। अपनी

भाषा, विरासत, संस्कृति को सुरक्षित रखने में जीवन के सर्वमान्य सिद्धांतों को स्पर्श कराते चलते थे।

उनकी कुछ बातें आज भी मनोरंजन करने से नहीं चूकतीं। हाँ, एक समय था जब लगता था कि कौन–सा उनको अपनी जेब से खर्च करना है कि इतना सोचते हैं! सोसाइटी के पैसे को भी इतनी हिफाज़त से खर्च करते थे, जैसे लगता था कि किसी कंजूस व्यक्ति को कह दिया जाए कि आज की पार्टी का खर्चा उसी की जेब से होगा। मुझे वार्षिक पत्रिका के सम्पादन का कार्य मिला था, तो ज़ाहिर–सी बात है, कई बार 'प्रिंटर' के यहाँ देर तक रुकना पड़ता था। घर भी वहाँ से थोड़ी दूर था, इसलिए इच्छा तो यही थी कि 'टैक्सी' का किराया सोसाइटी से लिया जाए। 'तिवारी जी' का अपने पक्ष में करने वाला वाक्य, ''अरे, आप तो अभी नई हैं, आराम से बस से आ–जा सकती हैं। यहाँ कोई डरने की बात तो है नहीं। भाई सोसाइटी के पैसे बचेंगे तो बच्चों का ही भला होगा!'' अब इसके आगे कोई 'टैक्सी' का किराया भला कैसे माँगे! .....परिवार का मुखिया पाई–पाई जोड़कर एक इमारत की नींव रखता है और कोशिश करता रहता है कि उसकी बचत का हिस्सा कभी कम न हो। आधुनिक दृष्टिकोण बहुत सहजता से उसे कंजूसी मान लेता है। एक घटना और जो 'तिवारी जी' की निष्ठा और ईमानदारी की मिसाल लगी, मुझे। हिंदी सोसाइटी (सिंगापुर) का वार्षिकोत्सव समाप्त हो चुका था, दूसरा सप्ताह चल रहा था कि अचानक मुझसे उन्होंने एक बात कही, ''अगले शनिवार को ज़रा मुझे याद दिलाइयेगा कि सोसाइटी का पाँच डॉलर वापस कर दूँ।'' मैंने सरलता से पूछा, ''क्या हुआ, कोई खास बात।'' ''नहीं भाई, 'हिंदी सेंटर डे' के दिन सोसाइटी के पैसे से मैंने पाँच डॉलर का फूल खरीदा था, उसे वापस करना बहुत ज़रूरी है; बार–बार भूल जाता हूँ।'' आज तक यही सोचती हूँ कि संस्था के लिए जीने की उनकी शायद ही कोई हद रही होगी; कौन जीता है इतना और इस रूप में? पूरे सप्ताह उनकी बात दिलो–दिमाग से हटी ही नहीं।

अवश्य ही उनकी अधिकांश शक्ति उनके पेशे से सम्बंधित कार्यों में लगी हो, परन्तु सिंगापुर में हिंदी पढ़ने–पढ़ाने की उनकी दूरदर्शिनी दृष्टि ने ही छात्रों के जीवन से अंधकार समान एक और भाषा के बोझ को हटाने में सहयोग दिया। सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य की कई घटनाएँ आज भी मन–मस्तिष्क पर उतनी ही ताज़गी से अंकित हैं। एक बार माध्यमिक कक्षाओं के कुछ बालक–बालिकाओं की आपसी गतिविधियाँ मुझे विद्यालय अनुशासन का उल्लंघन प्रतीत होती नज़र आईं या शायद मैं भारतीय समाज की बंदिशों में स्वयं बँधी थी, जिसकी सरहदें मुझे रोक रही थीं। मैंने कहा कि इन बच्चों पर रोक लगानी चाहिए। पूरी बातचीत सुनने के बाद 'तिवारी जी' का यह वाक्य ''अरे भाई, इसी बहाने ये बच्चे आपस में मिलते हैं, एक–दूसरे से जुड़ते हैं और शायद आगे चलकर भी जुड़े रहेंगे। इसी तरह हम खुद से जुड़े रहेंगे।'' चंद शब्दों ने अपने मूल से ऐसे जुड़े रहने का संकेत दिया कि बाद में यह आभास हुआ कि भाषा किस प्रकार हमें संस्कृति से जोड़ती है और उसके कितने रूप हो सकते हैं। संस्था का यह उद्देश्य तो बहुत देर से मेरी समझ में आया। यह श्रीमान 'तिवारी जी' की ही दूरदर्शिता थी, जो मेरी नज़रों से बहुत दूर थी।

भारतीय संस्कृति स्वयं को अनेक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करती है। नारी सौन्दर्य और शृंगार हमारी संस्कृति का प्राचीन काल से ही अविभाज्य अंग रहा है। एक बार 'तिवारी जी' ने किसी शिक्षिका को देखा और बाद में बहुत गंभीर होकर और निश्छल ईमानदारी भरे स्वर में कहा, ''हमारी यह अध्यापिका ऐसे क्यों रहती हैं?'' हमारे विभागाध्यक्ष ने पूछा, ''क्या हुआ?'' ''कुछ ख़ास बात नहीं है। न कोई चूड़ी, बिंदी..... आप समझे। सब कुछ ठीक है न, उनका; कहीं कोई कमी या दुख तो नहीं है?'' सोचा नहीं था कि इतना खयाल भी कोई रखता है। चाहे उसे भारतीय संस्कृति से जोड़ें या किसी अध्यापिका के जीवन में किसी कष्ट से जोड़ें; लेकिन उस दिन यह महसूस हुआ कि उनका व्यक्तित्व संस्कृति–समाज और सामाजिकता से परिपूर्ण था।

ऐसा लगता था कि सूरज ने अपनी रोशनी इस दीपक के हवाले कर दी है और यही दीपक हिंदी की लौ को आगे बढ़ाने में प्रयत्नशील है। सन् 2012 में अचानक वह दीपक बुझ गया, पर हिंदी की लौ को मज़बूत करके गया था, इसलिए वह डगमगाई अवश्य पर जलना नहीं छोड़ा। आज हिंदी यहाँ अवश्य बढ़ रही है, पर कई बार मन में प्रश्न उठता है क्या वह हाड़–मांस का शरीर दोबारा न जन्म लेगा, जिसमें निःस्वार्थ हिंदी की सेवा का भाव और अटूट समर्पण हो!

sandhyasingh077@gmail.com
clssas@nus.edu.sg

रोज़नदारी की बातें

– डॉ. शैलजा सक्सेना
टोरंटो, कनाडा

(कनाडा में रहने वाली भारतवंशी महिला की डायरी के कुछ अंश। सहज भाव से जिया हुआ, भोगा हुआ, बिना लाग–लपेट के लिखा हुआ, एक साधारण प्रवासी का जीवन! ये पन्ने प्रवासी जीवन के उलटफेर और खोने–पाने को उजागर कर रहे हैं।)

मई 6, 2000

आज जीवन का एक नया अध्याय शुरू होने जा रहा है। दोनों छोटे बच्चों के साथ हम मिशीगन आ गये हैं। इनको यहाँ एक कम्पनी में काम मिल गया है और मैं अपनी नौकरी छोड़कर, सब के उज्ज्वल भविष्य का सपना लेकर आयी हूँ। आठ साल के सुहास और चार साल के नीलेश के साथ नौकरी के कारण बिल्कुल समय नहीं मिल पाता था। नौ से पाँच की नौकरी और फिर आना–जाना, सब मिलाकर खूब थक जाती थी। फिर घर पर आते ही घर के काम! कुछ देर भी बच्चों के साथ बैठना नहीं हो पाता था। बुरा भी लगता था कि सारा दिन मम्मी जी बच्चों को संभाल कर थक जाती थीं, पर क्या करें। अब यहाँ मैं पूरा दिन बच्चों को दे पाऊँगी। पार्कों में घुमाऊँगी, स्विमिंग ले जाऊँगी और सुहास की तो म्यूज़िक क्लास भी शुरू करवा दूँगी। यहाँ बच्चों के लिए इतनी सुविधाएँ देखकर तो मन झूम उठा है। साफ़–सुथरे शहर, साफ़–सुथरे लोग! वहाँ कभी बच्चों को पार्क में ले भी जाओ तो झूले पर बिठाने के लिए ही बच्चे को दस मिनट इंतज़ार करना पड़ता था... अब बच्चों की खूब मस्ती रहेगी... और हमारा भी तो...!

जून 15, 2000

बस, एक ही बात बहुत बुरी है यहाँ, सारे काम... यानी सारे काम खुद ही करने पड़ते हैं। अपनी काम वाली बाई और प्रेस वाला भइया बहुत याद आ रहे हैं।

सितम्बर 17, 2000

आज सुहास और नीलेश पहले दिन नये स्कूल गये। खूब अच्छे टीचर हैं उनके। यहाँ इतने अच्छे सरकारी स्कूल हैं कि प्राइवेट स्कूल में जाने की बात बहुत कम और बहुत ज़्यादा ही पैसे वाले लोग सोचते हैं, वरना सब फ़्री के सरकारी स्कूल, हाईस्कूल तक! भारत में लोग बेकार ही डरा रहे थे कि यहाँ रेसिज़्म है, मुझे तो ऐसा नहीं लगा! सब लोग बहुत अच्छे से, अपने से आगे बढ़कर ही बात करते हैं, वहाँ कौन ऐसा करता था? क्या वहाँ लोग ऊँच–नीच की बातें नहीं करते थे? अमीर–गरीब का अंतर कितना अधिक है वहाँ पर! कोई घायल हो जाये, तो लोग उसे उठाकर अस्पताल तक न लेकर जायें वहाँ, यहाँ कम–से–कम मदद करने को लोग खड़े तो हो जाते हैं!

दिसम्बर 20, 2000

आजकल लोग कहीं नहीं दिखाई देते। सुबह कारें चली जाती हैं, शाम को आकर खड़ी हो जाती हैं, सड़कें, पार्क सब अकेले हो गये हैं। आपसी प्रेम भी कई बार ठंड में जमा लगता है। घर की याद खूब आ रही है। धूप में बैठकर मूँगफली और तिल के लड्डू खाना! रज़ाई में घुसकर देर रात तक गपियाना। और आजकल तो शादियों का मौसम शुरू हो गया है। दो शादियाँ हैं इस साल, मैं मिस कर दूँगी। ये बहुत बिज़ी हैं, सो जाना हो नहीं पायेगा। अमेरिका को चिन्ता है कि सन् 2000 बदलते ही कहीं सारे सॉफ़्टवेयर क्रैश न कर जायें... बहुत फ़िक्र है सबको, इसी से सारे आई.टी. वालों की पूछ–परख चल रही है। हम भी तो इसीलिए यहाँ आये हैं।

दिसम्बर 24, 2000

कल रात पहला स्नो–स्ट्राम (तूफ़ान) आया। बर्फ़ से सब कुछ ढँक गया। पर बर्फ़ होने पर आज बच्चे निकल आये हैं और खूब मस्ती कर रहे हैं, 'ह्वाइट क्रिसमस' की खुशी भी है। यहाँ के लोग सच में खुश होना, मस्ती करना जानते हैं, अपने यहाँ तो 'सर्दी न लग जाये' का डर दिखाकर हमें घर में ही बिठा देते थे। यहाँ बर्फ़ के कारण न काम बंद होता है और न मस्ती करना। सुहास और नीलेश ने भी 'स्नो–मैन' बनाया और खूब खुश हुए। साथ वाले घर की महिला ज़बरदस्ती बच्चों के लिए हॉट चॉकलेट और हम दोनों के लिए कॉफ़ी बना लायीं। मुझे लगता है कि हम लोग ही पता नहीं किस कॉम्प्लैक्स में जीते हैं, जो इन लोगों से घुल–मिल नहीं पाते।

मार्च 10, 2001

आज पहली बार यहाँ मंदिर में होली खेली। जब से यहाँ आये थे, तरस ही गये थे। अपार्टमेंट में कार्पेट होने के कारण बच्चों को बाथरूम में ले जाकर गुलाल के टीके लगा देते थे... ऐसे भी कोई होली होती है? कितने सारे भारतीय आए! हम सब लोग स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, दीपावली सब मनाते हैं, पूरे मन और लगन से! हिंदी, तबले और नृत्य की क्लासें होती हैं मंदिर में। आजकल सुहास तबला सीख रहा है और नीलेश ने पियानो सीखना शुरू किया है! दोनों बच्चे हिंदी के साथ, वेद मंत्र आदि भी सीख रहे हैं। बहुत खुशी होती है कि अपनी भाषा और संस्कृति को भूलेंगे तो नहीं।

दिसम्बर 21, 2001

सितम्बर नौ को वह भयानक कांड हुआ और अमेरिका हिल गया। एक अविश्वास, असुरक्षा और डर बैठ गया है सबमें। नौकरियों की भी बहुत मुश्किल आ गयी है। पूरा जॉब–मार्केट फ्रीज़ हो गया है। कितनी ही कम्पनियों में से लोगों को निकाला जा रहा है। पिछले चार महीने में हमारे जान–पहचान के तीन लोग अपनी नौकरी खो चुके हैं। मिस्टर खुराना तो वापस भारत जाने की सोच रहे हैं! उनके बच्चे छठी और आठवीं में हैं, बहुत परेशान हैं कि भारत जाने पर स्कूल में एडमिशन कैसे होगा, पर क्या करें लगभग तीन महीने से नौकरी ढूँढ रहे हैं। नौकरी के बिना यहाँ रहना बहुत मुश्किल है, पच्चीसों खर्चे और छोटी नौकरियाँ करना कि गैस स्टेशन पर खड़े हो जाओ या दुकानों में कैश रजिस्टर पर खड़े रहने की उनकी इच्छा नहीं है। पर कोई–न–कोई रास्ता तो निकलेगा ही... जिन्होंने हिम्मत कर के देश छोड़ा, हिम्मत छोड़ने का विकल्प उनके पास नहीं है! भारत में इस बात को कोई समझ सकता है क्या?

फ़रवरी 9, 2002

हर जगह शक और डर का वातावरण है। सुना किसी शहर में किसी सरदार जी की लंबी दाढ़ी देखकर उन पर शक किया गया और पीट–पीटकर अधमरा कर दिया गया। पहले अफ़्रीकी लोगों के साथ का दुर्व्यवहार सुनाते थे... अब तो वह बहुत कम हो गया है... पर इस घटना ने अब एक नए किस्म का डर पैदा कर दिया है। आगे बढ़ती सभ्यता और संस्कृति एक झटके से रुक गयी है...। कितने ही साल जैसे पीछे को लौट गए हम। इस दुनिया को कभी कोई हिटलर, कभी कोई स्टालिन तो कभी कोई ओसामा पीछे की तरफ़ ही धकियाते रहते हैं, पर ज़िंदगी फिर चल पड़ती है... चाहे कुछ समय के लिए गिरते–पड़ते ही।

जून 7, 2002

आज एक बहुत बुरी खबर पता लगी, मन दुखी हो गया। वेडिंग एनीवर्सेरी है आज हमारी, पर ये खबर सुनकर बहुत बुरा लगा। नीता की शादी टूट गयी। आठ साल में मेहनत से बनाया गया घर और परिवार बिखर गया। दो बच्चे हैं उनके... पर समीर को यहाँ की ही कोई लड़की भा गयी है, नीता से कहा कि हमारे बीच कम्पैटिबिलिटी नहीं है, सो अलग होना ही अच्छा! 'तुम चाहो तो यहाँ रहो या इंडिया चली जाओ, मैं महीने का खर्च दे दिया करूँगा। 'इतने साल से कम्पैटिबिलिटी

थी? नीता शॉक में है... क्या कहे और क्या करे? अपनी अच्छी–खासी जॉब छोड़कर समीर के साथ यहाँ आयी थी, अभी तो उसका ग्रीन कार्ड भी नहीं हुआ, तो नौकरी भी कैसे करे! देखो क्या होता है! मेरे साथ यह हुआ तो मैं क्या करूँगी! काम के सिलसिले में इतनी–इतनी देर जब घर से बाहर रहना पड़ता है, तो पति–पत्नी दोनों में ही दूरी आ जाती है। ऐसे में संबंध कितनी देर टिकेंगे, कौन जानता है?

सितम्बर 10, 2003

इनकी भी नौकरी छूट गई थी। दो महीने घर पर रहे... नौकरी ढूँढते बेहाल हो गये, तब जाकर मिली पर कम वेतन पर... घर खर्च भी इतने हैं... भारत में भी किसी को क्या बताते! सच न बताने की भी कितनी पीड़ा होती है। और उधर वो उड़ीसा से आई हुई चेतना के माता–पिता हैं कि उसकी नौकरी चली गई है, जानकर भी उससे हर महीने पैसे मँगाते रहते हैं। पता नहीं भारत में लोगों को क्यों लगता है कि यहाँ पर लोग कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हैं, पेड़ हिलाओ और रुपये बरसने लगेंगे। वह बहुत परेशान रहती है... जिस घर को सुखी करने के लिए वह यहाँ दुख झेल रही है, वे उसके अपने भी उसे दुखी बनाने में कसर नहीं छोड़ रहे।

अप्रैल 25, 2004

चार साल बाद भारत होकर आये। कितनी तैयारी की थी, सब के लिए ढेरों सामान लिया.. टिकट और सब खर्चा करते–करते बचत भी आधी ही रह गई और उस पर भी ऐसा नहीं लगा कि सब बहुत खुश थे हमारी गिफ़्ट से। एक और मज़े की बात, ये दोनों बच्चे ज़्यादातर अंग्रेज़ी ही बोलते सुनाई दिये। नीलेश और मैं 4–5 दिन बीमार भी पड़ गये थे। बीमार होने पर भी यही सुनाया गया – 'भई फ़ॉरेन–रिटर्न हैं, अब यहाँ का हवा–पानी क्यों सही लगेगा।' बहुत बुरा लगा!

मई 17, 2006

आज मैंने यहाँ ह्यूमन रिसोर्सज़ मैनेजमेंट का डिप्लोमा ले लिया। दो साल लग गये पर अब यहाँ कुछ काम तो कर सकूँगी। बच्चे भी बड़े हो ही गये हैं, दुनिया को देखते हुए सरल हैं, भारत के बच्चे तो इन्हें बेच खायें। मैं खुश हूँ कि आजकल दोनों कार्यक्रमों में स्टेज पर पियानो और तबला बजाने लगे हैं।

जुलाई 21, 2006

नौकरी मिल गई है। बहुत अच्छा लग रहा है, कोर्स करने में बहुत मेहनत की, दिन भर घर के काम और शाम को 6.30 से रात 9.30 की क्लासें.. फिर होमवर्क, इम्तहान आदि! बहुत से लोग यहाँ नौकरी के साथ–साथ ऐसे कोर्स करके या तो अपने को अपडेट करते हैं या कैरियर बदल लेते हैं। बहुत मेहनत करते हैं यहाँ के लोग...! पता नहीं अपने देश में अमेरिका को भोग–विलास की छवि बनाकर ही क्यों पेश करते हैं? यही मेहनत करने का रवैया भारतीयों का हो जाता, तो हमारा देश बहुत सुखी हो जाता। ये लोग जी–तोड़ मेहनत करना जानते हैं, तो मस्ती भी बुढ़ापे तक करते हैं! यह नहीं कि पचास के ऊपर हुए नहीं कि 'अब क्या करना हमका' का भाव लेकर बैठ गये! मुझे अच्छा लगता है इनका खुलकर यूँ जीना! काश! हम अपने अच्छे मूल्यों के साथ इनके अच्छे मूल्यों को अपना सकते!

दिसम्बर 5, 2006

हम लोग एक चैरिटी संस्था से जुड़ गये हैं, जो भारत में बच्चों को पढ़ाने के लिए गाँवों और देहातों में अध्यापक भेजती है – 'एकल'! यहाँ हर बच्चे को हाईस्कूल के पास करने का सर्टिफ़िकेट ही तब मिलता है जब वह कम–से–कम चालीस घंटे का 'वालिंटियर' काम कर लेता है। शुरू से ही इस तरह के काम करने की आदत डाल दी जाती है और बच्चे पढ़ाई के साथ नौकरी भी सोलह साल की उम्र से करने लगते हैं। ज़िम्मेदारी सिखाने की प्रक्रिया बहुत पहले से शुरू कर दी जाती है। जो ज़िम्मेदारी सीखता है, वह निर्णय भी खुद लेना चाहता है, बस वहीं हम भारतीय डर जाते हैं कि बच्चे हाथ से बाहर जा रहे हैं... मैं भी तो कभी–कभी

डर ही जाती हूँ!

सितम्बर 12, 2007

भारत से बहुत बुरी खबर मिली। मेरी सहेली के परिवार में एक लड़की को दिन दहाड़े सड़क से उठाने की कोशिश की गई, उसका भाई उसके साथ था, उसने जब गुंडों को रोकने की कोशिश की, तो उन्होंने उसे चाकू मारा, लड़की ने भी बहुत संघर्ष किया और किसी तरह से अपने को उठवाये जाने से बचा लिया। दोनों भाई–बहन बहुत घायल हो गये। पुलिस में रिपोर्ट लिखाई है, पर कार्यवाही की उम्मीद कम है, क्योंकि पता चला है कि किसी एम.एल.ए. का हाथ है सिर पर! सुनकर मन दहल गया, विद्रोह करता है! मुसीबत की जड़ हमारी यही कानून व्यवस्था है। आम आदमी को न्याय नहीं! इस देश में भी भ्रष्टाचार है, पर ऐसे निचले स्तर पर नहीं... बड़े–बड़े आदमी, अपने धन को लेकर घोटाले करते हैं पर आम आदमी के रोज़मर्रा के जीवन पर उसका असर नहीं पड़ता, पुलिस घूस नहीं खाती, तू–तड़ाक नहीं करती और इस तरह की लड़की उठाने जैसी घटनाएँ एक तो होती नहीं और अगर होती है तो पुलिस पूरी कोशिश करती है अपराधी को ढूँढने की। इंसान को क्या चाहिए... खाना, छत और सुरक्षा! पर सच में सोचो तो सुरक्षा कहाँ है?

जुलाई 15, 2008

आज मिसेज़ खन्ना के बेटे की शादी थी। लड़की अमेरिकन ही है। लहँगे में खूब प्यारी लग रही थी और शादी के बाद जब आकर उसने पंडित जी और बड़ों के पाँव छूए, तो मन निहाल ही हो गया। मिसेज़ खन्ना बहुत खुश हैं, पिछले चार साल से नैंसी को देख–जान रही हैं। कह रही थीं कि उनकी बड़ी बहन तो भारत में अपनी बहू के गुरूर सँभालते–सँभालते ही परेशान हो गई हैं, पर नैंसी बहुत सरल और सीधी है। भगवान करे, यह शादी चले... आजकल यहाँ–वहाँ सब जगह तलाक ही सुन–सुन कर जी परेशान होता है। वैसे सच में, इंसान का अच्छा–बुरा होना उसकी नागरिकता नहीं, उसका व्यवहार तय करता है।

अक्तूबर 8, 2009

इतना बुलाने के बाद पहली बार इनके माता–पिता यहाँ आये हैं। बहुत अच्छा लग रहा है। तीन महीने को ही आये हैं पर चलो, आये तो सही! मेरे साथ काम करने वाली डॉना पूछ रही थी एक–दो हफ़्ते तो ठीक पर तीन महीने? मैं उन्हें कहाँ, कौन से होटल में रखूँगी? नहीं तो इतने दिन हमारी प्राइवेसी कैसे रहेगी? खूब हँसी आई! हम लोग तो ऐसा सोच भी नहीं सकते... हमारे यहाँ ऐसी प्राइवेसी की ज़रूरत ही नहीं होती! हमें तो उनका साथ चाहिए! बच्चे दादा–दादी के साथ मगन हैं और हम लोग दीवाली के लिए घर सजाने और पकवान बनाने में!

दिसम्बर 30, 2011

पिछले साल हर दूसरे महीने कभी मेरा तो कभी इनका चक्कर भारत लगा। इनकी मम्मी जी जनवरी में बेहद बीमार हो गई थीं... हम दोनों ही कई बार गये पर वो जनवरी में चली गईं। हम सब गये, पापाजी को अपने साथ लाने की कोशिश की, पर वो तैयार नहीं हुए... मन बहुत परेशान रहता है, ऐसे समय पर ही दूर रहना बहुत खलता है। क्या करूँ, यहाँ बच्चे, नौकरी, फिर ये वहाँ बहुत दिनों तक रह भी नहीं सकते, सो नम्बर लगाकर अब भी हम दोनों जा रहे हैं और वहाँ लोग पूछ रहे हैं कि हम सब छोड़कर क्यों नहीं आ जाते? अकेले हो तो कर भी लो पर बच्चों की पढ़ाई, बीच मझधार में है, कैसे करें? कोई किसी को अपनी स्थिति नहीं समझा सकता!

नवंबर 28, 2012

नवंबर दो को मेरे पापा को हार्ट अटैक हुआ। मम्मी–पापा अकेले ही थे तब! मम्मी ही उन्हें अस्पताल लेकर गयीं। मैं यहाँ से पहुँच गई दो दिन बाद पर पापा 12 तारीख को चले गये। भैया अपने कामों में पुणे ही में फँसे रहे, बाद में आये। तसल्ली थी कि पापा ने मुझे पहचान लिया था। बच्चे बहुत दुखी हैं, अपनी दादी और नाना जी के जाने से।

जनवरी 6, 2013

दिमाग बहुत परेशान है। अभी पता लगा कि सुहास डिप्रेशन में चला गया है। कैसे हो गया यह! दिमाग सोच–सोचकर फटा जा रहा है। वो परेशान तो था, पर इतना, यह नहीं सोचा था। हम लोग एमर्जेंसी ले गये उसको तीन दिन पहले, क्राइसिस नर्स से मिले... अब इलाज चलेगा। सुना है बच्चे परेशानी में नासमझी कर जाते हैं और ड्रग्स लेने लगते हैं, भगवान का शुक्र है कि इसने ऐसा नहीं किया।

डेढ़ साल बचा है यूनिवर्सिटी का...कैसे होगा? ये समझा रहे हैं कि पढ़ाई की चिन्ता मत करो। एकाध सेमिस्टर छूट भी गया तो क्या? बात तो सही है पर पहले ही यहाँ के बच्चे छह साल से पहली में जाते हैं फिर चार साल बी.ए. में लगाते हैं। भारत में तब तक बच्चे एम.ए. भी कर लेते हैं। हर समय वहाँ से यही सुनती हूँ कि मेरे बेटे ने यह पास कर लिया, इसके एक्ज़ाम दे रहा है। इतने का पैकेज मिला है... और फिर घूम फिरकर यह कि तुम्हारे बेटे का तो बी.ए. हो गया होगा!

पर इसको डिप्रेशन हुआ क्यों? कुछ समझ नहीं आ रहा! पिछले कुछ समय से सब की बीमारी का सुनकर इसका मन परेशान था... ऊपर से हमारी भागदौड़ भी हमें समय नहीं दे रही थी कि हम बात कर सकें ज़्यादा। पढ़ाई भी तो बहुत है यहाँ यूनिवर्सिटी में। डॉक्टर कह रही है कि अभी कुछ समय न कुछ कहें और न पूछें। रात–रात भर नींद नहीं आती चिन्ता में। सुबह से फिर नार्मल होने की एक्टिंग करनी पड़ती है।

दिसंबर 12, 2015

सुहास बहुत ठीक है अब! बहुत काउंसलिंग की और डॉक्टरों ने हमें भी सिखाया कि कैसे इस स्थिति का सामना करें। उसकी बी.ए. समाप्त हो गई! इस बार क्रिसमस की छुट्टी में हम चारों यहीं कुछ समय साथ बितायेंगे। अब तक सब छुट्टियाँ भारत जाने के लिए ही बचाते थे, इनके पापा जी ठीक हैं, बहनें बीच–बीच में आती हैं और एक पूरे दिन की नर्स भी है। मेरी मम्मी, भैया के साथ पुणे चली गई हैं, कभी अकेले तो कभी साथ में। पैसे की, नौकरी की भागदौड़, तनाव सब जगह है पर यही समझ में आता है कि घर में जो वातावरण बनाया जाता है, उससे ही बच्चे बनते हैं। यही बच्चे हमारे भविष्य की दुनिया बनायेंगे।

अच्छे और बुरे, अपने और पराये लोग हर जगह हैं। बहुत से लोग वहाँ संयुक्त परिवार में होकर भी एक साथ नहीं हैं और यहाँ अमेरिकी लोग अलग–अलग रहते हुए भी त्यौहारों में या ज़रूरत पर अपने माँ–बाप के लिए भाग–भागकर जाते हैं। बाकी तो जो दुनिया है और हर देश की स्थिति है वो तो है ही। कहीं भी रहो, बदलाव सब जगह ही है... समय के इन भागते पलों में से कुछ पल साथ मिलकर हँस–बोल लें, वही अपने हैं, बस।

इससे पहले कि हमारे बच्चे भी बहुत अधिक व्यस्त हो जायें, हमें एक–दूसरे को समझने और साथ होने के एहसास को हर मौके पर और अधिक गहरा करना है।

shailjasaxena@gmail.com

साभार : गर्भनाल पत्रिका, जनवरी 2018 अंक

निन्दा स्तुति का मज़ा, भगवतभक्ति में कहाँ!

– डॉ. हरि जोशी
भोपाल, भारत

जीवन का जो मज़ा निन्दा स्तुति में है, वैसा भगवत–भक्ति में कहाँ! निन्दा स्तुति वह नौका है, जो अठखेलियाँ करती हुई, रस वर्षा से सराबोर करती हुई, मनोरंजक हिचकोले खाती हुई, किसी भी उद्यमी व्यक्ति की ज़िंदगी की नदी को खुशी–खुशी पार करा देती है। निन्दा स्तुति से प्रतिदिन–प्रतिपल अमृत निकलता रहता है। अविराम रसपान करते रहिये और जीवन को सार्थकता दीजिये। जीवन के संचालन की यह सबसे सस्ती, सुंदर और टिकाऊ विधि है। इसका व्यसन सारे व्यसनों की तुलना में अधिक आनंददायी होता है। इसमें किसी से दीक्षा लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती। 'करत–करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान'। स्वप्रेरणा से ही व्यक्ति इस कला में पारंगत हो जाता है। उठते–बैठते, ट्रेन में, बस में, कहीं भी हृदयंगम करने वाली इस क्रिया की साधना आसानी से की जा सकती है। आसपास के परिवेश में जितनी दृष्टि दौड़ाओगे, मैदान में खेलने को उतने ही खिलाड़ी तथा उतने ही अवसर मिल जायेंगे। कभी इन पर केन्द्रित हुए, कभी उन पर सोचिये भगवत स्तुति में कितनी मेहनत करनी पड़ती है? वैसी कष्ट साध्य आदत से भगवान ही बचा सकता है। पहले किसी को गुरु बनाओ। उनके सान्निध्य में कई दिन स्वाहा करो, तब मुश्किल से एकाध सूत्र मिलता है। बहुधा वह कान में एक मन्त्र दे देते हैं। कहते हैं नियम से, बिना नागा इस मन्त्र का जाप होना चाहिए। मन्त्र सिद्धि के लिए भगवतभक्ति लगती है और उसमें भी पक्का नहीं कि वह अलौकिक सिद्धि मिल ही जायेगी? जबकि मंत्री पद की सिद्धि के लिए मात्र निंदास्तुति का जाप लगता है। इसमें भले ही देश या प्रदेश स्तरीय पद मिले या न मिले, ग्राम पंचायत मंत्री की कुर्सी तो कहीं नहीं गई। प्रतिपक्ष के सदस्य बार–बार लगातार एक ही काम तो करते हैं। और देखिये चुनकर आ जाते हैं। सामने वाले की निंदा करने का ही यह लाभ होता है कि निंदक को कुर्सी मिल जाती है। मंत्री पद की सिद्धि में ऐशो–आराम होता है, जबकि मन्त्र की सिद्धि में कष्ट ही कष्ट। इसलिए जिसे सरलता से प्राप्त किया जा सकता है, वही क्यों न किया जाये? मन्त्र सिद्ध करने के लिए एक जगह बैठना पड़ता है, जबकि मंत्री पद सिद्ध करने में निर्द्वन्द्व होकर यत्र–तत्र घूमा जा सकता है। भ्रमणशील होकर दुनिया को तो समझा और पाया जा सकता है, एकल कूड़े रहकर भगवान को पा ही लेंगे, क्या यह सुनिश्चित है?

गुरु का आदेश होता है , प्रतिदिन निश्चित समय, नियत स्थान पर बैठो। तभी भगवतभक्ति का पुण्य मिलेगा। कई बार तो आदेश होता है, स्नान करके, गीले वस्त्र पहनकर, पूजाघर में एक बार नहीं, त्रिकाल संध्या में बैठो, आँख बंद करो, ध्यान लगाओ। दुनिया में इतनी सारी आकर्षक वस्तुएँ हैं, उन सबसे ध्यान हटाकर एक जगह केन्द्रित करना कितना कष्ट साध्य काम है? कभी–कभी भगवत स्तुति में सुंदर चित्र या मूर्ति के सामने भक्तों को बस गाते रहना होता है। श्रोता सुनते रहते हैं और अकारण ही प्रसन्न होकर चले जाते हैं। क्या कभी किसी देवी स्तुति ने, आसानी से शत्रु के शत्रु को अपना मित्र बनाया है? जी हाँ, निन्दा स्तुति न सिर्फ़ घनिष्ठ मित्र बनाती, बल्कि बड़ा मित्र समूह या दल खड़ा कर सकती है। देश में शासन करने को जो बड़े–बड़े दल एक पाँव पर खड़े हुए हैं, क्या वे भक्ति के लिए तत्पर हैं? वे तो शक्ति बढ़ाकर और सर्वोच्च पदों पर काबिज होने के लिए जी जान लगाते हैं। निंदा स्तुति इन सीढ़ियों को तेज़ी से चढ़ने की अचूक जुगत है। प्रभु की प्रार्थना क्षणिक आनंद तो दे सकती है, किन्तु दुनिया की भौतिक प्रगति में उसकी वह उपयोगिता कहाँ, जो किसी की निंदा करने में है। ऑफ़िस में बैठे हैं, तो अपने दुष्ट

बॉस के ''सद्गुणों'' की चर्चा शुरू कर दीजिये, अनेक कर्मचारी आपके हितैषी बन जायेंगे। यदि आप लगातार उच्चाधिकारियों के विरुद्ध ''अमृत वर्षा'' करते रहेंगे तो एक दिन कार्यालय के समस्त कर्मचारी एकजुट होकर आपको अपने संगठन का समग्र नेतृत्व सौंप देंगे। देवी स्तुति में कई मूढ़ भक्त अपनी ज़बान काट सकते हैं, जबकि निन्दा स्तुति में तो जिह्वा डेढ़ फुट की स्वतः ही हो जाती है। निन्दा स्तुति सिर्फ़ रस वर्षा ही नहीं करती, रसमलाई, काजू या बादाम का स्वाद भी दिलाती रहती है। इसमें न किसी प्रसाद का खर्च न किसी को भोग लगाना। निंदा स्वयं ही भोग विलास की वस्तु है। बिना किसी व्यय के सर्वत्र उपलब्ध रहती है। पुरातन काल के निंदक अनपढ़ तथा असभ्य होते थे, सिर्फ़ परस्पर चर्चा कर लेते थे। आज तो ऐसी चर्चाएँ ''वाइरल'' हो जाती हैं, जो दुनिया भर की निगाह में, जन–जन के कान में पहुँच जाती हैं। उच्च स्तरीय निंदक बड़ा हाईटेक होता है। पहले के निंदकों को तो सुविधाएँ देते हुए आँगन में कुटी छवाकर तक दे दी जाती थी, ताकि वे भरपूर निंदा कर सकें। आजकल समझदारी बढ़ गई है, कोई कुटी बनवाकर या छवाकर नहीं देता, क्योंकि निंदक ही इतने सामर्थ्यवान हो गए हैं कि वे स्वयं ही अपने महल खड़े कर लेते हैं।

निन्दा स्तुति सबसे सरल विधि का नाम है। न एकाकीपन, न अध्ययन या पूर्व चिंतन करने की ज़रूरत। चुप बैठने का तो सवाल ही नहीं? इसके प्रताप से मित्रों की संख्या लगातार बढ़ती चली जाती है। निन्दा स्तुति एक से अनेक होने की तपस्या है। इसके शुरू होते ही जाति–भेद, वर्ण–भेद, रंग–भेद सब समाप्त हो जाते हैं। यह एक अचूक आराधना है। इसमें और कुछ मिले न मिले आनंद बहुत मिलता है। खून भी बढ़ जाता है और सबसे बढ़िया टाइम पास है। ''निंदक नियरे राखिये'' को ध्यान में रखकर ही इस एक विधि से घोर निंदक भी नियर हो जाते हैं। विधान सभा हो या लोक सभा, निंदक को और नियरे करने के लिए समवेत स्वर से सबके वेतन भत्ते बढ़ जाते हैं। जो आज प्रतिपक्ष में है, कल वही सत्ता में आ जायेगा। निन्दा स्तुति में मिली–भगत और निकटता दोनों का समावेश रहता है। अब तक तो आप समझ ही चुके होंगे, जो आत्मिक शान्ति निन्दा स्तुति में मिलती है, वह भगवतभक्ति में कभी नहीं मिल सकती।

harijoshi2001@yahoo.com

रॉयल्टी आई है यार!

– श्री अशोक गौतम
सोलन, भारत

कल तक जो रॉयल्टी आने के मायावी आसरे पर चल रहा था, अचानक बीमार हुआ, इससे पहले कि मोहल्ले वाले पाँच दिनों तक बैठकर तय कर पाते कि इसके दवा–दारू के लिए कितने परिवार चंदे के लिए जुटाए जाएँ, वह बेचारा हमारे मोहल्ले से सदा के लिए कूच कर गया और हम मोहल्ले वालों का उसके लिए चंदा इकट्ठा करने का प्लान भगवान कसम से धरा का धरा रह गया।

दो दिन तक मोहल्ले में उसकी छोड़ी संवेदनशीलता तैरती रही। तीसरे दिन वह भी उसके पीछे–पीछे हवा हो गई।

और फिर सब पहले की तरह मोहल्ले में अपने–अपने स्तर पर संवेदनहीन हो जीने लगे। वक्त मिलने पर एक–दूसरे के गले लग, खानापूर्ति के लिए बीते दिनों को याद कर, बीते दिनों की हफ़्ते में ही चिंदी–चिंदी हुई संवेदनाओं को उधार के धागों से सीने लगे। पर जितनी बार भी मोहल्ले वाले फटी संवेदनाओं को सीने की फ़िलहाल कोशिश करते कि धागे टूट जाते। बड़े कच्चे धागे आने लगे हैं आजकल बाज़ार में दोस्तो! जिसकी देखो, उसकी ही कहीं–न–

कहीं से सिलाई उधड़ी हुई।

दो महीने तक किराए पर लिया उसका कमरा खाली रहा। कमरा मालिक को उसके चले जाने का दुख न था, दुख था तो बस इस बात का कि दो महीने का किराया मर गया। मैंने कई मकान मालिकों का दुख देखा है। उन्हें किराएदार के मरने का इतना दुख नहीं होता, जितना किराया मरने का होता है। मालिक ने कइयों को वह कमरा दिखाया भी, पर उस कमरे को किराए पर लेने जो भी आता, पता नहीं क्यों उस कमरे में पाँच मिनट भर भीतर रहने के बाद नाक पकड़े हुए बाहर आ जाता। कमरे के मालिक को आगे दोनों हाथ जोड़ने से पहले ही हवा हो लेता, कुछ कहने के नाम पर जवाब भी न देता।

तब उस कमरे के मालिक को लगा कि अब जैसे उसका कमरा किराए पर चढ़ेगा ही नहीं। पता नहीं किस बहकावे में आकर उसको कमरा किराए पर दे दिया था। अगर उसे पहले पता होता कि उसका लिया कमरा उसके मरने के बाद भूत भी लेने से डरेंगे, तो वह ऐसा कदापि न करता। पर गलती हो गई तो हो गई। उसने तो सोचा था कि इस बहाने वह भी उसकी सोहबत में रह मोहल्ले वालों के बीच उसके लिखे शेर अपने नाम से सुना दिया करेगा। एक तो वह कुछ कहेगा नहीं, पर मूर्खतावश कुछ कह ही दिया कि यह तो उसका लिखा शेर है, तो उसकी ज़बान पर ताला लगाने के लिए अपना चार महीनों से अटका पड़ा किराया अगली सुबह लेने की धमकी दे उसके हर शेर का कॉपीराइट मज़े से अपने नाम कराता रहेगा।

दूसरे, उसे इस बात का ज़रा भी इल्म नहीं था कि वह इतनी जल्दी कमरा खाली कर चला जाएगा। अगर ऐसा पता होता तो वह भले ही नरक के लिए लीज़ पर अपना कमरा दे देता पर उसको न देता। पर चलो कमरे में रोज़ नहीं, तो कम से कम हफ़्ते बाद ही सही झाड़ू–सा तो लगा जाया करता था। द्वार तो खुले रहते थे। यह सोच कमरा मालिक कुछ संतोष कर लेता।

जब उस कमरे का मालिक किराएदारों के ला–ला भाग जाने से तंग आ गया, तो उसने मोहल्ले के बाहर दीवारों पर हाथ से लिख पोस्टर चिपका दिए कि उसके मोहल्ले में एक शानदार कमरा खाली है।

इन पोस्टरों को पढ़ कोई किराएदार आता कि इससे पहले मोहल्ले से बाहर गंदी हवा फैल गई। जिस कमरे को किराए पर लेने के पोस्टर लगे हैं, उस कमरे में रहने वाले का भूत रह रहा है। जैसे ही मकान मालिक के कानों में इस अफ़वाह की भनक पड़ी, तो वह आग–बबूला हो गया। मरे को बार–बार मरने की गालियाँ देने लगा। अब क्या करूँ इस कमरे का? हाय राम! इन किराएदारों की हिम्मत तो देखो। इनको अगर सिर ढकने के लिए कमरा दे ही दो, तो मरने के बाद भी कमरा नहीं छोड़ते। मेरे बाप के बनाए कमरे को अपने बाप का कमरा समझ बैठा ये तो! अरे, इस कमरे को तो मेरे बाप ने भी अपना नहीं समझा था, जिसने इसे एक–एक ईंट जोड़कर बनाया था।

और कल सचमुच मुझे उसका भूत दिखाई दिया और वह भी दिन–दोपहर ही। उसी के कमरे के सामने। इससे पहले कि मैं अधकचरा हनुमान चालीसा बुदबुदाने लगता, उसने मेरे मुँह पर हाथ रखकर कहा, "अरे यार, ये क्या कर रहे हो? इतने दिनों बाद मिले हो, और... भूत पिशाच निकट नहीं आवै.. पत्नी का जब नाम ध्यावै?"

"तुम... तुम... तुम तो चले नहीं गए हो? अब फिर यहाँ? क्या यमराज ने इतनी जल्दी छोड़ दिया या वहाँ से पैरोल पर आए हो? वैसे तुम बंदे छोड़ने लायक तो हो नहीं। तुम्हारा मालिक सच्चा है बेचारा। देखो तो, उसका कितना नुकसान हो गया। तुम तो किराया दिए बिना ही खिसक लिए और ऊपर से... अपने कागज़ लेने तो नहीं आए हो? वह अब उस कबाड़ी को दे दिए है उसने। यहाँ अब तुम्हारी तंगियों के सिवाय और कुछ नहीं। तुम तो बड़े इमोशन वाले बने फिरते थे, ढोंगी कहीं के! देखो तो तुम्हारा कमरा मालिक किराए के लिए किस कदर फूट–फूटकर रो रहा है?" मैंने कहा तो वह कुछ देर हनुमान चालीसा गुनगुनाने के बाद बोला, "मैं अभी भी इमोशनल ही हूँ। ढोंग कहाँ करता हूँ? मेरे जैसों के मरने के साथ ही अगर इमोशन भी मर जाते, तो आज

ये धरती इमोशनलेस हो जाती। रही बात मेरे मरने की, तो भैया! फ़ॉर योर काइंड इंफ़ॉरमेशन, हम नहीं मरा करते। हम तो वो जीव हैं, जो मरने के बाद ही ज़िंदा होते हैं।" कह उसने मेरी ओर मुस्कुराते हुए देखा, तो मैं हैरान! अरे हद हो गई। जो ज़िंदा नहीं हँसा, वह मरने के बाद देखो तो किस शिद्दत के साथ हँस रहा है।

"तो अब क्या करने आए हो? बचा किराया देने?"

"हाँ! जले–भुने प्रकाशक का कटा–फटा फ़ोन आया था कि किताब की रॉयल्टी का चेक डाक द्वारा भेज रखा है। टाइम पर छुड़वा लेना वरना बाद में मत कहना कि... और तुम तो जानते ही हो कि प्रकाशक से रॉयल्टी आने का मतलब है, शेर अपने मुँह में दबे मांस में से दया करके एक टुकड़ा किसी की ओर फेंक रहा है।"

"तो?"

"बस, तभी आया हूँ। हम रॉयल्टी के लिए मरने के बाद तो क्या, अगला जन्म लेने के बाद भी पुराने पते पर बिन पूछे आ सकते हैं। अब प्यार का कर्ज़ छोड़ सब की पाई–पाई चुका जाऊँगा।" तभी मुझे सामने से पोस्टमैन आता दिखा, तो वह चीते की फुर्ती से पोस्टमैन की ओर लपका, जैसे मरने के बाद रिवाइटल के फाके मारने शुरू कर दिए हों।

वॉट्सएप की दुनिया

– श्री राजशेखर चौबे
रायपुर, भारत

जिस तरह खराब मुद्रा अच्छी मुद्रा को बाहर का रास्ता दिखा देती है, उसी तरह नया आविष्कार या एप पुराने आविष्कार या एप को बाहर कर सकता है। पहले फ़िल्मों का क्रेज़ था, बाद में लोग टी.वी. से चिपके रहने लगे, अभी इंटरनेट का क्रेज़ है। फ़ेसबुक का क्रेज़ कुछ कम हुआ है। वॉट्सएप का क्रेज़ बदस्तूर बना हुआ है। शायद खाना खाने से भी अधिक ज़रूरी हैं मैसेज फ़ॉरवर्ड करना। लोग एक मिनट भी उधार नहीं रखना चाहते। हर कोई बेचैन है कि जल्दी–से–जल्दी मैसेज फ़ॉरवर्ड कर चैन की सांस लें। अच्छा मैसेज अपने ग्रुप में सबसे पहले भेजने पर वही खुशी मिलती है, जो सुबह–सुबह पेट हल्का होने पर मिलती है।

इस फ़ेसबुक व वॉट्सएप के ज़माने में प्रत्येक व्यक्ति कवि, साहित्यकार, लेखक, चुटकुला मास्टर, गीतकार आदि और न जाने क्या–क्या बन चुका है। भले ही आपको हिंदी, अंग्रेज़ी व अन्य भाषाएँ नहीं आती हो, लेकिन आप उन भाषाओं पर भी अपना अधिकार जता सकते हैं। किसी भी भाषा में कविता, लेख, जोक आदि फ़ॉरवर्ड कर सकते हैं। भाषाई अकिंचन लोगों की हाई–फ़ाई हिंदी, अंग्रेज़ी देखकर आप भी मेरी तरह भौंचक हो सकते हैं।

यह भी हो सकता है कि आपने कड़ी मेहनत से बहुत अच्छी कविता, चुटकुला या लेख तैयार कर अपने सभी ग्रुप (आजकल प्रत्येक व्यक्ति कई ग्रुप में सदस्य है) में भेजा हो और आपको एक महीने के बाद कहीं से वही मैसेज वापस आए और लिखा हो कि 'एकदम नया है'। आपको लालू की तरह सिर पकड़कर बैठ जाना पड़ेगा। एक अजीब तरह का माहौल बन गया है। अफ़वाह विवाद एवं दंगा फैलाने वालों को एक डिजिटल हथियार मिल गया है। अच्छी चीज़ों का प्रचार–प्रसार कम है, परंतु नफ़रत, घृणा, विवाद आदि का प्रचार–प्रसार अधिक है। नफ़रत की राजनीति करने वाले चांदी काट रहे हैं। अच्छा यही होगा कि इस आने वाले मैसेज को हम गंभीरता पूर्वक ग्रहण न करें, क्योंकि उसकी प्रामाणिकता हमेशा ही संदेह के घेरे में रहेगी।

ऐसा नहीं है कि इसमें सब कुछ गलत हो रहा हो। इसके फ़ायदे अधिक हैं और नुकसान कम। एक बार में ही ग्रुप के सभी सदस्यों को संदेश पहुँचाया जा सकता

है। भले ही वे विदेश में ही क्यों न हों। समाजवाद का सबसे सशक्त माध्यम वॉट्सएप है। एक ग्रुप में ही देसी दारू पीने वाला मज़दूर एवं अरबपति दोनों ही सदस्य हो सकते हैं। छोटे व बड़े दोनों सदस्य एक–दूसरे से विचारों का आदान–प्रदान कर सकते हैं। एक–दूसरे के जोक पर हँस सकते हैं। किसी गंभीर विषय पर एकमत हो सकते हैं या विपरीत ध्रुव पर खड़े हो सकते हैं। एक ही ब्रांड की बीड़ी पीने वाले एवं शराब पीने वाले के बीच जो भाईचारा होता है, वही भाईचारा एक ग्रुप के सदस्यों के बीच पाया जाता है।

ग्रुप के सदस्यों की संख्या 100 से बढ़कर 256 कर दी गई है, भला हो उनके मैनेजमेंट का। अब 100 के बदले 256 लोगों के विचारों का आदान–प्रदान होगा। क्या होगा यदि यह संख्या 125 करोड़ कर दी जाए। लोगों को कुछ करना नहीं पड़ेगा। एकल खिड़की प्रणाली की तरह प्रत्येक काम एक ही जगह संभव हो जाएगा। एक जगह ही भाषण, आलोचना एवं मतदान हो सकेगा। देश के सबसे लोकप्रिय नेता का भाषण भी एक ग्रुप में ही लोड हो जाएगा। वह कुछ इस प्रकार होगा –

"मित्रो मैं वॉट्सएप मैनेजमेंट का शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ, जिसने ग्रुप की संख्या 256 से बढ़ाकर 125 करोड़ कर दिया है। और पूरे भारतवर्ष के लोगों को इसका सदस्य बना दिया है। इसके माध्यम से मैं अब अपने प्यारे देशवासियों से रोज़ मन की बात कर सकूँगा।"

rajshekhar.choubey@gmail.com

झूठ का लिखा सच

– श्री रामदेव धुरन्धर
मॉरीशस

मात्र एक दिन शेष था गुरुदेव शताब्दी–पुरुष हो जाता। वह पिछले कुछ दिनों से बड़ी ही ठाट–बाट से इस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। मृत्यु न आई, आया तो यह सौ वर्षीय जन्मदिन। मृत्यु न घाट देखती है न हाट। गुरुदेव दोनों से बचे, प्रभु की लीला। किसी के जीवन में एक शताब्दी क्या खेल–खेल में आती है। पापड़ बेलें, धूप में सिर गरम करें, शीत में कँपकँपी का रोना रोएँ, इस तरह वक्त रिसता जाता है और पता नहीं लगता कब मृत्यु ने धीरे से अपने कंधे पर टांगा और कहा चल मेरे भयवा। गुरुदेव अपनी व्याख्या इस तरह से क्यों न कर ले, मुत्यु ने उसे भुलाया और उसने सौ साल का मर्द होने का गौरव पा लिया।

सूर्यास्त होने पर आया तो गुरुदेव इस सोच से उल्लसित होने लगा 'यह एक रात ही तो है', इस के खत्म होने में अपनी नींद का एक सफ़र भर शेष है। सुबह जैसे कण–कण में लिखा हो जाएगा, अपने छोटे से मॉरीशस ने शताब्दी–पुरुष के मामले में एक चरण और प्रगति कर ली। वैसे चोर–उचक्के भी तो सौ बरस जी लेते हैं। पर जहाँ तक गुरुदेव की जानकारी में था, वह पहला धर्मी शासक होता जिसे सौ बरस का जीवन मिला। कहने को आदर्श बन जाता, ईश्वर ने गुरुदेव की तकदीर में लिखा था, जितना जिओ देश को उतना लाभ होता जाएगा। पर गुरुदेव की तृष्णा कौन जाने। वह तो अमरता चाहता ताकि उसने जो धार्मिक सत्ता कायम की, उस पर सदा उसका अपना स्वामित्व बना रह जाता। अपने बच्चे नहीं हैं, जिनके कंधों पर अपनी सत्ता का दायित्व सौंपकर कहता, पापा की तरह ऊपर से स्वामी दिखो और भीतर से अपने मन का राजा बनकर जीओ। अब तो निश्चित है, यह जो छूटेगा इस पर अपने चेलों–चेलियों का इस तरह अधिकार होगा मानो इनके बाप ने कमाकर इन्हें थमाते हुए कहा हो, जैसे चाहो देश के लोगों को मूर्ख बनाओ

और मौज–मस्ती करो।

गुरुदेव की एक दिक्कत थी, बुढ़ापा उससे भुलाये नहीं भूलता था। कमर में मानो ऐंठन–पैंठन अपना सुराज जानकर मौज–मस्ती से चिपकी हुई है। आँखों से माताओं–बहनों के लिए प्यास का सावन भादों भी तो रूठ गया। चलने में दिक्कत ऐसी कि शिष्य सहारा न दें तो कटे वृक्ष की तरह ढह जाए। पेट में न जाने क्या–क्या घुमड़ता है, लेकिन टॉयलेटी बैठक में मानो शाप हो, पीछे से कुछ झड़े तो बहुत कँहर–कुँहर करने के बाद और आगे से कुछ बहे तो दर्द से लोछिया डालने के लिए। सौ साल का बुढ़ापा है, वह ढिठाई इसी तरह से करेगा, मानो उसका कर्ज़ खाया है और गज़ब यह कि अदायगी अपनी इसी बूढ़ी देह से करनी है। पर ज्ञानी, ध्यानी और चमत्कारी होने से गुरुदेव ने आँखों में धूल झोंकने जैसी अदा से सिद्ध तो कर दिया और दिखा भी तो दिया, बुढ़ापा उसके लिए कोई रुकावट नहीं बनता।

मधुमेह से परेशानी बहुत होती है, जिसके लिए दवा का सेवन करना पड़ता है। अपनी व्यवस्था ही ऐसी है, सुरंग के दरवाज़े से अपनी दवा आती है और मुख पर कहने के लिए शक्ति होती है, प्रभु का नित्य नाम लो, सेहत हमेशा के लिए अमर थाती बनकर शरीर में डोला–डोली करती रहेगी। इस तरह से भी तो लोगों पर झाँसा डाला जा सकता है। सब बेहद अपने सूखे खान–पान का असर है। सूखी रोटी हो तो दाल नहीं और चावल हो तो तरकारी नहीं। यह भक्ति मार्ग है और इस मार्ग पर वही कदम बढ़ा सकता है, जिसके भीतर अति भोजन का वर्जनम् लिखा होता है। निःसन्देह, गुरुदेव इसी भक्ति मार्ग का खरा सोना है, जो न जाने कैसे–कैसे झंझावातों से कुंदन बनकर निकला है।

पर रूपश्री कन्या जैसी अपनी चमक–दमक मानने वाला गुरुदेव कैसे समझ पाए उसके साथ ऐसा भी होना था। गंधाती भाषा में मन–ही–मन उवाचे तो वह इस तरह से होगा कि किसी खुजलीनुमा पिशाच ने उसके भाग्य में दुर्भाग्य की काई पोत दी है। सब उसके जीवनीकार गोरखनाथ का किया कराया था। तब तो खुजलीनुमा पिशाच एक वही।

गुरुदेव ने अपने जीवन की शोभा पर आधारित गोरखनाथ से एक पुस्तक लिखवायी थी। मानो उसके अपने जीवन का वह दर्पण हो, जिसे दाग से बचाकर वह अनुभव करता हो अपने महाभारत का अकेला योद्धा था। दोनों ओर से स्वयं लड़ा और जीत का सेहरा किसी और का न होकर केवल उसका अपना हुआ। उसके सौ वर्षीय जन्मोत्सव के अवसर पर उसकी जीवनी की पुस्तक का विमोचन होने वाला था। मुफ़्त में प्रतियाँ बाँटी जातीं, मानो घर–घर में गुरुदेव की मूर्ति हो। पर सूचना आई, प्रेस में आग लगने से सब स्वाहा हो गया। गुरुदेव को तब तो लगा यह मुहावरा जैसे उसके सिर पर बैठकर बाँग लगा रहा था 'चिड़िया चुग गई खेत', अब खून के आँसू भी बहाओ तो ऐसा चमत्कार न होगा, मानो तुम्हारा बाण लगने से कीचड़ के कमल में कोई परी नृत्य की मुद्रा में दृष्टिगत होने लगी।

अब तो गुरुदेव अपने अंदर की आह पर कुंडली मार कर बैठे–बैठे यही तो कहता हाय रे विधाता, तुम कभी–कभी गाली सुनने का ही तो काम करते हो। कम से कम मेरे मामले में आग पर अनुशासन रखता, तो मेरे जीवन पर आधारित पुस्तक के लिए ऐसी जला–जली की नौबत ही न आती। जो लिखवाया, वह रह जाता, जैसे वेद पुराण रह गए। रहने को तो हिटलरी कथा भी रह गई और उसे सौ जूते मारे जाते हैं। गुरुदेव ने जूतों के जो काम किए थे, उसका नाना मरे या वह स्वयं मृत्यु में समाये, वह सब उसके अंदर रह जाना है। वह तो बड़े सलीके से अपनी महानता को शब्दबद्ध करवाता था। विद्वान चेला गोरखनाथ लिखने की प्रक्रिया में कहता था, आप भगवान तो होते ही हैं। गुरुदेव को यह सुनना अच्छा लगता था, लेकिन वह अपने को सावधान भी बहुत रखता था। इतनी लंबी उम्र के ठूँठ जैसे गुरुदेव को मन की भाषा पढ़ना आवश्यकता से अधिक ही आता था। यह गूढ़ता उसने अपनी किसी काली देवी से हासिल की थी। सफ़ेद देवियाँ भी उसके पास नित्य मंडराती थीं, जो उसे नहलाने और झाड़–पोंछन वाली नंगी मर्यादा का पालन करती थीं।

उड़ी हुई चिड़िया को हल्दी लगाने का ताब रखने से गुरुदेव को मालूम था उसका जीवनीकार गोरखनाथ कृति को चटकारा बनाने के लिए कुछ ऐसी रंगरेलियों पर कलम घिसना चाहता है, जिसमें औरतों के पीछे भागने का कामुक प्रसंग हो। गुरुदेव ने गोरखनाथ को सावधान करने के लिए कहा था, वह न लिखो जो तुम्हारे मन में आता है। वह लिखो जो लिखने के लिए मैं तुम्हें थमा रहा हूँ। मुझ पर आधारित कृति ऐसी हो, जिसके बारे में मेरी कल्पना वहाँ पहुँचती है, मानो भगवान स्वयं आकर अपनी चरण रज के दो कण छोड़ जाए और उसके कहे शब्दों की खनक रह जाए, 'वत्स, तुम जिस तरह विशाल हो तुम्हारी जीवनी के रूप में रह जाने वाली कृति उसी रंग–ढंग से सदा सुवासित होती रहेगी।'

काश, कहीं से गुरुदेव के लिए आवाज़ आती, भगवान के लिए भाषा निर्धारित करने वाले बड़बाँका शताब्दी–पुरुष, अपने आप से पूछकर तो देख, क्या भगवान इतना बहरा और अंधा है कि तुम जो हुए वह उसे नज़र न आए और तुम कृत्रिमता से अपने आप को जिस तरह बनाकर उसे दिखाओ वह उस में भ्रमित होकर रह जाए।

कहते हैं बकरी का पेट भरा हो, तो वह लकड़ी चबाती है। गुरुदेव पुरुष होने से बकरे वाले लिंग का हकदार हुआ। अतः गुरुदेव नाम के बकरे पर पुलिस ने कभी हाथ न रखा, तो उसकी सोच में आता है, यह कैसे हुआ कि एक भी साली पुलिस को नज़र न आया, बंदा तो ऐसा छँटा हुआ बदमाश है, जिसे जेल की कोठरी में बंद करना चाहिए। गुरुदेव को वाल्मीकि की तरह चोर बनना था और वह बना भी। पर रामायण तो लिखी जा चुकी थी, इसलिए गुरुदेव के लिए किसी रामायण का भाग्योदय न होने से वह चोर ही रह जाता। चोर होने से उसने अपने ध्यान में चढ़ा लिया था, वह जो गोकुला नाम का सज्जन रामनामी चादर ओढ़कर रास्ते के किनारे बैठा रहता है, उसे फुसलाकर उसका पैसा हथियाना है। गोकुला करोड़पति था। गुरुदेव उससे बहुत पैसा निकाल तो न पाया, लेकिन जितना निकाला उसके लिए ज्ञान का मंदिर हुआ यानी वह चोर तो इससे भी भयंकर बन सकता है। गोकुला के बेटों ने उसे घर से खदेड़ा था, क्योंकि वह बहुत राम–राम करता रहता था। बेटों की नाक पर क्रोध इसलिए भी बहुत चढ़ा था, क्योंकि करोड़पति पिता ने स्वर्ण मंडित रामनामी चादर तैयार करवायी थी और उसे ओढ़े इस तरह जीता था, मानो श्मशान घाट का पहरेदार हो। यह खटकने से बच्चे उसकी रामनामी चादर छीनकर नदी में बहाने वाले थे। पिता को अपने बेटों का यह षड्यंत्र मालूम हुआ तो वह पागल हो गया और वह गली–गली कहते फिरता था, उसकी रामनामी चादर का चोर इधर घूमा करता है। कोई उस चोर को जानता है, तो कहे वह उसके खून में नहा जाएगा। एक दिन देखा गया, गोकुला की लाश रास्ते के किनारे पड़ी हुई है। उसके बेटों ने ही बाप–बाप बोलते, आँसू ढुलकाते उसका अंतिम संस्कार किया था। जंजाली बाप से मुक्त हो जाने पर वे ऐसे ही आँसू बहा सकते थे।

तब माँ–बाप का दिया हुआ गुरुदेव का नाम गुरुआ था। कोई जान न पाया, उसने उस धनवान गोकुला की जेब से पैसा चुराया था। पर गोकुला रामनामी था और शायद गुरुदेव इसी में फँसा। धनवान गोकुला की प्रेतात्मा शायद उसका पीछा करते कहती हो, मेरे जाने से साधु का सिंहासन खाली है, अब तुम उस पर आसीन हो जाओ। प्रेतात्मा के डर से या अपने मन से, गुरुदेव के लिए दोनों एक ही बात हुई, वह जहाँ बैठा, वहीं साधु का सिंहासन हो गया। उसे दो चार साधु मिल गए और इस तरह साधुओं के जमावड़े में विस्तार होता चला गया।

लोगों ने शायद सपने में देखा 'बटेसर पेड़' के नीचे जो साधु बैठे होते हैं, वे हाथ देखकर तकदीर का लिखा बता देते हैं। जिसका बच्चा नहीं, पता नहीं उसने कहाँ सुन लिया, इन साधुओं से भभूति प्राप्त कर लो, अपने घर में ढेर सारे बच्चों का जन्म वाला सिमसिम का दरवाज़ा खुल जाएगा। लड़कियों ने सुना, साधुओं से पूछ लें, वे बता देंगे, कब अपना सुन्दर–सलोना दुल्हा आकर कहने वाला है, मैं तो तुम से ही शादी करूँगा।

गरीबों ने धनवान होने के लिए 'बटेसर पेड़' के साधुओं की शरण गही। धनवान और धनवान होने के लिए इन साधुओं को दान–दक्षिणा से मढ़ने आए। लोग साधुओं से फलीभूत होने वाले थे, तो आपस में तय कर लिया, इनके लिए एक मंदिर बना दिया जाए।

जिस दिन एक राजनेता इनके यहाँ चुनाव में जयी होने के लिए आशीर्वाद और भभूति की कामना से आया, गुरुदेव ने परख लिया, अब ऐसों को चराने का उसका सच्चा जुग आया। उसका स्वार्थ ऐसा भी हुआ, सारा कुछ अकेले हज़म करना है। उसने किसी तरह अपने साथी साधुओं को कुजात बनाकर दूर हटाया और साधु सत्ता का एकाकी साधु बन बैठा।

इस साधु फ़िलुम के अब तो सत्तर साल से अधिक ही वक्त का झोंका बह निकला। गुरुदेव की गिनिज़ बुक जैसी यशोकीर्ति अब बहुत चलती थी। उसमें तथाकथित ताब था, अपनी मातृभूमि मॉरीशस के कितनों का उसने केंसर दूर किया। उसकी जीवनी लिखने वाला गोरखनाथ उससे यह केंसरी आलाप सुनने पर उसे एकटक देखता रह गया था। मानो जीवनी का यही नींव का पत्थर था और गोरखनाथ इससे भाग नहीं सका था। गुरुदेव ने उसे बताया था, अब तो भगवान उसके सपने में आकर कह देता है, अपने मॉरीशस पर कैसे–कैसे संकट आने वाले हैं। वह यह किसी से कहता नहीं है। चुपचाप समाधि में लीन हो जाता है और उसकी इस निष्ठा की बदौलत देश हिंद महासागर का तारा बन बड़े प्यार से यथावत चमक रहा है।

गुरुदेव का दावा था, वह करोड़पति हुआ तो यह किसी की हाय से नहीं हुआ। यह उसकी तप निष्ठा से हुआ है और यह पैसा देश के लोगों पर ही खर्च होने वाला है। एक दिन देश के लोग देखेंगे, गुरुदेव ने सब दिया और उसके पास अपनी अरथी जलाने के लिए फूटी कौड़ी नहीं है। साधु यही होता है, जो लुटाता है और संचय उसके पास फटक नहीं पाता। पर गोरखनाथ ध्यान में रखे यह सब लिखने के लिए नहीं था। केंसर और स्वयं की अरथी वाले मामले में कंगाल होने की कहानी तो गोरखनाथ को इसलिए सुनायी जा रही थी, ताकि उसमें लिखने के लिए अद्‌भुत उमंग–तरंग पैदा हो सके।

गुरुदेव का मानना था अपने जीवनीकार गोरखनाथ में ऐसी विद्या का संचार कर रहा है कि सरस्वती की वीणा के तार टूट जाएँ। गोरखनाथ सरस्वती से कह सके, मुझे ऐसा काम करना है कि मैं तुम्हारी वीणा के तार ठीक करने के लिए तुम्हारे पास ठहर ही नहीं सकता।

यह सब न लिखा जाए तो लिखा क्या जाए? गुरुदेव ने उसे बताया उसे क्या लिखना होगा। गुरुदेव की माँ पूजा में मन प्राण से रमती थी। ऐसी देवी के यहाँ जन्म लेने वाले बेटे ने अपने जीवन पर हमेशा गर्व किया। बाप तो अपनी मेहनत का पैसा गरीबों पर लुटाता था। भगवान ने उससे खुश होकर उसे ऐसे बेटे का पिता बनाया कि बेटे के यश में पिता का भी अब बराबर हिस्सा निकल आता है। गुरुदेव ने इसी तरह अपनी महिमा का जी भर बखान किया और गोरखनाथ कभी खुशी से तो कभी आश्चर्य से हिश–हूश करते लिखता रहा।

गुरुदेव का एक और आंतरिक भेद था। वह तो चोर ही होता था, उसने चिनई साधु की एक लाठी चुरायी थी। चिनई साधु उस लाठी में कान समझकर ऐंठे तो सामने पानी हो तो वह आग हो जाए और आग हो तो पानी में बदल जाए। गोकुला का पैसा हज़म करने वाले गुरुदेव की यह दूसरी महत्त्वपूर्ण चोरी थी। उसे तो पूरा विश्वास था, लाठी हाथ आ जाने से आग और पानी का बहुत बड़ा जादूगर हो गया। आग और पानी के इस जादू से वह तो मॉरीशस पर राज करने का सपना देखने लगा था, लेकिन लाठी में कान जानकर ऐंठा तो जादू की धड़कन पैदा ही नहीं हुई। तब तो यह बेकार की चोरी हुई। गुरुदेव की हालत ऐसी भी हुई, उस लाठी से उसे डर लगने लगा। उसने उसी रात लाठी दूर फेंक दी थी। पर उसने इसी बात को उलटेपन से लिखवाने के लिए गोरखनाथ से कहा, चिनई नाम के एक फ़कीर की लाठी खो गई थी। चिनई फ़कीर अंधा था। उसने गुरुदेव से कहा था, उसके लिए एक सुन्दर लाठी ढूँढकर ला दे।

गुरुदेव को लगा था यह भगवान की वाणी हुई। उसके पास एक लाठी थी, जिसे वह साधता था। तब तो उस लाठी से पैसे झड़ने ही वाले थे। पर गुरुदेव के उपकारी मन में आया था, सुन्दर लाठी की चाह रखने वाले चिनई साधु को थमा दे। चिनई के यहाँ लाठी तो कमाल की साबित हुई। उसे दिखाई देने लगा। हो सकता था लाठी से पैसा झड़ता, लेकिन चिनई के पास सत न होने से पता नहीं वह लाठी कब उसके यहाँ से अंतर्धान हो गई। गुरुदेव को लगा था, इस कहानी से गोरखनाथ उनींदा हो रहा है। कहानी थी ही ऐसी भोंदी। पर गुरुदेव ने कहानी चला ही दी, तो मानो उसकी बंदूक से निकली गोली हुई, जो वापस बंदूक में जाने के जोग न रह पाई। गुरुदेव ने गोरखनाथ से कहा था, लोग पुस्तकों में चटनी ढूँढते हैं। यह कहानी उसकी जीवनी में चटनी का धर्म निभा दे, तो यह सत्य ही बनकर उभरेगा। उसकी जीवनी घर–घर रामायण की तरह गेय हो जाएगी।

गुरुदेव का शताब्दीनुमा जन्मोत्सव पूरा होते ही वह बेहोश होता–सा प्रतीत हुआ। उसे किसी तरह टांग–टूंगकर उसके शयन कक्ष में पहुँचाया गया। उसकी ऐसी हालत देखकर उसके भक्त यही तो कहते, शताब्दी–पुरुष अब चला। पर वह अभी जाने वाला नहीं था। उसे गोरखनाथ को ढूँढकर उसकी खाल उघड़वानी थी। प्रेस के मालिक बालचंदू स्वयं उससे मिलने आए और उसको सुनाया वह कितना मूर्खमान गधा था कि गोरखनाथ उसे नचाता रहा और वह नाचता रहा। गुरुदेव को अब पता चल रहा था, प्रेस जला नहीं था। बालचंदू ने एक कारण से उसके पास इस तरह से सूचना पहुँचायी थी। वह कहता, आपकी जीवनी पर आधारित पुस्तक छप नहीं सकती, तो वह गुरुदेव होने के गरूर से न जाने कितना कुछ अंट–शंट सुनाने पर तुल जाता। बालचंदू ने गोरखनाथ से कहा था, गुरुदेव की जीवनी लिखने के चक्कर में दूसरों के धर्मों को निंदा से आँका हो या राजनेताओं को गाली देने के इरादे से कुछ लिखवाया हो, तो प्रेस में ताला लग जाएगा। गोरखनाथ ने उसे भूल भुलैये में रखने के लिए होशियारी से उत्तर दिया था, गुरुदेव ने तो पूरी पुस्तक इस तरह से लिखवायी है, मानो मासूम साधु लोगों के चरण वंदन के अलावा और कुछ जानता ही नहीं। बालचंदू तो इसी भ्रम में रह जाता और पुस्तक छप जाने पर देश के सीने में टंग ही तो जाती। यह तो बालचंदू का सौभाग्य हुआ। एक लेखक उसके यहाँ आया था। उसने लेखक से कहा था, किसकी जीवनी उसके यहाँ छप रही है। लेखक ने जिस तरह से बालचंदू से कहा था, उसने हूबहू वही गुरुदेव से कहा, एक फ्रॉड की जीवनी उसके यहाँ छप रही है। यह सुनने पर बालचंदू का माथा ठनका था। उसने तुरंत पढ़ना शुरू किया और आश्चर्य के मारे उसे दिन में तारे दिखाई देने लगे। बात यह थी गोरखनाथ ने पूरी पांडुलिपि आमूलचूल परिवर्तित कर दी थी। गुरुदेव की जीवनी से मानो कोक शास्त्र की परिपुष्टि होती हो।

गोरखनाथ ने लिखा था गुरुदेव ने एक लड़की से प्रेम किया था और लड़की ने बड़ी ही बेरहमी से उसे ठुकरा दिया था। उसे कुरूप जानकर कहा था, भिखारी से शादी कर लूँ न कि तुम जैसे आँखमारू से। लड़की ने तो उसे मारने के लिए झाड़ू तक उठा ली थी। गुरुदेव का दिल इस प्रताड़ना के कारण शीशा बनकर चूर हो गया था। ऐसे प्रताड़ित लोग ही भारत में साधु बनते हैं। उन्हीं भारतीयों के वंशज होने से गुरुदेव अपने मॉरीशस में क्यों न साधु बनकर प्रमाण दे सके कि वह भी उन लोगों के पद चिह्नों पर चल सकता है।

गुरुदेव अपने लिए शालीनता मानता है। किसी लड़की ने उसे झाड़ू दिखाने का साहस किया था। आज वह बूढ़ी अवस्था में मिल जाए तो यह साधु उससे कहेगा, माता मेरा नमन स्वीकार करो। तू न होती तो मैं न साधु बनता और न अपने करोड़ों रुपयों को हाथ की मैल मानकर देश के गरीबों पर समर्पित करने की घोषणा करता।

गुरुदेव ने दान की यह गाथा तो चटनी स्वरूप गोरखनाथ को सुनायी थी, ताकि सरस्वती की वीणा के तार टूटे और उसकी जीवनी मानो फड़–फड़ करते आकार ग्रहण करती जाए। परंतु गोरखनाथ ने घोर वर्जन को अनदेखा किया और लोगों को इस तरह प्रलोभन में झोंका मानो गुरुदेव पैसा लेकर खड़ा है,

आओ भर–भर मुट्ठियाँ ले जाओ।

बालचंदू विशेषकर पैसे के इसी फेर में गुरुदेव के पास भूखा–प्यासा भागा भागा आया था। उसने पूछा – 'तो गुरुदेव, क्या सचमुच आप अपना पैसा दान करने वाले हैं?'

बालचंदू ने यह क्या पूछ लिया? गुरुदेव ने बड़े ही दाँव–पेंच से उसे छोटा–सा उत्तर दिया – 'साधु से पैसे की बात करते हो बालक!'

गुरुदेव आश्वस्त था, गोरखनाथ के हाथों फूहड़पन से लिखी गयी उसके जीवन पर आधारित पुस्तक छपी नहीं। उसने बालचंदू को अपनी पुस्तक लौटा देने के लिए कहा तो उसने इन्कार कर दिया। बलि के लिए बकरा हाथ लगने से सियार प्रकाशक थोड़े ही उसे मुफ़्त में मुक्ति प्रदान करता। गुरुदेव को अपनी जीवनी वाली पुस्तक वापस पाने के लिए उसकी मांग के अनुसार दो लाख देने के लिए हाँ करनी पड़ी। बालचंदू पैसा लेकर ही उसके यहाँ से टला। गुरुदेव ने पैसे के इस दुख को भुलाया, क्योंकि याद रखने के लिए एक दूसरा मारक खाता खुल चुका था। वह गोरखनाथ की अद्भुत पैनी दृष्टि के बारे में सोचने से लगभग काँप पड़ा था। गोरखनाथ ने गुरुदेव के इधर से प्रेम और उधर से अप्रेम में सम्मिलित झाड़ू वाले मामले को लगभग सही उकेरा था। यह ऐसा था, गुरुदेव ने उसे लिखने के लिए अपना झूठ दिया था और उसने उसका सच लेकर लिखा था।

rdhoorundhur@gmail.com

मैं पुण्य कमाने गया

– श्री धर्मपाल महेंद्र जैन
टोरंटो, कनाडा

भगवान किस रूप में कहाँ आते हैं, कब आते हैं और वहाँ क्या छोड़ जाते हैं, कौन जान सकता है! उनकी लीला आर–पार है, वे ही जानें। दशरथ पुत्र भरत उनकी पादुकाएँ उठा लाए थे, तो वे संसार सागर से तिर गए थे। बस इसी आशा में मैं नई चरण पादुकाएँ उठा लाता हूँ और अपनी जीर्ण–शीर्ण पादुकाओं को वहाँ सेवानिवृत्त कर आता हूँ।

अब जो पादुकाएँ मिलती हैं वे काष्ठ की नहीं होतीं, चाम्र की होती हैं। वे भले अपवित्र हों पर चमकदार होती हैं। माल चमकदार हो, तो उसकी पवित्रता कौन देखता है। भगवन पादुकाओं को पॉलिश करवा–करवाकर इतना भव्य रखते हैं कि मेरी एक नज़र उन पर पड़ती है, तो फिर नहीं उठती। मैं अपने पाँवों में चरण पादुकाएँ धारण करने के बाद ही नज़र उठा पाता हूँ, ताकि मैं यह सुनिश्चित कर सकूँ कि जो प्रसाद मैंने ग्रहण किया है, उस पर किसी और की नज़र तो नहीं है। यदा–कदा ही ऐसा होता है कि उन मनभावन पादुकाओं को और कोई क्लेम करने आता हो। पर कोई आ भी जाए तो मैं जी भर कर हँसता हूँ। कहता हूँ 'सॉरी सर'। धन्य हो अंग्रेज़, हमें सॉरी कहना सीखा गए। अन्यथा ऐसे मौकों पर खिसियानी बिल्ली को जूता नोचना पड़ता।

नई चरण पादुकाएँ पहनकर प्रभु–निवास पर जाना मुझे नहीं सुहाता। पिछली बार जब अपने नए 'हश पपीज़' जूते पहनकर मैं प्रभु–दर्शन को पहुँचा, तो मैंने दाँया जूता पूर्व दिशा में और बाँया जूता पश्चिम दिशा में खोला। ताकि किसी दर्शनार्थी का मन नए जूते पर डोल भी जाए, तो उसे दूसरा जूता सहज सुलभ नहीं हो। यद्यपि यह तरकीब काम कर गई, जूते यथास्थान ही रहे पर प्रभु–दर्शन में मेरा चित्त न लगा। बार–बार मेरा चित्त प्रवेश द्वार के पूर्व और पश्चिमी कोनों में भटकता रहा। प्रभु ने पूछा भी, वत्स क्या बात है आज तुम व्यथित हो, कुछ माँग नहीं रहे? मैं इतना ही कह पाया – प्रभु मेरे नए जूतों का ध्यान रखना। प्रभु हँसकर चले गए। मैंने मूर्खतावश ऐसा दुर्लभ अवसर जूतों की रक्षा में

गवाँ दिया। तब मैं प्रभु से जूतों का भरा–पूरा स्टोर भी माँग लेता, तो प्रभु तथास्तु कह देते। बाबा को जब यह वाकया बताया, तो वे बहुत खिन्न हुए। उपदेश देने लगे, 'बेटे तुम्हें स्वर्ग मिल सकता था, तुम जूतों की रखवाली में यह जनम गवाँ आए मूर्ख।' अब कोई मैं अकेला मूर्ख तो हूँ नहीं, जो जूतों के चक्कर में स्वर्ग गवाँ रहा हूँ। उस दिन के बाद से मैं कभी नए जूते पहनकर प्रभु दर्शन के लिए नहीं गया, न प्रभु वहाँ आए। प्रभु बड़े नटखट हैं, भक्तों की कैसी परीक्षा लेते हैं! नए जूतों में मन रमा था, तो आशीर्वाद देने प्रकट हो गए। अब उनसे मिलने जाते–जाते जूते घिस गए हैं, वे प्रकट ही नहीं होते।

जूतों के चक्कर में मैंने प्रभु को खो दिया, तब से जूतों से वितृष्णा हो गई है। अब घर से बिना जूते पहने प्रभु–दर्शन को जाता हूँ। रुआँसा घर लौटता हूँ, तो ध्यान कहीं और होता है। घर आकर पता लगता है कि मैं नंगे पाँव गया था, ढँके पाँव आया हूँ। घर में समान नंबर के जूतों का स्टोर बन रहा है, सब प्रभु की माया है। प्रभु मैं तो पुण्य कमाने आ रहा था, जूते कमा रहा हूँ। बाबा पूछते हैं, कितनी पनौती इकट्ठी करेगा? जिसे मैं प्रभु प्रसाद समझ रहा था, वह पनौती कैसे हो गई?

आज लौट रहा था तो एक सज्जन ने पूछा, ''बड़े अच्छे जूते हैं, कहाँ से खरीदे?''

"यहीं से लिए थे।"

"ये तो मेरे जूते हैं।"

"आप ले लीजिये।"

"फिर आप क्या करेंगे?"

"मैं खाली हाथ आया था, खाली पैर चला जाऊँगा।"

मैंने एक वाक्य में उन्हें सारा जीवन दर्शन समझा दिया। नई चरण पादुकाओं ने मुझे हमेशा धर्म संकट में डाला है। मुझे याद है, मेरे पाँवों में नए जूते थे, विवाह वेदी पर बैठने के लिए जूते खोलने थे। प्रियतमा वरमाला लिए खड़ी थी, पर मेरा सारा ध्यान जूतों पर ही था। जूते खोलूँ तो लुट जाऊँ, न खोलूँ तो कुआँरा रह जाऊँ। जूतों के चक्कर में सर्वप्रिय सलोनी सालियाँ खूँखार शेरनियाँ लग रही थीं। उनकी हँसी ने मेरे दिल को और उनकी तीखी निगाहों ने मेरे नए जूतों को छलनी–छलनी कर दिया था। मैंने सोचा भी दुल्हन को जाने दूँ, अपनी इज्ज़त, जूतों को बचा लूँ। भला हो बाबा का, मेरी दुविधा ताड़ गए और जूते उतरवा दिए। अन्यथा पहले भगवान गवाएँ थे, अब दुल्हन को गवाँ देता।

जैसे ऑफ़िस में घुसते ही बॉस अपनी कुर्सी पर बिराज जाते हैं, घर में घुसते ही जूते अपना नियत स्थान सम्हाल लेते हैं। पहली फ़ुरसत में आदमी उन्हें कीचड़–माटी रहित कर, पुनः पॉलिश से चमका देता है। मुख और मन मलिन हो तो कुछ नहीं, जूते और बाल चमचमाते रहना चाहिए।

हमारे गाँव और शहर के बीच एक नदी है। प्रभु की जटा से जितनी सिमटी गंगा निकलती है, उसकी धारा यहाँ वैसी ही पतली है। पर नदी का पाट सरकारी आश्वासनों जैसा चौड़ा है। गर्मी में जब पानी चाहिए, नदी सूखी पड़ी होती है। झमाझम बारिश में जब चारों तरफ़ पानी ही पानी होता है, नदी भी पूरे आवेग में बहती है। बाढ़ में पुलिया बहा ले जाती है। ग्रामवासी अपनी चरण पादुकाएँ सिर पर रख या दिल से लगाकर नदी पार कर रहे होते हैं। तब भी आदमी को खुद से ज़्यादा अपनी चरण पादुकाओं का ध्यान रहता है।

चरण अब पादुकाओं में बंद रहते हैं। आशीर्वाद की ज़रूरत में मैं बड़े–बूढ़ों के चरण स्पर्श करना चाहता हूँ, तो उनकी पादुकाएँ ही दिखती हैं। आशीर्वाद की जगह जूते ही मिलते हैं। लगता है जूते मिलने की परम्परा हमारी संस्कृति से जुड़ी है। मेरे कवि मित्र बिना बुलाए ही कवि–सम्मेलनों में नंगे पाँव जाते हैं। बिना मानदेय के जाते हैं और जब लौटते हैं, तो जूतों की चार–छः जोड़ियाँ उपहार में लेकर आते हैं। उपहार का उपहास करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। उनका मानना है कि प्रसिद्ध व्यक्तियों को ही जूते पड़ते हैं। वे बताने लगे, ''पत्रकार वार्ता में एक पत्रकार ने जॉर्ज बुश के ऊपर जूता दे मारा, पहला निशाना चूका, तो उसने दूसरा जूता भी दे मारा। दो जूते पाकर अमेरिकन राष्ट्रपति जॉर्ज बुश दुनिया भर में इतने प्रसिद्ध हो गए कि कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता, राष्ट्रपति ट्रम्प भी नहीं।

पत्रकार की चर्चा तो कुछ महीनों में बंद हो गई पर जॉर्ज बुश जूते खाने के लिए अमर हो गए। याद रखें, जूते मारने वाले से जूते खाने वाला बड़ा होता है और उसे हमेशा याद रहता है कि उसे जूता पड़ा था।''

मुझे कवि मित्र की बात में दम लगा। दुनिया भर में लाखों व्यंग्यकार रोज़ ही तमाम विसंगतियों तथा कुप्रवृत्तियों पर तंज कसते हैं। देर रात तक कॉमेडी शोज़ चलाते हैं। लोग व्यंग्य को भी हँसकर टाल देते हैं, इन सबका कोई गंभीर नोटिस नहीं लेता। व्यंग्यकार ने शाब्दिक जूतों की बजाय भौतिक जूते चलाए होते तो दुनिया अलग हो सकती थी।

कुछ भी हो, इन दिनों फटे–पुराने जूतों की माँग बढ़ गई है, बड़े चुनाव आने वाले हैं। विरोधियों को जूते की माला पहनाकर सम्मानित करने के लिए फटे–पुराने जूते ही चाहिए। नए जूतों से सम्मान को गरिमा नहीं मिलती।

क्या कहा आपने, आपके जूते नहीं मिल रहे। थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए, मैं आता हूँ।

dharmtoronto@gmail.com

'सहृदयता आलोचना की कुंजी है'– प्रो. नामवर सिंह

– डॉ ऋचा द्विवेदी
उरई, भारत

लेखन में आप पर किन–किन साहित्यकारों और पुस्तकों का प्रभाव पड़ा?

प्रो. नामवर सिंह – मेरी शिक्षा काशी में हुई थी, जहाँ प्रेमचन्द हो चुके हैं, जयशंकर प्रसाद हो चुके हैं, जिनकी मृत्यु तीन–चार वर्ष पहले ही हुई थी, तो स्कूल के दिनों से ही बाकायदा साहित्यकारों से मेरी भेंट होती थी, इस क्षेत्र में जब हम आये।

जी।

प्रो. नामवर सिंह – मेरे पास उस वक्त, कुल मिलाकर काशी की जो साहित्यिक परम्परा है, भारतेन्दु से लेकर जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, तो इन लोगों का संस्कार मेरे ऊपर पड़ा। और इन लोगों के कारण ही संस्कृत साहित्य का अच्छी तरह अध्ययन करने का मौका मिला। विषय के रूप में मैंने अपभ्रंश लिया था। तो प्राकृत–अपभ्रंश, जो जुड़ा हुआ है संस्कृत के अपभ्रंश से, तो इन भाषाओं में गति प्राप्त करना। किन्तु हिंदी पढ़ने के लिए ज़रूरी है कि आपका संस्कार जो हो, वो हिंदी साहित्य के लिए ज़रूरी है कि आपको संस्कृत की परम्परा का ज्ञान हो। मैंने विषय भी लिया था। बी.ए में मैंने संस्कृत ली थी। लेकिन, उन तमाम चीज़ों की वजह थी, काशी की परम्परा में कट्टरता नहीं थी, विचारों का एक खुलापन था। और वह खुलापन, यह विचारधारा अपनी जगह, जीवन के अनुभव अपनी जगह। और तभी साहित्य जो है, गम्भीर साहित्य होता है, संकीर्णता नहीं। फिर विचारधारा की कट्टरता जब आ जाएगी, तो गड़बड़ है। एडजस्ट होती है, जीवन को देखने के लिए, लेकिन जीवन अपने आप में हमारे अध्ययन का विषय है, लोक जीवन है, शिष्ट जीवन है। तो यह एक संस्कार जो साहित्य का खुलापन है, वैचारिक कट्टरता से दूर रहना, जो आज के ज़माने में वैचारिक कट्टरता बढ़ गयी है, वह नहीं थी। वही साहित्य बड़ा होता है, जो हमको विरासत में मिला।

काशी के भारतेन्दु मस्त आदमी थे, फक्कड़, कोई पॉलिटिक्स नहीं, हिंदू–मुसलमान का कोई भेद नहीं और यही परम्परा प्रेमचन्द में थी। यही परम्परा जयशंकर प्रसाद की थी। वे शैव थे। लेकिन वेद–पुराणों का अध्ययन किया था। उनकी जो 'कामायनी' है, एक खुलापन है। काशी ने एक खुलापन दिया था और विश्वविद्यालय भी हमारा अनेक विचारधाराओं में था। आजकल विचारधाराओं की जो कट्टरता हो गयी है, उससे साहित्य सिकुड़ रहा है।

संकुचन हो गया है साहित्य में।

प्रो. नामवर सिंह – संकुचित हो रहा है। इसलिए सह, साहित्य में तो सह भाव है न, इसलिए लोक से हमारा गहरा लगाव होना चाहिए। संकुचित दृष्टि जो है, जिससे न साहित्य पढ़ा जा सकता है, न समझा जा सकता है, न लिखा जा सकता है। ये मेरी धारणा, काशी का संस्कार लेकर पैदा हुई, जो आज तक मज़बूत है, जिसको कोई बदल नहीं सकता ।

क्या आपके बचपन के अनुभवों से आपका लेखन प्रभावित हुआ है?

प्रो. नामवर सिंह – हुआ होगा। क्योंकि मानसिकता घनी थी। मैं तो गाँव का आदमी हूँ। जन्म तो मेरा गाँव में हुआ। शहर की एक दूसरी संस्कृति होती है, सामाजिक संबंधों में भी भिन्नता आती है। हमारा लोक जीवन इस मामले में बड़ा उदार है। मनुष्य के पास केवल दिमाग नहीं, हृदय चाहिए और हम हृदय से ही साहित्य को जानते हैं, पूछते हैं, इसलिए हृदय में सबके लिए जगह होनी चाहिए।

हृदय की विशालता होनी चाहिए।

प्रो. नामवर सिंह – हाँ, विशालता। यानी बड़ा दिल अगर आपका हो तो जो लिखेंगे इसी के अनुसार

उसमें वो खुलापन होगा। संकुचित नहीं होना है। ये मेरी समझ बनी है और इसी का मैं पालन करता हूँ।

क्या आप समालोचना करते समय स्वयं के साथ न्याय कर पाते हैं?

प्रो. नामवर सिंह – समालोचना के लिए पहली चीज़ तो विचार छोड़ के, खुले मन से किसी को पढ़ते हैं और जो प्रभाव पड़ता है, जो चीज़ें मन को छूती हैं, हम उसको देखते हैं। लिखने वाले की न जाति से मतलब है, न धर्म से, यहाँ तक कि उम्र से भी मतलब नहीं है। कम उम्र के लोग कभी–कभी बड़ी बातें कह जाते हैं और बूढ़े लोग जो हैं, बच्चों की तरह बात करते हैं।

जी।

प्रो. नामवर सिंह – जिसे कहते हैं – 'बात बोलेगी हम नहीं, भेद खोलेगी बात ही।' तो बात क्या कही जा रही है, वह देखो। कहने वाला कौन है, किस जाति का है, पुरुष है कि स्त्री है, ये हम नहीं देखते। देखना भी नहीं चाहिए। तभी आप सच्चे अर्थों में साहित्य के विद्यार्थी माने जाएँगे। और यही भाव रखना चाहिए साहित्य–पथ पर, पूर्वग्रह से मुक्त।

आपके विचार से लेखन का सम्बन्ध कवि के जीवन से कितना और किस प्रकार का है?

प्रो. नामवर सिंह – कवि का जीवन जो है, कुछ संस्कार हैं उसके। परिवार, जिसमें रहा, आपके मित्र जो लोग बने, आपकी पत्नी, आपका बच्चा – इन तमाम चीज़ों का अनजाने प्रभाव पड़ता है। हम महसूस नहीं करते, पर पड़ता है। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि कविता हो, कहानी हो या उपन्यास हो, वो पढ़ते समय हम खुले मन से देखते हैं। वे क्या प्रभाव हमारे ऊपर डालते हैं, वे किताबें तरह–तरह के विचारों वाले लोगों की हैं, स्त्रियों की लिखी हुई हैं, पुरुषों की लिखी हुई हैं और देखता हूँ कई चीज़ें, मुझे अन्दर तक लगता है कि माँ का प्रभाव बहुत पड़ता है। माँ के जितने भी बच्चे हों, उसके लिए उसकी आँखों में बराबर हैं। तो मैं समझता हूँ कि रचनाकार हर किसी का, माँ है, बाप नहीं है। माँ का सम्बन्ध अपनी सन्तान से जैसा होता है, वैसा ही। अपना साहित्य, खुद हम लिखें, कोई लिखे, किसी ने लिखा हो, उसे खुलेपन से देखना, पढ़ना चाहिए, वह क्या कहता है, मैं क्या सोचता हूँ। कुछ लेखक होते हैं, जो हमारा विचार बदल देते हैं।

जी।

प्रो. नामवर सिंह – तो स्वागत करना चाहिए। इसलिए सहृदयता, एक शब्द संस्कृत में चलता है सहृदय! तो सहृदयता बड़ी चीज़ है। इसलिए हमारे यहाँ साहित्य में, काव्यशास्त्रों में आलोचक शब्द है ही नहीं, सहृदय शब्द है। इसीलिए सहृदयता बड़ी चीज़ है। आलोचक बनने के लिए, लेखक बनने के लिए ये शब्द ध्यान में रखो। सहृदय शब्द कुंजी है, आलोचना की कुंजी है। इसीलिए संस्कृत में हमारे यहाँ आलोचना नाम का कोई शब्द है ही नहीं, सहृदय शब्द है। सहृदय और सहृदयता को अर्जित करना पड़ता है, अपने आप नहीं आती, प्राप्त करना पड़ता है। सहृदयता साहित्य की कुंजी है, ये मैं समझता हूँ।

क्या रचनाकार हर समय रचनात्मक रहता है या एक विशेष कलात्मक अनुभव के क्षण के उपरान्त वह सामान्य व्यक्ति जैसा हो जाता है?

प्रो. नामवर सिंह – वह तो सामान्य व्यक्ति के ही जैसा है। सृजन का एक क्षण होता है। एक मोमेण्ट होता है। विस्फोट की तरह से होता है। जब ये होता है, तब लगता है कि कुछ लिखना है। इसलिए सहृदयता का सहसा अभ्युदय जब हो, तब लिख डालना चाहिए। उस समय टालिए मत। वही रचना दूसरे के हृदय को भी छू सकती है। इसलिए साहित्य में हमारे यहाँ आलोचक वगैरह शब्द अब चला है। पुराना शब्द सहज ही है, सहृदयता। हमारे यहाँ यही माना गया, जिसमें बुद्धि का दखल कम है, यह याद रखो।

क्या लेखन एक आवेगपूर्ण प्रक्रिया है?

प्रो. नामवर सिंह – देखो, मैंने आवेग इस अर्थ में कहा है कि कभी–कभी कोई घटे तो घटता है, तो पहली पंक्ति एक विस्फोट की तरह से आती है। अचानक विस्फोट की तरह से, एक पहली कविता लिखी जाती है और बाद में जितनी कविताएँ लिखें वे सब पहले विस्फोट से रूप लेती है, ऐसे बाकी रचनाएँ बनती चली

जाती हैं। तो वह एक उत्पत्ति, उसके आवेग में होती है, बाद में निर्णय जो करते हैं हम उसमें चिंतन का भी योगदान होता है, मैं बुद्धि नहीं कहूँगा, चिन्तन। इसलिए आवेग और चिन्तन, भावावेग और चिन्तन, ये दो चीज़ें हैं, जो मिलकर के उस प्रक्रिया को आगे बढ़ाती हैं।

कविता के सृजन के दौरान आपकी भाषा किस प्रकार के रचनात्मक तनाव से गुज़रती है?

प्रो. नामवर सिंह – लिखने से पहले एक टेंशन तो होता है। नहीं है टेंशन तो विस्फोट होगा ही नहीं। उसके बाद, जब लिखने लगते हैं, तब टेंशन दूर हो जाता है। उच्छ्वास में आकर 'आह', 'वाह' कहता है। इसके बाद फिर जब उतरने लगते हैं, तो आवेग कम हो जाता है, वह आवेग फैलने लगता है और फिर रचनाएँ बनती चली जाती हैं। यही रचना–प्रक्रिया है, कोई कवि हो, नाटककार हो, बाकी कोई भी हो। यानी जैसे एक कविता है – "अहा! राम का भी क्या जीवन है?" तो 'अहा' से एक उल्लास हुआ। विस्फोट हुआ, और फिर तब रचना धीरे–धीरे, घटती–बढ़ती चली जाती है। ये अभिव्यक्ति की, रचना की एक प्रक्रिया है। ये दो स्तर होते हैं और इसी से सारी रचना बनती है।

कवि का कविता से क्या आपसी सम्बन्ध होता है?

प्रो. नामवर सिंह – देखो, कविता खुद स्त्रीलिंग है। इसलिए स्त्री–जनोचित साहचर्यता है, स्वभाव है। लेकिन कवि और कविता का सम्बन्ध दोनों तरफ़ से होता है। एक तो जैसे माँ–बेटी का सम्बन्ध होता है और पिता और पुत्र की तरह से जैसे होता है। और फिर सखी भाव भी होता है। तो जो मनुष्य के सम्बन्ध जिस तरह से हैं, उसी तरह से साहित्य से भी हमारा सम्बन्ध वैसा ही है। कभी सखा भाव होता है, कभी पिता–पुत्र का होता है, वात्सल्य का होता है, जैसे कई रस होते हैं। ये रस बने हुए हैं, मानवीय सम्बन्धों के आधार पर ही बने हुए हैं। शृंगार रस है, तो करुण रस भी है, क्रोध भी है, घृणा भी है, जुगुप्सा भी है। जो भाव बने हुए हैं, मनुष्य के चरित्र–व्यक्तित्व के अनुसार हैं।

वर्तमान में जो नारी है, उसके स्वरूप के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

प्रो. नामवर सिंह – नारी तो मूल में है। जयशंकर प्रसाद ने जिसका 'कामायनी' में चित्रण किया है। 'कामायनी' से इसको बहुत अच्छी तरह से समझ सकते हैं। पुस्तक का नाम स्त्रीलिंग है। 'मनु' के नाम पर नहीं है यह पुस्तक। कामायनी के नाम पर है। 'कला' स्त्रीलिंग है, कविता स्त्रीलिंग है, उपन्यास नहीं है। लेकिन कविता का जहाँ तक सम्बन्ध है – वह माँ भी है ,पत्नी भी है, बेटी भी है, बहू भी है। जो सम्बन्ध हैं, उसी तरह से कविता सारी भूमिकाओं में होती है। इसीलिए कविता में नौ रस माने गये हैं। तो ये यों ही नहीं लिख दिए गये हैं। मनुष्य के सम्बन्धों के आधार पर साहित्य का शास्त्र बना है। मैं यही कहना चाहता हूँ।

असल में एक समग्र (समय) बन जाये न तो सब अलग–अलग पोइंट निकलते चले आते हैं। और कौन–सी कविता पढ़ते हैं, इससे आपका मन जो है, बदल जाता है। या कहीं देखो, जो अच्छी लगे, मैं हर एक से पूछता हूँ, कालिदास या कोई कविता सुनाओ, तो जिस आदमी, जो साहित्य पढ़ने वाला है, उसको कुछ कविताएँ अगर याद न हों, तो उसका साहित्य पढ़ना व्यर्थ है।

जी, बिल्कुल सही कहा आपने। मैं आपको कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के द्वितीय अंक का एक सुप्रसिद्ध श्लोक सुनाती हूँ –

"अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै, रनाविद्धं रत्नं
मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्–रूपमनघै,
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।"

उस (शकुन्तला) का निष्कलंक सौन्दर्य न सूँघा गया फूल है, नाखूनों से न कटा हुआ नवपल्लव है, न बिंधा हुआ रत्न है, जिसके रस को नहीं चखा गया है।

जिसके रस को नहीं चखा गया है, ऐसा मधु है और पुण्यों के सम्पूर्ण फल के समान है। विधाता यहाँ किस भोक्ता को उपस्थित करेगा – यह नहीं जानता हूँ।

प्रो. नामवर सिंह – बहुत सुन्दर बेटी। कण्ठस्थ

है आपको।

जी इण्टर में संस्कृत साहित्य था। और बाद में शास्त्री की उपाधि भी प्राप्त की।

डॉ. नामवर सिंह – दर्शन वालों को नहीं याद आतीं। साहित्य के हृदय में, इसीलिए सहृदयता के समान उस बिन्दु पर आवेग है, जिस पर कवि पहुँचा है। इसीलिए कवि हृदय, हमारे यहाँ संस्कृत में आलोचक नाम का तो कोई शब्द है ही नहीं, सहृदय था, समान हृदय। हम कोशिश करें कि जैसे कामायनी लिखी गयी है, तो हम उस भूमिका पर पहुँच जायें। उस धारमान पर पहुँचेंगे। इसीलिए साहित्य पढ़ते समय ट्यूनिंग का जो सही जगह अगर लग गया, तो आयेगा। गलत पोइंट पर लगाओगे, तो नहीं आयेगा। इसीलिए हम तो इन चीज़ों को सिद्धांतों से नहीं समझते। व्यावहारिक जीवन देखकर, हम जो अनुभव करते हैं, जैसे चैनल हैं, आ रहा होगा। ट्यूनिंग करते समय आप जिस धारमान पर चैनल को लगायेंगे वही आयेगा। यह साहित्य के बारे में भी है। जो किताब पढ़ रही हो। मनःस्थिति से उस पर पहुँचो, जहाँ से शुरू होती है। कामायनी है, शुरूआत में जयशंकर प्रसाद ने कहा है –

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
ऊपर जल था, नीचे हिम था,
एक सघन था एक विरल।
एक तत्त्व की ही प्रधानता,
कहो इसे जड़ या चेतन?"

वहाँ से कामायनी शुरू होती है। तो वह बस उस लहरमान को मिलते हैं। बस वही रहेगा। 'सहृदयम्' शब्द यही है कि पहले देखो किस कविता को पढ़ने जा रही हो, तो पहले ये अंदाज़ा लगा लो कि पहुँचो वहाँ, जहाँ से कवि, लेखक सोचना शुरू करता है। उस पर पहुँचोगी, तो खटाखट तुम उसके साथ बहती चली आओगी। इसीलिए हमारे यहाँ बहुत अच्छा शब्द है। अंग्रेज़ी में रीडर है। हमारे यहाँ उसके लिए शब्द है – सहृदय, समान हृदय रखो। आलोचक का अर्थ है सहृदय। संस्कृत में हमारे यहाँ काव्यशात्र में यही कहा गया है – "कवि सहृदय व्याख्यौ विनयते।"

संस्कृत के एक श्लोक में कहा है कि कवि और सहृदय दोनों की वन्दना वह एक साथ करते हैं। मेरी तरफ़ से यही है बेटा कि सोचती रहोगी, तो विचार उगते चले आयेंगे।

richashastri66@gmail.com

हिंदी की वैश्विक आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए कटिबद्ध – प्रोफ़ेसर नन्दकिशोर पाण्डेय

– डॉ. अमरेंद्र त्रिपाठी
बिहार, भारत

प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय भारत में हिंदी के प्रचार–प्रसार के पर्याय बन चुके हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक के तौर पर वे हिंदी और भारतीय भाषाओं के बीच संवाद के संवाहक हैं। पचास से भी अधिक भारतीय भाषाओं के अध्येता–कोश के निर्माण के क्रम में उन्होंने भारत की लगभग लुप्तप्राय भाषाओं के वाहकों को यह भरोसा दिलाया कि आपकी चिंता करने वाला भी कोई व्यक्ति है। प्रो. पाण्डेय का अटूट भरोसा रहा है कि यदि हिंदी भारत की राजभाषा है, तो

समस्त भारत का उस पर अधिकार है और यह हिंदी वालों का दायित्व है कि वह हिंदी को भारत की सभी भाषाओं के दरवाज़े तक ले जाएँ और उस क्षेत्र की भाषाओं को अपने आँगन में खिलने का मौका दें। प्रो. पाण्डेय पिछले लगभग पच्चीस वर्षों से हिंदी के विकास में योगदान देने के साथ–साथ उसके प्रचार–प्रसार में आ रही मुश्किलों को करीब से देख–समझ रहे हैं। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के चौदह माह के अपने छोटे कार्यकाल में उन्होंने राजभाषा के तौर पर हिंदी को मज़बूत करने में निर्णायक भूमिका अदा की। राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष और अध्यापक के रूप में अपने नौ वर्षों के अरुणाचल प्रवास के दौरान उन्होंने पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के समक्ष आ रही चुनौतियों का सामना किया और कठिन परिश्रम की बदौलत अरुणाचल प्रदेश सहित पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों में हिंदी के स्वाभाविक स्वीकार और तीव्र प्रसार की भूमिका तैयार की। विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस के तत्त्वावधान में आयोजित होने वाले सम्मेलनों और कार्यक्रमों में प्रो. पाण्डेय की नियमित भागीदारी रही है। केंद्रीय हिंदी संस्थान में विश्व के कई देशों के विद्यार्थी हिंदी की शिक्षा ग्रहण करने आते हैं। हिंदी की वैश्विक स्थिति को लेकर भी वे सदैव संवेदित होते रहे हैं। हाल के वर्षों में हिंदी ने दुनिया की कई भाषाओं को पीछे छोड़ा है और वैश्विक स्तर पर अपनी स्थिति मज़बूत की है। हिंदी के प्रचार–प्रसार की चाल और चुनौतियों पर प्रस्तुत है केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के निदेशक प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय की डॉ. अमरेंद्र त्रिपाठी से बातचीत के चुनिंदा अंश :

आज हिंदी देश और विश्व में महत्त्वपूर्ण भाषा बन चुकी है। न केवल भाषाई सांख्यिकी के पैमाने पर निरंतर नये आँकड़ों के साथ बढ़ रही है, बल्कि इसकी वैश्विक प्रतिष्ठा भी स्थापित हुई है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की भूमिका और उत्तरदायित्व को आप किस तरह देखते हैं?

हिंदी प्रथम भाषा के रूप में लगभग 60 करोड़ लोगों की भाषा है। इस दृष्टि से यह रूस और अमेरिका की कुल जनसंख्या से अधिक है। इसके अतिरिक्त जो लोग लिखने–पढ़ने या बोलने, किसी भी रूप में हिंदी का प्रयोग करते हैं, उनकी आबादी भी कोई 50 करोड़ है। 100 करोड़ लोगों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को किसी भी तरह से उपेक्षित नहीं किया जा सकता। मराठी, नेपाली और बोडो की लिपि भी हिंदी की तरह देवनागरी है। संयुक्त अरब अमीरात जैसे देश में बड़ी संख्या में हिंदी बोलने–समझने वाले लोग हैं। इस देश का नाम इसलिए ले रहा हूँ कि हिंदी के संदर्भ में मॉरीशस, फ़िजी, गयाना, त्रिनिडाड और सूरीनाम की ही चर्चा होती है। इन देशों में अलग–अलग जितने लोग हिंदी बोलते हैं, उससे कम लोग संयुक्त अरब अमीरात में नहीं। कनाडा, अमेरिका, रूस, चीन, श्रीलंका, बर्मा तथा तजाकिस्तान जैसे देशों में हिंदी के प्रति लगाव तो था ही, पढ़ने के लिए रुझान भी बढ़ा है। 22 जुलाई 2018 से संयुक्त राष्ट्र संघ से 10 मिनट अवधि का साप्ताहिक हिंदी समाचार बुलेटिन आरंभ हुआ है। उसके श्रोताओं की संख्या बहुत बड़ी है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र का हिंदी में ट्विटर अकाउंट और हिंदी ब्लॉग भी है। हिंदी में लिखे जाने वाले साहित्य के साथ गत कुछ वर्षों में इस भाषा में प्रकाशित होने वाली विज्ञान और तकनीकी विषयों की पुस्तकों का बाज़ार बढ़ा है। कई बार लगता है कि हिंदी दबाव में है। अप्रैल और मई महीने में भारत में लोकसभा चुनावों के संपूर्ण परिदृश्य पर दृष्टिपात कीजिए। मीडिया के प्रायः सभी चैनलों की बहसों में हिंदी कितनी जवाबदेह, तार्किक, तकनीकी दृष्टि से सम्पन्न तथा बौद्धिक उत्तेजना को समाविष्ट करते हुए जिस प्रभाव से प्रस्तुत हुई है, वह इसकी ताकत को दर्शाता है। पूरे भारतवर्ष में चुनाव प्रचार–प्रसार की भाषा इस बार हिंदी देखी गई। अब तक हम कहते रहे हैं कि स्वतंत्रता आंदोलन की भाषा हिंदी थी, अब हम कह

सकते हैं कि भारत के सामान्य–जन से अपने पक्ष में मताधिकार करवाने की भाषा हिंदी है।

हिंदी की प्रतिष्ठा और इसके उत्तरदायित्व की दृष्टि से हिंदी संस्थाओं के कार्यकलापों के बारे में आपकी विचार–दृष्टि क्या है? विशेष रूप से केंद्रीय हिंदी संस्थान के बारे में, जिसके आप वर्तमान में निदेशक हैं।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय, उच्चतर शिक्षा विभाग के अंतर्गत कार्यरत शैक्षणिक संस्था है। वर्ष 1960 में मंत्रालय के अधीन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के तहत इसकी स्थापना की गई थी। भारत की राजभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं के विकास की दृष्टि से संविधान के अनुच्छेद 351 का विशेष महत्त्व है। मंडल के मार्गदर्शन में संचालित केंद्रीय हिंदी संस्थान भी इसी संवैधानिक अनुच्छेद के दिशा–निर्देशों के अनुपालन हेतु हिंदी के शिक्षण–प्रशिक्षण, प्रचार–प्रसार एवं प्रोत्साहन के लिए बहुआयामी गतिविधियों का संचालन करता है। संस्थान की स्थापना का मूल उद्देश्य हिंदी को अखिल भारतीय स्तर पर सर्वसमावेशी एवं समन्वयपरक स्वरूप में विकसित करना था, ताकि यह अन्य भारतीय भाषाओं के साथ सहयोग और समन्वय करते हुए अखिल भारतीय संपर्क भाषा के रूप में विकसित एवं सर्वस्वीकृत हो सके। उल्लेखनीय है कि केंद्रीय हिंदी संस्थान विगत 6 दशकों से द्वितीय एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का शिक्षण–प्रशिक्षण प्रदान करने वाला देश का एकमात्र शिक्षण संस्थान है।

देखिए, हिंदी की प्रतिष्ठा का प्रश्न केवल एक भाषा का प्रश्न नहीं है। हिंदी ने भारत के एक व्यापक जनसमूह की मातृभाषा के साथ–साथ देश की राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं संपर्क भाषा के रूप में महती भूमिका निभाई है। इसका अपना वृहद इतिहास, सक्रिय वर्तमान और संभावनापूर्ण भविष्य है। इसलिए हिंदी की प्रतिष्ठा अपने आप में बड़े उत्तरदायित्व का भी बोधक है। देश–विदेश में हिंदी का कार्य करने वाली छोटी–बड़ी अनेक संस्थाएँ हैं। अपने–अपने क्षेत्र में हिंदी के विकास में इन सबका योगदान है। सबकी सराहना होनी चाहिए। जहाँ तक केंद्रीय हिंदी संस्थान का सवाल है वह राजभाषा हिंदी की वैश्विक आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए कटिबद्ध है। हाँ, यह अवश्य विचारणीय है कि इतना संख्या बल होने के बाद भी हिंदी के समग्र परिदृश्य में सबल, समर्थ और भाषिक स्वावलंबन क्यों नहीं आया?

हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में हिंदी भाषा संवर्धन और कौशल विकास के क्षेत्र में केंद्रीय हिंदी संस्थान का क्या योगदान है?

केंद्रीय हिंदी संस्थान के कार्यक्रम विशेषतः हिंदीतर भाषी राज्यों को ध्यान में रखते हुए तैयार किए जाते हैं। विगत अर्धशती में अधिक समय तक संस्थान द्वारा तुलनात्मक अध्ययन एवं अनुसंधान के आधार पर हिंदीतर भाषी शिक्षार्थियों के उपयोग हेतु विविध प्रकार की शिक्षण सामग्री का निर्माण किया गया है। इसके अंतर्गत हिंदी भाषा एवं साहित्य, भाषा विज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोश विज्ञान, द्विभाषी/त्रिभाषी अध्येता कोश निर्माण आदि विषयों पर उपयोगी पुस्तकों एवं पत्र–पत्रिकाओं आदि का प्रकाशन सम्मिलित हैं। संस्थान का अपना प्रकाशन है, जिसके माध्यम से अब तक लगभग 200 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। साथ ही हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति से जुड़े विभिन्न पक्षों के शैक्षिक अनुसंधान, चिंतन–विमर्श और ज्ञान एवं सूचनाओं के आदान–प्रदान को प्रोत्साहित करने के लिए संस्थान द्वारा 8 पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा है।

'गवेषणा' हिंदी भाषा विज्ञान, भाषा शिक्षण और साहित्य चिंतन की पुरानी प्रतिष्ठित पत्रिका

है। वर्ष 1963 से प्रकाशित इस पत्रिका के अब तक 113 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। 'संवाद पथ' हिंदी जनसंचार एवं पत्रकारिता पर केंद्रित पत्रिका है। पहले यह 'मीडिया' नाम से प्रकाशित की जाती थी। हिंदीतर भारत की भाषा, साहित्य एवं संस्कृति संबंधी चिंतन पर केंद्रित 3 पत्रिकाएँ हैं – 'समन्वय पूर्वोत्तर', 'समन्वय दक्षिण' और 'समन्वय पश्चिम'। प्रवासी जगत के साहित्य, साहित्यकार एवं संस्कृति पर केंद्रित पत्रिका 'प्रवासी जगत' है। साथ ही 'शैक्षिक उन्मेष' और 'भावक' पत्रिकाएँ भी उल्लेखनीय हैं, जो क्रमशः शिक्षा और साहित्य चिंतन पर केंद्रित हैं। संस्थान की ये सभी पत्रिकाएँ अधुनातन प्रकाशन मानकों के साथ प्रकाशित हो रही हैं और हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के अखिल भारतीय एवं अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में विशिष्ट शैक्षिक, अनुसंधानपरक एवं प्रचार–प्रसारात्मक उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं। इनके पाठक, प्रशंसक विश्व भर में हैं।

संस्थान हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में शैक्षिक संवाद को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिवर्ष संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं के आयोजन हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता है। साथ ही स्वयं भी इस प्रकार के अनेक कार्यक्रम आयोजित करता है। पिछले 5 वर्षों के दौरान संस्थान द्वारा देश भर में 100 से अधिक संगोष्ठियाँ और 200 से अधिक कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। शिक्षक नवीकरण कार्यक्रमों एवं अन्य विशिष्ट अवसरों पर देश के प्रतिष्ठित विद्वानों को आमंत्रित कर उनके विशेष व्याख्यान कराए गए। व्याख्यानों का आँकड़ा भी 300 की सीमा तक पहुँचा है। संस्थान द्वारा संचालित नियमित शिक्षक–प्रशिक्षण पाठ्यक्रम वस्तुतः भाषा–शैक्षणिक कौशल एवं दक्षता केंद्रित कार्यक्रम ही हैं। अब तक संस्थान लगभग 80,000 शिक्षार्थियों को प्रशिक्षित कर चुका है। ये सब कार्यक्रम संस्थान की नियमित निरंतरगामी गतिविधियों का हिस्सा हैं। इनसे स्थानीय भाषा समुदायों में हिंदी के लिए सकर्मक अभिरुचि उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि संस्थान हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में हिंदी के प्रचार–प्रसार और प्रोत्साहन हेतु निरंतर संलग्न है।

पूर्वोत्तर भारत में उच्च शिक्षण के स्तर पर हिंदी की ज़मीन तैयार करने से लेकर देश–विदेश में हिंदी के प्रचार–प्रसार के मध्य आप अपनी भूमिका को किस प्रकार देखते हैं?

पूर्वोत्तर भारत के राज्य देश की समृद्ध भाषाई और सांस्कृतिक विरासत के क्षेत्र हैं। जनजातीय विविधता के साथ यहाँ की भाषाएँ, लोक साहित्य एवं संस्कृतियों के अनेक अनछुए पक्ष हैं, जिनसे शेष देश का संवाद होना चाहिए। पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के लिए प्रेम और समर्थन का भाव है। हिंदी इन क्षेत्रों की संस्कृतियों को जोड़ने और इनके साथ संवाद का महत्त्वपूर्ण माध्यम हो सकती है। इसलिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक के रूप में पूर्वोत्तर भारत की 30 से अधिक भाषाओं के अध्येता कोश तैयार कराने का निर्णय लिया। अब तक ऐसे 22 कोश प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें हिंदी–खासी, हिंदी–राइ, हिंदी–गारो, हिंदी–मिजो, हिंदी–कॉकबरक, हिंदी–मणिपुरी, हिंदी–निशी, हिंदी–जेलियांग, हिंदी–लिंबू, हिंदी–लेप्चा, हिंदी–असमिया, हिंदी–नोक्ते आदि उल्लेखनीय हैं। ये कोश पूर्वोत्तर भारत के विद्यार्थियों की हिंदी शिक्षण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्त्वपूर्ण साधन बनेंगे। संस्थान के इस उद्यम का पूर्वोत्तर भारत में अपार स्वागत किया गया। तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री स्मृति इरानी जी ने इस कार्य की प्रशंसा भारत की संसद में की। आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि हिंदीतर भाषी क्षेत्रों से निरंतर प्राप्त हो रही माँग को देखते हुए संस्थान ने पूर्वोत्तर के अलावा अन्य हिंदीतर भारतीय भाषाओं के अध्येता कोश निर्माण के लिए भी कार्य किया है। कोश निर्माण के अतिरिक्त पूर्वोत्तर की भाषाओं के लोक साहित्य को हिंदी में अनूदित कर प्रकाशित किया जा रहा है। इस प्रकार की अनेक पुस्तकें संस्थान ने

प्रकाशित की हैं।

पूर्वोत्तर के लिए यह सब काम तो आपने निदेशक बनने के बाद किया, पर इसके पहले जब आप एक अध्यापक और सामाजिक कार्यकर्ता के तौर पर अरुणाचल सहित पूर्वोत्तर के अन्य प्रांतों में हिंदी के लिए काम कर रहे थे, उस अनुभव के विषय में बताएँ।

पूर्वोत्तर से मेरा निजी लगाव रहा है। अरुणाचल प्रदेश के एकमात्र विश्वविद्यालय, अरुणाचल विश्वविद्यालय (अब राजीव गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय) में हिंदी विषय प्रारंभ होने के अगले सत्र में मैं वहाँ रीडर के रूप में गया। दो वर्ष बाद ही रीडर एवं अध्यक्ष हो गया। इस रूप में विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयों तथा स्नातकोत्तर का पाठ्यक्रम नये सिरे से निर्मित करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस पाठ्यक्रम को मैंने भारत के चर्चित विश्वविद्यालयों के साथ ही यू.जी.सी. के मॉडल पाठ्यक्रम के साथ जोड़कर तैयार किया। इसका लाभ यह हुआ कि छात्रों की रुचि 'नेट' (NET) के पाठ्यक्रम में हुई। उनका मनोबल इस रूप में तैयार हुआ कि जो पाठ्यक्रम काशी हिंदू विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय लखनऊ विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा हैदराबाद विश्वविद्यालय जैसे विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है, उसे हम भी पढ़ रहे हैं। नतीजा यह हुआ कि एक वर्ष बाद ही 'नेट' (NET) और 'स्लेट' (SLET) की परीक्षाएँ अरुणाचल के विद्यार्थी उत्तीर्ण करने लगे। आपको आश्चर्य और दुख होगा कि 2005 तक अरुणाचल का एक भी व्यक्ति हिंदी का व्याख्याता नहीं था। जब 'नेट' (NET) की अनिवार्यता नहीं थी, तब भी नहीं और जब 'नेट' (NET) लागू हुआ तब भी कोई अभ्यर्थी 'नेट' (NET) उत्तीर्ण नहीं था।

अमरेंद्र जी, बहुत ही भावुक प्रसंग आपको सुनाता हूँ। बात 2002 की होगी। दोइमुख (राजीव गांधी विश्वविद्यालय के पास का एक कस्बा) में मेरा स्कूटर खराब हो गया। मैंने किसी विद्यार्थी से बाइक पर लिफ़्ट ली। रास्ते में उसका परिचय लिया। उसने भी मेरा परिचय पूछा। जैसे ही मैंने स्वयं को हिंदी का अध्यापक बतलाया, उसने एक चुभता हुआ प्रश्न पूछा, ''सर! अरुणाचल प्रदेश में कॉलिज के स्तर पर पिछले 30 वर्षों से अधिक समय से हिंदी पढ़ाई जा रही है। प्रायः पूरा अरुणाचल हिंदी में बात करता है। हिंदी का कोई विरोध भी नहीं है, अपितु पूरा सम्मान है। अरुणाचल वासियों ने विशेष रूप से दिल्ली विश्वविद्यालय और वनस्थली विद्यापीठ में जाकर हिंदी की पढ़ाई की है, लेकिन एक भी अरुणाचली हिंदी का लेक्चरर नहीं है। ऐसा क्यों है?'' प्रश्न सुनकर मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ था। उसने विश्वविद्यालय में मेरे दरवाज़े पर लाकर मुझे छोड़ा। लौटते समय मैं केवल उसके चेहरे को देख रहा था। हतप्रभ, कोई उत्तर नहीं दे सका। इस प्रश्न के उत्तर में यह संकल्प किया कि इस वर्ष हमारा कोई–न–कोई विद्यार्थी NET/SLET की परीक्षा अवश्य पास करेगा। विभाग में हम केवल 3 प्राध्यापक थे। कक्षा से चुनकर 3–4 विद्यार्थियों में संभावना को तलाशते हुए विशेष ध्यान देना प्रारंभ किया। कक्षा के बाद तथा घर पर बुलाकर उन्हें पढ़ाया। उन विद्यार्थियों ने भी लाज रखी। क्रमशः ये NET/SLET में उत्तीर्ण होते चले गए। मात्र 4 वर्ष, अर्थात् 2007 के विश्व हिंदी सम्मेलन, न्यूयॉर्क में अपने भाषण के दौरान जब मैंने ये सूचना दी कि अरुणाचल प्रदेश में 22 NET/SLET और JRF हैं तो न केवल इसे ध्यान से सुना गया, अपितु सम्मेलन के बाद प्रकाशित होने वाली स्मारिका में भी इस सूचना को छापा गया। 2005 में पहला अरुणाचली लेक्चरर के रूप में हिंदी विभाग में नियुक्त हुआ। आज यह कहने में गर्व और गौरव की अनुभूति हो रही है कि डॉ. ओकेन लेगो हिंदी विभाग में प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हैं। उन्होंने मेरे निर्देशन में ही संत दादू दयाल पर शोध कार्य किया है।

आज मेरे विद्यार्थी केवल हिंदी में अध्यापन

करके हिंदी की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ा रहे हैं, बल्कि बड़े पैमाने पर रचनात्मक लेखन भी कर रहे हैं। पिछले वर्ष साहित्य अकादमी द्वारा हिंदी का युवा पुरस्कार अरुणाचल के तारो सिंदिक को मिला। इस लड़के ने अपनी पहली कविता हिंदी विभाग द्वारा आयोजित हिंदी दिवस समारोह में सुनाई थी और प्रशंसा पाई थी। उस उत्साहवर्धन का परिणाम यह हुआ कि वह नियमित कविता लेखन करने लगा और इस प्रकार आज हिंदी का एक प्रसिद्ध नाम है। हमारी एक छात्रा जोराम यालम के कई कहानी–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ताई तुगुंग ने कई नाटक लिखे हैं और उनका मंचन कर रहा है। जमुना बीनी अपनी कविताओं के लिए भारत के विभिन्न साहित्यिक मंचों पर बुलाई जाती है। तुंबम रीबा का एक उपन्यास छपा है। सोनम बाङमू, पद्मावती अंगङ, तेची उपेन तारा, तादाम रुटी संस्थान द्वारा बनाए जा रहे अध्येता–कोश में विषय विशेषज्ञ के रूप में कठिन श्रम कर हिंदी और अरुणाचली भाषाओं के बीच सेतु का काम कर रहे हैं। हिंदी विभाग के विभिन्न विद्यार्थी अरुणाचल में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रसिद्ध प्रस्तोता हैं। वे पूर्वोत्तर भारत में हिंदी का बाज़ार निर्मित कर रहे हैं और उसके प्रसार में बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। हिंदी का प्रसार केवल एक निश्चित राह पर नहीं होगा, अरुणाचल के अनुभव से मैं ऐसा ही कह सकता हूँ। सारांश यह है कि हिंदी की आधार भूमि तैयार करना व्यक्ति विशेष का श्रेय नहीं। यह समन्वित संकल्प का उद्यम है। फिर भी व्यक्तिगत स्तर पर एक शिक्षक, प्रशासक या नीति निर्देशक के रूप में अपने संकल्प से जो कुछ भी मैं कर पाया, उसका श्रेय मैं हिंदी को ही देता हूँ, जिसकी सेवा का अवसर मुझे मिला।

आपने पूर्वोत्तर में हिंदी के प्रसार के लिए और कौन से कार्य किए?

पूर्वोत्तर के युवाओं में कला के प्रति स्वाभाविक आकर्षण और जन्मजात प्रतिभा होती है। बिना किसी प्रशिक्षण के वे बहुत ही अच्छा गायन, नृत्य और अभिनय कर लेते हैं। नाटक में सभी कलाओं का समावेश होता है, नाटकों में मेरी रुचि भी थी, तो अरुणाचल आते ही मैंने शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' का निर्देशन और मंचन किया और विद्यार्थियों के उत्साहवर्धन के लिए केंद्रीय पात्र की भूमिका भी निभाई। फिर मैंने 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' से संपर्क साधा और उसकी दो कार्यशालाएँ करायीं। इन कार्यशालाओं से कई छात्र 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' में चयनित हुए। आप जब अरुणाचल आए तो आपने भी दो नाटकों का निर्देशन और मंचन कराया। तो इससे हिंदी नाटक के प्रति अरुणाचल में रुचि बढ़ी। आज अरुणाचल में बड़े पैमाने पर हिंदी नाटक खेले जा रहे हैं और इसमें काम करने वाले अभिनेता अरुणाचल की स्थानीय भाषाओं में बनने वाली फ़िल्मों में भी काम कर रहे हैं। मेरे दो छात्र ताई तुगुंग और तेची उपेन तारा अरुणाचल के प्रसिद्ध अभिनेता हैं। पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में बड़ी संख्या में हिंदी अध्यापक कार्यरत थे। सन् 2000 में जब मैं अरुणाचल गया तब मैंने उनके लिए एक रिफ़्रेशर कोर्स का आयोजन कराया। अनेकानेक कार्यशालाओं और संगोष्ठियों का आयोजन कर हिंदी के पक्ष में माहौल बनाने का काम तो किया ही।

आप अक्सर यह कहते रहे हैं कि यदि हिंदी भारत की राजभाषा है, तो उससे मिलने वाले लाभों पर समस्त भारत का हक है। हिंदी भारत में होनी चाहिए और हिंदी में भारत होना चाहिए।

आपने ठीक कहा। युवाकाल से ही मैं हिंदी के प्रचार–प्रसार को लेकर गंभीर रहा हूँ और इसके लिए कई तरह से कार्य करता रहा हूँ। पर इस लगाव के बावजूद मैंने एक बात देखी कि हिंदी भाषी लोग हिंदीतर भाषी लोगों से यह अपेक्षा तो करते हैं कि वे हिंदी सीखें, लेकिन वे कोई अन्य भारतीय भाषा नहीं सीखना चाहते। इसके साथ ही वे हिंदी के द्वारा सृजित होने वाली नौकरियों पर भी अपना हक मानते हैं। अरुणाचल

में मैं हिंदी दिवस को भारतीय भाषा दिवस के रूप में मनाता था। उस दिन होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में विभिन्न भाषाओं की भागीदारी होती थी। अरुणाचल में रहते हुए मैंने हर संभव कोशिश की कि इस प्रदेश के विद्यालयों–महाविद्यालयों में सृजित होने वाली नौकरियों पर पहला हक यहाँ के लोगों का हो। इसका सुखद परिणाम यह हुआ कि आज अरुणाचल में प्राथमिक शिक्षक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के अस्सी प्रतिशत पदों पर स्थानीय लोग अपना सहयोग दे रहे हैं। इससे उनके भीतर अपनत्व की भावना पैदा हुई है और वे हिंदी विरोध की आवाज़ों का सामना कर रहे हैं। ऐसा दुनिया भर में होना चाहिए। यह पुरानी धारणा है कि हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए हिंदी प्रदेश से कोई आदमी जाएगा। केंद्रीय हिंदी संस्थान का निदेशक बनने के बाद अध्येता कोश के निर्माण के दौरान मेरे मन में यह धारणा थी कि इससे हिंदी उन भाषाओं के करीब जाएगी जिसके लोग हिंदी से परिचित नहीं हैं। इससे वे हिंदी के साथ जुड़ेंगे। मैंने एक और चीज़ देखी कि हिंदी की तमाम पत्रिकाओं में छपने वाले लोग हिंदी प्रदेश के होते हैं। अहिंदी भाषी लेखकों की रचनाओं को स्तरहीन कहकर छाँट दिया जाता है। मैं जिस किसी भी अहिंदी भाषी प्रांत में गया, यह शिकायत मैंने आम तौर पर पाई। निदेशक बनने के बाद मैंने 'समन्वय पूर्वोत्तर' के साथ–साथ 'समन्वय दक्षिण' और 'समन्वय पश्चिम' नाम से दो और पत्रिकाएँ आरंभ की। ये पत्रिकाएँ अहिंदी भाषी प्रांत में सक्रिय लेखकों के लिए एक प्लेटफ़ॉर्म है। वे उस क्षेत्र की संस्कृति से संबंधित विषय पर जो भी लिखेंगे, यहाँ छपेगा और इस प्रकार हिंदी के विकास में वे अपना योगदान देंगे। इसी तरह भारत से बाहर के हिंदी लेखकों के लिए 'प्रवासी जगत' नाम से एक पत्रिका शुरू की, जो दुनिया भर में हिंदी में साहित्य सृजन करने वाले लेखकों का एक मंच है। ऐसा ही काम विश्व हिंदी सचिवालय भी कर रहा है। विश्व हिंदी सचिवालय ने 'विश्व हिंदी साहित्य' नाम से एक नई सृजनात्मक पत्रिका आरंभ की है। यह पत्रिका वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रसार में अपनी भूमिका निभाएगी।

यदि वर्तमान शिक्षा परिदृश्य की बात करें तो हम देखते हैं कि शिक्षार्थी, शिक्षक और शैक्षिक पाठ्यक्रम में से शिक्षक और विद्यार्थी तो बदल रहे हैं, परंतु समय के साथ–साथ पाठ्यक्रमों में अपेक्षित बदलाव और गतिशीलता नहीं है। इस विषय पर आप क्या कहना चाहेंगे?

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने निरंतर यह आग्रह किया है कि पाठ्यक्रमों में परिवर्तन होते रहना चाहिए। यू.जी.सी. के द्वारा प्रत्येक 10–12 वर्ष पर मॉडल पाठ्यक्रम तैयार कराए गए हैं। 2015 में CBCS (चयन आधारित क्रेडिट पद्धति) का पाठ्यक्रम मेरे संयोजन में तैयार हुआ। लगभग 84 प्रश्न–पत्र विकसित करके हमारी टीम ने प्रस्तुत किए। इन्हें यू.जी.सी. की साइट पर डाला गया। लोगों के सुझाव आए। उनको ध्यान में रखते हुए निर्मित पाठ्यक्रमों को परिवर्धित किया गया। अधिकतर विश्वविद्यालय के विभाग अपनी सुविधानुसार पाठ्यक्रम बनाते हैं। वस्तुतः राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय संदर्भों, आवश्यकताओं और माँग को ध्यान में रखते हुए हिंदी का पाठ्यक्रम भी सर्वत्र विकसित किया जाना चाहिए। सर्वसमावेशिकता और सर्वस्पर्शिता का ध्यान रखना साहित्य के पाठ्यक्रम में अनिवार्य है। भाषा–विज्ञान, काव्य–शास्त्र और पत्रकारिता हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों को एम.ए. पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाता था। अब इसकी ओर से ध्यान हटा है। भाषा–विज्ञान और काव्य–शास्त्र का एक भी अध्याय पढ़े बिना जो विद्यार्थी स्नातकोत्तर उत्तीर्ण करेगा, वह साहित्य के मर्म को गहराई से नहीं समझ पाएगा। पाठ्यक्रम बार–बार चिंतन करने का तथा तदनुरूप व्यवहार में लाने का विषय है।

विद्यालय स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण आज भी चुनौतीपूर्ण बना हुआ है। आज यदि किसी एक विषय को लेकर सबसे अधिक शैक्षिक लापरवाही

देखी जाती है, तो वह हमारी मातृभाषा है। इस संबंध में आपका अनुभव क्या कहता है?

मातृभाषा का प्रश्न अहम है। आप चाहें जितनी भी भाषाएँ सीख जाएँ, आपकी मातृभाषा जैसी होगी, सीखी गई भाषा उससे बेहतर नहीं हो सकती। मातृभाषा की शब्दावली जिसकी जितनी समृद्ध होती है वह उसी अनुपात में दूसरी सीखी गई भाषा की शब्दावली को भी समृद्ध करना चाहता है। अपने अनुभव से कह सकते हैं कि ऐसे बहुत से चर्चित–प्रतिष्ठित लोग हैं, जिनकी अंग्रेज़ी अच्छी है, लेकिन हिंदी या अपनी मातृभाषा कमज़ोर है, तो उन्हें उसका पछतावा रहता है। शिक्षण में प्रथम भाषा या मातृभाषा के प्रति उदासीनता गंभीर विषय है। विद्यार्थी की ज्ञान–चेतना, जिज्ञासावृत्ति, उसका पूरा व्यक्तित्व विकास इससे प्रभावित होता है। यदि आज अपने समाज में हम मौलिक प्रतिभा, सर्जनात्मक चेतना और अनुसंधान दृष्टि का ठहराव अनुभव करते हैं, तो इसके मूल में मातृभाषा की उपेक्षा एक बड़ा कारण है।

हिंदीतर भाषी राज्यों में हिंदी सीखने–सिखाने के सरल उपायों की बात बार–बार कही जाती है। हिंदी संस्थान इस दिशा में क्या करता है? और आप इस मुद्दे को किस प्रकार देखते हैं?

हिंदी भारत की भावात्मक एकता और राष्ट्रीय एकीकरण का महत्त्वपूर्ण अंतःसूत्र है। हिंदी सहित भारतीय भाषाओं का समन्वित विकास कैसे हो, इसका नीति निर्देशन संविधान के अनुच्छेद 351 में किया गया है। संस्थान हिंदी भाषा के विकास हेतु इस अनुच्छेद की मूल भावना का अनुसरण करता है। यही संस्थान की गतिविधियों का आधार भी है। सरलता भाषा की प्रकृति का अंग है, लेकिन सरलता किसी प्रकार का भाषाई ऑपरेशन नहीं है। भाषा की मूलभूत प्रकृति, उसका स्थानीय परिवेश, सांस्कृतिक तत्त्व, ऐतिहासिक संस्कार और भाषिक विशिष्टताएँ मिलकर उसके आधुनिक स्वरूप को गढ़ते हैं। भाषा अपनी प्रकृति के परे न तो अति परिमार्जन को पचा पाती है और न सरलता के नाम पर अपनी मौलिक विशिष्टता की हत्या को सहन कर पाती है। हिंदी के सरलीकरण के मुद्दे को भी इसी दृष्टि पथ से देखना होगा। भाषा का कोई भी स्वरूप जितना प्रचार–प्रसार पाता है, अपनी लोकोपयोगिता सिद्ध कर पाता है, भाषा की सहज प्रकृति का हिस्सा बनने की योग्यता रखता है, वही वास्तव में सरल होता है। उसी की प्रासंगिकता भी होती है। संस्थान के शिक्षण–प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रकाशन, भाषा संवर्धन एवं प्रोत्साहन की योजनाएँ हिंदी के प्रति व्याप्त कठिनताबोध को दूर करने के लिए हैं। हिंदी के व्यापक प्रचार–प्रसार और बहुभाषिक संवाद के लिए सरलीकरण के प्रयासों का स्वागत होना चाहिए, किंतु भाषा की मौलिक अस्मिता को बनाए रखना भी उतना ही ज़रूरी है।

आपका नाम आज हिंदी के अध्येता कोश निर्माण के लिए देश भर में जाना–पहचाना जा रहा है। केंद्रीय हिंदी संस्थान ने आपके नेतृत्व में हिंदीतर भारतीय भाषाओं के कोश–निर्माण का उद्यम आरंभ किया है। इसके लक्ष्य क्या हैं? विभिन्न हिंदीतर भाषाओं के अध्येता कोश निर्माण की आवश्यकता क्या है? ये कोश सामान्य शब्दकोशों से किस प्रकार अलग होते हैं? इस योजना के बारे में विस्तार से बताइए।

जैसा कि आपको पहले भी बताया कि अध्येता कोश निर्माण संस्थान की एक महत्त्वपूर्ण गतिविधि है। राज्य सरकारों की माँग पर संस्थान विभिन्न स्तर के विद्यार्थियों के लिए शिक्षण सामग्री निर्माण पहले से करता आया है। विशेष रूप से पूर्वोत्तर भाषाओं के कोश, पाठ्य पुस्तकें और व्याकरण अभ्यास पुस्तिकाएँ संस्थान द्वारा तैयार की गई हैं। इस गतिविधि को अधिक व्यवस्थित तरीके से संचालित करने की अपेक्षा थी। इसलिए संस्थान ने हिंदीतर भाषाओं के अध्येता कोश निर्माण पर अपना लक्ष्य केंद्रित किया। अध्येता

कोश निर्माण योजना का लक्ष्य हिंदीतर भाषी विद्यार्थियों को हिंदी शिक्षण की आधारभूत सामग्री उपलब्ध कराना है, ताकि वे अपने अध्ययन के दौरान अपनी हिंदी पाठ्य सामग्री को भली–भाँति समझ सकें। विद्यार्थियों के उपयोग हेतु इन कोशों के अंत में व्याकरण एवं रचना अभ्यास के पाठ भी दिए जाते हैं। इस प्रयास का परिणाम है कि पूर्वोत्तर की भाषाओं के साथ ही नेपाली, ओड़िया, बल्ती, भूटिया, भीली के कोश प्रकाशित हो चुके हैं। बँगला, दक्षिण की चारों प्रमुख भाषाओं – तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम; गुजरात की चार प्रधान बोलियों – सुरती, पट्टणी, सौराष्ट्री, चरोत्तरी और अन्य अनेक भाषाओं के अध्येता कोश शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

एक और बात, भाषा और साहित्य केंद्रित विभिन्न विषयों को लेकर जो अकादमिक संगोष्ठियाँ देश भर में आयोजित हो रही हैं, उनकी उपादेयता किस प्रकार सिद्ध हो? उनका लाभ लक्षित विद्यार्थी, शोधार्थी और आम समाज तक कैसे पहुँचे? इस संबंध में आपका क्या मत है?

सभा और संगोष्ठियों की उपादेयता असंदिग्ध रूप से प्रमाणित है। ये किस प्रकार से आयोजित हों, विषय क्या हो, वक्ता कौन हों तथा संगोष्ठी के पश्चात् निकले निष्कर्षों का उपयोग किस प्रकार किया जाए, यह विचारणीय है। वस्तुतः संगोष्ठी का विषय तय करते समय जिस क्षेत्र में कार्यक्रम हो रहा है, वहाँ के लोगों को, विशेष रूप से विद्यार्थियों को अधिकतम लाभ कैसे पहुँचाया जा सकता है, इस विषय को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। जिस विषय पर संगोष्ठी आयोजित है, उस विषय का, उस क्षेत्र का राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काम करने वाला व्यक्ति वहाँ अवश्य होना चाहिए। ऐसे विद्वानों के रहने से अब तक उस क्षेत्र में किस प्रकार का कार्य हुआ है और प्रगति की क्या संभावनाएँ हैं तथा इंगित क्षेत्र में किस प्रकार अपशिष्टों का प्रवेश हो रहा है, उसकी जानकारी होती है। यदि संगोष्ठी के लिए निर्धारित विषय का अधिकृत विद्वान वक्ता उपस्थित नहीं है तो उस गोष्ठी का लाभ विद्यार्थियों और शोधार्थियों को विशेष रूप से नहीं हो सकता। आयोजक को इसका ध्यान रखना ही होगा।

आप लगभग चौदह माह तक वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष रहे। इस छोटे से कार्यकाल में ही आपने राजभाषा हिंदी के प्रसार के विषय में कुछ निर्णायक कदम उठाए, इस विषय में कुछ बताएँ।

मैं दिसंबर, 15 में आयोग का अध्यक्ष बना और फ़रवरी, 17 तक इस पद पर रहा। आयोग से तो किसी न किसी बहाने मैं कई वर्षों से संबद्ध रहा हूँ। यहाँ से प्रकाशित होने वाला प्रशासनिक शब्दावली कोश देश भर के कार्यालयों में राजभाषा के प्रयोग में दिशा निर्देशक की भूमिका निभाता है। अंग्रेज़ी में प्रयुक्त होने वाले किसी पारिभाषिक शब्द के हिंदी पर्याय को लेकर तमाम तरह का भ्रम रहता है। यह कोश इस भ्रम का निराकरण करता है। जब मैं अध्यक्ष बना तो पाया कि यह कोश कई सालों से नवीनीकृत नहीं हुआ है। इसमें कई ऐसे शब्द हैं जो अब प्रयोग में नहीं हैं, जैसे तार से संबंधित पारिभाषिक पद अब प्रयोग में नहीं हैं; जबकि हज़ारों नए शब्दों का हिंदी पर्याय इसमें है ही नहीं। कई हज़ार शब्दों और वाक्यांशों को इससे बाहर निकलवाकर और लगभग तीन हज़ार नए शब्दों और वाक्यांशों को जोड़कर मैंने इसकी लगभग एक लाख प्रतियाँ पुनर्मुद्रित करवाईं। अब इसका पूर्णतः संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण सरकारी कार्यालयों में उपलब्ध है। आयोग अनेकानेक विषयों का शब्दकोश निर्मित कराता है, मैंने अपने कार्यकाल के दौरान बतौर अध्यक्ष एवं प्रधान संपादक राजनीति विज्ञान शब्दावली (हिंदी–अंग्रेज़ी), राजनीति विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेज़ी–हिंदी–असमिया), राजनीति विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेज़ी–हिंदी–बांग्ला),

आयुर्वेद मूलभूत शब्द–संग्रह (चिकित्सकीय) (संस्कृत–अंग्रेज़ी–हिंदी), आयुर्वेद परिभाषा कोश (संस्कृत–अंग्रेज़ी–हिंदी), जनसंचार शब्दावली (अंग्रेज़ी–हिंदी), मूलभूत प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेज़ी–संस्कृत), मूलभूत प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेज़ी–सिंधी) निर्मित और प्रकाशित करवाया। ये कोश उक्त विषयों को हिंदी माध्यम से पढ़ाए जाने में बहुत मददगार होंगे। आयोग द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं 'विज्ञान गरिमा सिंधु' एवं 'ज्ञान गरिमा सिंधु' के नियमित प्रकाशन की भी व्यवस्था की।

आप मध्यकालीन संत साहित्य के विख्यात विद्वान हैं। एक अध्यापक, अनुसंधाता, चिंतक–आलोचक के रूप में आपकी उपस्थिति सभी को गौरवान्वित करती है। अपनी साहित्यिक अभिरुचियों और लेखन–कार्यों के बारे में कुछ बताइए।

मध्यकालीन साहित्य को ध्यान में रखते हुए और मेरे द्वारा लिखे गए पचास से अधिक आलेखों की चर्चा यत्र–तत्र हुई है। इस क्षेत्र में 'संत साहित्य की समझ' और 'संत रज्जब' को हम उपलब्धि के रूप में देखते हैं। हिंदी शोध ही संत साहित्य के साथ प्रारंभ हुआ। पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने हिंदी का पहला शोध प्रबंध लिखा और यह शोध प्रबंध निर्गुण साहित्य पर केंद्रित था। पीतांबर दत्त बड़थ्वाल ने इस काम को तब किया था जब हिंदी में पुस्तकें प्रकाशित नहीं थीं। उन्होंने हस्तलिखित पोथियों को आधार बनाकर उनका उपयोग किया। हिंदी का स्वर्णकाल भक्तिकाल है। उसमें कई धाराएँ हैं। सर्वाधिक कवि निर्गुण संत हैं। ये सभी जातियों से आते हैं। सभी प्रांतों से आते हैं। अधिकतर प्रांतों के संतों ने भी हिंदी में लिखा। विचार के साथ हिंदी भाषा का क्षेत्र इसके कारण व्यापक हुआ। इस विचार–परंपरा में सुधार की गुंजाइश को मूर्त रूप संतों ने दिया। इन्होंने जो कहा उसे समाज ने कंठहार बनाया और स्वीकार भी किया। जाति, भाषा और प्रांत की कुंठाओं में आज भी देश जकड़ा हुआ है। इसको संतों ने तोड़ा। नामदेव 'सिंपी' जाति के थे। सवर्णों ने इन्हें स्वीकार किया। ये सगुण भी थे, निर्गुण भी थे और नाथपंथी योगी भी। नामदेव की जितनी स्वीकार्यता मराठी में है, उससे कम पंजाबी और हिंदी में नहीं। गुरु ग्रंथ साहिब में प्रमुख कवि के रूप में नामदेव की उपस्थिति उनकी अखिल भारतीय स्वीकार्यता का द्योतक है।

जहाँ तक मेरी अपनी अध्ययन–अभिरुचियों की बात है, तो बताना चाहूँगा कि मैंने अपनी बारहवीं तक की शिक्षा गणित और विज्ञान के साथ पूरी की। स्नातक स्तर पर हिंदी ऑनर्स के साथ अंग्रेज़ी और अर्थशास्त्र पढ़ा। काशी में संस्कृत के विद्यार्थियों के साथ बैठकर संस्कृत संभाषण का अभ्यास किया और काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का अर्थ लगाया। स्नातक में अर्थशास्त्र पढ़ने के कारण भारतीय अर्थशास्त्र या कृषि अर्थशास्त्र में मेरी गहरी दिलचस्पी है। कृषि से जुड़ाव भी है। इससे संबंधित आलेख जहाँ भी मिल जाते हैं, उनको अवश्य पढ़ता हूँ। भारतीय राष्ट्र अक्षुण्ण, सबल, शिक्षित और समृद्ध बने – इस धारणा को लेकर जो कुछ भी लिखा–पढ़ा जाता है, मेरी रुचि का विषय होता है। भारतीय साहित्य के विविध क्षेत्र मेरे लेखन के केंद्र में हैं। लोक साहित्य विशेषतः अरुणाचली, भोजपुरी और ब्रज को मैंने रुचिपूर्वक पढ़ा है। अरुणाचल के लोक साहित्य पर लिखा भी बहुत है। वह यत्र–तत्र प्रकाशित भी है।

क्या हिंदी साहित्य का मध्यकाल आज भी अध्ययन–अध्यापन के लिहाज़ से एक थ्रस्ट एरिया है? मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन–अध्यापन की वर्तमान स्थितियों को लेकर आप कितने आश्वस्त हैं? साथ ही, आपके अनुसार मध्यकालीन साहित्य की आधुनिक परिवेश में क्या प्रासंगिकता है?

आपने पहले संत साहित्य के विषय में पूछा। यह प्रश्न पूरे मध्यकाल पर है। भारत जिन कारणों से

एकजुट है या होता है उनमें एक बड़ा कारण मध्यकालीन साहित्य की प्रासंगिकता है। यह देश कबीर, दादूदयाल, रैदास, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, जायसी, कुतबन, रसखान और सुंदरदास जैसे कवियों के संग सोता और जागता है। पूरा भक्ति साहित्य और पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के मंदिरों में स्थापित कृष्ण विग्रह किसी–न–किसी संत की भक्ति और लीला से जुड़ते हैं। राम का नाम और उनकी मर्यादा का ध्यान महाकाव्य लिखने के लिए कभी वाल्मीकि को था, तो देश को स्वतंत्र करने के क्रम में मोहनदास करमचंद गांधी को भी था। इस राम नाम को जन–जन तक मध्यकालीन कवियों ने पहुँचाया। राम इस देश की भक्ति और मुक्ति के लिए तो हैं ही, वे परिचितों या अपरिचितों के मिलने पर अभिवादन के स्वर भी हैं। सूफ़ियों ने इस स्वर के साथ अपनी एकतानता को तो जोड़ा ही, समाज को भी एक तान बनाया। जिस प्रेम को आराध्य को अर्पित किया, वह प्रेम समाज के लिए भी आराध्य बना। तमाम विसंगतियों के बावजूद सूफ़ी साधकों के स्थान सामाजिक सौहार्द के केंद्र बने हुए हैं। इस पूरे साहित्य को पढ़ाने के लिए या इस पर काम करने के लिए एक अलग प्रकार की निष्ठा और भक्ति चाहिए।

मुझे ध्यान आ रहा है कि रैदास मंदिर, राजघाट, वाराणसी में रैदास के पदों को शिल्पपट पर लिखकर मंदिर में लगाए जाने का पूरा अकादमिक कार्य प्रोफ़ेसर शुकदेव सिंह के पास था। मैं उनके अधीन शोधार्थी था। काम भी संत साहित्य पर था। कई बार उनके साथ जाकर पदों को पढ़ता था। इस काम के लिए कोई पारिश्रमिक नहीं था, केवल गुरुदेव के आदेश का पालन और साहित्य के प्रति प्रेम जेठ की दुपहरी में वहाँ खींचकर ले जाता था। हस्तलेखों से रैदास के पदों का चयन और पाठ निर्धारण शुकदेव जी ने जिस दक्षता और श्रम से कराया, वह हमारे लिए प्रेरणाप्रद है। इस क्रम में हस्तलेख पाठ का अभ्यास भी हुआ। हस्तलेखों की ओर जो प्रवृत्ति हुई उसका श्रेय गुरुवर को है। आज भी यह साहित्य समाज की आवश्यकता है। भारतीय समाज में परिवर्तन, विकास, भाईचारा और स्थायित्व यदि साहित्य से आते हैं, तो इसी साहित्य से आएँगे। संत रैदास, संत रज्जब, संत दरियादास, संत वखना, संत वाजिंद के अलावा तमाम भक्ति संप्रदाय आज भी भारतीय समाज के श्रद्धा के केंद्र हैं। इस साहित्य को दुर्लक्ष्य करने के कारण बहुत नुकसान हुआ है, होता जा रहा है; समाज का भी, साहित्य का भी और अंततोगत्वा पूरे देश का।

मध्यकालीन साहित्य को गहराई से जानने–समझने के लिए कुछ अतिरिक्त योग्यताओं की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें हम अर्जित नहीं करना चाहते हैं। इसलिए उन्हें जो लोग अर्जित नहीं करना चाहते, वे उसे अनवरत नकारने की कोशिश करते हैं। मध्यकालीन साहित्य को समझने के लिए हिंदी की बोलियों का ज्ञान आवश्यक है। विशेष रूप से राजस्थानी, ब्रज और अवधी का; क्योंकि इन भाषाओं में बड़ी मात्रा में यह साहित्य रचा गया है। ऐसे तो संत साहित्य के केंद्रीय व्यक्तित्व कबीरदास भोजपुरी से थे, रैदास, दरियादास और धरनी धरणदास भी यहीं से आते हैं, लेकिन बड़ी सूची और शृंखला राजस्थान की विभिन्न बोलियों से आने वाले संतों की है। अधिकांश संतों का साहित्य आज भी हस्तलेखों में दबा पड़ा है। बहुत दिन नहीं हुए जब संत रज्जब का विशाल साहित्य पाण्डुलिपियों से बाहर आया। यदि साहित्य और समाज को लगता है कि उनका उपयोग हमें मज़बूत करता है; हमें शांति और सुख प्रदान करता है; हमारी वासनाओं का दमन करता है; हृदय के तारों को प्राणि मात्र से जोड़ता है; दुख–सुख की संवेदना को एकाग्र बनाता है; हमारी मानसिक ऊर्जा को उद्‌बुध करता है; तमाम प्रकार की जड़ताओं से मुक्त करता है; जन–जन की भावनाओं में समानता और समरसता के धागे को पिरोता है; हमारे गाँव–हमारी कृषि, गो–गंगा और तज्जनित उत्पाद, कुल मिलाकर शास्त्रीय संस्कृति और परिवेश का वहन करता है; रिश्तों की मज़बूती को बढ़ाता है, सामर्थ्य

और बल के उपयोग की चेतना देता है; दुष्प्रवृत्ति को विभेदित करता है; संगीत, राग–रागिनी, नृत्य–गीत सहित तमाम प्रकार के रंगों से जोड़कर भावनात्मक चेतना को विस्तारित करता है; मनुष्य–मनुष्य के बीच की, जाति–जाति के बीच की, धर्म–धर्म के बीच की, क्षेत्र–क्षेत्र के बीच की खाई को पाटता है; मनुष्य ही नहीं मनुष्येतर प्राणियों या यों कहें समस्त सृष्टि को यदि साहित्य–काव्य का विषय बनाता है, तो यह मानना चाहिए कि आज भी यह पठन–पाठन, लेखन और विचार की दुनिया के लिए साहित्य का सबसे बड़ा थ्रस्ट एरिया है।

आधुनिक परिवेश की जो माँग है, उसकी पूर्ति यह साहित्य करता है। माँग यदि विद्रूप और पूरी तरह पाश्चात्य सभ्यता आधारित होगी, तो इस साहित्य से निराशा हाथ लगेगी। यदि आपकी अभिरुचि माखन, मिसरी, रोट, हलवा, दही, छाछ, घी, मक्खन–मलाई में है, तो भोग और भाव की दृष्टि से कृष्ण भक्ति साहित्य भौतिक रसों का भी आनंद देगा। यदि परांठे से इतर अभिरुचि का विषय पिज़्ज़ा है, तो उसे निराशा होगी। संतों, सूफ़ियों और सगुण भक्तों का तत्त्व ज्ञान साहित्य की चेतना को विस्तारित करता है। रस दशा क्या होती है, व्यापक रूप से इसे समझना हो तो मध्यकालीन साहित्य पढ़ना ही होगा।

साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष लोक साहित्य है। भारतीय भाषाओं का परिदृश्य बोलियों और संस्कृतियों की विविधता से समृद्ध है। हिंदी संस्थान इस विविधता के संरक्षण हेतु क्या कार्य कर रहा है?

संस्थान हिंदी भाषा शिक्षण और संवर्धन के लिए भाषा, साहित्य और संस्कृति के समन्वित विकास हेतु कार्य करता रहा है। आपको कोश निर्माण संबंधी गतिविधियों के बारे में बताया। हिंदीतर भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से पूर्वोत्तर की भाषाओं के लोक साहित्य का हिंदी में अनुवाद कर पुस्तकाकार रूप में प्रकाशन किया जा रहा है। अब तक मणिपुरी, मिजो, कॉकबरक लोक साहित्य और बोरो लोक कथाएँ, ये चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आदी, निशी, नोक्ते, मोनपा, गुजराती लोक साहित्य ग्रंथ निर्माणाधीन हैं। यह योजना अध्येता कोशों के समान ही महत्त्वपूर्ण है। इससे हिंदीतर भाषाओं की लोक संवेदना हिंदी भाषी पाठकों तक पहुँचेगी। स्थानीय लोक जीवन, आचार–विचार, परंपरा, मिथकों, चरित्रों और जीवन मूल्यों से उनका परिचय बढ़ेगा। सामान्य पाठकों का मनोरंजन और ज्ञानारंजन होगा। शोधार्थी इनके आधार पर तुलनात्मक अध्ययनपरक अनुसंधान कर सकेंगे। संस्थान इस दिशा में निरंतर कार्य कर रहा है। यह प्रक्रिया समयानुसार संवर्धित होती रहेगी।

हिंदी के अध्ययन एवं अनुसंधान क्षेत्र में प्रवेश कर रहे व्यापक विद्यार्थी समूह को लक्षित करते हुए उनके मार्गदर्शन हेतु आपका संदेश क्या है?

हिंदी का अध्ययन–अनुसंधान मात्र एक भाषा विशेष की विषय–केंद्रित प्रक्रिया नहीं है। हिंदी से इस देश का संवैधानिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व भी जुड़ा हुआ है। इसका अपना गौरव है, तो चुनौतियाँ भी हैं। बहुभाषा–भाषी भारत में अंतरभाषिक सद्भाव और समन्वय के संवाद सूत्रों को धारण करने का दायित्व हिंदी का है। प्रकारांतर से यह हिंदी भाषी जनता का और विशेष रूप से हिंदी के विद्यार्थियों, शोधार्थियों, शिक्षकों और उन सभी लोगों का दायित्व है जो हिंदी को अपने जीवन और जीविका का आधार बनाते हैं। विद्यार्थी एवं शोधार्थी पूर्ण ज़िम्मेदारी और गौरव के साथ हिंदी के विषयानुशासन में प्रवेश करें और इसके सच्चे पात्र बनकर आगे बढ़ें, यही मेरा संदेश है।

amarrgu@gmail.com

'गिरमिट गीत प्रवासी हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है' – श्रीमती धीरा वर्मा

– श्रीमती सुनंदा वर्मा
सिंगापुर

श्रीमती धीरा वर्मा जब फ़िजी में गिरमिटियों के लिखे गीतों को मंच से गाकर बंधुआ मज़दूरों की व्यथा सुनाती हैं, तब सभागार में उपस्थित लोगों का गला भर आता है, आँखों में आँसू छलक जाते हैं। आलीशान सभागार में बैठे श्रोता, गिरमिटियों की ''छः फुट लम्बी चार फुट चौड़ी कोठरियाँ'' में पहुँच जाते हैं और उन्हीं की पीड़ा का अनुभव करते हैं।

प्रवासी भारतीय लोकगीतों से धीरा वर्मा का परिचय सबसे पहले फ़िजी में हुआ। वहाँ तीन साल रहने के बाद उन्होंने प्रवासी भारतीय लोकगीतों को शोध का विषय बनाया और फ़िजी के साथ प्रवासी भारतीयों वाले अन्य देश जैसे सूरीनाम, मॉरीशस, दक्षिण अफ़्रीका के लोकगीतों पर भी काम किया। धीरा वर्मा गिरमिट गीत को प्रवासी हिंदी साहित्य की अनुपम निधि मानती हैं। वह कहती हैं कि प्रवासी भारतीय लोकगीतों का साहित्यिक महत्त्व तो है ही, साथ ही ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक महत्त्व भी है। प्रस्तुत है अखिल भारतीय महिला लेखिका संघ, दिल्ली की उपाध्यक्षा श्रीमती धीरा वर्मा की वरिष्ठ पत्रकार सुनन्दा वर्मा से अंतरंग बातचीत।

सुनंदा – लोक संगीत और लोक साहित्य से आपका पहला जुड़ाव कब हुआ?

धीरा वर्मा – बचपन से ही मैं संगीत के माहौल में पली–बढ़ी। माता–पिता संगीत प्रेमी थे, सभी भाई–बहन संगीत की विविध विधाएँ सीखते थे। वे अलग–अलग वाद्य बजाते थे। ऐसे में संगीत के प्रति लगाव स्वाभाविक ही था। हम लोगों का घर–परिवार बहुत बड़ा था। समय–समय पर शुभ अवसर आते – बच्चों का जन्म, मुंडन, शादी–ब्याह आदि, जिनमें संस्कार गीत गाये जाते हैं। ये सभी संस्कार संबंधी गीत लोकगीत ही हैं। सावन व होली आदि मौकों पर भी लोकगीत ही गाये जाते हैं। घर में कोई भी काम करने वाली सहायिका आती तो भी हम सब उनसे उनके गाँव के गीत सुनते। मालिश करने वाली से मालिश कराते–कराते हम उनके गाँव की बातें और वहाँ के गीत सुनते जाते। तरह–तरह के पारंपरिक लोक गीत, ऋतु गीत, परिवार में आपसी नोंक–झोंक के गीत सुनकर मानो उन्हीं के गाँव हम पहुँच जाते थे। गाँव का प्राकृतिक सौन्दर्य, बड़े लहलहाते खेत, वहाँ की माटी की सुगंध हमारे दिल–दिमाग में छा जाती। होली आने पर हमारे घर के आस–पास औरतें अपनी सहेलियों सहित हमारे घर के आँगन में ढोलक–मंजीरे लेकर आ जातीं और घंटों होली के गीत और फिर हँसी–मज़ाक के गीत गातीं। फिर उन सबका खान–पान होता। हम लोगों के बीच भाषा की कोई कठिनाई नहीं थी। हम लोग उत्तर प्रदेश की प्रयाग नगरी में रहते थे। इन लोगों के गीत प्रायः अवधी भाषा में होते और बड़ी आसानी से समझ में भी आ जाते थे। इनके गाये गीत हम लोगों को याद हो जाते थे। इन गीतों में बहुत अच्छे भाव होते और वे क्षेत्र के साहित्य और वहाँ की संस्कृति को भी दर्शाते। कुछ गीत राम के जन्म से लेकर वनवास तक के होते, कुछ कृष्ण की विभिन्न लीलाओं पर, कुछ देवी महिमा पर आधारित, तो कुछ पारिवारिक संबंधों को लेकर अपनी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते थे। ये गीत आज भी मन में बसे हुए हैं।

सुनंदा – आपकी रुचि लोकगीतों और लोक संगीत में कैसे बढ़ी?

धीरा वर्मा – मेरी लोकगीतों में रुचि की शुरुआत यहीं से हुई। लोकगीत जनमानस के गीत हैं, मानव मन की अभिव्यक्ति हैं। वे बड़ी ही सरल और सीधी क्षेत्रीय भाषा में होते हैं और सभी को आसानी से समझ में आ जाते हैं। इनकी धुन भी सरल होती है। मानव के जीवन में बहुत–सी बातें ऐसी होती हैं, जिसे वह किसी से भी खुलकर कह नहीं पाता है, उन्हीं बातों को बहुत ही सरल सहज भाव से गीतों में वह व्यक्त कर लेता है, कभी हास–परिहास में, तो कभी गंभीर भाव में। लोकगीतों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि मेरे लिए सदा से आकर्षण का कारण रही है। मूल रूप से मैं मनोविज्ञान के क्षेत्र की हूँ और हर भावात्मक अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि मुझे मनोविज्ञान से जुड़ी दिखती है। जैसे पारस्परिक सम्बन्ध के गीत हैं। उनके पीछे एक नारी मनोविज्ञान है, जो उसको जीवंत बनाता है। एक छोटा–सा उदाहरण आपको देती हूँ। सावन का एक गीत जिसमें रिश्तों की अहमियत बताई गई है –

"निमिया तले डोला धर दे मुसाफ़िर, आई सावन की बहार रे।
कौन कहे बेटी नित उठि अइयो, कौन कहे छठ मास रे।
कौन कहे बहना अवसर पे अइयो, कौन कहे क्या है, काम रे।
अम्मा कहे बेटी नित उठि अइयो, बाबुल कहे छठ मास रे।
भइया कहे बहना अवसर पे अइयो, भाभी कहे क्या है काम रे।
,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,
कौन के रोये से नदिया बहत है, कौन–कौन के रोये से सागर ताल रे।
कौन के रोये से भीजे मोरी चुनरी, कौन के मन आनंद रे।
अम्मा के रोये से नदिया बहत है, बाबुल के रोये से सागर ताल रे।
भैया के रोये से भीजे मोरी चुनरी, भाभी के मन आनंद रे।।"

इस गीत में बेटी के प्रति माता, पिता, भाई और भाभी, जिनसे उसका मायका (पीहर) कहलाता है, उनके मनोभावों को दर्शाया गया है। ऐसे अनेक पारंपरिक गीत हैं, जो समय–समय पर गाये जाते हैं। गीत के भाव के हिसाब से गीतों की धुन होती है। लोकगीत भी किसी न किसी राग पर ही आधारित होते हैं। शास्त्रीय संगीत भी मेरे अध्ययन का विषय रहा है, इसलिए मैं हर गीत में राग ढूँढ लेती हूँ। होली के गीत अधिकतर राग काफ़ी में गाये जाते हैं। लोकगीतों में राग पीलू, भैरवी आदि का काफ़ी प्रचलन है। लोक संगीत शास्त्रीय संगीत का मूल है। लोकगीतों की विशेषता है कि आप इसमें विविधता लाकर इन्हें और रोचक और प्रभावी बना सकते हैं। लोक संगीत की विशेषता यह भी है कि संगीत की धुन सुनने से ही पता चल जाता है कि वह किस क्षेत्र या प्रांत का है। जब मुझे बुल्गारिया जाने का अवसर मिला, तो वहाँ बिताए पाँच सालों में मैंने वहाँ के लोकगीत भी सुने, समझे, सीखे और गाए। देश कोई भी हो, भाषा कोई भी हो, भावनाएँ वही होती हैं, रिश्तों की मिठास वही होती है और मन में कांटे भी वैसे ही होते हैं।

सुनंदा – आपने मनोवैज्ञानिक के रूप में काम किया, कई साल दिल्ली विश्वविद्यालय में बुल्गारियन भाषा भी पढ़ाई, फिर गिरमिटिया साहित्य और प्रवासी भारतीय लोक संगीत में आपकी रुचि कैसे हुई?

धीरा वर्मा – मनोविज्ञान विषय की विशेषता यह है कि वह हर उस क्षेत्र से जुड़ा है जहाँ मानव है! दिल्ली स्थित 'पालना' संस्थान से मैं मनोवैज्ञानिक के तौर से जुड़ी रही। 1974 में पति डॉ. विमलेश कांति वर्मा के साथ सपरिवार मुझे बुल्गारिया में पाँच साल रहने का अवसर मिला। पति सोफ़िया विश्वविद्यालय में इंडोलॉजी विभाग स्थापित कर रहे थे। हमने वहाँ बुल्गारियन भाषा सीखी। वापस भारत आकर हम दोनों ने कई कालजयी कृतियों के अनुवाद किए। दिल्ली विश्वविद्यालय में मैंने बुल्गारियन भाषा पढ़ाई भी। फिर सन् 1984 में पति की प्रतिनियुक्ति फ़िजी स्थित भारतीय उच्चायोग में प्रथम सचिव के पद पर हुई और हमें फ़िजी जाने का अवसर मिला। फ़िजी के विषय में उस समय मुझे अधिक मालूम नहीं था। उस समय

विदेश के नाम से तो यही समझ में आता था कि विदेश में लोग अंग्रेज़ी के अलावा कोई अन्य भाषा नहीं समझते हैं। लेकिन वहाँ पहुँचने पर हवाई अड्डे पर ही हम लोगों का हिंदी भाषा में स्वागत हुआ। मन प्रसन्न हो गया, भ्रम टूटा कि 'विदेश में बिना अंग्रेज़ी के काम नहीं चलेगा'। लगा कि हम अपने ही देश में हैं। जैसे–जैसे लोगों से मिलना शुरू हुआ, उनकी हिंदी भाषा ने बहुत जल्दी ही हमको अपना बना लिया। उनकी भाषा फ़िजीबात, बहुत ही मीठी अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली, बम्बईया हिंदी और वहाँ की मूल भाषा काईवीती आदि सभी भाषाओं को लेकर बनी मिश्रित भाषा है और सुनने में बहुत ही अच्छी लगती है। जल्दी ही हमारे परिचित और पड़ोसी हमारे अच्छे मित्र बन गए। शुरू में वे अपनी हिंदी बोलने में सकुचाते थे। वे कोशिश करके हम लोगों से शुद्ध हिंदी बोलना चाहते थे, जिसे वे रेडुआ (रेडियो) की भाषा कहते थे। हम अवध क्षेत्र के हैं, तो हम उनसे उन्हीं की भाषा में बोलने की कोशिश करने लगे। धीरे–धीरे उनका संकोच हट गया। फिर तो हम लोग खुले दिल से मिलते, बात करते। भाषा दो अजनबियों को कैसे जोड़ती है, यह हमने देखा। जैसे–जैसे हम फ़िजी के लोगों के संपर्क में आए, वैसे–वैसे उनके पुरखों की दर्द भरी दास्ताँ सुनने को मिलीं। किस तरह कष्ट उठाकर धोखे में उनको यहाँ लाया गया, किन कठिन परिस्थितियों में उन्हें रखा गया आदि। इन्हीं लोगों से 'गिरमिटिया' शब्द भी सबसे पहले सुनने को मिला और उसके पीछे छुपी कहानी भी समझ आई। इतना कुछ सुनकर मन में उत्सुकता जगी कि इनके बारे में ज़रूर कुछ लिखा भी गया होगा। जब मन में कुछ जिज्ञासा हो, तो साधन अपने आप ही बनते जाते हैं। जिस किसी भी सहेली से मिलती, उनके बाप दादों के विषय में जानने की जिज्ञासा होती। किसी के पुरखें फ़ैज़ाबाद के, तो किसी के कानपुर के, तो किसी के रायबरेली या बांदा के होते। परिवार के बड़े बूढ़े हमारा हाथ पकड़कर गले लगाकर कहते कि अब हम लोग तो अपना गाँव कभी देख नहीं पायेंगे। कुछ संपन्न परिवार वाले अपने पुरखों का गाँव ढूँढकर भारत भी गए और उन्हें संतोष हुआ कि वे अपने देश की धरती छूकर वापस आए।

लोगों से बातचीत करने और ढूँढने से गिरमिटिया साहित्य की कुछ किताबें उपलब्ध हुईं। वहाँ के कई लेखक और कवियों से भी मिलना जुलना होता था। उनकी रचनाओं में भी वही दर्द दिखा। कुछ किताबें पढ़कर तो रोंगटे खड़े हो जाते। उन्हीं में से एक किताब थी पंडित तोताराम सनाढ्य की 'फ़िजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष'। इसमें गिरमिटियों की दर्द भरी कहानी थी कि किस सीमा तक हमारे भारतीयों को बुरी दशा में रखा गया। कोड़ों की मार खाकर बदन छिलकर छलनी हो जाता, फिर भी रात में एक जगह जमा होकर वे रामायण पढ़ते, भजन और गीत गाते और फिर अपनी छः फुट लम्बी चार फुट चौड़ी कोठरिया में सोने की कोशिश करते। मुझे जो भी बुज़ुर्ग मिलते उनसे किसी न किसी सन्दर्भ में गिरमिटियों की व्यथा–कथा पर चर्चा हो ही जाती। फ़िजी में बहुत–सी रामायण और लोक गायकों की मंडलियाँ थीं। मुझे उन्हें सुनने का भी अवसर मिला। बड़े अच्छे गीत सुनने को मिलते। अधिकतर गीतों में उनकी व्यथा, धोखे से भारत छूटने का पछतावा, फिर से वापस न जा पाने की आशंका, सभी कुछ उनके गीत कह जाते और मन मस्तिष्क में पूरी तरह से छा जाते। एक गीत की कुछ पंक्तियाँ थीं –

"किसके बताई हम पीर रे बिदेसिया
कारी कोठारिया में बीते नाहीं रतिया, किसके बताई हम पीर"

मैं वहाँ बसे भारतीयों से उनके रीति–रिवाज़ों के बारे में पूछती और शादी–ब्याह, जन्म आदि के गीतों के बारे में जानती। उनके कई गीत तो हमारे पारंपरिक गीतों जैसे ही होते और कुछ गीतों में वहाँ के देशज शब्दों को जोड़कर वे गाते। फ़िजी के मूल निवासी काईवीती कहलाते हैं। वहाँ के लोकगीतों में काईवीती शब्द भी थे। फ़िजी के लोकसंगीत में मेरी रुचि को देखते हुए फ़िजी हिंदी साहित्य समिति ने जिसके कर्णधार मुख्य रूप से श्री विजयेंद्र सुधाकर, श्री

रामनारायण गोविन्द और श्री महेन्द्रचंद्र शर्मा 'विनोद' थे, ने भारतीय हाई कमीशन के सहयोग से 'लोक गीतों भरी सांझ' कार्यक्रम का आयोजन किया। इसमें राजधानी सूवा और निकटवर्ती क्षेत्रों के अनेक लोक गायक और गायिकाओं के समूह पारंपरिक वेशभूषा में और पारंपरिक आभूषणों में सज–धजकर आये। नए उभरते कलाकारों ने भी भाग लिया और उन्होंने आधुनिक वाद्यों के साथ अपने लोकगीत गाये। उनमें से एक लोकगीत मुझे अभी भी याद है, जिसमें बेटी की ससुराल में दहेज के कारण जो दुर्दशा होती है, उसकी भावपूर्ण अभिव्यक्ति थी।

"बिटिया जऊने दिना से बिदा भई महतारी से, ना आई ससुरारी से, हो।

घर माँ लेन–देन का रगड़ा होई गया दुइनो घर में झगड़ा,

बिटिया सर दे मारी, घर की चहार दीवारी से।"

यह गीत आधुनिक वाद्यों के साथ गाया गया था, जिसने सभी श्रोताओं को गहरे तक हिला दिया था। इस प्रकार मेरे मन में वहाँ के लोक संगीत और लोक साहित्य से एक जुड़ाव–सा हो गया। फ़िजी में रहते हुए मैंने वहाँ के लोकगीतों का संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। इनमें फ़िजी के गिरमिट गीत भी थे।

सुनंदा – प्रवासी भारतीय लोक गीतों पर सबसे पहले आपने काम कब शुरू किया?

धीरा वर्मा – जब कुछ बातें हर समय दिमाग पर छाई रहे, तो उस पर काम अपने आप धीरे–धीरे शुरू हो जाता है। हम लोग चार साल बाद सन् 1987 में फ़िजी से भारत लौटकर आये। यह वह समय था, जब गिरमिटिया शब्द भारत के लिए नया–सा था और लोग इसके अर्थ से परिचित नहीं थे। प्रवासी साहित्य भी भारतीयों के लिए नया–सा ही विषय था। मैं आकाशवाणी में बहुत समय से संगीत और विविध विषयों से सम्बंधित कार्यक्रम करती आ रही थी। मैंने विविध आकाशवाणी केन्द्रों से प्रवासी जीवन पर सोदाहरण वार्ताएँ दीं। लोकगीतों के माध्यम से मैंने कई कार्यक्रमों में प्रवासी भारतीयों की पीड़ा और दुःख–दर्द को आम जनता तक पहुँचाया। समय–समय पर कुछ गोष्ठियाँ आयोजित हुईं और गिरमिटिया तथा प्रवासी साहित्य पर चर्चा शुरू हुई। फ़िजी के साथ प्रवासी भारतीयों वाले अन्य देश जैसे सूरीनाम, मॉरीशस, दक्षिण अफ़्रीका के लोकगीतों पर भी मैंने शोध किया। इसी बीच पति डॉ. विमलेश कान्ति द्वारा संयुक्त रूप से लिखी गई मेरी पुस्तक 'फ़िजी में हिंदी – स्वरूप और विकास' प्रकाशित हुई, जिसमें एक अध्याय था – 'फ़िजी के गिरमिट गीत – प्रवासी भारतीयों की संघर्ष कथा के मौखिक दस्तावेज़'। प्रवासी भारतीयों से जुड़े कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भी मैंने अपने शोध आलेख प्रस्तुत किए, जो बहुत सराहे गए। गिरमिट जीवन की व्यथा–कथा सुन श्रोता गिरमिटियों पर हुए अमानवीय अत्याचारों से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते और उनकी आँखों में आँसू आ जाते। सच कहा जाए तो ये गिरमिट गीत प्रवासी हिंदी सा. हित्य की अनुपम निधि हैं, जिनका साहित्यिक महत्त्व तो है ही, साथ ही ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक महत्त्व भी है। जब मैं दक्षिण अफ़्रीका और मॉरीशस गई, तो वहाँ गिरमिटिया के रूप में गए लोगों की चौथी और पाँचवीं पीढ़ी के भारतीयों से मिलने और जुड़ने का अवसर मिला। सभी के लोकगीतों में वही गिरमिटिया जीवन की पीड़ा, अपने पूर्वजों द्वारा झेले गए कष्ट उनके गीतों में भी सुनने को मिले। यह गीत मेरे प्रवासी लोकगीत संगीत संग्रह में जुड़ते गए। आज ये लोकगीत संग्रह मेरी अमूल्य निधि हैं।

सुनंदा – आपने गिरमिट गीत पर कई अनुसंधानपरक आलेख लिखे और विभिन्न गोष्ठियों में पढ़े हैं। आपको क्यों लगता है कि इन गीतों पर शोध होना चाहिए ?

धीरा वर्मा – लोकगीत भी लोक संगीत का एक स्वरूप है। यही कारण है कि भारतीय गिरमिटियों ने भी अपनी व्यथा–कथा को जो शाब्दिक अभिव्यक्ति दी, वह संगीत के माध्यम से दी। संगीत अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली बनाने की शक्ति रखता है। इन गीतों में एक वर्णनात्मकता है, घटनाओं का ऐसा चित्रण

है (जो विषय की दृष्टि से बहुत अलग है), जो सुनने वाले पर तत्काल प्रभाव डालता है। ये गीत प्रवासी भारतीयों के संघर्ष के मौखिक दस्तावेज़ हैं, जो केवल घटनाओं के चित्र ही प्रस्तुत नहीं करते, वरन उनके मन की टीस को भी श्रोताओं के सम्मुख रखते हैं। इन बीते दो सौ वर्षों में 1834 से लेकर आज तक भारतीयों के प्रवास गमन, विदेश में अपने अस्तित्व के लिए कठिन संघर्ष से लेकर आज उनकी वर्तमान स्थिति तक पहुँचने की लम्बी यात्रा का प्रारम्भ तो उनके इन गीतों में ही दिखता है। इसलिए अगर विदेश में बसे हुए लाखों और करोड़ों की संख्या में प्रवासी भारतीयों के इतिहास लिखने की बात कभी उठेगी, तो उनके प्रारंभिक संघर्ष का परिचय इन्हीं लोकगीतों से प्राप्त होगा और यह सप्रमाण बता सकेगा कि जिस नए देश में नई आजीविका की खोज में बहला फुसलाकर एजेंट द्वारा लाये गए, उस देश के विकास में कितनी बड़ी भूमिका रही है। उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में रहकर कितना संघर्ष किया और उस देश को धन–धान्य संपन्न बनाने में उनकी कितनी बड़ी भूमिका रही है। इसीलिए मुझे लगता है कि इस दिशा में कार्य करने की बड़ी आवश्यकता है।

सुनंदा – फ़िजी, सूरीनाम, मॉरीशस, त्रिनिदाद तथा दक्षिण अफ़्रीका के लोक गीतों में क्या समानताएँ और विभिन्नताएँ आपको दिखती हैं।

धीरा वर्मा – फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम और त्रिनिदाद में जो भी भारतीय मज़दूर के रूप में ले जाए गए, सबके दुख–दर्द की कहानी एक ही है। अंतर केवल यही है कि फ़िजी अंग्रेज़ी भाषी ब्रिटिश उपनिवेश था, मॉरीशस फ़्रांसीसी उपनिवेश था जबकि सूरीनाम डच उपनिवेश था। इन देशों में गए हुए भारतीय सामान्यतः पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार से गए थे, जो मुख्यतः अवधी और भोजपुरी बोलते थे। परिणामस्वरूप इन सभी देशों में गिरमिटिया भारतीयों की भाषा अवधी और भोजपुरी ही थी, पर अवधी के साथ काईवीतियों की भाषा का पुट आ गया। फ़िजी हिंदी में जो अंग्रेज़ी शब्द थे वे भी विकृत रूप में इन गीतों में आ गए। 'कॉलनंबर' 'कोलम्बर' बन गया, 'रेक्रुटर' 'आरकाटी' बन गया और 'एग्रीमेंट' शब्द बदलकर 'गिरमिटिया' हो गया। इसी तरह मॉरीशस के लोक गीतों की भाषा में फ़्रांसीसी शब्दों का मिश्रण होने लगा और वहाँ के मूल निवासियों की भाषा के शब्दों ने क्रियोली का रूप धारण कर लिया। सूरीनाम डच उपनिवेश था और वहाँ की मूल भाषा स्नाग्तोंगो थी। परिणामस्वरूप वहाँ की हिंदी मूल रूप में अवधी मिश्रित भोजपुरी रही और साथ ही उसमें डच और स्नाग्तोंगो शब्दों का प्रयोग भी हुआ। इस भाषा मिश्रण ने इन गिरमिट गीतों को हिंदी की नई शैली में ढालकर प्रस्तुत किया, जो कि श्रोताओं के लिए एक नए आकर्षक रूप में सामने आए।

सुनंदा – डायस्पोरा देशों की आपके अनुसंधान के सम्बन्ध में क्या प्रतिक्रियाएँ हैं?

धीरा वर्मा – गिरमिट गीतों को संगीतबद्ध रूप में या सोदाहरण वार्ता के रूप में प्रस्तुत करते समय मैंने हमेशा यह ध्यान रखा कि चूँकि ये गिरमिट गीत मूलतः गीत हैं, इसलिए इनकी प्रस्तुति भी गीतात्मक ही होनी चाहिए। मैं अपने अनुभव से आपको बता सकती हूँ कि जहाँ भी सोदाहरण वार्ता के रूप में मैंने इनकी गीतात्मक प्रस्तुति दी, उसने श्रोताओं को हमेशा बहुत प्रभावित किया। मैंने गीतों के भावों के अनुसार उन्हें स्वरबद्ध किया। लोकगीतों के कार्यक्रम को लोग बहुत ही रुचि से सुनते हैं। यही नहीं जब मैं रिकॉर्डिंग के लिए जाती, तो वहाँ मुझसे लोग गिरमिट गीतों के साथ प्रवासी भारतीयों के बारे में तरह–तरह की जिज्ञासाएँ रखते। मुझे लगता है कि विविध पढ़े–लिखे लोगों के मध्य से आने वाली ये विविध जिज्ञासाएँ संकेत देती हैं कि इस दिशा में पर्याप्त अनुसंधान और विवेचन की आज आवश्यकता है।

sunanda.asthana@gmail.com
sunandaverma@yahoo.com